Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदासग्रन्थावली

द्वितीयो भागः

प्रधानसम्पादको
डॉ. मिथिलाप्रसादस्त्रिपाठी

सम्पादकोऽनुवादकश्च
म.म.प्रो.रेवाप्रसादद्विवेदी

संयुक्तसम्पादकः
डॉ.सदाशिवकुमारो द्विवेदी

कालिदाससंस्कृतअकादमी, उज्जयिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत **कालिदासग्रन्थावली** में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं का मूलपाठ व्यवस्थित कर लिया गया है। प्राकृत को भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के १७वें अध्याय का आधार मिल गया और 'कालिदास की प्राकृत असाध्य है' यह घोषणा विफल हो गई। नाट्यसंवादों में प्राप्त असंगतियाँ दूर कर ली गई हैं और उन्हें संदर्भ संख्या दे दी गई है। उनकी दृश्य और सूच्य वस्तुओं का स्पष्ट विभाजन अंकित कर दिया गया है। नाटक का आरम्भ जिस पूर्वरङ्ग से होता था उस का भी निर्देश भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के आधार पर कर दिया गया है। तदनुसार 'पुष्करवाद्यनान्दी' शीर्षक जोड़ दिया गया है। दूसरी मंगलाशंसात्मक नान्दी का भी निर्देश कर दिया गया है।

काव्यों का क्रम प्रथम दो संस्करणों (१९७६ व १९८६) से भिन्न रखा गया है और रघुवंश का आरम्भ अपनी स्वाभाविकता पा गया है । ऋतुसंहार को माना तो गया है किसी दूसरे कालिदास की रचना, किन्तु उसे भी यहाँ काव्यभाग के अन्त मे स्थान दे दिया गया है, किन्तु कुमारसंभव को केवल अष्टम सर्ग तक ही रखा गया है । अष्टम सर्ग से भोजराज ने ४१ पद्य उद्धृत किए हैं। ९–१७ सर्ग जो कुछ संस्करणों में दिए गए हैं, उन्हें वक्तव्य और शिल्प दोनों के आधार पर १–८ सर्ग के रचयिता की रचना नहीं ही कहा जा सकता। भोज ने भी उनका और ऋतुसंहार का भी उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक की अपभ्रंश–गाथाओं को माना तो गया है प्रक्षिप्त ही किन्तु उन्हें यथास्थान दे दिया गया है और उनकी संस्कृत छाया भी जोड़ दी गई है।

कालिदास के नाटकों के ६ हस्तले[illegible] अमेरिका के हार्वर्डविश्वविद्यालय में सुलभ [illegible] उनमें से पाँच का पूर्ण उपयोग कर लिया गया है। काव्यभाग में भी वहाँ सुरक्षित अद्भुत हस्तलेखों का उपयोग कर लिया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण की प्रत्येक रचना पाण्डुग्रन्थों के आधार पर संपादित हो चुकी है। इसमें हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है।

R
०८२
मिश्रि-क
127151

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
विषय संख्या R ०८२ मिश्रि-क आगत नं० 127151
लेखक मिश्रिलालप्रसाद त्रिपाठी
शीर्षक कालिदास ग्रन्थावली

क	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ...०८२ मिश्र-क... आगत संख्या ...127151...

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

127151

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदासग्रन्थावली

(तृतीयं संस्करणम्)

द्वितीयो भागः

नाट्यखण्डम्

प्रधानसंपादको

डॉ. मिथिलाप्रसादस्त्रिपाठी

निदेशकः, कालिदाससंस्कृतअकादमी,

उज्जयिनी

FORWARDED FREE OF COST WITH THE COMPLIMENTS OF
RASHTRIYA SANSTHAN (DEEMED UNIVERSITY), NEW DELHI

संपादकोऽनुवादकश्च

म.म. प्रो. रेवाप्रसादद्विवेदी

सम्मानितसंस्कृताचार्यः

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः

वाराणसी

127151

संयुक्तसंपादकः

डॉ. सदाशिवकुमारो द्विवेदी

रीडरः, संस्कृतविभागः, कलासंकायः,

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः,

वाराणसी

127151

प्रकाशिका

कालिदाससंस्कृतअकादमी

उज्जयिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदासग्रन्थावली

तृतीय संस्करण, समीक्षापूर्ण सम्पादन तथा हिन्दीभाषानुवाद ऋतुसंहार सहित।

प्रथमो भागः — काव्यखण्डम्

१. रघुवंशम् १-१९ सर्गाः
२. कुमारसम्भवम् १-८ सर्गाः
३. मेघदूतम् १-१११ पद्यानि
४. ऋतुसंहारम् १-६ ऋतुवर्णनाः

द्वितीयो भागः — नाट्यखण्डम्

१. मालविकाग्निमित्रम् १-५ अङ्काः
२. विक्रमोर्वशीयम् १-५ अङ्काः
३. अभिज्ञानशाकुन्तलम् १-७ अङ्काः

राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थान द्वारा मानवसंसाधनविकासमन्त्रालय, नई दिल्ली से
कालिदाससंस्थान, वाराणसी को प्राप्त आर्थिक अनुदान से निर्मित।

पाण्डुग्रन्थों के उपयोग की अनुमति हाउटन लाइब्रेरी, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, अमेरिका (हामा.) से प्राप्त।

प्रधानसम्पादक — प्रो. मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी

सम्पादकद्वय — म.म. प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी
डॉ. सदाशिवकुमार द्विवेदी

© सम्पादकयोः

मूल्यम् - पञ्चशतं रूप्पकाणि

प्रकाशनवर्षम् २००८
कालिदाससंस्कृतअकादम्या स्वर्णजयन्तीवर्षम्

प्रकाशिका—
कालिदाससंस्कृतअकादमी,
उज्जैन

मुद्रक - पंचायतीराज मुद्रणालय, उज्जैन फोन- 2511227

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPLETE WORKS OF
KĀLIDĀSA

(THIRD EDITION)

Volume II

NĀṬYAKHAṆḌA

Chief Editor

DR. MITHILAPRASADA TRIPATHI
Director,
Kalidasa Sanskrit Akademi
Ujjain

Editor and Translator

M.M. PROF. REWAPRASADA DWIVEDI
Professor Emeritus (Sanskrit),
Banaras Hindu University
VARANASI

Joint Editor

DR. SADASHIVAKUMAR DWIVEDI
Reader, Deptt. of Sanskrit, Faculty of Arts,
Banaras Hindu University
VARANASI

Publisher

KĀLIDĀSA SANSKRIT AKADEMI
UJJAIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPLETE WORKS OF KĀLIDĀSA

Third Edition

Critically Edited text with Hindi Translation of all the works of Kālidāsa including *Ṛtusamhāra*.

Volume I - Kāvyakhaṇḍa (Poems)

1- Raghuvamśam	1-19 Cantos
2- Kumārasambhavam	1-8 Cantos
3- Meghadūtam	1-111 Verses
4- Ṛtusamhāram	1-6 *Ṛtus (Seasons)*

Volume II - Nātyakhaṇḍa (Plays)

1- *Mālavikāgnimitram*	1-5 Acts
2- *Vikramorvaśīyam*	1-5 Acts
3- *Abhijñānaśākuntalam*	1-7 Acts

Prepared with the financial assistance from the Ministry of HRD through Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi to the Kalidasa Sansthan, Varanasi.

Harvard Mss. referred to by permission of Houghton Library, Harvard University, USA.

Chief Editor- Prof. Mithilaprasad Tripathi

Editors - M.M.Prof. Rewaprasad Dwivedi
Dr. Sadashivakumar Dwivedi

© Editors

Price : Rs. Five Hundred Only

Year of publication 2008 AD
The Golden Jubilee Year of Kalidasa Sanskrit Akademi.

Published by -
Kalidasa Sanskrit Akademi
Ujjain

Printer- Panchayati Raj Mudranalaya Ujjain Ph.: 2511227

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टमूर्तिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीयम्

दृश्यकाव्यत्रयं सूरेः कालिदासस्य मुख्यतः ।
रसभावानुषङ्गेण राष्ट्ररक्षाप्रयोजनम् ॥१॥
विक्रमादित्यनाम्ना वै साहसाङ्केन भूभुजा ।
आदद्रे तत एवासावेव सूरिः प्रयोगतः ॥२॥
आद्यं यन्नाटकं सूरेरस्य मालविकाश्रितम् ।
तत्रोद्देश्यं शमो भ्रात्रोः कले राष्ट्रैक्यसिद्धये ॥३॥
संविधानकमप्यस्मिन्नेव वैचित्ररूषितम् ।
नाट्यशास्त्रविधानं च लक्ष्यतेऽत्र समाश्रितम् ॥४॥
द्वितीये पुरुवंशीये पुरूरवसि विक्रमः ।
दायभागीय–पुत्रस्य प्राप्तये परिकल्पितः ॥५॥
नायिकाया यदौन्मुख्यं नायकं प्रति तस्य वै ।
शृङ्गारे तुलना नास्ति केनाप्यन्येन वर्त्मना ॥६॥
अत एवाप्सरःश्रेष्ठा नायिकात्वाय कल्पिता ।
अभिसारमुखी सेयं दर्शिता नायकं प्रति ॥७॥
अलौकिकानि वृत्तानि नाट्यधर्मी विहाय नो ।
शक्यन्ते प्रस्तुतिं दातुमतः सैवाऽत्र संश्रिता ॥८॥
अत एव प्रयोक्तृभ्यो दुष्करं नाटकं त्विदम् ।
आकाशभ्रमणादीनां लोकधर्म्या क्व दर्शनम् ॥९॥
अन्ते पुत्रस्य संप्राप्तिर्विक्रमेणैव भूपतेः ।
प्रजासान्तत्ययोगाय यथापूर्वं प्रकल्प्यते ॥१०॥
तृतीयं नाटकं यच्च शाकुन्तमितीर्यते ।
चक्रवर्त्तिसुतस्याप्तिस्तत्र मुख्यं प्रयोजनम् ॥११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिज्ञानानि भूयांसि भजन्ते साधनीं धुरम् ।
नाट्येऽत्र तत्कृतेऽन्त्यौ द्वावङ्कौ सार्थकतामितः ॥१२॥
शाकुन्तलपदं शाकुन्तलेयस्य कृते त्विह ।
महाभारतमाश्रित्य गृहीतं राजशब्दवत् ॥१३॥
शकुन्तलाया यद् रूपं प्रागभूदद्भुताद्भुतम् ।
तदेव सप्तमेऽङ्केऽस्ति नितान्तं करुणा–पदम् ॥१४॥
सेयं कीदृग्विधा गाथा, करुणाजनिकाऽथवा ।
शृङ्गारभोगकर्त्री, स्वं चेतोऽत्र परिमृश्यताम् ॥१५॥
अत्राऽपि नाट्यधर्मी हि प्रयोगाय महीयसी ।
अन्यथा स्यात् कथं प्राप्तिर्मारीचाश्रमवासिनाम् ॥१६॥
नाट्यशास्त्रस्य यस्तावदध्यायोऽस्ति त्रयोदशः ।
सोऽध्येयो यत्नतस्त्वत्र नटैरिव सचेतनैः ॥१७॥
प्राकृतान्यत्र भूयांसि शोध्यानि भरताध्वना ।
मार्गान्तरं कनिष्ठानां वर्षिष्ठेष्वधिरोपणम् ॥१८॥
पाण्डुलेखाश्च काव्यानां यथाऽभिनययोगिनाम् ।
नाट्यानामेकरूपत्वं भरतस्याध्वना श्रिताः ॥१९॥
संस्काराच्च्युतिरेवैकं तन्त्रं भरतसम्मतम् ।
प्राकृतत्वस्य निष्पत्तौ त्याज्यस्त्वेकत्वदुर्ग्रहः ॥२०॥
प्रतिवक्तृप्रभेदेन कषायितपदं तु यत् ।
प्राकृतं संस्कृतापेक्षमत्यन्तकठिनायते ॥२१॥
सर्वथा व्यवहर्त्तव्यमिति या कापि देशना ।
भ्रष्टलेखमहावर्त्तक्लिष्टानद्यतनानवेत् ॥२२॥

हरिप्रबोधपर्व २०६५वि०

रेवाप्रसादस्य द्विवेदिनः
सनातनस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदासग्रन्थावली

द्वितीयो भागः

नाट्यखण्डम्

		पृष्ठम्
सम्पादकीयम्		५ – ६
१. मालविकाग्निमित्रम्	१–५ अङ्काः	१ – १४३
२. विक्रमोर्वशीयम्	१–५ अङ्काः	१४५ – ३०९
३. अभिज्ञानशाकुन्तलम्	१–७ अङ्काः	३११ – ५२५
परिशिष्टम् – १	उद्गाराः	५२७ – ५२८
परिशिष्टम् – २	पाठभेदाः	५२९
परिशिष्टम् – ३	छन्दोवृत्तानि	५३० – ५३५
परिशिष्टम् – ४	नाटकश्लोकानुक्रमः	५३६ – ५४१

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रङ्गनिर्देशाः

१. **अपवार्य/अपवारणम्**	मञ्च पर किसी पात्र से अलग हटकर कुछ बात करना जिसे मञ्च के अन्य पात्र न सुनें, किन्तु प्रेक्षक को सुनाई दें।
२. **आकाशे**	शब्दभर सुनाई दे, वक्ता दिखाई न दें।
३. **आत्मगतम्/स्वगतम्**	ऐसा भाषण जिसे मञ्च का कोई पात्र न सुन रहा हो, किन्तु प्रेक्षक को सुनाई दे रहा हो।
४. **जनान्तिकम्**	मुँह पर तीन उँगलियाँ लगाकर मञ्च पर किसी पात्र से कुछ कहना जिसे अन्य पात्र न सुन रहा हो,किन्तु प्रेक्षक को सुनाई दे रहा हो।
५. **त्रोटकम्**	जिसमें नायक तो मनुष्य ही हो, परन्तु नायिका हो दिव्य महिला।
६. **नान्दी**	नगाड़ावादन, मङ्गलाचरण।
७. **निष्क्रान्त**	मञ्च से चला गया।
८. **नेपथ्ये**	परोक्ष रूप से।
९. **पूर्वरङ्गः**	मुख्य नाटक के प्रारम्भ में किए जाने वाले २३ कार्य। अन्तिम प्रस्तावना। इन्हीं में सभी प्रकार की नान्दी।
१०. **प्रकाशम्**	सबको सुनाते हुए।
११. **प्रविश्य**	मञ्च या पीठ पर प्रवेश कर।

**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविकाग्निमित्रम्

[illegible]

[illegible]

[illegible]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविकाग्निमित्रम्

Houghton Library, Harvard No. 1323, USA

मालविका १

विनेत्यर्थः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विक्रमोर्वशीयमातृका फि.
Vikramorvasiya (First page)
Philadelphia U.S.A., Ms. No. 523.

विक्रमोर्वशीयमातृका फि.
Vikramorvasiya (Beginning of the Fourth Act)
Philadelphia, U.S.A., Ms. No. 523.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

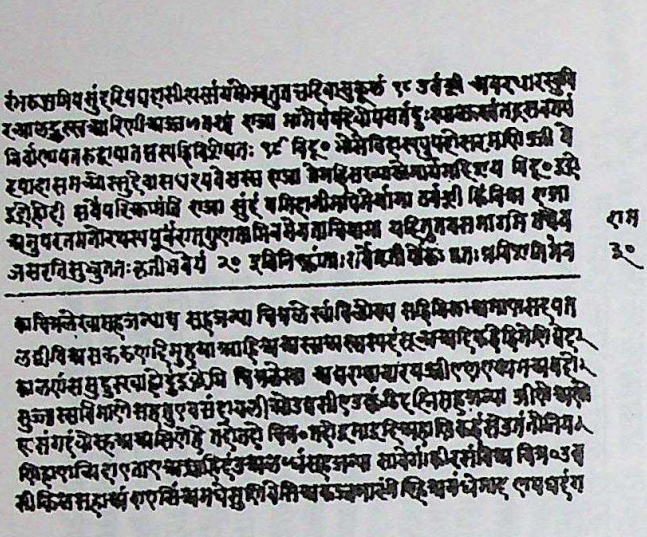

विक्रमोर्वशीयमातृका क–1
Vikramorvasiya (Beginning of the Fourth Act)
Bharatakalabhavana, B.H.U., Ms. No. 3947.

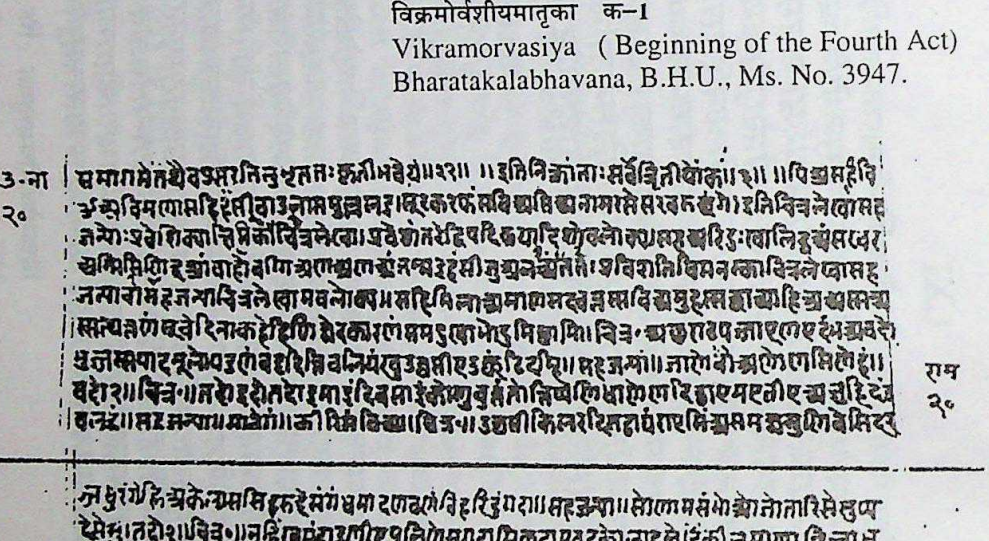

विक्रमोर्वशीयमातृका क–2
Vikramorvasiya
(Beginning of the Fourth Act)
Bharatakalabhavana, B.H.U.
Ms. No. 3950.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Having the name Sri-Vikramaditya

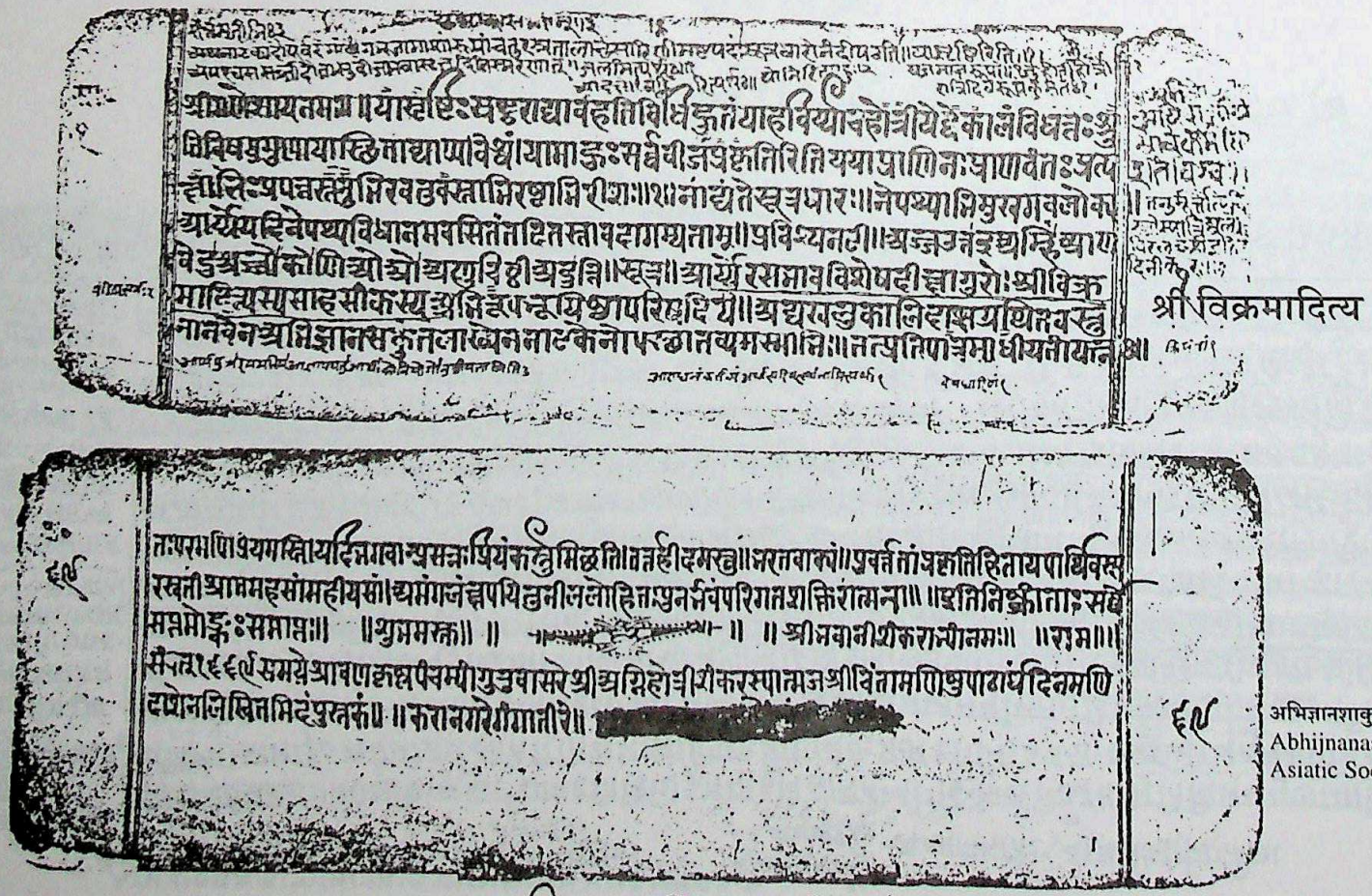

श्री विक्रमादित्य

अभिज्ञानशाकुन्तलमातृका ए–1
Abhijnanasakuntala (First & Last page)
Asiatic Society, Calcutta, Ms. No. G-340.

विक्रम. दिव्यनामोत्कीर्ण युक्तो
ग्रन्थः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

VIII

श्रीगणेशाय नमः॥ यासृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वं। यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवंतः प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥ नांद्यंते सूत्रधारः॥ नेपथ्याभिमुखमवलोक्य। आर्ये यदिनेपथ्यविधानमवसितं तदितस्तावदागम्यताम्॥ प्रविश्य नटी॥ अज्ज। उज्ज। इअ अस्मि। आणवेदु। अज्जो कोणि ओआसो अणुचिट्ठिअदु त्ति। सूत्रधारः। आर्ये रसभावविशेषदीर्घगुरोः श्रीविक्रमादित्यस्य साहसांकस्य अभिरूपभूयिष्ठा संसत्। अद्य खलु कालिदासकथितवस्तुना अभिज्ञानशाकुंतलनाम्ना नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः। तत्रातिपात्रमाधीयतां यत्नः॥ नटी॥ सुविहिदप्पओअ अज्जस्स णाडिं पि पस्सिअ स्सदि। सूत्रधारः। आर्ये कथयामि तेभ्यः तार्थं। यतः। आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानं। बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥ २॥ नटी। एस्सेणेदं। अणंतरकरणीअं दाव अज्जो आणवेदु। सूत्रधारः। किमन्यदस्याः परिषदः प्रमोदहेतोर्यत्कादनंतरकरणीयमस्ती। नटी। अज्जकदं चुदं सुचिं अरिअगाईस्सं॥ सूत्रधारः॥ तदिममेव तावदचिरप्रनष्टमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयतां। संप्रति हि॥ सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः। प्रच्छायसुलभनिद्राः दिवसाः परिणामरमणीयाः॥ ३॥ नटी। तहेत्ति। गायदि। ईसिसिचुंबअं ईभमरेहिं सुउमारकेसरसिहाइं। ओदंसअंतिदअमाणाः पमदाओ सिरीसकुसुमाइं॥ ॥ सूत्रधारः॥ आर्ये साधु गीतम्। अहो रागबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वो रागः। तदिदानीं कतमत्प्रयुज्यतां नेपथ्यं रंगभूमेस्मादिति विश्वः॥ ११॥ इत्थाइति। ईषदीषच्चुंबितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि। अवतंसयंतिदयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि॥ ३॥

पंक्ति-४ आर्ये! रसभावविशेषदीर्घगुरोः श्रीविक्रमादित्यस्य साहसांकस्य

Houghton Library, Harvard University, USA
Indic Ms. No. 1086

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Having the leading द्वितीयः प्रवेशकः

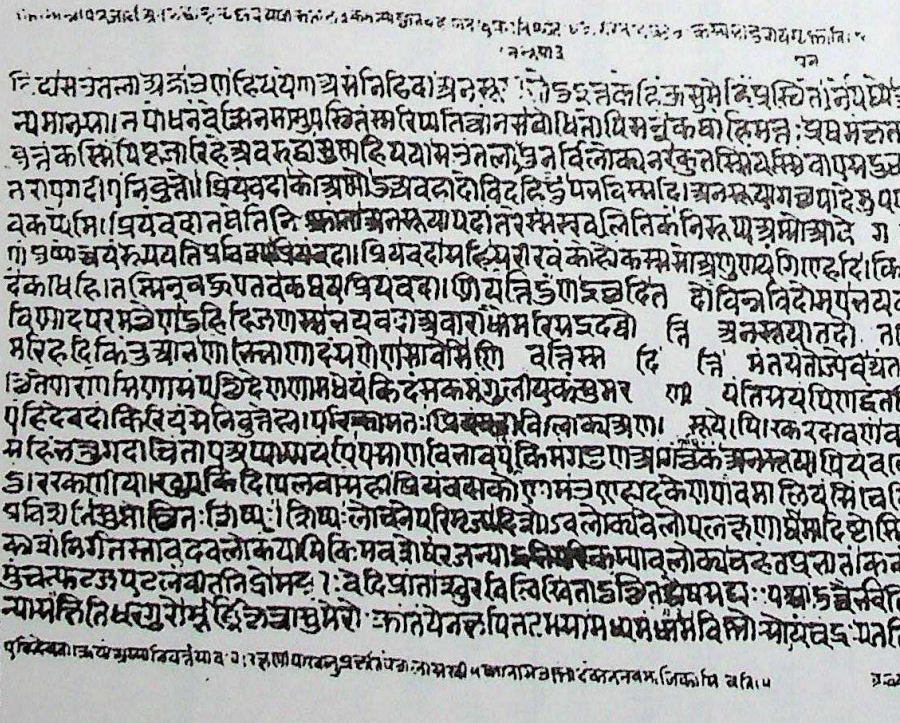

पँक्ति नीचेसे ४

अभिज्ञानशाकुन्तलमातृका

Abhijnanasakuntala (Fol. No. 10)

L.D. Institute, Ahmedabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। मालविकाग्निमित्रम् ।।

पात्राणि—

पुरुषाः— **सूत्रधारः**— नाटकस्य प्रबन्धकः, **पारिपार्श्विकः**— सूत्रधारस्य सहचरः, **राजा**— नायकः अग्निमित्रः विदिशाधीशः, **बार्हतकः**— प्राचीनमन्त्री, **विदूषकः**— माणवकः राज्ञो मित्रम्, **कञ्चुकी**— अन्तःपुराध्यक्षो वृद्धः, **गणदासः हरदत्तश्च**— नाट्याचार्यौ, **सारसकः**— कुब्जः किंकरः, **वैतालिकः**— स्तुतिपाठकः ।

स्त्रियः— **मालविका**— नायिका विदिशेशप्रिया माधवसेनस्य भगिनी, **धारिणी**— अग्निमित्रस्य प्रधानमहिषी, **इरावती**— अग्निमित्रस्य द्वितीया पत्नी, **परिव्राजिका**— कौशिकीनाम्नी माधवसेनसचिवस्य सुमतेर्विधवा भगिनी, **बकुलावलिका**— मालविकायाः सखी, **मधुकरिका**— उद्यानपालिका, **कौमुदिका**— दासी, **समाहितिका**— परिव्राजिकायाः परिचारिका, **निपुणिका**— इरावतीपरिचारिका, **जयसेना**— प्रतीहारी, **चेटी**— अपरा दासी, **मदनिका, ज्योत्स्निका** — विदर्भदेशीये शिल्पकरिके।

आधारः —

१. हामा.— हार्वर्डमातृका Ms. Indic 1323.

२. काग्र. — कालिदासग्रन्थावल्यामस्मत्संपादितायां १९८६ईशाब्दे काशीहिन्दूविश्वविद्यालयतः प्रकाशितं द्वितीयं संस्करणम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ अथ ॥

महाकविकालिदासकृतं

सनातनकविरेवाप्रसादद्विवेदिप्रतिसंस्कृतं

मालविकाग्निमित्रनाटकम्

नेपथ्ये

॥ पूर्वरङ्गः ॥

तत्र पुष्करध्वनिनान्दी

तदन्ते मङ्गलाशंसानान्दी १.१

एकैश्वर्य[१]-स्थितोऽपि प्रणतबहुफलो[२] यः स्वयं कृत्तिवासाः
कान्तासम्मिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः [३]पुरस्ताद् यतीनाम् ।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः ॥ १ ॥

नान्द्यन्ते प्रविश्य २.१

सूत्रधारः *नेपथ्याभिमुखमवलोक्य* [४]मारिष! इतस्तावत्। २.२

प्रविश्य २.३

पारिपार्श्विकः भाव! अयमस्मि। २.४

सूत्रधारः अभिहितोऽस्मि परिषदा कालिदासग्रथितवस्तु मालविकाग्निमित्रं नाम [५]नवं नाटकमस्मिन् वसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यमिति। तदारभ्यतां सङ्गीतकम्। २.५

नन्दिनी

पूर्वरङ्गो द्वाविंशत्यङ्गः। तत्रैव नान्दी अन्यतमा। पुष्करवाद्यनान्दी पुनरत्रैव जीमूतेत्युपनिबध्यते(१.२१)।

१. समासाभावे तु द्वितीयेऽपि चरणे देहे संमिश्रकान्तोऽपीति पठितुं बाध्यामहे। हार्वर्डमातृका(हामा)यां तु ०र्यस्थि०इत्येव पाठः।

२. प्रणयबहुफलो इति हामा.। प्रणयिबहु० इति तु युक्ततरम्। तत्र प्रणयः प्रार्थना। अत्र द्रष्टव्योऽस्माकं कालिदाससाहित्ये प्रणयशब्दार्थ इति लेखः। अष्टौ मूर्तयः शाकुन्तलनान्द्यामुपनिबद्धाः पञ्चमहाभूतानि सूर्याचन्द्रमसौ होतृरूपो यजमानश्चेति।

३. पुरस्तादित्यस्य स्थाने सर्वत्र परस्तादित्येव पाठः, ऋतेऽस्माकं कालिदासग्रन्थावलीम् (काग्र.)।

४. ०लोक्य अलमतिविस्तरेणेति काग्रपाठः।

५. नवेति पदं काग्र. नास्ति। नाटकं नववसन्तो० इति तु हामा.। इदमेव नवपदमस्माभिर्नाटकविशेषण—तयाऽदायि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ

महाकविकालिदासकृत

सनातनकविरेवाप्रसादद्विवेदिप्रतिसंस्कृत

मालविकाग्निमित्र नाटक

(नेपथ्य में)

।। पूर्वरङ्ग नान्दी।।[१]

(उसके अन्त में)

(मङ्गलाशंसा नान्दी)

ईश आपकी तामसी वृत्ति दूर करें, जिससे सन्मार्ग सूझ सके। (ऐसा करना केवल उन्हीं के बूते का है क्योंकि) **वे सच्चे अर्थों में ईश हैं,** (उनका प्रभुत्व स्वयं पर भी है और विश्व पर भी।) (प्रमाण) **वे सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य में ही स्थित रहे आते हैं, तभी तो उन्हें प्रणाम करने वालों को बहुत बड़ी मात्रा में वे विविध फल देते रहते हैं, परन्तु स्वयं पँहनते हैं अपनी त्वचा या गजासुर की खाल** (स्वयं की त्वचा यानी नग्न), **वे कान्ता** (पार्वती) **से नित्य संपृक्त रहते हैं, किन्तु चित्त से इतने बड़े निर्विषय कि यतिजनों में प्रथम, सारे संसार का धारण वे अकेले ही** (पञ्चमहाभूत, सूर्य, चन्द्र तथा यजमान इन) **आठ आठ शरीरों से करते रहते हैं, किन्तु इस सामर्थ्य का उन्हें तनिक भी अभिमान नहीं ।।१।।**

(मंगलनान्दी के पश्चात् प्रवेश करके)

सूत्रधार (नेपथ्य की ओर देखकर) मारिष! इधर आओ।

(प्रवेश कर)

पारिपार्श्विक भाव! यह रहा मैं।

सूत्रधार परिषद् ने मुझे आज्ञा दी है कि कालिदास की कृति 'मालविकाग्निमित्र' नामक नवीन नाटक इस वसन्तोत्सव में प्रस्तुत किया जाए। तो शुरू करो संगीतक।

---

१. नगाड़ा वादन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिपार्श्विकः मा तावत्। [१]प्रथितयशसां भास–सौमिल्ल–कविपुत्रादीनां प्रबन्धा–नतिक्रम्य वर्त्तमानकवेः कृतौ बहुमानः। २.६

सूत्रधारः अयि। विवेकविश्रान्तमभिहितम्। २.७

पुराणमित्येव न साधु सर्व्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ।। २।।

पारिपार्श्विकः आर्यमिश्राः प्रमाणम्। ३.१

सूत्रधारः तेन हि त्वरतां भवान्। ३.२

शिरसा प्रथमगृहीतामाज्ञामिच्छामि परिषदः कर्त्तुम् ।
देव्या इव धारिण्याः सेवादक्षः परिजनोऽयम् ।। ३।।

निष्क्रान्तौ ४.१

।। इति प्रस्तावना पूर्व्वरङ्गश्च।। ४.२

---

१. भासादयः प्रथितयशसः प्राचीनाः परीक्षितरचनाः। कालिदासः पुनः आधुनिकः अश्रुतनामा नवीनः अपरीक्षितगुणः। तेषां प्रबन्धाः अस्य पुनः कृतिः। इत्येवमत्र बहुतरमसूचि अरुचिनिदानम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिपार्श्विक अजी, रहने भी दो। नामी गिरामी 'भास, सौमिल्ल, कविपुत्र' आदि की उत्तम कृतियों को छोड़ आज के नौसिखिया कवि कालिदास की रचना का इतना आदर? आखिर क्यों?

सूत्रधार अरे! ऐसा उद्गार? जिसमें न सोच न विचार। देखो—

पुराने हैं केवल इतने से सभी काव्य उत्तम नहीं हो जाते और नए हैं केवल इतने से हेय। समझदार सत्पुरुष तो परीक्षा करते हैं और तब एक को चुना करते हैं। यह तो मूढों का काम है कि दूसरे के भरोसे चल पड़े।। २।।

पारिपार्श्विक आप जानिए।

सूत्रधार तो जल्दी करो।

परिषद् की जो आज्ञा मैंने पहले सिर पर धारण की है उसे पूरा करना चाहता हूँ। देखो, देवी धारिणी की आज्ञा को उनकी सेवादक्ष इन चेटियों के समान।। ३।।

(दोनों निकल जाते हैं)

।। यह हुई प्रस्तावना : पूर्वरङ्ग ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ प्रथमाङ्कारम्भको मिश्रविष्कम्भकः।। ४.३

।।२।।

ततः प्रविशति चेटी ४.४

चेटी आणत्तम्हि देवीए धारणीए 'अइप्पवुत्तोवदेसं छलिअं णाम णट्टअं अन्दरेण कीरिसी मालविअ' त्ति णट्टाअरिअं अज्जगणदासं पुच्छिदुं। ता दाव संगीदसालं गच्छम्मि। *परिक्रामति।* आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या 'अचिरप्रवृत्तोपदेशं छलिकं नाम नाट्यमन्तरेण 'कीदृशी मालविके'ति नाट्याचार्यम् आर्यगणदासं प्रष्टुम्। तत् तावत् संगीतशालां गच्छामि'। (परिक्रामति) ४.५

ततः प्रविशत्याभरणहस्ता द्वितीया चेटी। ४.६

प्रथमा चेटी *द्वितीयां दृष्ट्वा* हला कौमुदिए! कुदो दे दाणिं इअं धीरदा, जं समीवेण वि अदिक्कामंती इदो दिट्ठिं ण देसि? (द्वितीयां दृष्ट्वा) सखि कौमुदिके! कुतस्त इदानीमियं धीरता, यत् समीपेनाप्यतिक्रामन्ती इतो दृष्टिं न ददासि? ४.७

कौमुदिका अम्हो बउलावलिआ! सहि! देवीए इदं सिप्पिसआसादो आणीदं णागमुद्दासणाधं अंगुलीअअं सिणिद्धं णिज्झाअंती तुह उवालंभे पडिदम्हि। अहो बकुलावलिका! सखि! देव्या इदं शिल्पिसकाशादानीतं नागमुद्रासनाथमङ्गुलीयकं स्निग्धं निध्यायन्ती तवोपालम्भे पतितास्मि। ४.८

बकुलावलिका *विलोक्य* ठाणे क्खु सज्जदि दिट्ठि। इमिणा अंगुलीअएण उद्भिण्णकिरणकेसरेण कुसुमिदो विअ दे अग्गहत्थो पडिभादि। (विलोक्य) स्थाने खलु सज्जति दृष्टिः। अनेनाङ्गुलीयकेन उद्भिन्नकिरणकेसरेण कुसुमित इव ते अग्रहस्तः प्रतिभाति। ४.९

कौमुदिका हला! कहिं पत्थिदासि? सखि! कुत्र प्रस्थितासि। ४.१०

बकुलावलिका देवीए एव्व वअणेण णट्टाअंरिअं अज्जगणदासं पुच्छिदुं उवदेसग्गहणे कीरिसी मालविअ त्ति। देव्या एव वचनेन नाट्याचार्यम् आर्यगणदासं प्रष्टुम् उपदेशग्रहणे कीदृशी मालविकेति? ४.११

कौमुदिका सहि! ईरिसेण वावारेण असण्णिहिदा वि सा कधं भट्टिणा दिट्ठा? सखि! ईदृशेन व्यापारेणासंनिहितापि सा कथं भर्त्रा दृष्टा? ४.१२

बकुलावलिका आं। सो जणो देवीए पास्सगदो चित्ते दिट्ठो। आम्। स जनो देव्याः पार्श्वगतश्चित्रे दृष्टः। ४.१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। प्रथमाङ्क मिश्रविष्कम्भक ।।

।।२।।

(चेटी करती है प्रवेश)

चेटी देवी धारणी ने मुझे आज्ञा दी है, यह जानने की कि 'छलिक नामक, जो प्रयोगविधा अभी अभी चली है उसमें मालविका कैसी है' यह नाट्याचार्य गणदास से पूछूँ। तो मैं संगीतशाला चलती हूँ।। (घूमती है)।

(इसी बीच एक दूसरी चेटी प्रवेश करती है आभरण लिए हुए)

प्रथम चेटी (दूसरी चेटी को देखकर) हला कौमुदिके! तू इतनी धीर कैसे हो गई कि पास से ही निकल रही है और इधर दृष्टि नहीं दे रही?

कौमुदिका अम्हो बकुलावलिका! सखि! देवी की इस अँगूठी को शिल्पी के पास से ला रही हूँ। इस पर नागमुद्रा बनी है। इसे स्नेहपूर्वक देख रही थी तो तेरा उलाहना खाना पड़ रहा है मुझे।

बकुलावलिका (देखकर) ठीक ही आँख लग रही है। किरण बिखेरती इस अँगूठी से तो तेरा पंजा कुसुमित सा लग रहा है।

कौमुदिका हला! तू कहाँ चली?

बकुलावलिका देवी के ही आदेश से नाट्याचार्य आर्य गणदास से पूछने 'उपदेशग्रहण में कैसी है मालविका?'

कौमुदिका इस प्रकार के काम में लगी असंनिहित वह कैसे दिखाई दे गई मालिक को?

बकुलावलिका ठीक पूछा। उसे मालिक ने चित्र में देख लिया देवी के पास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौमुदिका कधं विअ? कथमिव? ४.१४

बकुलावलिका सुणु। चित्तसालं गदा देवी जदा पञ्च्चग्गवण्णराअं चित्तलेहं आआरिअस्स आलोअंन्ती चिट्ठदि तस्सिं अन्तरे भट्टा अ उवट्ठिदो।
शृणु। चित्रशालां गता देवी यदा प्रत्यग्रवर्णरागां चित्रलेखामाचार्यस्य आलोकयन्ती तिष्ठति तस्मिन्नन्तरे भर्ता च उपस्थितः। ४.१५

कौमुदिका तदो तदो? ततस्ततः। ४.१६

बकुलावलिका उवआराणंतरं एक्कासनोवविट्ठेण भट्टिणा चित्तगदाए देवीए परिअणमज्झगदं आसण्णअरं तं देक्खिअ देवी पुच्छिदा।
उपचारानन्तरमेकासनोपविष्टेन भर्त्रा चित्रगताया देव्याः परिजनमध्यगताम् आसन्नचरां तां दृष्ट्वा देवी पृष्टा। ४.१७

कौमुदिका किं त्ति? किमिति। ४.१८

बकुलावलिका अपुव्वा इअं दारिआ देवीए आसण्णा आलिहिदा किंणामहेअ त्ति।
अपूर्वेयं दारिका देव्या आसन्ना आलिखिता किंनामधेयेति। ४.१९

कौमुदिका आकिदिविसेसेसु आअरो पदं करेदि। तदो तदो?
आकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति। ततस्ततः? ४.२०

बकुलावलिका तदो अवधीरिअवअणे भट्टा संकिदो देविं पुणो वि अणुबंधिदुं पउत्तो। तदो कुमारिए वसुलच्छीए आअक्खिदं आवुत्त! एसा मालविअ त्ति।
ततोऽवधीरितवचनो भर्ता शङ्कितो देवीं पुनरप्यनुबन्धुं प्रवृत्तः। ततः कुमार्या वसुलक्ष्म्या आख्यातम् आवुत्त एषा मालविकेति। ४.२१

कौमुदिका *सस्मितम्* सरिसं क्खु बालभाअस्स। तदो वरं कधेहि।
'सदृशं खलु बालभावस्य। ततः परं कथय। ४.२२

बकुलावलिका किं अण्णं। संपदं मालविआ सविसेसं भट्टिणो दंसणपधादो रक्खीअदि। किमन्यत्। साम्प्रतं मालविका सविशेषं भर्तुर्दर्शनपथाद् रक्ष्यते। ४.२३

कौमुदिका हला अणुचिठ्ठ अत्तणो णिओअं। अहं वि एदं अंगुलीअअं देवीए उवणइस्सं। *निष्क्रान्ता* । सखि! अनुतिष्ठात्मनो नियोगम्। अहमप्येतदङ्गुलीयकं देव्या उपनेष्यामि। (निष्क्रान्ता) ४.२४

बकुलावलिका *परिक्रम्यावलोक्य* एसो णट्टाअरिओ अज्जगणदासो संगीदसालादो णिग्गच्छदि। जाव से अत्ताणं दंसेमि। *परिक्रामति* । एष नाट्याचार्यः आर्यगणदासः संगीतशालातो निर्गच्छति। यावदस्मै आत्मानं दर्शयामि। (परिक्रामति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौमुदिका कैसे?

बकुलावलिका सुन। चित्रशाला में पहुँची देवी जब तुरंत बने आचार्य के चित्र को देख रही थीं कि मालिक भी पहुँच गए।

कौमुदिका तब?

बकुलावलिका देवी ने उपचार का पालन कर अपनी आसन पर बिठा लिया तो मालिक ने देवी के पास उनके परिजनों के बीच इसे अधिक पास खड़ी देख देवी से पूछा।

कौमुदिका क्या?

बकुलावलिका देवी के पास बनी यह दारिका अपूर्व है। क्या है इसका नाम?

कौमुदिका विशिष्ट आकृतियों पर आदर जाग ही जाता है। फिर,

बकुलावलिका देवी ने अनसुनी कर दी तो शंकित मालिक बार–बार पूछने लगे? तब कुमारी वसुलक्ष्मी बोल बैठी – 'भौआजी (जीजाजी) यह है मालविका।'

कौमुदिका (सस्मित) उचित ही किया बचपने के अनुरूप। बताओ आगे क्या हुआ?

बकुलावलिका और क्या होता। इस समय मालविका मालिक के दृष्टिपथ से विशेषकर बचाई जा रही है।

कौमुदिका सखि! जा, कर अपना काम। मैं भी यह अँगूठी देवी को दिए देती हूँ। (निकल जाती है)

बकुलावलिका (घूमकर और देखकर) ये नाट्याचार्य आर्य गणदास संगीतशाला से निकल रहे हैं। चलूँ मैं इनकी दृष्टि में आऊँ। (घूमती है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४.२५

प्रविश्य ४.२६

गणदासः कामं खलु सर्वस्यापि कुलविद्या बहुमता। न पुनरस्माकं नाट्यं प्रति मिथ्या गौरवम्। तथाहि ४.२७

देवानामिदमामनन्ति मुनयः[1] शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम् ॥४॥

बकुलावलिका *उपेत्य* अज्ज बंदामि। आर्य वन्दे। ५.१

गणदासः भद्रे! चिरं जीव। ५.२

बकुलावलिका अज्ज! देवी पुच्छदि अवि उवदेसग्गहणे णादिकिलिसेदि वो सिस्सा मालविअ त्ति। आर्य! देवी पृच्छति अप्युपदेशग्रहणे नातिक्लिश्नाति वः शिष्या मालविकेति। ५.३

गणदासः भद्रे! विज्ञाप्यतां देवी परमनिपुणा मेधाविनी चेति। किं बहुना ५.४

यद् यत् प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै।
तत् तद् विशेषकरणात् प्रत्युपदिशतीव मे बाला ॥५॥

बकुलावलिका *आत्मगतम्* अदिक्कमन्तीं विअ इरावदिं पेक्खामि। *प्रकाशम्* किदत्था दाणिं वो सिस्सा, जस्सिं गुरुजणो एवं तुस्सदि। अतिक्रामन्तीमिव इरावतीं पश्यामि। *(प्रकाशम्)* कृतार्थेदानीं वः शिष्या यस्या गुरुजन एवं तुष्यति। ६.१

गणदासः भद्रे! तद्विधानामसुलभत्वात् पृच्छामि कुतो देव्या तत् पात्रमानीतम्? ६.२

बकुलावलिका अत्थि देवीए वण्णावरो भादा वीरसेणो णाम। सो भट्टिणा णम्मदातीरे अंतपालदुग्गे ठाविदो। तेण सिप्पाहिआरे जोग्गा इअं दारिअ त्ति भणिअ बहिणीए देवीए उवाअणं पेसिदा। अस्ति देव्या वर्णावरो भ्राता वीरसेनो नाम। स भर्त्रा नर्मदातीरे अन्तपालदुर्गे स्थापितः। तेन

---

१. मुनयो नाट्यशास्त्रनिबन्धा भरतः तस्य शतं पुत्राश्च। द्रष्टव्योऽत्र नाट्यशास्त्रस्य १.१–१२४ अंशः। अत्र पशुबलिः कालिदासेन नानुमोदितः क्रतौ चाक्षुषत्वं शान्तत्वञ्चोपदर्शयता। शान्तत्वं नाम बलिकर्म्मादूषितत्वम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रवेश कर)

गणदास — सबको अपनी कुलविद्या ठीक ही अधिक मान्य होती है। हमारा नाट्य के प्रति गौरव झूठा नहीं है, क्योंकि –

मुनिजन इसे चाक्षुष और शान्त देवयजन कहते हैं, रुद्र ने उमा के साथ इसे अपने शरीर में (लास्य तथा ताण्डव इन) **दो रूपों में बाँटा, इसमें सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों से बनता** (सात्त्विक, राजस और तामस) **लोकचरित अनेक रसों में देखा जाता है। इस प्रकार भिन्न रुचि वाले जनों के लिए एक अकेला नाट्य अनेक प्रकार का समाराधन बनता है।।४।।**

बकुलावलिका — (पहुँचकर) आर्य। प्रणाम।

गणदास — भद्रे! चिरकाल तक जिओ।

बकुलावलिका — आर्य! देवी पूछ रही हैं उपदेश ग्रहण करने में आपकी शिष्या मालविका अधिक तो क्लेश नहीं पहुँचाती?

गणदास — भद्रे! महारानी से निवेदन करना परम निपुण और मेधाविनी है यह। अधिक क्या –

प्रयोग के विषय मैं उसे जो जो भाव–कार्य सिखाता हूँ, उसे यह विशेषरूप से कर दिखाती है, मानो उल्टे मुझे ही सिखा रही हो ।।५।।

बकुलावलिका — (स्वगत) लगता है अब इरावती पीछे रह जाएगी। (प्रकाश)आपकी शिष्या आज कृतार्थ है, जिस पर गुरुजन इतना परितोष व्यक्त करते हैं।

गणदास — भद्रे! उस जैसी असुलभ होती हैं, इसलिए पूछना चाहता हूँ, देवी उस पात्र को कहाँ से ले आईं?

बकुलावलिका — देवी का एक नीचे वर्ण का भाई है वीरसेन। उसे मालिक ने नर्मदातीर पर अन्तपाल दुर्ग में स्थापित किया था। उसने 'शिल्पाधिकार में यह लड़की योग्य है' यह कह कर अपनी बहिन देवी के पास भेंट के रूप में भेज दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शिल्पाधिकारे योग्येयं दारिके'ति भणित्वा भगिन्यै देव्यै उपायनं प्रेषिता। ६.३

गणदासः *आत्मगतम्* आकृतिविशेषप्रत्ययादेनामनूनवस्तुकां संभावयामि। प्रकाशम् भद्रे! मयापि यशस्विना भवितव्यम्। यतः – ६.४

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ।। ६।।

बकुलावलिका अज्ज! कहिं दाणिं वो सिस्सा? आर्य! कुत्रेदानीं वः शिष्या। ७.१

गणदासः इदानीमेव [१]पञ्चाङ्गाभिनयमुपदिश्य मया विश्रम्यतामित्यभिहिता दीर्घिकावलोकनगवाक्षगता प्रवातमासेवमाना तिष्ठति। ७.२

बकुलावलिका तेण हि अणुजाणादु मं अज्जो। जाव से अज्जपरितोसणिवेदणेण उच्छाहं बड्ढेमि। तेन हि अनुजानातु मामार्यः। यावदस्या आर्यपरितोष–निवेदनेनोत्साहं वर्धयामि। ७.३

गणदासः दृश्यतां सखी। अहमपि लब्धक्षणः स्वगृहं गच्छामि। ७.४

निष्क्रान्तौ ७.५

।। इति मिश्रविष्कम्भकः।। ७.६

---

१. १. चित्तम्, २. अक्षिणी, ३. भ्रुवौ, ४. हस्तौ, ५. पादौ चेति पञ्चाङ्गानीति तारानाथः विषमपदव्याख्यायां टीकायाम् । काटयवेमः पुनरन्यथा प्रवर्त्तते तथाहि – प्रेरणस्याङ्गपञ्चकमुक्तं सङ्गीतरत्नाकरे –

नृत्यं तथा च कैवारो मर्मरो जागरं तथा ।
गीतं चेति समाख्यातं प्रेरणस्याङ्गपञ्चकमिति ।।
अनयोराद्य एव पक्षो मान्यः, परस्य परवर्त्तित्वात् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणदास (स्वगत) आकृतिविशेष से लगता है कि यह कोई छोटी चीज नहीं है। (प्रकाश) भद्रे! मुझे भी यश मिलेगा। क्योंकि –

पात्र यदि विशिष्ट हो तो उसमें रखा शिल्प कुछ और ही हो जाता है, मेघ का समुद्रशुक्ति में रखा जल जैसे मोती बन जाता है।। ६।।

बकुलावलिका आर्य! इस समय कहाँ है आपकी शिष्या?

गणदास अभी अभी पञ्चाङ्गाभिनय[1] सिखा कर मैने 'आराम कर लो' ऐसा कह छुट्टी दी है तो दीर्घिका (लम्बी पोखरी) की ओर के झरोखे में बैठी हवा खा रही है।

बकुलावलिका तो आर्य मुझे अनुज्ञा दें। चलूँ मैं आर्य का परितोष सूचित कर उसका उत्साह बढ़ाऊँ।

गणदास बहुत ठीक, मिल लो सखी से। मुझे भी समय मिला है तो अपने घर चलता हूँ।

(दोनों निकल जाते हैं)

।। यहाँ पूरा हुआ मिश्रविष्कम्भक।।

---

१. अभिनय के छः अंग–'वाक्य, सूचा, अंकुर, शाखा, नाट्यायित, निवृत्त्यङ्कुर' ना.शा.२२.४०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ प्रथमोऽङ्कः।। ७.७

।। ३।।

ततः प्रविशत्येकान्तस्थितपरिजनोऽमात्येन लेखहस्तेनान्वास्यमानो राजा ७.८

राजा *अनुवाचितलेखममात्यं विलोक्य* बार्हतक! किं प्रतिपद्यते वैदर्भः? ७.९

अमात्यः देव! आत्मविनाशम्। ७.१०

राजा निदेशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि। ७.११

अमात्यः इदमनेन प्रतिलिखितम् – पूज्येनाहमादिष्टः पितृव्यपुत्रो भवतः कुमारो माधवसेनः प्रतिश्रुतसंबन्धः ममोपान्तिकमुपसर्पन्नन्तरा त्वदीयेनान्त–पालेनावस्कन्द्य गृहीतः। स त्वया मदपेक्षया सकलत्रसोदर्यो मोक्तव्य' इति। तन्न वो न[1] विदितं यत् तुल्याभिजनेषु राज्ञां प्रवृत्तिः। अतोऽत्र मध्यस्थः पूज्यो भवितुमर्हति। सोदर्या पुनरस्य ग्रहणविप्लवे विनष्टा। तदन्वेषणाय प्रयतिष्ये। अथवा अवश्यमेव माधवसेनो मया पूज्येन मोचयितव्यः श्रूयतामभिसन्धिः – ७.१२

मौर्यसचिवं विमुञ्चति यदि पूज्यः संयतं मम श्यालम् ।
मोक्ता माधवसेनं ततोऽहमपि बन्धनात् सद्यः ।।७।।

राजा *सरोषम्* कथं कार्यविनिमयेन मयि व्यवहरत्यनात्मज्ञः। बार्हतक! प्रकृत्यमित्रः प्रतिकूलकारी च मे वैदर्भः। तद् यातव्यपक्षे स्थितस्य पूर्वसंकल्पितसमुन्मूलनाय वीरसेनप्रमुखं दण्डचक्रमाज्ञापय। ८.१

अमात्यः यदाज्ञापयति देवः। ८.२

राजा अथवा किं भवान् मन्यते? ८.३

---

१. न इति हामायां नास्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। प्रथम अङ्क।।

।। ३।।

(राजा का प्रवेश। उसके परिजन एकान्त में स्थित हैं।
साथ में हैं हाथ में लेख लिए अमात्य।)

राजा (अमात्य को लेख पढ़ चुका देख) बार्हतक। क्या चाहता है वैदर्भ?

अमात्य देव! आत्मविनाश।

राजा उत्तर सुनना चाहता हूँ।

अमात्य इसने यह लिखा है– पूज्य (आप) ने मुझे आदेश दिया है –'तुम्हारे चचेरे भाई माधवसेन को संबंध का वचन देकर मेरे पास आते समय बीच में तुम्हारे अन्तपाल ने आक्रमण कर पकड़ लिया है। उसे मेरी ओर देखकर पत्नी और बहन के साथ तुम छोड़ दो।' तो आपको यह विदित न हो ऐसी बात नहीं कि राजा लोग तुल्य कुल वालों की ओर ही सम्बन्ध के लिए प्रवृत्त होते हैं। अत: पूज्य को चाहिए कि इस विषय में आप मध्यस्थ रहें। इसकी जो बहिन थी वह आक्रमण की धर–पकड़ में गुम गई है। उसे खुजवाने का यत्न करूँगा। अथवा, यदि आपको मुझसे माधवसेन को मुक्ति दिलानी ही हो तो सुन लें शर्त्त –

आपने मेरे साले मौर्य सचिव को पकड़ रखा है। उसे यदि आप छोड़ दें तो मैं भी माधवसेन को तुरन्त ही बन्धन से मुक्त कर दूँगा ।। ७।।

राजा (सरोष) अच्छा, कार्य विनिमय की बात कर रहा है। जानता नहीं है स्वयं को! बार्हतक! वैदर्भ मेरा स्वभावत: शत्रु है और उल्टा चलता रहता है। वह यातव्य (जिस पर चढाई की जाए) पक्ष में है। उसका जड़ से उन्मूलन पहले से निश्चित किया जा चुका है। उसके लिए वीरसेन आदि की सेना को आज्ञा दो।

अमात्य जो आज्ञा देव की।

राजा अथवा, तुम क्या मानते हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमात्यः शास्त्रदृष्टमाह देवः — ८.४

अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात् ।
नवसंरोपणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्त्तुम् ॥८॥

राजा तेन हि अवितथं तन्त्रकारवचनम्। इदमेव निमित्तमुपादाय समुद्योज्यतां सेनापतिः। ९.१

अमात्यः तथा। *निष्क्रान्तः* ९.२

परिजनः *यथाव्यापारं राजानमभितः स्थितः।* ९.३

प्रविश्य ९.४

विदूषकः आणत्तोम्हि तत्तभवदा रण्णा 'गोदम! चिंतेहि दाव उवाअं जधा मे जदिच्छादिठ्ठप्पदिकिदी मालविआ पच्चक्खदंसणा होदि' त्ति। मए अ तं तधा किदं। जाव से णिवेदेमि। आज्ञप्तोऽस्मि तत्रभवता राज्ञा 'गौतम! चिन्तय तावदुपायम्, यथा मे यदृच्छादृष्टप्रतिकृतिर्मालविका प्रत्यक्षदर्शना भवती'ति। मया च तत् तथा कृतम्। यावदस्मै निवेदयामि। *परिक्रामति* ९.५

राजा *विदूषकं दृष्ट्वा* अयमपरः कार्यान्तरसचिवोऽस्मानुपस्थितः। ९.६

विदूषकः *उपसृत्य* वड्ढतु भवं। वर्धतां भवान्। ९.७

राजा *सशिरःकम्पम्* इत आस्यताम्। ९.८

विदूषकः *उपविष्टः।* ९.९

राजा अपि कच्चिदुपेयोपायदर्शने व्यापृतं ते प्रज्ञाचक्षुः? ९.१०

विदूषकः पओअसिड्ढिं पुच्छ। प्रयोगसिद्धिं पृच्छ। ९.११

राजा कथमिव? ९.१२

विदूषकः *कर्णे* एव्वं विअ। एवमिव। *आवेदयति* ९.१३

राजा साधु वयस्य! निपुणमुपक्रान्तम्। इदानीं दुरधिगमसिद्धावप्यस्मिन्नारम्भे वयमाशंसामहे। कुतः — ९.१४

अर्थं सप्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमात्य — देव ने शास्त्रसम्मत पक्ष ही कहा—

राज्य में तुरन्त बैठा शत्रु प्रकृति में जम नहीं पाता, अतः तुरन्त लगे शिथिल वृक्ष के समान सरलता से ही उखाड़कर फेंका जा सकता है।। ८।।

राजा — तो फिर, शास्त्रवचन सत्य है। इसी को निमित्त मानकर सेनापति को चढ़ाई के लिए आज्ञा दो।

अमात्य — जो आज्ञा (निकल गया)।

परिजन — (अपना काम करते हुए राजा के आस–पास खड़े हो गए।)

(प्रवेश कर)

विदूषक — आज्ञा दी है मुझे माननीय राजा साहब ने 'गौतम! उपाय कोई सोचो जिससे मुझे मालविका साक्षात् देखने को मिल सके। अभी तो मैंने उसकी प्रतिकृति देखी है, वह भी यूँ ही।' मैंने भी वह वैसा ही उपाय रच दिया। चलूँ उन्हें बतलाऊँ। (घूमता है)

राजा — (विदूषक को देखकर) यह दूसरे काम का हमारा सचिव आ रहा है, हमारे पास।

विदूषक — (पास पहुँचकर) आप और बढ़ें।

राजा — (सिर हिलाकर) इधर बैठा जाए।

विदूषक — (बैठ जाता है।)

राजा — क्या तुम्हारा प्रज्ञाचक्षु देख सका कोई उपेय का उपाय?

विदूषक — प्रयोगसिद्धि पूछो।

राजा — कैसे!

विदूषक — (कान में) ऐसे (बतलाता है)।

राजा — वयस्य! अच्छा किया, निपुणता से लिया तुमने काम। अब इस कार्य में भी हम आशा कर सकते हैं सिद्धि की, यद्यपि है वह कठिन क्योंकि— **राजाओं के रुकावट भरे काम सहायकों की सहायता से ही बनते हैं। अँधेरे की वस्तु, आँख वाला भी दीपक के बिना नहीं देख पाता ।। ९।।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपथ्ये १०.१

अलं बहु विकथ्य। राज्ञः समक्षमेवावयोरधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति। १०.२

राजा *आकर्ण्य* सखे! त्वत्सुनीतिपादपस्य पुष्पमुद्भिन्नम्। १०.३

विदूषकः फलं वि अइरेण देक्खिस्ससि। फलमप्यचिरेण द्रक्ष्यसि। १०.४

ततः प्रविशति कञ्चुकी १०.५

कञ्चुकी देव! अमात्यो विज्ञापयति अनुष्ठिता प्रभोराज्ञेति। एतौ पुनर्हरदत्त–गणदासौ– १०.६

उभावभिनयाचार्यौ परस्परजयैषिणौ ।
त्वां द्रष्टुमुद्यतौ साक्षाद् भावाविव शरीरिणौ ॥१०॥

राजा प्रवेशय तौ। ११.१

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रम्य ताभ्यां सह प्रविश्य च* इत इतो भवन्तौ। ११.२

गणदासः *राजानं विलोक्य* अहो! दुरासदो राजमहिमा – ११.३

न च न[1] परिचितो न चाप्यरम्य–
श्चकितमुपैमि तथापि पार्श्वमस्य ।
सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं मे
भवति स एव नवो नवोऽयमक्ष्णोः ॥११॥

हरदत्तः महत् खलु पुरुषाकारमिदं ज्योतिः। तथाहि – १२.१

द्वारे नियुक्तपुरुषानुमतप्रवेशः
सिंहासनान्तिकचरेण सहोपर्सपन् ।
तेजोभिरस्य विनिवर्त्तितदृष्टिपातैर्
वाक्यादृते पुनरिव प्रतिवारितोऽस्मि ॥१२॥

कञ्चुकी एष देवः। उपसर्पतां भवन्तौ। १३.१

उभौ *उपेत्य* विजयतां देवः। १३.२

राजा स्वागतं भवद्भ्याम्। *परिजनं विलोक्य* आसने तावदत्रभवतोः। १३.३

---

१. हामातृकायां तु पाठः न च विपरि इति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नेपथ्य में)

अपनी प्रशंसा रहने भी दो। बहुत हो गया। राजा के सामने ही हो जाएगी हमारी छोटे बड़े की प्रत्यक्षसिद्धि।

राजा (सुन कर) सखे! तुम्हारे सुनीतिपादप का पुष्प खिल उठा।

विदूषक फल भी शीघ्र ही देखोगे।

(तब आता है कञ्चुकी)

कञ्चुकी देव! अमात्य का निवेदन है कि स्वामी की आज्ञा का पालन कर दिया गया है। इधर ये हरदत्त और गणदास–

ये दोनों अभिनयाचार्य एक दूसरे को जीतना चाह रहे हैं। आपका दर्शन चाहते हैं। ये तो शरीरधारी साक्षात् भाव ही हैं।। १०।।

राजा भेजो उन दोनों को।

कञ्चुकी देव की जैसी आज्ञा (निकलता और उनके साथ पुनः प्रवेश करता) इधर इधर आप दोनों।

गणदास (राजा को देखकर) अहो! कितनी दुरासद है राजमहिमा।

न तो ये अपरिचित हैं और न भयानक, तब भी चौंक रहा हूँ पास पहुँचते हुए। ये हैं तो वे ही, परन्तु जब देखा जाए ये नए ही लगते हैं – समुद्र के समान।। ११।।

हरदत्त यह तो एक महान् ज्योति है पुरुष के आकार में। क्योंकि –

द्वारपाल ने तो प्रवेश की अनुमति दे दी और सिंहासन तक पहुँचने वाले सेवक साथ हैं, तब भी इसका तेज ऐसा है कि आँखे लौट पड़ती हैं। बिना आज्ञा के रोक सा दिया गया हूँ।। १२।।

कञ्चुकी ये हैं महाराजा साहिब। पास जावें आप दोनों।

दोनों (पास जाकर) देव की जय।

राजा स्वागत आप दोनों का। (परिजन को देखकर) आप लोगों के लिए आसन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभौ *परिजनोपनीतयोरासनयोरुपविष्टौ।* १३.४

राजा किमिदं शिष्योपदेशकाले युगपदाचार्याभ्यामत्रोपस्थानम्। १३.५

गणदासः देव! श्रूयताम्। मया सुतीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता। दत्तप्रयोगश्चास्मि। देवेन देव्या च परिगृहीतः। १३.६

राजा वाढं, जाने। ततः किम्? १३.७

गणदासः सोऽहममुना हरदत्तेन [1]प्रधानपुरुषसमक्षं नायं मे पादरजसापि तुल्य इत्यधिक्षिप्तः। १३.८

हरदत्तः देव! अयमेव प्रथमं परिवादकरः – अत्रभवतः किल मम च समुद्रपल्वलयोरिवान्तरमिति। तद् अत्रभवान् इमं मां च शास्त्रे प्रयोगे च विमृशतु। देव एव नौ विशेषज्ञः प्राश्निकः। १३.९

विदूषकः समथ्थं पइण्णादं। समर्थं प्रतिज्ञातम्। १३.१०

गणदासः प्रथमः कल्पः। अवहितो देवः श्रोतुमर्हति। १३.११

राजा तिष्ठ तावत्। पक्षपातमत्र देवी मन्यते। तदस्याः पण्डितकौशिकी–सहितायाः समक्षमेव न्याय्यो व्यवहारः। १३.१२

विदूषकः सुष्ठु भवं भणादि। सुष्ठु भवान् भणति। १३.१३

आचार्यौ यद् देवाय रोचते। १३.१४

राजा मौद्गल्य! अमुं प्रस्तावं निवेद्य पण्डितकौशिक्या सार्धमाहूयतां देवी। १३.१५

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रम्य सपरिव्राजिकया देव्या सह प्रविश्य।* इत इतो भवती। १३.१६

देवी *परिव्राजिकां विलोक्य* भअवदि! हरदत्तस्स गणदासस्स अ संरंभे कधं पेक्खसि? भगवति! हरदत्तस्य गणदासस्य च संरम्भे कथं पश्यसि। १३.१७

परिव्राजिका अलं स्वपक्षावसादशङ्कया। न परिहीयते प्रतिवादिनो गणदासः। १३.१८

देवी जइ वि एवं तह वि राअपरिग्गहो से पहाणत्तणं उवहरदि। यद्यप्येवं तथापि राजपरिग्रहोऽस्य प्रधानत्वमुपहरति। १३.१९

---

१. प्रधानपुरुष एष विदूषकः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों (परिजनों द्वारा लाए आसनों पर बैठ जाते हैं।)

राजा कैसे इस प्रकार शिष्यों के उपदेश के समय एक साथ आप दोनों ही यहाँ उपस्थित हुए।

गणदास देव! सुनिए – मैंने अच्छे गुरु से अभिनय विद्या पाई है। प्रयोग भी दे चुका हूँ। देव आपने और देवी ने मुझे अपना भी लिया है।

राजा ठीक। विदित है मुझे। इससे क्या?

गणदास इस हरदत्त ने प्रधानपुरुष (विदूषक) के समक्ष मेरा अपमान किया है 'मेरी चरणधूली के भी बराबर नहीं है यह' इस प्रकार।

हरदत्त देव! इसी ने की है पहले मेरी निन्दा – 'इसका और मेरा समुद्र और गड्ढे जैसा अन्तर है।' तो आप इसे और मुझे शास्त्र तथा प्रयोग दोनों में परखें। देव ही हमारे विशेषज्ञ (अन्तर को समझने वाले) प्राश्निक (परीक्षक) हैं।

विदूषक ठीक कहा।

गणदास बहुत अच्छा। महाराज सतर्क हैं। सुनना चाहते हैं।

राजा ठहरो! देवी इसमें पक्षपात मानेगीं। तो, देवी और उनके साथ पण्डित कौशिकी इनके समक्ष हो प्रस्तुत वाद (व्यवहार), यही उचित होगा।

विदूषक ठीक कह रहे हैं आप।

दोनों आचार्य जो आपको प्रिय हो।

राजा मौद्गल्य! यह घटना बतलाकर पण्डित कौशिकी के साथ बुला लाओ देवी को।

कञ्चुकी जो देव की आज्ञा (निकल कर परिव्राजिका सहित देवी के साथ प्रविष्ट हो) इधर इधर आप।

देवी (परिव्राजिका को देखकर) भगवति! हरदत्त और गणदास के इस झगड़े (संरम्भ) में आप क्या सोचती हैं ?

परिव्राजिका बिलकुल मत कीजिए अपना पक्ष गिराने की शंका। गणदास प्रतिवादी से कमजोर नहीं है।

देवी बात तो ऐसी ही है, परन्तु राजा का है हरदत्त, इसलिए उसका प्रभाव पड़ सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
127151

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिव्राजिका अयि! राज्ञीशब्दभाजनमात्मानमपि चिन्तयतु भवती। पश्य— १३.२०

अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः ।
अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः ॥१३॥

विदूषकः *विलोक्य* अइ! उवट्ठिदा पीठमद्दिअं पंडिअकोसिइं पुरोकरिअ तत्तभोदी धारिणी। अयि! उपस्थिता पीठमर्दिकां पण्डितकौशिकीं पुरस्कृत्य तत्रभवती धारिणी। १४.१

राजा पश्याम्येनाम्। *दृष्ट्वा* १४.२

मङ्गलालङ्कृता भाति कौशिक्या यतिवेषया ।
त्रयी विग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया ॥१४॥

परिव्राजिका *उपेत्य* विजयतां देवः। १५.१

राजा भगवत्यभिवादये। १५.२

परिव्राजिका १५.३

महासारप्रसवयोः सदृशक्षमयोर्द्वयोः ।
धारिणीभूतधारिण्योर्भव भर्त्ता शरच्छतम् ॥१५॥

देवी जेदु अज्जउत्तो। जयत्वार्यपुत्रः। १६.१

राजा स्वागतं देव्यै। *परिव्राजिकां विलोक्य* भगवति! क्रियतामासनपरिग्रहः। १६.२

सर्वे उपविशन्ति। १६.३

राजा भगवति! अत्रभवतोर्हरदत्तगणदासयोः परस्परं विज्ञानसंघर्षो जातः। तदत्र भगवत्या प्राश्निकपदमध्यासितव्यम्। १६.४

परिव्राजिका *सस्मितम्* अलमुपालम्भेन। पत्तने सति ग्रामे रत्नपरीक्षा? १६.५

राजा नैतदेवम्। पण्डितकौशिकी खलु भगवती। पक्षपातिनौ पुनरहं देवी च। १६.६

आचार्यौ सम्यगाह देवः। मध्यस्था भगवती नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति। १६.७

राजा तेन हि प्रस्तूयतां विवादः। १६.८

परिव्राजिका देव! प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रम्। किमत्र वाग्व्यवहारेण? कथं वा देवी मन्यते? १६.९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिव्राजिका अयि! आप भी राज्ञी कही जाती हैं यह भी तो देखिए। देखिए—
अग्नि यदि सूर्य के परिग्रह से अधिक भासुर होता है तो चन्द्र भी महिमामण्डित हो जाता है रात के परिग्रह से ॥१३॥

विदूषक (देखकर) ओहो, उपस्थित है पीठमर्दिका पण्डित कौशिकी के साथ तत्रभवती देवी धारिणी।

राजा देख रहा हूँ इसे (देखकर) — **इसने पहन रखे हैं माङ्गलिक अलंकार और साथ है यतिवेश धारिणी कौशिकी। ऐसी लग रही है यह जैसे शरीर धारण कर लिया हो त्रयी[1] ने अध्यात्मविद्या के साथ ॥१४॥**

परिव्राजिका (पास आकर) देव की जय हो।

राजा भगवति! प्रणाम।

परिव्राजिका **महासार सन्तति को जन्म देती और समान क्षमा वाली दोनों के पति हों आप सौ वर्षों तक, एक धारिणी और दूसरी भूतधारिणी** (भूमि)॥१५॥

देवी आर्यपुत्र की जय!

राजा देवी का स्वागत (परिव्राजिका को देखकर) भगवति! विराजिए आसन पर।

(सब बैठ जाते हैं।)

राजा भगवति! ये हैं हरदत्त और गणदास। इनमें अपनी अपनी योग्यता को लेकर संघर्ष उठ खड़ा हुआ है। तो आपको इस वाद में प्राश्निक के पद पर बैठना है।

परिव्राजिका (मुसकुराकर) बस करें। ऐसी हँसी न उड़ाए, शहर के रहते रत्नपरीक्षा गाँव में।

राजा ऐसा नहीं। आप हैं पण्डित (तटस्थ) कौशिकी। हम दोनों एक एक पक्ष से संबन्धित हैं। मैं भी और देवी भी।

दोनों आचार्य देव ने ठीक कहा। भगवती मध्यस्थ हैं। आप ही हम दोनों के गुण—दोष तय कर सकती हैं।

राजा तो किया जाए विवाद।

परिव्राजिका देव! नाट्यशास्त्र में प्रधान होता है प्रयोग। इसमें वाचिक वाद से क्या? अथवा देवी क्या सोचती हैं?

---

१. त्रयी वेदत्रयी, अध्यात्मविद्या उपनिषद्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी जइ मं पुच्छसि एदाणं विवादो येव्व ण मे रोअदि।
यदि मां पृच्छसि एतयोर्विवाद एव न मे रोचते। १६.१०

गणदासः देवि! न मां समानविद्यतः परिभवनीयमवगन्तुमर्हसि। १६.११

विदूषकः भोदि! पेक्खामो उरभ्रसंबादं। किं मुहा वेदणदाणेण एदाणं?
भवति पश्याम उरभ्रसंपातम्। किं मुधा वेतनदानेनैतेषाम्? १६.१२

देवी णं कलहप्पिओसि। ननु कलहप्रियोऽसि। १६.१३

विदूषकः मा एव्वं। अण्णोण्णकलहप्पिआणं मत्तहत्थीणं एक्कदरस्सिं अणिज्जिदे कुदो उवसमो? मैवम्। अन्योन्यकलहप्रिययोर्मत्तहस्तिनोरेकतर–स्मिन्ननिर्जिते कुत उपशमः? १६.१४

राजा ननु स्वाङ्गसौष्ठवाभिनयमुभयोर्दृष्टवती भगवती। १६.१५

परिव्राजिका अथ किम्? १६.१६

राजा तदिदानीमतः परं किमाभ्यां प्रत्याययितव्यम्। १६.१७

परिव्राजिका तदेव वक्तुकामास्मि। १६.१८

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ।। १६।।

विदूषकः सुदं अज्जेहि भअवदीए वअणं। एसो पिण्डिदत्थो उवदेसदंसणेण णिण्णओ त्ति। श्रुतमार्याभ्यां भगवत्या वचनम्। एष पिण्डितार्थ उपदेशदर्शना–न्निर्णय इति। १७.१

हरदत्तः परमम्। अभिमतं नः। १७.२

गणदासः देवि! एवं स्थितम्। १७.३

देवी जदा उण मन्दमेधा सिस्सा उवदेशं मलिणेन्ति तदा आअरिअस्स दोसो णु। यदा पुनर्मन्दमेधा शिष्या उपदेशं मलिनयन्ति तदा आचार्यस्य दोषो नु। १७.४

राजा एवमापठ्यते विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयतीति। १७.५

देवी *आत्मगतम्* कधं दाणिं? *गणदासं विलोक्य, जनान्तिकम्* अलं अज्जउत्तस्स ऊसाहकारणं मणोरधं पूरिअ। *प्रकाशम्* विरम णिरत्थआदो आरंभादो। (आत्मगतम्) कथमिदानीम्? (गणदासं विलोक्य,जनान्तिकम्) अलमार्यपुत्रस्योत्साह–कारणं मनोरथं पूरयित्वा। (प्रकाशम्) विरम निरर्थकात् आरम्भात्। १७.६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी — यदि मुझसे पूछते हैं तो इनका विवाद ही मुझे अच्छा नहीं लग रहा।

गणदास — देवि! समानविद्या वाले से मुझे घटिया मत समझिए।

विदूषक — भवति! देखें तो इनका उरभ्रसंपात (सिरफुटौवल)। (उरभ्र = मेष) झूठे वेतनदान से क्या लाभ?

देवी — हाँ हाँ, कलहप्रिय जो ठहरा तू।

विदूषक — ऐसा नहीं। एक दूसरे से जूझ रहे मत्त हाथियों में कैसे हो शान्ति जब तक एक कोई जीत न लिया जाय।

राजा — अच्छा तो भगवती तो दोनों के आङ्गिक सौष्ठव देख ही चुकी हैं।

परिव्राजिका — इसमें संदेह नहीं।

राजा — तो अब इससे अधिक हम दोनों (मुझे और देवी) को और क्या प्रमाण चाहिए?

परिव्राजिका — वही कहना चाहती हूँ —

ऐसा है, किसी की शिक्षा (क्रिया) **ठीक होती है उसकी अपनी बुद्धि तक** (आत्मा=बुद्धि) **दूसरे की शिक्षा होती है शिष्य शिक्षण में भव्य। जिसमें ये दोनों ही ठीक हों वही शिक्षक शिक्षकों में अग्रणी माना जा सकता है ॥ १६॥**

विदूषक — सुना आप दोनों ने भगवती का वचन। निष्कर्ष यह कि उपदेश के प्रयोग से होगा निर्णय।

हरदत्त — बहुत ठीक। मान्य है हमें।

गणदास — देवि! यह है स्थिति।

देवी — शिष्य यदि मन्दमति हो और उपदेश को मलिन कर दे तब तो दोष आचार्य पर जाएगा।

राजा — ऐसा कहा जाता है कि शिक्षक का बुद्धिलाघव (पाटव) अयोग्य शिष्य मिलने पर भी दिखाई देता है।

देवी — (स्वगत) क्या किया जाए इस स्थिति में (गणदास को देखकर, जनान्तिक) आर्यपुत्र के उत्साह में कारण है इनका मनोरथ। उसे पूरा नहीं होने देना हैं। (प्रकाश) छोड़ो इस निरर्थक कार्य को।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः सुट्ठु भोदी भणादि। भो गणदास! संगीदआपदेसं लंभिअ सरस्सईउवाअणमोदआणं खादअमाणस्स किं दे मुहणिग्गहेण विवादेण? सुष्ठु भवती भणति। भो गणदास! संगीतकापदेशं लब्ध्वा सरस्वत्युपायनमोदकान् खादतः किं ते मुखनिग्रहेण विवादेन? १७.७

गणदासः सत्यम्। अयमेवार्थो देवीवचनस्य। श्रूयतामवसरप्राप्तमिदम् १७.८

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम् ।
यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।।१७।।

देवी अइरोवणीदा दे सिस्सा। ता अवरिणिट्ठिदस्स उवदेसस्स उण अण्णाय्यं पआसणं। अचिरोपनीता ते शिष्या। तत् अपरिनिष्ठितस्योपदेशस्य पुनरन्याय्यं प्रकाशनम्। १८.१

गणदासः अत एव मे निर्बन्धः। १८.२

देवी तेण हि दुवे वि भअवदीए उवदेसं दंसेथ।
तेन हि द्वावपि भगवत्यै उपदेशं दर्शयतम्। १८.३

परिव्राजिका देवि! नैतन्न्याय्यम्। सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय। १८.४

देवी *आत्मगतम्* मूढे परिव्वाजिए! मं जग्गतिं वि सुत्तं विअ करेसि।
मूढे परिव्राजिके! मं जाग्रतीमपि सुप्तामिव करोषि। *सासूयं परावर्तते।* १८.५

राजा *देवीं परिव्राजिकायै दर्शयति।* १८.६

परिव्राजिका *विलोक्य* १८.७

अनिमित्तमिन्दुवदने! किमत्रभवतः पराङ्मुखीभवसि ।
प्रभवन्त्योऽपि हि भर्तृषु कारणकोपाः कुटुम्बिन्यः ।। १८।।

विदूषकः णं सकारणं येव्व, अत्तणो पक्खो रक्खिदव्वो त्ति। *गणदासं विलोक्य* दिट्ठिआ कोवव्वाएण देवीए परित्तादो भवं। सुसिक्खिदो वि उवदेसदंसणे ण[1] णिवुणो होदि। ननु सकारणमेव, आत्मनः पक्षो रक्षितव्य इति। (गणदासं विलोक्य) दिष्ट्या कोपव्याजेन देव्या परित्रातो भवान्। सुशिक्षितोऽपि सर्व उपदेशदर्शने न निपुणो भवति। १९.१

गणदासः देवि! श्रूयतामेवं जनो गृह्णाति। तदिदानीं – १९.२

विवादे दर्शयिष्यामि[2] क्रियासङ्क्रान्तिमात्मनः ।
यदि मां नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यहं त्वया ।।१९।।

---

१. सणे ण, सणेण इत्युभयथाप्येतद् योज्येत। २. दर्शयिष्यामि काग्र., दर्शयिष्यन्तं हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक — ठीक कह रही हैं आप। गणदास! आप भी संगीतक पद पाकर सरस्वती–उपायन के लड्डू खाते रहो। तुम्हें मुख बन्द करने वाले विवाद से क्या लेना देना।

गणदास — सचमुच। देवी के वचन का यही है अर्थ। अवसरोचित बात सुनिए–

'मैं पद पा गया हूँ। इसलिए अब विवाद से क्या?' इस प्रकार विवाद से डरना और दूसरों के द्वारा की गई निन्दा सहते जाना जिसे पसंद हो, उसका आगम तो केवल जीविका मात्र के लिए है। वह तो ज्ञान की दुकान लगाए बैठा बनिया है।। १७।।

देवी — तुम्हारी शिष्या बिलकुल नई है। परिपक्व उपदेश का प्रकाशन ठीक नहीं।

गणदास — इसलिए तो और चाहता हूँ मैं।

देवी — तो दोनों केवल भगवती को अपना उपदेश दिखला लो।

परिव्राजिका — देवि! यह उचित नहीं। सर्वज्ञ भी हो तो अकेले उसका निर्णय निर्दोष नहीं माना जा सकता।

देवी — (स्वगत) मूढे परिव्राजिके! मैं जाग रही हूँ पर सोई सी जतलाए दे रही है। (असूयापूर्वक लौटती है)

राजा — (देवी को परिव्राजिका को दिखलाता है।)

परिव्राजिका — (देखकर) **हे चन्द्रवदने! क्यों हो रही है अकारण ही, राजा साहब से पराङ्मुखी, पति पर अधिकार होने पर भी घरमालकिनें नाराज तो कारण होने पर ही हुआ करती हैं।। १८।।**

विदूषक — नहीं नहीं। कारण है। अपने पक्ष को बचाना पड़ता है। (गणदास को देखकर) बड़भागी है तू। कोप के व्याज से देवी ने बचा लिया तुझे। बढ़ियाँ पढ़ा भी, उपदेश दिखलाने में निपुण नहीं होता।

गणदास — देवि! सुनिए ऐसा समझते हैं लोग। तो अब–

विवाद में अपनी शिष्यशिक्षा दिखलाने हेतु उद्यत मुझे यदि अनुज्ञा नहीं देती हैं, तो फिर यह समझिए कि आपने मुझे छोड़ दिया ।।१९।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसनादुत्थातुमिच्छति। २०.१

देवी *आत्मगतम्* का गई? *प्रकाशम्* पहवदि आअरिओ सिस्सजणस्स।
(आत्मगतम्) का गतिः? (प्रकाशम्) प्रभवत्याचार्यः शिष्यजनस्य। २०.२

गणदासः चिरमपदेश[१]—शङ्कितोऽस्मि। *राजानं दृष्ट्वा* अनुज्ञातं देव्या। तद् आज्ञापयतु देवः कस्मिन्नभिनयवस्तुनि प्रयोगं[२] दर्शयिष्यामि। २०.३

राजा यदादिशति भगवती। २०.४

परिव्राजिका किमपि देव्या मनसि वर्त्तते। ततः शङ्कितास्मि। २०.५

देवी भण बीसद्धं। पहवदि प्पभू अत्तपरिअणस्स।
भण विस्रब्धम्। प्रभवति प्रभुरात्मनः परिजनस्य। २०.६

राजा मम[३] चेति ब्रूहि। २०.७

देवी भअवदि! भण दाणिं। भगवति! भणेदानीम्। २०.८

परिव्राजिका देव! शर्मिष्ठायाः कृतिं चतुष्पदोत्थं छलिकं दुष्प्रयोज्यम् उदाहरन्ति। तत्रैकार्थसंश्रयमुभयोः प्रयोगं पश्यामः। तावता ज्ञायत एवात्रभवतो—रुपदेशान्तरम्। २०.९

आचार्यौ यदाज्ञापयति भगवती। २०.१०

विदूषकः तेण हि दुवे वि वग्गा पेक्खाघरे संगीदरअणं करिअ अत्तभवदो दूदं पेसअह। अधवा मुदंगसद्दो ज्जेव णो उत्थावइस्सदि।
तेन हि द्वावपि वर्गौ प्रेक्षागृहे संगीतरचनां कृत्वा अत्रभवतो दूतं प्रेषयतम्। अथवा मृदङ्गशब्द एव न उत्थापयिष्यति। २०.११

हरदत्तः तथा। *उत्तिष्ठति* २०.१२

गणदासः *देवीं विलोकयति।* २०.१३

देवी *गणदासं विलोक्य* विअई होदु। ण हि विअअब्भत्थिणी अहं आरिअस्स। विजयी भवतु। न हि विजयप्रत्यर्थिनी अहमाचार्यस्य। २०.१४

आचार्यौ *प्रस्थितौ* २०.१५

परिव्राजिका इतस्तावत्। २०.१६

आचार्यौ *परिवृत्य* इमौ स्वः। २०.१७

परिव्राजिका निर्णयाधिकारे ब्रवीमि सर्वाङ्गसौष्ठवाभिव्यक्तये विरलनेपथ्ययोः पात्रयोः प्रवेशोऽस्तु। २०.१८

---

१. हामा. 'अपदे शङ्कि' इति शकारमेकं परित्यज्य लिखितः। २. उपदेशं हामा.।
३. मम देव्या इत्यर्थः। आत्मनः परिजनस्य मम चेति ब्रूहीति राज्ञो विवक्षा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आसन से उठना चाहता है।)

देवी (स्वगत) क्या किया जाए, कोई गति नहीं। (प्रकाश) आचार्य ही प्रभु हैं शिष्यजन के।

गणदास बहुत समय से अपयश से शंकित हूँ। राजा को देखकर। दे दी आज्ञा देवी ने। तो आज्ञा दें आप किस वस्तु के अभिनय में दिखलाऊँ अपना उपदेश।

राजा जो आदेश दें भगवती परिव्राजिका।

परिव्राजिका देवी के मन में कुछ है। उससे शङ्कित हूँ मैं।

देवी कहिए संकोच छोड़ कर। प्रभु अपने परिजन के भी प्रभु हैं।

राजा मेरे (देवी के) भी ऐसा कहो।

देवी भगवति! कहो अब।

परिव्राजिका देव! शर्मिष्ठा की कृति चतुष्पदी पर आश्रित छलिक का प्रयोग कठिन बतलाया जाता है। एक इसी पर दोनों का प्रयोग देखें हमलोग। उससे स्पष्ट हो जाएगा आप दोनों के उपदेश का अन्तर।

दोनों आचार्य भगवती की जो आज्ञा।

विदूषक तो दोनों ही वर्ग प्रेक्षागृह में संगीतरचना करके राजा साहब के पास दूत भेज दें। अथवा मृदङ्गशब्द ही हमें उठा देगा।

हरदत्त ठीक है। (खड़ा होता है।)

गणदास (देवी को देखता है।)

देवी (गणदास को देखकर) – विजयी होओ। आचार्य की जीत में मैं बाधक नहीं हूँ।

दोनों आचार्य (प्रस्थान करते हैं।)

परिव्राजिका इधर आइए।

दोनों आचार्य (पीछे घूमकर) ये हैं ।

परिव्राजिका निर्णय के अधिकार से कहती हूँ – सर्वाङ्गसौष्ठव की अभिव्यक्ति के लिए पात्र विरल वेष पहने आवें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्यौ नैतदावयोरुपदेश्यम्। *निष्क्रान्तौ* २०.१९

देवी *राजानमवलोक्य* जइ राअकज्जेसु ईरिसी उवाअणिउणत्तणं अज्जउत्तस्स तदो सोहणं भवे। (राजानमवलोक्य) यदि राजकार्येषु ईदृशी उपायनिपुणता आर्यपुत्रस्य ततः शोभनं भवेत्। २०.२०

राजा २०.२१

अलमन्यथा गृहीत्वा न खलु मनस्विनि! मया प्रयुक्तमिदम् ।
प्रायः समानविद्याः परस्परयशःपुरोभागाः ।। २०।।

नेपथ्ये मृदङ्गशब्दः २१.१

सर्वे कर्णं ददति। २१.२

परिव्राजिका हन्त प्रवृत्तं सङ्गीतकम्। तथाह्येषा – २१.३

जीमूतस्तनितविशङ्किभिर्मयूरै–
रुद्ग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य ।
निर्ह्रादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था
मायूरी मदयति मार्ज्जना मनांसि ।। २१।।

राजा तदस्याः सामाजिका भवामः। २२.१

देवी *आत्मगतम्* अहो अविणओ अज्जउत्तस्स। अहो अविनय आर्यपुत्रस्य। २२.२

सर्वे उत्तिष्ठन्ति। २२.३

विदूषकः *अपवार्य* भोः! धीरं गच्छ। तत्तभोदी धारिणी विसंवादइस्सदि। (अपवार्य) भोः! धीरं गच्छ। तत्रभवती धारिणी विसंवादयिष्यति। २२.४

राजा २२.५

धैर्यावलम्बिनमपि त्वरयति मां मुरजवाद्यरावोऽयम् ।
अवतरतः सिद्धिपथं शब्दः स्वमनोरथस्येव ।। २२।।

निष्क्रान्ताः सर्वे २३.१

इति महाकविकालिदासकृतौ मालविकाग्निमित्रे नाटके
प्रथमोऽङ्कः।। १।।[१] २३.२

---

१. रेवाप्रसादेन मयाद्य सैषा स्वयं स्वहस्तेन मुदाऽभ्यलेखि/मुद्रि ।
श्रीकालिदासस्य नितान्तरम्या कलाभिरामा च कृतिः प्रयोज्या ।।
१५ सेप्टेम्बर,२००१, एक्टनग्रामे, अमरीकासु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों आचार्य — यह हमें समझाना आवश्यक नहीं है। *(यह हम खुद समझते हैं)* (निकल जाते हैं)।

देवी — (राजा को देखकर) यदि राजकार्यों में होती ऐसी उपायनिपुणता आर्यपुत्र की तो अच्छा होता।

राजा — **इसे अन्यथा न लें। मनस्विनि! यह सब मेरी योजना नहीं है। प्रायः एक ही विद्या के विद्वान् परस्पर की कीर्त्ति में दोष देखा ही करते हैं ॥ २०॥**

(नेपथ्य में मृदङ्गशब्द)

(सभी उधर कान देते हैं।)

परिव्राजिका — हन्त! सङ्गीतक शुरू हो गया। क्योंकि यह—

पुष्कर की मायूरी मार्जना (वाद्य स्वर) **चित्त में नशा उभाड़ रही है। इसे मेघ गर्जना समझकर मयूर ऊँची गरदन कर खुद भी केकाध्वनि कर रहे हैं। यह मार्जना काफी गम्भीर है। स्वर इसका मध्यम[१] है॥ २१॥**

राजा — तो इसमें सामाजिक बनें।

देवी — (स्वगत) अहो आर्यपुत्र की धृष्टता।

(सभी उठते हैं।)

विदूषक — (अपवार्य) धीरे चलो। धारिणी सब बिगाड़ देगी।

राजा — **मैं करूँ क्या। धैर्य का पल्ला पकड़ता हूँ, तब भी यह मुरजवाद्य की ध्वनि मुझे जल्दी चलने हेतु बाध्य कर रही है। मेरी मनोरथसिद्धि का लग रहा है यह शब्द ॥ २२॥**

(सभी निकल जाते हैं।)

इस प्रकार महाकविकालिदास की कृति 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में पूर्ण हुआ प्रथम अङ्क॥

---

१. जो शृङ्गार रस के प्रयोग में उपयुक्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ द्वितीयोऽङ्कः ।। १.१

।। १ ।।

ततः प्रविशति संगीतरचनायां कृतायामासनस्थो राजा धारिणी परिव्राजिका विभवतश्च परिवारः १.२

राजा भगवति! अत्रभवतोराचार्ययोः कतरस्य प्रथममुपदेशो दृश्यताम्? १.३

परिव्राजिका ननु समानेऽपि ज्ञानवृद्धभावे वयोऽधिकत्वाद् गणदासः पुरस्कारमर्हति। १.४

राजा मौद्गल्य! एवमत्रभवतोरावेद्य स्वं नियोगमशून्यं कुरु। १.५

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रान्तः* १.६

।। २ ।।

प्रविश्य १.७

गणदासः देव! शर्मिष्ठाया कृतिर्लयमध्या चतुष्पदास्ति। तस्याश्चतुर्थवस्तुनः[1] प्रयोगमेकमनाः श्रोतुमर्हति देवः। १.८

राजा आचार्य! बहुमानादवहितोऽस्मि। १.९

गणदासः यदादिशति देवः। *निष्क्रान्तः* १.१०

राजा *जनान्तिकम्* वयस्य! १.११

नेपथ्यगृहगतायाश्चक्षुर्दर्शनसमुत्सुकं तस्याः ।
संहर्त्तुमधीरतया व्यवसितमिव मे तिरस्करिणीम् ।। १ ।।

विदूषकः *अपवार्य* उवट्ठिदं णअणमधु सण्णिहिदमक्खिअं अ। ता अप्पमत्तो दाणिं पेक्ख। उपस्थितं नयनमधु सन्निहितमक्षिकं च। तद् अप्रमत्त इदानीं पश्य। २.१

।। ३ ।।

ततः प्रविशति आचार्यप्रत्यवेक्ष्यमाणाङ्गसौष्ठवा मालविका २.२

विदूषकः *जनान्तिकम्* पेक्खदु भवं। ण क्खु से पडिच्छन्दादो परिहीअदि महुरदा। (जनान्तिकम्) पश्यतु भवान्। न खल्वस्याः प्रतिच्छन्दात् परिहीयते मधुरता। २.३

राजा *अपवार्य* वयस्य! २.४

---

१. चतुर्थं वस्तु शाखापदवाच्यम् अभिनयाङ्गम्?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीय अङ्क ।।

।। १ ।।

(प्रवेश करते हैं संगीतशाला में संगीत रचना हो जाने पर आसनस्थित राजा, धारिणी, परिव्राजिका तथा परिजन।)

राजा भगवति! इन दोनों पूज्य आचार्यों में से किसका उपदेश पहले देखा जाए?

परिव्राजिका ज्ञानवृद्धता तो दोनों की समान है, तथापि वय में अधिक होने से गणदास प्रथमता के अधिकारी हैं।

राजा मौद्गल्य! दोनों आचार्यों से ऐसा कहकर अपना काम करो।

कञ्चुकी देव की जो आज्ञा। (निकल जाता है)

।। २ ।।

(प्रवेश करके)

गणदास देव! शर्मिष्ठा की कृति मध्यलय की चतुष्पदी है। उसकी चतुर्थ वस्तु का प्रयोग देव एकमन होकर सुनें।

राजा आचार्य! बहुमान से एकाग्र हूँ।

गणदास जैसी महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है।)

राजा (जनान्तिक) वयस्य! **वह मालविका नेपथ्यगृह में है। उसके दर्शन के लिए आँखे समुत्सुक हैं। इतनी अधीर हैं कि परदे को हटा देना चाहती हैं ।।१।।**

विदूषक (अपवारण के साथ) उपस्थित तो है नेत्रों के लिए मधु, परन्तु उससे लिपटी मधुमक्खी भी है। तो प्रमाद से बचकर देखना इस समय।

।। ३ ।।

(प्रवेश करती है मालविका जिसके सभी अंगों के सौष्ठव को आचार्य देख रहे हैं।)

विदूषक (जनान्तिक) देखें आप। इसकी मधुरता पोशाक से कम नहीं हो रही है।

राजा (अपवारण के साथ) वयस्य!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवादशङ्कि मे हृदयम् ।
संप्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता ।। २।।

गणदासः वत्से! मुक्तसाध्वसा सत्त्वस्था भव। ३.१

राजा *आत्मगतम्* अहो सर्वावस्थानानवद्यता रूपस्य। तथा हि ३.२

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति वदनं बाहू नतावंसयोः
संक्षिप्तं निबिडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव ।
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालाङ्गुली
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसि श्लिष्टं तथास्या वपुः ।। ३।।

मालविका *उपगानं कृत्वा चतुष्पदवस्तु गायति* ४.१

दुल्लहो पिओ मे तस्सिं भव हिअअ णिरासं
अम्हो अपंगओ मे परिप्फुरइ किं पि वामओ ।
एसो सो चिरदिट्ठो कहं उवणईदव्वो
णाह मं पराहीणं तुई परिगणअ सतिण्हं ।। ४।।

दुर्लभः प्रियो मे तस्मिन् भव हृदय निराशम्
अहो अपाङ्गो मे परिस्फुरति किमपि वामः ।
एष स चिरदृष्टः कथमुपनेतव्यो
नाथ मां पराधीनां त्वयि परिगणय सतृष्णाम् ।।

ततो यथारसमभिनयति। ५.१

विदूषकः *जनान्तिकम्* भो वयस्य! चउप्पदवत्थुअं दुवारीकरिअ तुइ उवट्ठाविदो अप्पा तत्तहोदीए।भो वयस्य! चतुष्पदवस्तुकं द्वारीकृत्य त्वय्युपस्थापित आत्मा तत्रभवत्या। ५.२

राजा सखे! एवमेव ममापि हृदयम्। अनया खलु– ५.३

जनमिमनुरक्तं विद्धि नाथेति गेये
वचनमभिनयन्त्या स्वाङ्गनिर्देशपूर्वम् ।
[१] प्रणयगतिमदृष्ट्वा धारिणीसन्निकर्षा–
दहमिव सुकुमारप्रार्थनाव्याजमुक्तः।। ५।।

---

१. प्रणय एव प्रार्थनात्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही चित्र में भी थी, किन्तु दोनों की कान्ति में संवाद नहीं है। लगता है जिसने इसे आलिखित किया वह एकाग्र नहीं था ॥ २॥

गणदास — वत्से! साध्वस[१] छोड़कर सत्त्वस्थ रह।

राजा — (स्वगत) अहो कैसा है रूप[२]। सभी अवस्थानों[३] में पूर्णता[४]। क्योंकि — आँखे बड़ी बड़ी, मुखमण्डल पर शरदिन्दु की शीतल कान्ति, दोनों बाहु कंधो पर उतारदार, उरःस्थल में निबिड उन्नत स्तन, संक्षिप्ति (कसावट) लिए हुए पार्श्व ऐसे चिकने मानों पोंछ दिए गए हों (घट निर्माण के बाद पोंछा जाता है और चिकना किया जाता है), मध्य (कमर) मुष्टिमेय, उसके नीचे सामने उठा हुआ जघन, पीछे भी बड़े नितम्ब, दोनों पैरों की ऊँगलियाँ टेढ़ीं। नचाने वाले की जैसी इच्छा (छन्द) वैसा ही बन पड़ा है, इसका शरीरसंस्थान॥ ३॥

मालविका — (उपगान करके चतुष्पदवस्तु[५] गाती है।) दुर्लभ है प्रिय मेरा, हृदय! छोड़ आशा, किन्तु अहो मेरा कैसे भी वामनेत्र फड़क रहा है, देखे बीते दिन बहुतेरे, कैसे हो वह प्राप्त नाथ, लुटी मैं तुझ पर, लेकिन पराधीन ठहरी ॥ ४॥ (फिर रस के अनुरूप अभिनय करती है।)

विदूषक — (जनान्तिक) भो वयस्य! चतुष्पदवस्तु को द्वार बना कर इसने उपस्थापित कर दिया स्वयं को तुम्हारे लिए।

राजा — मैं भी ऐसा ही सोच रही हूँ। इसने जो है सो — इसकी गेय वस्तु का वाक्य[६] (बोल) था 'इस जन को अनुरक्त समझो नाथ!' फिर उसका (अङ्कुर[७]) था वैसा ही स्वाङ्गनिर्देशपूर्ण अभिनय। इस प्रकार प्रणय का निवेदन संभव न देख कर, क्योंकि धारिणी भी पास में है, इसने मुझसे ही सुकुमार प्रार्थना की है व्याज से॥ ५॥

---

१. साध्वस भय, सत्त्व अभ्यस्त का स्मरण और अंगों का अनुरूप संचालन। दोनों नाट्यपरिभाषाएँ। द्र. नाट्यशास्त्र २२.१—६।

२. रूप शरीर में अंगों का संस्थान, नाट्यशास्त्र२१.४२। ३. अवस्थान उपाङ्गों में सौष्ठव।

४. अवद्य=दोष, अनवद्य=दोषाभाव=पूर्णता। ५. चतुष्पद=चार चरण की गीतिरचना वस्तु।

६. वाक्य = वाक्य में गेयपदमात्र सुनाना, सूचा में केवल अङ्गाभिनय करना।

७. अङ्कुर में एक एक वाक्य का एक एक अङ्ग के साथ मेल दिखलाना हुआ पदार्थाभिनय। अभिनय में सभी पदार्थरूप अभिनयों का वाक्यार्थीभाव यानी मिलाना। यह कहलाता है 'नाट्यायित' (नाट्यशास्त्र २२.४०—४४)। यह व्याज ही है छल। इससे युक्त अभिनय 'छलित' या 'छलिक' या 'चलित' कहलाता है। प्रणय='स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु' मेघदूत २८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविका *गीतान्ते निष्क्रमितुमारब्धा।* ६.१

विदूषकः भोदि! चिट्ठ। किं वि वो विसुमरिदो कम्मभेदो। तं दाव पुच्छिस्सं।

भवति! तिष्ठ। किमपि वो विस्मृतः कर्मभेदः। तं तावत् प्रक्ष्यामि। ६.२

गणदासः वत्से! क्षणमात्रं स्थित्वा उपदेशविशुद्धा यास्यसि। ६.३

मालविका *निवृत्य स्थिता।* ६.४

राजा *आत्मगतम्* अहो! सर्वास्वस्थासु चारुता शोभां पुष्यति। तथाहि — ६.५

वामं सन्धिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम् ।
पादाङ्गुष्ठाऽऽलुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्द्धम् ।। ६।।

देवी णं गोदमवअणं वि अज्जो हिअए करेदि? ननु गौतमवचनमप्यार्यो हृदये करोति। ७.१

गणदासः देवि! मा मैवम्। देवप्रत्ययात् संभाव्यते सूक्ष्मदर्शिता गौतमस्य। पश्य–७.२

मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः ।
पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः ।। ७।।

विदूषकं विलोक्य तच्छृणुमो वयं विवक्षितमार्यस्य। ८.१

विदूषकः *गणदासं विलोक्य* कोसिइं दाव पुच्छ। पच्छा जो मए कम्मभेदो दिट्ठो तं भणिस्सं। कौशिकीं तावत् पृच्छ। पश्चाद् यो मया कर्मभेदो दृष्टस्तं भणिष्यामि। ८.२

गणदासः भगवति! यथादृष्टमभिधीयतां गुणो वा दोषो वेति ८.३

परिव्राजिका यथादृष्टं सर्वमनवद्यम्। कुतः — ८.४

हस्तैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यासो लयमुपगतस्तन्मयत्वं रसेषु ।
शाखायोनिर् मृदुरभिनयः षड्विकल्पानुवृत्त
भावे भावे नुदति विषयान् रागबन्धः स एव ।। ८।।[१]

---

१. दशरूपकावलोके धनिकेन दत्त एष पाठः। मुद्रितस्तु पाठ एवंरूपः— हस्तैः=अङ्गैः, मुप=मनु, षड्विव=तद्वि, भावे भावे=भावो भावं, विषयान्=विषयाद्। इमे षड् विकल्पा नृत्यस्य नाट्यशास्त्रं २२.४३ कारिकायाम्— i. वाक्यम् ii.सूचा iii.अङ्कुरः iv. शाखा v.नाट्यायितम् vi.नि–वृ/वृत्यङ्कुरः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविका (गीत के बाद जाना चाहती है।)

विदूषक भवति! रुको थोड़ा। कुछ बातें छूट गई हैं। उन्हें पूछना है मुझे।

गणदास वत्से! क्षणभर के लिए रुक, उपदेश सुनकर चली जाना।

मालविका (रुककर खड़ी हो जाती है।)

राजा (स्वगत) ओहो! चारुता सभी अवस्थाओं में शोभा बढ़ाती हैं। देखो — **यह खड़ी है तो और अच्छी लग रही है, क्योंकि इसने चूड़ियाँ बाएँ हाथ की कलाई में इकट्ठी कर रख छोड़ी हैं, नितम्ब पर, दूसरे** (दाहिने) **को श्यामा लता की टहनी सा नीचे लटका रखा है, पैरों की उँगलियों से फर्श पर बिखरे फूलों को हिला रही है, उसी पर डाल रखी है दृष्टि। इसका खड़ा होना 'ऋज्वायतार्ध' है** (न बिलकुल ऋजु = सीधा, न बिलकुल लम्बा) **अतः और अधिक चित्तहारी है।। ६।।**

देवी अरे गौतम की बात पर भी आर्य ध्यान देते हैं?

गणदास देवि! ऐसा नहीं। देव के साथ रहने से गौतम भी सूक्ष्मदर्शी हो सकता है। देखिए न — **मन्द भी अमन्द** (चतुर) **बन जाता है विद्वान् के संसर्ग से, जैसे निर्मली के संसर्ग से गन्दा पानी।। ७।।**

(विदूषक की ओर देखकर) तो सुनें हम आर्य जो कहना चाहते हैं?

विदूषक (गणदास को देखकर) कौशिकी से पहले पूछो। मैं बाद में बतलाऊँगा जो कमी मैंने देखी है।

गणदास भगवति! जैसा आपने देखा, बतलाया जाए ठीक था या गलत।

परिव्राजिका जैसा मुझे लगा सब ठीक था, कहीं कोई दोष नहीं था। क्योंकि — (इसका अभिनय, अभिनय के छहों अंगों से शुद्ध था) **हस्तों की मुद्रा** (शाखा) **थी वचन** (वाक्य) **को लिए हुए, उनसे वक्तव्य की ठीक ठीक दी गई सूचना** (सूचा) **पादन्यास लय के अनुसार ही था** (शाखा, नाट्यायित) **और अभिनय के छहों विकल्पों को दोहराते समय एक एक भाव से विषय की प्रेरणा मिलती रही** (निवृत्त्यङ्कुर) **और रागबन्ध वही का वही बना रहा।। ८।।**[१]

---

१. कलासमीक्षा Art criticism या Art appreciation का उत्तम नमूना। निर्णयसागर के मालविकाग्निमित्र में 'हस्तैः' के स्थान पर 'अङ्गैः' छपा है। वैसे 'हस्त' आदि के लिए नाशा. में 'अङ्ग'— परिभाषा भी मिलती है। इस पद्य में नौ पाठभेद हैं। प्रस्तुत पाठ निर्णयसागर के ही दशरूपकावलोक में छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणदासः देवः कथं मन्यते। ९.१

राजा वयं स्वपक्षे शिथिलाभिमानाः संवृत्ताः। ९.२

गणदासः अद्य नर्त्तयितास्मि। कुतः — ९.३

उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः ।
श्यामायते न युष्मासु यः काञ्चनमिवाग्निषु ।। ९।।

देवी *गणदासं प्रति* दिट्ठिआ(ऽ)परिक्खआराहणेण अज्जो वड्ढइ।
दिष्ट्या परीक्षकाराधनेनार्यो वर्धते। १०.१

गणदासः देवीपरिग्रह एव मे वृद्धिहेतुः। *विदूषकं विलोक्य* गौतम! वदेदानीं यत् ते मनसि वर्त्तते। १०.२

विदूषकः पढमोवदेसदंसणे पढमं बम्हणस्स पूजा कादव्वा। सा णं वो विसुमरिदा। प्रथमोपदेशदर्शने प्रथमं ब्राह्मणस्य पूजा कर्तव्या। सा ननु वो विस्मृता। १०.३

परिव्राजिका अहो प्रयोगाभ्यन्तरः प्रश्नः। १०.४

सर्वे प्रहसिताः। १०.५

मालविका *स्मितं करोति।* १०.६

राजा *आत्मगतम्* उपात्तसारश्चक्षुषा मे स्वविषयः। यदनेन — १०.७

स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चिदभिव्यक्तदशनशोभि मुखम् ।
असमग्रलक्ष्यकेसरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम् ।। १०।।

गणदासः महाब्राह्मण! न खलु प्रथमं (न वा) नेपथ्यसवनमिदम्। अन्यथा कथं त्वां दक्षणीयं नार्चिष्यामः। ११.१

विदूषकः मए णाम सुक्खघणगज्जिदे अन्तरिक्खे जलपाणं इच्छदा चादआइदं। अहवा पंडितसंतोसपच्चआ णं मूढ़ा जादी। जइ अत्तभोदीए सोहणं भणिदं तदो इमं से पारितोसिअं पअच्छामि। *राज्ञो हस्तात् कटकमाकर्षति।*
मया नाम शुष्कघनगर्जिते अन्तरिक्षे जलपानमिच्छता चातकायितम्। अथवा पण्डितसन्तोषप्रत्यया ननु मूढजातिः। यतः अत्रभवत्या शोभनं भणितं तत इदमस्यै परितोषिकं प्रयच्छामि। (राज्ञो हस्तात् कटकमाकर्षति।) ११.२

देवी चिठ्ठ दाव। गुणन्तरं अजाणन्तो किंणिमित्तं तुमं आहरणं देसि।
तिष्ठ तावत्। गुणान्तरमजानन् किंनिमित्तं त्वमाभरणं ददासि। ११.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणदास आपको कैसा लगा!

राजा हमारा तो अपने पक्ष में (हरदत्त के ऊपर) अभिमान अब ढीला पड़ गया।

गणदास आज हुआ मैं सिद्ध नृत्यशिक्षक। क्योंकि –

विद्वज्जन उपदेष्टा के उसी उपदेश को शुद्ध कहते हैं जो आप जैसों के बीच अग्नि में काञ्चन जैसा श्याम न पड़े।। ९।।

देवी (गणदास के प्रति) आर्य को बधाई, खूब की आपने आराधना (शास्त्र की और अग्निमित्र की)।

गणदास मेरी वृद्धि में हेतु आप हैं। (विदूषक को देखकर) गौतम! बोल अब जो तेरे मन में हैं।

विदूषक पहले पहल जब प्रयोग प्रस्तुत किया जाता है तो पहले ब्राह्मण की पूजा की जाती है (नाट्यशास्त्र)। वह आप लोग भूल गए।

परिव्राजिका वाह! कैसा बढ़ियाँ प्रश्न प्रयोग के भीतर का।

(सब हँसते हैं।)

मालविका (स्मित करती है।)

राजा (स्वगत)

आँखों ने ग्रहण कर लिया सार अपने विषय (रूप) का। इसने जो देख लिया– **इस आयताक्षी का स्मितमधुर मुख, कुछ झलक रहे थे इसमें दाँत। बड़ा ही सुहावना लगा इसका मुख। ऐसा जैसा कि खिल रहा कमलपुष्प हो, जिसकी पँखुड़ियों के बीच से उसके रेशे कुछ कुछ बाहर निकल पाए हों।। १०।।**

गणदास महाब्राह्मण! न तो यह पहला प्रयोग है और न नेपथ्यपूजा। नहीं तो कैसे भुला देते हम लोग आप जैसे दक्षिणायोग्य ब्राह्मण की पूजा।

विदूषक मैंने तो सूखे मेघ की गर्जना सुनकर पानी माँगकर चातक का काम किया। अथवा मन्द लोग पण्डित के भरोसे चलते हैं। यदि अत्रभवती कौशिकी ठीक बतला रही हैं तो इसे (मालविका को) देता हूँ यह पारितोषिक। (राजा के हाथ से कड़ा खींचता है)।

देवी रुक, दूसरे का प्रयोग बिना देखे क्यों दे रहा है तू यह कड़ा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः परकेरअं त्ति करिअ। परकीयमिति कृत्वा। ११.४

देवी *आचार्यं विलोक्य* अज्ज गणदास! णं दंसिदोवदेसा दे सिस्सा।
आर्य गणदास! ननु दर्शितोपदेशा ते शिष्या। ११.५

गणदासः वत्से एहि गच्छाव इदानीम्। ११.६

सहाचार्येण निष्क्रान्ता मालविका ११.७

विदूषकः *जनान्तिकम्* एत्तिओ मे मदिविहवो भवंतं सेविदुं।
एतावान् मे मतिविभवो भवन्तं सेवितुम्। ११.८

राजा *जनान्तिकम्* अलमलं परिच्छदेन। अहं हि — ११.९

भाग्यास्तमयमिवाक्ष्णोर् हृदयस्य महोत्सवावसानमिव ।
द्वारपिधानमिव धृतेर् मन्ये तस्यास् तिरस्करिणीम् ।। ११।।

विदूषकः *जनान्तिकम्* दलिद्द विअ आदुरो वेज्जेण ओसहं दीअमाणं इच्छसि।
दरिद्र इवातुरो वैद्येनौषधं दीयमानमिच्छसि। १२.१

प्रविश्य १२.२

हरदत्तः देव! मदीयमिदानीं प्रयोगमवलोकयितुं क्रियतां प्रसादः। १२.३

राजा *आत्मगतम्* अवसितो दर्शनार्थः। *दाक्षिण्यमवलम्ब्य प्रकाशम्* ननु पर्युत्सुका एव वयम्। १२.४

हरदत्तः अनुगृहीतोऽस्मि १२.५।

नेपथ्ये १२.६

वैतालिकः जयतु जयतु देवः। उपारूढो मध्याह्नः। तथा हि — १२.७

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां
सौधान्यत्यर्थतापाद् वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि ।
बिन्दूत्क्षेपान् पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद् वारियन्त्रं
सर्वैरुस्त्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः ।।१२।।

विदूषकः अविहा अविहा। अम्हाणं उण भोअणवेला उवट्ठिदा। अत्तभवदो उइदवेलादिक्कमे चिइच्छिआ दोसं उदाहरंदि। *हरदत्तं विलोक्य* हरदत्त! किं दाणि भणसि। अविध अविध। अस्माकं पुनर्भोजनवेलोपस्थिता। अत्रभवत उचितवेलातिक्रमे चिकित्सका दोषमुदाहरन्ति। (हरदत्तं विलोक्य) हरदत्त! किमिदानीं भणसि। १३.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक दूसरे का है इसलिए।

देवी (आचार्य को देखकर) आर्य गणदास! तुम्हारी शिष्या ने उपदेश दिखला दिया।

गणदास वत्से! आ चलें अब।

(आचार्य के साथ मालविका चली जाती है।)

विदूषक (जनान्तिक) इतना ही था मेरा मतिवैभव आपकी सेवा के लिए।

राजा नहीं नहीं, ढाँको मत। मैं तो –

इसकी तरस्करिणी को आँखों का भाग्यास्त मानता हूँ। हृदय के महोत्सव की समाप्ति सी है यह, धैर्य का दरवाजा बन्द सा हो गया है।। ११।।

विदूषक (जनान्तिक) दरिद्र बीमार सा चाहता है वैद्य से ही ओषधि पाना।

(प्रवेश कर)

हरदत्त देव! मेरा प्रयोग देखने की अब कृपा कीजिए।

राजा (स्वगत) देखने का प्रयोजन तो समाप्त हो गया। (दाक्षिण्य में, प्रकाश) हाँ, हाँ पर्युत्सुक ही हैं हम।

हरदत्त अनुगृहीत हूँ।

(नेपथ्य में)

वैतालिक देव की जय हो! जय हो देव की। मध्याह्न चढ़ आया। देखें –

हंस दीर्घिका की पद्मिनी के पत्रों की छाया में आँख बन्दकर बैठ गए हैं, सौध अधिक तप गए हैं तो कबूतर अब छज्जे से हट गए हैं, मयूर फब्बारे की उछली बिन्दुओं को पीने के लिए वारियन्त्र के पास पहुँच रहे हैं। देव! इस समय सूर्य अपनी सभी किरणों से तप रहा है जैसे आप अपने नृपगुणों से।। १२।।

विदूषक अविहा अविहा, हमारी तो भोजन वेला उपस्थित हो गई। आप के लिए वैद्यों का कहना है कि उचित समय के अतिक्रमण से दोष पैदा होते हैं। (हरदत्त को देखकर) हरदत्त! क्या कहते हो अब?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरदत्तः नास्ति मद्वचनावकाशोऽत्र। १३.२

राजाः *हरदत्तं विलोक्य* तेन हि त्वदीयमुपदेशं श्वो वयं द्रक्ष्यामः। विरमतु भवान्। १३.३

हरदत्तः यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रान्तः* १३.४

देवी णिव्वट्ढेदु अज्जउत्तो मज्जणविहिं। निर्वर्तयतु आर्यपुत्रो मज्जनविधिम्। १३.५

विदूषकः भोदि! विसेसेण पाणभोअणं तुवरावेहि। भवति! विशेषेण पानभोजनं त्वरय। १३.६

परिव्राजिका *उत्थाय* स्वस्ति भवते। सपरिजनया देव्या सह निष्क्रान्ता। १३.७

विदूषकः भो वअस्स! ण केवलं रूवे सिप्पे वि अद्दुदीआ मालविआ।

भो वयस्य! न केवलं रूपे शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका। १३.८

राजा वयस्य! १३.९

अव्याजसुन्दरीं तां ललितविधानेन योजयता ।
परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदिग्धः ।।१३।।

किं बहुना। सखे! चिन्तयितव्योऽस्मि। १४.१

विदूषकः भवदा वि अहं। दिढं विपणिकन्दू विअ मे उअरब्भंतरं दज्झइ।

भवताप्यहम्। दृढं विपणिकन्दुरिव मे उदराभ्यन्तरं दह्यते। १४.२

राजा एवमेव भवान् सुहृदर्थेऽपि त्वरताम्। १४.३

विदूषकः गिहीदक्खणोऽम्हि। किंतु मेहावली–णिरुद्धा जोण्हा विअ पराहीण–दंसणा तत्तभोदी मालविआ। भवं वि सूणा–परिसर–चरो विअ गिद्धो आमिस–लोलुवो भीरुओ अ। ता अणादुरो हविअ कज्जसिद्धिं पत्थअंतो मे रोअसि। गृहीतक्षणोऽस्मि। किं तु मेघावलीनिरुद्धा ज्योत्स्नेव पराधीनदर्शना तत्रभवती मालविका। भवानपि सूनापरिसरचर इव गृध्र आमिषलोलुपो भीरुकश्च। तत् अनातुरो भूत्वा कार्यसिद्धिं प्रार्थयमानो मे रोचसे। १४.४

राजा कथमनातुरो भविष्यामि १४.५

सर्वान्तःपुरवनिताव्यापारप्रतिनिवृत्तहृदयस्य ।
सा वामलोचना मे स्नेहस्यैकायनीभूता ।।१४।।

निष्क्रान्ताः सर्वे। १५.१

इति महाकविकालिदासकृतौ मालविकाग्निमित्रे नाटके
द्वितीयोऽङ्कः।। २।। १५.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरदत्त मेरे लिए अब कुछ भी कहना शेष नही है।

राजा (हरदत्त को देखकर) तो आपका उपदेश कल देखेंगे हम। अब आप रहने दें।

हरदत्त देव की जैसी आज्ञा। (निकल जाता है)

देवी आर्यपुत्र स्नान करें।

विदूषक भवति! पीने खाने का विशेष प्रबन्ध करें, वह भी शीघ्र।

परिव्राजिका (उठकर) आपका कल्याण हो। (परिजन तथा देवी के साथ चली गई)

विदूषक भो वयस्य! केवल रूप में ही नहीं, शिल्प में भी अद्वितीय है मालविका।

राजा वयस्य!

उस अव्याज (सहज) सुन्दरी को ललित विधान से युक्त कर विधाता ने कामबाण को विषदिग्ध कर दिया।।१३।।

अधिक क्या? सखे! मैं चिन्ता का विषय बन गया हूँ।

विदूषक आपके लिए भी मैं। मेरा पेट भूख से विपणिकन्दू[1] के समान जल रहा है।

राजा इसी प्रकार तुम भी अपने इस मित्र के लिए त्वरा करो।

विदूषक मुझे अवसर तो मिल गया है, किन्तु मेघावली से निरुद्ध ज्योत्स्ना के समान तत्रभवती मालविका का दर्शन पराधीन है। आप भी सूना (कसाईघर) के आस पास घूमते गिद्ध जैसे हो आमिष लोलुप भी और भीरु भी। इसलिए आतुर न होकर कार्यसिद्धि की ओर अग्रसर हो तो मुझे अच्छा लगे।

राजा अनातुर होऊँ कैसे?

मेरा हृदय अन्तःपुर की सभी वनिताओं से हट गया है और केवल वही वामलोचना बन बैठी है मेरे स्नेह का एकमात्र आयतन।।१४।।

(सभी निकल गए)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति मालविकाग्निमित्र नाटक में द्वितीय अङ्क पूर्ण हुआ ।।२।।

---

१. बाजार में भट्टी पर चढ़ी हलवाई की जलती कड़ाही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ तृतीयाङ्कारम्भप्रवेशकः।। १.१

।। १ ।।

ततः प्रविशति परिव्राजिकायाः परिचारिका १.२

परिचारिका आणत्तम्हि भअवदीए परिव्वाजिअए देविए उवाअणत्थं बीअऊरअं गेण्हिअ आअच्छ त्ति। ता जाव पमदवणपालिअं महुअरिअं अण्णेसामि। *परिक्रम्य अवलोक्य च* एसा तवणीआसोअं ओलोअंती महुअरिआ चिठ्ठदि। ता जाव णं उवसप्पामि। आज्ञप्तास्मि भगवत्या परिव्राजिकया देव्या उपायनार्थं बीजपूरकं गृहीत्वागच्छेति। तद् यावत् प्रमदवनपालिकां मधुरिकामन्विष्यामि। (परिक्रम्य अवलोक्य च) एषा तपनीयाशोक–मवलोकयन्ती मधुकरिका तिष्ठति। तद् यावदेनामुपसर्पामि। १.३

ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा उद्यानपालिका। १.४

समाहितिका *ताम् दृष्ट्वा उपसृत्य* महुअरिए! अवि सुहो द उज्जाणव्वावारो?

मधुकरिके! अपि सुखस्त उद्यानव्यापारः? १.५

मधुकरिका अम्हो समाहिदिआ। सहि! सागअं दे।

अहो समाहितिका। सखि! स्वागतं ते। १.६

समाहितिका हला! भअवदी आणवेदि अरित्तपाणिणा अम्हारिसजणेण तत्तभोदी देवी देक्खिदव्वा। ता बीजऊरएण सुस्सूसिदुं इच्छामि त्ति।

सखि! भगवत्याज्ञापयति–'अरिक्तपाणिना अस्मादृशजनेन तत्रभवती देवी द्रष्टव्या। तद् बीजपूरकेण शुश्रूषितुमिच्छामि' इति। १.७

मधुकरिका णं संणिहिदं बीअऊरअं। कहेहि दाव अण्णोण्णसंघरिसिदाणं णट्टाआरिणं उवदेसं देक्खिअ कदरो भअवदिए पसंसिदो?

ननु संनिहितं बीजपूरकम्। कथय तावदन्योन्यसंघर्षितयोर्नाट्याचार्ययोरुपदेशं दृष्ट्वा कतरो भगवत्या प्रशंसितः? १.८

समाहितिका दुवे वि किल आगमिणा पओअणिउणा अ। किंतु सिस्साए मालविआए गुणविसेसेण गणदासस्स उवदेसो पसंसिदो।

द्वावपि किलागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च। किंतु शिष्याया मालविकाया गुणविशेषेण गणदासस्योपदेशः प्रशंसितः। १.९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीयाङ्क–प्रवेशक ।।

।। १ ।।

(प्रवेश करती है परिव्राजिका की परिचारिका)

परिचारिका आज्ञा दी है भगवती परिव्राजिका ने – 'देवी को भेंट करने हेतु बीजपूरक ले आ।' तो चलूँ प्रमदवनपालिका मधुकरिका को खोजूँ। (घूमकर और देखकर) यह है तपनीयाशोक को देख रही मधुकरिका। चलूँ इसके पास चलूँ।

(प्रवेश करती है उक्त व्यापार में लगी उद्यानपालिका मधुकरिका।

समाहितिका (उसे देखकर पास में जाकर) मधुकरिके! तेरा उद्यान कार्य सुख से तो चल रहा है।

मधुकरिका अहो समाहितिका। सखि! स्वागत तेरा।

समाहितिका सखि! भगवती की आज्ञा है –'हमारे जैसे लोगों को देवी के दर्शन अरिक्तपाणि होकर ही करना चाहिए। तो बीजपूरक से चाहती हूँ, उनकी सेवा करना।'

मधुकरिका यह रहा बीजपूरक। यह तो बता कि झगड़ रहे आचार्यों के प्रयोग को देखकर किसकी की प्रशंसा भगवती ने?

समाहितिका आगम का ज्ञान दोनों को है। दोनों प्रयोग में निपुण भी हैं। परन्तु, प्रशंसा की गणदास के उपदेश की, शिष्या मालविका के गुणविशेष के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुकरिका अह मालविआगदं कोलीणं कीरिसं सुणीअदि?

अथ मालविकागतं कौलीनं कीदृशं श्रूयते? १.१०

समाहितिका बलीअं किल साहिलासो तस्सिं भट्टा। किंतु केवलं देविए धारिणीए चित्तं रक्खन्तो अत्तणो पहुत्तणं दंसेदि। मालविआ वि इमेसु दिअसेसु अणुभूदमुत्ता विअ मालदीमाला मिलाणा लक्खीअदि। अदो वरं ण जाणे। विसज्जेहि मं। बलीयः किल साभिलाषस्तस्यां भर्ता। किन्तु केवलं देव्या धारिण्याश्चित्तं रक्षन्नात्मनः प्रभुत्वं दर्शयति। मालविकाप्येषु दिवसेष्वनुभूतमुक्तेव मालतीमाला म्लाना लक्ष्यते। अतः परं न जाने। विसृज माम्। १.११

मधुकरिका एदं साहावलंबिदं बीजऊरअं गेण्ह।

एतच्छाखावलम्बितं बीजपूरकं गृहाण। १.१२

समाहितिका तधा। *नाट्येन बीजपूरकं गृहीत्वा* हला तुमं वि अदो पेसलदरं साहुजणसुस्सूसाए फलं पावेहि। तथा। *प्रस्थिता* (नाट्येन बीजपूरकं गृहीत्वा) सखि! त्वमप्यतः पेशलतरं साधुजनशुश्रूषायाः फलं प्राप्नुहि। (प्रस्थिता) १.१३

मधुकरिका हला! समं जेव गच्छम्ह। अहं वि इमस्स चिराअमाणकुसुमोग्गमस्स तवणीआसोअस्स दोहदणिमित्तं देवीए णिवेदेमि।

सखि! सममेव गच्छावः। अहमप्यस्य चिरायमाणकुसुमोद्गमस्य तपनीयाशोकस्य दोहदनिमित्तं देव्यै निवेदयामि। १.१४

समाहितिका जुज्जइ। अहिआरो क्खु तुइ। युज्यते। अधिकारः खलु तव। १.१५

निष्क्रान्ते १.१६

।। इति प्रवेशकः।। १.१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुकरिका अच्छा मालविका के विषय में कैसी चल रही है अफवाह?

समाहितिका उसे अत्यधिक चाह रहे हैं मालिक। परन्तु देवी का चित्त रखते हुए अपना प्रभुत्व नहीं दिखला रहे हैं। मालविका भी इन दिनों अनुभूतमुक्ता मालतीमाला जैसी म्लान दिखाई दे रही है। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ ज्ञात नहीं। छोड़ मुझे।

मधुकरिका यह शाखा पर लगा बीजपूरक ले ले।

समाहितिका ठीक (बीजपूरक लेने का अभिनय कर) हला तू भी फल पाएगी साधुजन की इस कोमलतर सेवा से (चल दी)।

मधुकरिका सखि! दोनों साथ ही चलें। मुझे भी देवी से प्रार्थना करनी है, तपनीय अशोक का यह पौधा पुष्पित होने में देरी कर रहा है, इसके दोहद के लिए।

समाहितिका ठीक तो है। यह तो तेरा अधिकार ही है।

(निकल जाती हैं।)

।। समाप्त तृतीयाङ्कप्रवेशक।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ तृतीयोऽङ्क :।। १.१८

।। २।।

ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा विदूषकश्च १.१९

राजा *आत्मानं विलोक्य* १.२०

शरीरं क्षामं स्यादसति दयिताऽऽलिङ्गनसुखे
भवेत् सास्रं चक्षुः क्षणमपि न सा दृश्यत इति ।
तया सारङ्गाक्ष्या त्वमसि न कदाचिद् विरहितं
प्रसक्ते निर्वाणे हृदय! परितापं व्रजसि किम् ।।१।।

विदूषकः अलं भवदो धीरदं उज्झिअ परिदेविदेण। दिट्ठा मए तत्तहोदीए मालविआए पिअसही बउलावलिआ सुणाविदा अ अत्थं जो भवदा संदिट्ठो। अलं भवतो धीरतामुज्झित्वा परिदेवितेन। दृष्टा मया तत्रभवत्या मालविकायाः प्रियसखी बकुलावलिका श्राविता चार्थं यो भवता संदिष्टः। २.१

राजा ततः किमुक्तवती? २.२

विदूषकः विण्णवेहि भट्टारअं 'अणुग्गहीदम्हि इमिणा णिओएण। किंदु सा तवस्सिणी देवीए अहिअं रक्खन्तीए णाअरक्खिदो विअ णिही न सुहं समासादइदव्वा। तह वि जदिस्सं' त्ति। विज्ञापय भट्टारकम्– 'अनुगृहीतास्म्यनेन नियोगेन। किन्तु सा तपस्विनी देव्या अधिकं रक्षन्त्या नागरक्षित इव निधिर्न सुखं समासादयितव्या। तथापि, यतिष्ये' इति। २.३

राजा भगवन् संकल्पयोने! प्रतिबन्धवत्स्वपि विषयेषु अभिनिवेश्य तथा प्रहरसि यथा जनोऽयं न कालान्तरक्षमो भवति। सविस्मयम्, २.४

क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम् ।
मृदु तीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ! दृश्यते त्वयि ।। २।।

विदूषकः णं भणामि तस्सिं साहणिज्जे कज्जे किदो मए उवाओवक्खेओ। ता पज्जवत्थावेदु भवं अप्पाणं। ननु भणामि तस्मिन् साधनीये कार्ये कृतो मया उपायोपक्षेपः। तत् पर्यवस्थापयतु भवानात्मानम्। ३.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीय अङ्क ।।

।।२।।

(प्रवेश करते हैं कामयमान की अवस्था में राजा और विदूषक)

राजा (अपने आप को देखकर)

शरीर दुबला हो दयितालिङ्गन सुख के अभाव में, आँखों में आँसू आए क्योंकि क्षणभर के लिए भी वह नहीं दिखाई देती, हृदय! तू तो उस सारङ्गाक्षी से कभी भी विरहित नहीं है और निर्वाण भी आसन्न है। तब तू क्यों परितप्त हो रहा है?।।१।।

विदूषक धीरता छोड़कर विलाप करना तुमको शोभा नहीं देता। मालविका की प्रियसखी बकुलावलिका से मैं मिला था। उसे तुम्हारा संदेश सुना दिया था।

राजा क्या कहा उसने?

विदूषक मालिक से कहना – 'अनुगृहीत हूँ इस आज्ञा से। किन्तु वह बेचारी देवी के द्वारा अधिक बचाई जा रही है नाग से रक्षित निधि के समान सुख से नहीं पाई जा सकती, तब भी यत्न करूँगी।'

राजा भगवन् काम! प्रतिबन्धित विषयों पर अभिनिविष्ट कर ऐसा प्रहार करते हो कि यह जन थोड़ा सा भी कालक्षेप सह नहीं पाता। (विस्मय के साथ) **कहाँ तो यह पीडा, हृदय को मथे दे रही और कहाँ तुम्हारा विश्वसनीय बाण। मृदु ही तीक्ष्णतर होता है यह उक्ति तुम में ही लागू दिखाई देती है ।।२।।**

विदूषक मैंने कहा न कि उस साध्य कार्य में मैंने उपाययोजना लागू कर दी है। तो सम्हालो अपने आपको थोड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा अथेमं दिवसशेषम् उचितव्यापारविमुखेन चेतसा क्व नु खलु यापयामि। ३.२

विदूषकः अज्ज एव्व पढमावदारसुहआणि रत्तकुरवआणि उवाअणं पेसिअ नववसंतावदारव्वदेसेण इरावदीए णिउणिआमुहेण पत्थिदो भवं इच्छामि अज्जउत्तेण सह दोलाहिरोहणं अणुहविदुं त्ति। भवदा वि से पडिण्णादं। ता पमदवणं जेव गच्छम्ह। अद्यैव प्रथमावतारसुभगानि रक्तकुरबकाणि उपायनं प्रेष्य नववसन्तावतारव्यपदेशेन इरावत्या निपुणिकामुखेन प्रार्थितो भवान्—'इच्छामि आर्यपुत्रेण सह दोलाधिरोहणमनुभवितुमिति। भवताप्यस्यै प्रतिज्ञातम्। तत् प्रमदवनमेव गच्छावः। ३.३

राजा न क्षममिदम्। ३.४

विदूषकः कहं विअ? कथमिव? ३.५

राजा वयस्य! निसर्गनिपुणाः स्त्रियः। कथमन्यसंक्रान्तहृदयमुपलालयन्तमपि ते सखी न मां लक्षयिष्यति। अतः पश्यामि ३.६

उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः ।
उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्यः ।। ३।।

इति।। ४.१

विदूषकः णारिहदि भवं अंतेउरट्ठिदं दक्खिण्णं एक्कपदे पिट्ठदो कादुं।
नार्हति भवानन्तःपुरस्थितं दाक्षिण्यमेकपदे पृष्ठतः कर्तुम्। ४.२

राजा *विचिन्त्य* तेन हि प्रमदवनमार्गमादेशय। ४.३

विदूषकः इदो यिदो भवं। इत इतो भवान्। ४.४

उभौ *परिक्रामतः* ४.५

विदूषकः णं एदं पमदवणं पवणबलचलाहिं पल्लवङ्गुलीहिं तुवरदि विअ भवंतं पविसिदुं। नन्वेतत् प्रमदवनं पवनबलचलाभिः पल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव भवन्तं प्रवेष्टुम्। ४.६

राजा *स्पर्शं रूपयित्वा* अभिजातः खलु वसन्तः। सखे! पश्य—४.७

आमत्तानां श्रवणसुभगैः कूजितैः कोकिलानां
सानुक्रोशं मनसिजरुजः सह्यतां पृच्छतेव ।
अङ्गे चूतप्रसवसुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे
सान्द्रस्पर्शः करतल इव व्यापृतो माधवेन ।। ४।।

विदूषकः पविस णिव्वुदिलाहाअ। प्रविश निर्वृतिलाभाय। ५.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — अच्छा तो बचा हुआ यह दिन कहाँ बिताऊँ, चित्त तो आवश्यक कामों से भी विमुख है।

विदूषक — आज ही पहली बार फूले रक्तकुरबक की भेंट भेज कर नववसन्तावतार के बहाने इरावती ने निपुणिका के द्वारा तुमसे प्रार्थना की है 'चाहती हूँ आर्यपुत्र के साथ दोलाधिरोहण का सुख लेना'। आपने भी उसे स्वीकृति दे दी है। तो प्रमदवन ही चलें।

राजा — न, यह ठीक नहीं।

विदूषक — कैसे!

राजा — वयस्य! स्त्रियाँ बड़ी निपुण होती हैं। उपलालन करता रहूँगा तब भी तुम्हारी वह सखी मुझे अन्यसंक्रान्तहृदय कैसे नहीं ताड़ लेगी? इसलिए मैं समझता हूँ –

माँग (प्रणय) **पूरी न करना उचित होगा । पूरी न करने के हेतु अनेक हो सकते हैं। किन्तु मनस्विनीजनों का पहले से अधिक भी उपचार करना ठीक नहीं, यदि वह हृदय से न हो ॥ ३॥**

विदूषक — आपको शोभा नहीं देता अन्तःपुर की सहसा उपेक्षा करना।

राजा — (सोचकर) तब फिर दिखलाओ प्रमदवन का मार्ग।

विदूषक — इधर से इधर से आप आवें।

दोनों — (घूमते हैं)।

विदूषक — यह रहा प्रमदवन पवन के बल से चंचल पल्लव की उँगलियों से आपको शीघ्र प्रवेश करने हेतु प्रेरित कर रहा है।

राजा — (स्पर्श दिखलाकर) बड़ा अभिजात है वसन्त। सखे! देखो–

इस वसन्त ने उन्मत्त कोकिलों के कर्णमधुर शब्दों में कामव्यथा की सह्यता सी पूछते हुए मलयानिल का हाथ, जिसमें आम्र मञ्जरी की सुगन्ध है, फिराया है मेरे अङ्ग पर। बड़ा ही मेदुर है इसका स्पर्श ॥ ४॥

विदूषक — करो प्रवेश हल्का होने के लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभौ *परिक्रामतः* ५.२

विदूषकः अवहाणेण दिट्ठिं देहि। एदं क्खु भवंदं विअ विलोहइदुकामए पमदवणलच्छीए जुवदीवेसलज्जावइत्तिअं वसंतकुसुमणेवत्थं गहीदं।

अवधानेन दृष्टिं देहि। एतत् खलु भवन्तमिव विलोभयितुकामया प्रमदवनलक्ष्म्या युवतिवेषलज्जापयितृकं वसन्तकुसुमनेपथ्यं गृहीतम्। ५.३

राजा ननु विस्मयादवलोकयामि ५.४

रक्ताशोकलताविशेषितगुणो[१] बिम्बाधरालक्तकः
प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामावदातारुणम् ।
आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीर्माधवी योषिताम् ॥५॥

उभौ *नाट्येनोद्यानशोभां निर्वर्णयतः।* ६.१

॥ ३ ॥

ततः प्रविशति पर्युत्सुका मालविका ६.२

मालविका अविण्णादहिअअं भट्टारअं अहिलसंदी अत्तणो वि णाम लज्जेमि। कुदो विहवो सिणिद्धस्स सहीजणस्स इमं वुत्तंतं आचक्खिदुं। ण जाणे अप्पडि–आरगरुजं वेदणं केत्तिअं कालं मदणो मं णइस्सदि त्ति। *कतिचित् पदानि गत्वा* अध कहिं क्खु पत्थिदम्हि? *स्मृतिमभिनीय* आं आदिट्ठम्हि देविए गोदमचापलादो दोलापरिब्भट्टाए सरुजा मह चरणा। तुमं दाव गदुअ तवणीआसोअस्स दोहदं णिव्वट्टेहि त्ति। जइ सो पंचरत्तब्भंतरे कुसुमं दंसेदि तदो अहं तुह *अन्तरा निःश्वस्य* अहिलासपूरइत्तअं पसादं दावइस्सं त्ति। जाव णिओअभूमिं पढमं गदा होमि। जाव अणुपदं मह चरणालंकारहत्थाए बउलावलिआए आअन्दव्वं परिदेवइस्सं दाव वीसद्धं मुहुत्तअं। *परिक्रामति।*

अविज्ञातहृदयं भर्तारमभिलषन्ती आत्मनोऽपि तावल्लज्जे। कुतो विभवः स्निग्धस्य सखीजनस्य इमं वृत्तान्तमाख्यातुम्। न जाने अप्रतीकारगुरुकां वेदनां कियन्तं कालं मदनो मां नेष्यति इति। *(कतिचित् पदानि गत्वा)* अथ कुत्र खलु प्रस्थितास्मि? *(स्मृतिमभिनीय)* आम् आदिष्टास्मि देव्या – गौतमचापलाद् दोलापरिभ्रष्टायाः सरुजौ मम चरणौ। त्वं तावद् गत्वा तपनीयाशोकस्य दोहदं निर्वर्तयेति। यद्यसौ पञ्चरात्राभ्यन्तरे कुसुमं दर्शयति ततस्तुभ्यमहम् *(अन्तरा निःश्वस्य)* अभिलाषपूरयितृकं प्रसादं दापयिष्यामीति। यावन्नियोगभूमिं प्रथमं गता भवामि। यावदनुपदं मम चरणालङ्कारहस्तया वकुलावलिकया आगन्तव्यम्, परिदेविष्ये तावद् विस्रब्धं मुहूर्तकम्। *(परिक्रामति)* ६.३

---

१. **लताविं** इति तारानाथः, **रुचा वि** इति निर्णयसागरः, काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों (घूमते हैं)।

विदूषक ध्यान से देखो, इस प्रमदवनलक्ष्मी ने तुम्हीं को लुभाने के लिए युवतीजन के वेष को लज्जित करने वाला वसन्तकुसुम का अलंकार धारण किया है।

राजा मैं तो विस्मय से देख रहा हूँ –

वसन्त की यह श्री महिलाओं के मुख के अलंकरण की सामग्री पर ऐसा लगता है कि जैसे अवज्ञा लिए हुए है। देखा जाए कि यह रक्ताशोक की टहनी की कान्ति से बिम्बाधर के आलक्तक की शोभा छुडा दी गयी है, श्याम और गौर दोनों वर्ण के कुरबक के द्वारा छुड़वा दिए हैं विशेषक[1], भ्रमरों से युक्त तिलक पुष्पों द्वारा पीट दी गई है तिलक की क्रिया।। ५।।

दोनों (उद्यानशोभा देखने का अभिनय करते हैं।)

॥ ३ ॥

(प्रवेश करती है पर्युत्सुक मालविका)

मालविका अविज्ञातहृदय भट्टारक (महाराजा साहब) की चाह पाल कर मैं स्वयं से भी लज्जित हूँ। इतनी हिम्मत कहाँ कि इस बात को सखीजन से भी कह सकूँ। न जाने कब तक मुझे प्रतीकाररहित इस वेदना में काम डाले रहेगा। (कुछ डग चलकर।) कहाँ जाने के लिए चली हूँ मैं। (स्मरण का अभिनय कर) आ, देवी ने आदेश दिया है मुझे–'गौतम की चपलता के कारण मैं झूले से गिर पड़ी हूँ और मेरे पैरों में पीडा है। तू ही जाकर तपनीयाशोक का दोहद पूरा कर दे। यदि वह पाँच दिनों के भीतर पुष्प दिखला देगा तो मैं तुझे (भीतर ही भीतर निःश्वास लेकर) इच्छापूरक प्रसाद (पारितोषिक) दिलाऊँगी'। चलूँ कार्य–भूमि पहले ही पहुँच जाऊँ। जब तक चरणालङ्कार लेकर चली बकुलावलिका आती है, तब तक कुछ देर तक करूँगी अपनी पीड़ा पर विलाप निश्चिन्ततापूर्वक (घूमती है।)

---

१. पत्रविशेषक द्र० रघु. ९.२९। माँडना अर्थात् अलंकरण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः *दृष्ट्वा* ही ही । वअस्स इअं क्खु सीधुपाणुव्वेजिदस्स मच्छण्डिआ उवणदा। आश्चर्यमाश्चर्यम्। वयस्य! इयं खलु सीधुपानोद्वेजितस्य मत्स्यण्डिकोपनता। ६.४

राजा अये किमेतत्? ६.५

विदूषकः एसा णादिपरिक्खिदवेसा ऊसुअवअणा एकाइणी मालविआ अदूरे वट्टदि। एषा नातिपरिष्कृतवेषा उत्सुकवदना एकाकिनी मालविका अदूरे वर्तते। ६.६

राजा *सहर्षं* कथं मालविका? ६.७

विदूषकः अह इं। अथ किम्। ६.८

राजा शक्यमिदानीं जीवितमवलम्बितुम् — ६.९

त्वदुपलभ्य समीपगतां प्रियां हृदयमुच्छ्वसितं मम विक्लवम् ।
तरुवृतां पथिकस्य जलार्थिनः सरितमारसितादिव सारसात् ।। ६।।

अथ क्व तत्रभवती? ७.१

विदूषकः एसा णं तरुराइमज्झादो णिक्कंता इदो ज्जेव्व परिवट्टन्ती दीसइ। एषा ननु तरुराजिमध्यान्निष्क्रान्ता इत एव परिवर्तमाना दृश्यते। ७.२

राजा *विलोक्य सहर्षं* वयस्य! पश्याम्येनाम्। ७.३

विपुलं नितम्बदेशे मध्ये क्षामं समुन्नतं कुचयोः ।
अत्यायतं नयनयोर्मम जीवितमेतदायाति ।। ७।।

सखे! अवस्थान्तरमुपरूढा तत्रभवती। तथाहि— ८.१

शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा ।
माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता ।। ८।।

विदूषकः एसा वि भवं विअ मअणव्वाहिणा परामिट्ठा भविस्सदि। एषापि भवानिव मदनव्याधिना परामृष्टा भविष्यति। ९.१

राजा सौहार्द्दमेवं पश्यति। ९.२

मालविका अअं सो ललिदसुउमारदोहदापेक्खी अगहीदकुसुमणेवत्थो उक्कंठिदाए मह अणुकरेदि असोओ। जाव एदस्स पच्छाअसीदले सिलापट्टए णिसण्णा अत्ताणं विणोदेमि। अयं स ललितसुकुमारदोहदापेक्षी अगृहीतकुसुम—नेपथ्यः उत्कण्ठिताया मम अनुकरोत्यशोकः। यावदस्य प्रच्छायशीतले शिलापट्टके निषण्णा आत्मानं विनोदयामि। ९.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक (देखकर) ही ही! वयस्य? यह तो सीधुपान से उद्वेजित तुम्हारे लिए मत्स्यण्डिका (नशा उतारने वाली राव) आ पहुँची।

राजा अये क्या है यह?

विदूषक यह रही मालविका साधारण वेष में उत्सुकमुखी और अकेली। यह रही बिलकुल पास।

राजा (सहर्ष) क्या मालविका?

विदूषक और क्या?

राजा अब संभव है जीवित रहना।

तुम से जानकर कि प्रिया समीप में ही है मेरा वेदनापूर्ण हृदय उच्छ्वसित हुआ वैसे ही जैसे प्यासे पथिक का सारस की ध्वनि से वृक्षों में छिपी नदी को पाकर।। ६।।

अच्छा है कहाँ वह?

विदूषक यह देखो तरुराजि के बीच से निकलकर इधर ही आती हुई दिखाई दे रही है।

राजा (देखकर सहर्ष) वयस्य! देख रहा हूँ इसे।

विपुल नितम्बदेश में, क्षाम मध्य में, उन्नत कुचों में, अतीव लम्बी नेत्रों में यह आ रही है मेरा जीवन।। ७।।

सखे! यह तो दूसरी दशा में पहुँची हुई है। देखो –

शरकाण्ड जैसे सफेद (पाण्डु) कपोल और कुछ थोड़े आभरण पहने यह लग रही है जैसे वसन्त में पीले पड़े पत्रों और इने गिने पुष्पों वाली कुन्दलता हो।। ८।।

विदूषक इसे भी ऐसी ही मदनव्याधि लग गई होगी।

राजा सौहार्द ऐसा ही सोच बनाता है।

मालविका यह है वह अशोक जो लगता है ललित और सुकुमार दोहद चाहता है, क्योंकि इसने कुसुम का नेपथ्य नहीं अपनाया है। चलूँ इसी की घनी छाया से ठण्डे शिलापट्टक पर बैठकर अपना मन बहलाऊँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः सुदं भवदा उक्कण्ठिदम्हि त्ति अत्तभोदी मंतेदि।

श्रुतं भवता, उत्कण्ठितास्मीति अत्रभवती मन्त्रयति। ९.४

राजा नैतावता भवन्तं प्रसन्नतर्कं मन्ये। कुतः — ९.५

वोढा कुरवकरजसां किसलयपुटभेदसीकरानुगतः ।
अनिमित्तोत्कण्ठामपि जनयति मनसो मलयवातः ।। ९।।

मालविका *उपविष्टा* १०.१

राजा सखे! इतस्तावत्। आवां लतान्तरितौ भवावः। १०.२

विदूषकः इरावदिं विअ अदूरे पेक्खामि। इरावतीमिवादूरे प्रेक्षे। १०.३

राजा नहि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतङ्गजः। *विलोकयन् स्थितः* १०.४

मालविका हिअअ! णिवरलंबणादो अदिभूमिलंघिणो मणोरधादो विरम। किं मं आआसिअ। हृदय! निरवलम्बनाद् अतिभूमिलङ्घिनो मनोरथाद् विरम। किं मामायास्य? १०.५

विदूषकः *राजानं वीक्षते* १०.६

राजा पश्य वामत्वं स्नेहस्य — १०.७

औत्सुक्यहेतुं विवृणोषि न त्वं तत्त्वावबोधैकफलो न तर्क्कः ।
तथापि रम्भोरु! करोमि लक्ष्यमात्मानमेषां परिदेवितानाम् ।।१०।।

विदूषकः संपदं भवदो णिस्संसअं भविस्सदि। एसा अप्पिदमअणसंदेसा विवित्ते णं बउलावलिआ उवट्ठिदा। सांप्रतं भवतो निःसंशयं भविष्यति। एषा अर्पितमदनसंदेशा विविक्ते ननु बकुलावलिकोपस्थिता। ११.१

राजा अपि स्मरेदसावस्मदभ्यर्थनाम्? ११.२

विदूषकः किं दाणिं एसा दासीए दुहिदा तुह गरुअं संदेसं विसुमरेदि? अहं वि दाव ण विसुमरेमि। किमिदानीमेषा दास्या दुहिता तव गुरुकं संदेशं विस्मरति? अहमपि तावन्न विस्मरामि। ११.३

प्रविश्य चरणालङ्कारहस्ता ११.४

बकुलावलिका अवि सुहं सहिए? अपि सुखं सख्याः? ११.५

मालविका अंहो बकुलावलिका। सहि! सागदं दे। उववविस।

अहो बकुलावलिका। सखि! स्वागतं ते। उपविश। ११.६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक सुना आपने, यह कह रही हैं 'उत्कण्ठित हूँ'।

राजा केवल इतने में तुम्हारा तर्क अदोष नहीं मानता। क्योंकि –

मन में उत्कण्ठा तो मलयपवन से भी जाग सकती है, भले ही कोई अन्य कारण न हो। यह सुगन्ध लिए है, क्योंकि कुरबक पुष्पों का पराग लिए हुए है। और शीतल भी है, क्योंकि किसलयों को अलग अलग करके आ रहा है।। ९।।

मालविका (बैठ गई।)

राजा सखे! इधर आओ, हमलोग लता में छिप जाएँ।

विदूषक इरावती सी पास ही दिखाई दे रही है।

राजा मतङ्गज कमलिनी को देखकर ग्राह की चिन्ता नहीं करता। (देखते ही रहता है)

मालविका हृदय! आधारहीन मनोरथ को इतनी दूर दौड़ाने से रुक। क्यों मुझे पीड़ा पहुँचा रहा है?

विदूषक (राजा को देखता है।)

राजा देखो काम की वामता –

तू उत्सुक है, पर औत्सुक्य का कारण स्पष्ट नहीं कर रही। केवल तर्क से तत्त्व तक नहीं पहुँचा जा सकता। तब भी हे रम्भोरु! मैं समझता हूँ, तेरे इन विलापों का पात्र मैं ही हूँ।। १०।।

विदूषक अब तुम्हारा संदेह दूर हो जाएगा। यह आ पहुँची बकुलावलिका जिसे एकान्त में तुम्हारा मदनसंदेश दिया जा चुका है।

राजा क्या इसे याद होगी वह अभ्यर्थना?

विदूषक क्या इस समय यह क्षुद्र दासी तुम्हारा इतना बड़ा संदेश भुला देगी। मैं भी इसको नहीं भूला हूँ।

(हाथ में चरणालङ्कार लिए प्रवेश कर)

बकुलावलिका सखी प्रसन्न तो है।

मालविका अहो बकुलावलिका। सखि! तेरा स्वागत। बैठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका *उपविश्य* हला! तुमं दाणिं देवीए जोग्गदाए दोहदकलणे णिउत्ता। ता एक्कं दे चरणं उवणेहि जाव णं सालत्तअं सणूउरं अ करेमि।
सखि! त्वमिदानीं देव्या योग्यतया दोहदकरणे नियुक्ता। तदेकं ते चरणमुपनय यावदेनं सालक्तकं सनूपुरं च करोमि। ११.७

मालविका *आत्मगतम्* हिअअ! अलं सुहिदाए उवट्ठिदो अअं विहवो त्ति। कहं दाणिं अत्ताणं मोचेअं। अधवा एदं एव्व मे मिच्चुमंडणं हविस्सदि।
हृदय! अलं सुखिततया उपस्थितोऽयं विभव इति। कथमिदानीमात्मानं मोचयेयम्। अथवा एतदेव मे मृत्युमण्डनं भविष्यति। ११.८

बकुलावलिका सहि! किं विआरेसि? ऊसुआ क्खु एदस्स तवणीआसोअस्स कुसुमुग्गमे देई। सखि! किं विचारयसि? उत्सुका खल्वस्य तपनीयाशोकस्य कुसुमोद्गमेन देवी। ११.९

राजा कथमशोकदोहदनिमित्तोऽयमारम्भः? ११.१०

विदूषकः किं णु क्खु जाणासि तुमं मह कारणादो देवी इमं अन्तेउरणेवच्छेण जोजइस्सदि त्ति। किं नु खलु जानासि त्वम् मम कारणाद् देवी इमामन्तःपुरनेपथ्येन योजयिष्यती–ति। ११.११

मालविका हला! मरिसेहि दाव णं। *पादमुपहरति।* सखि! मर्षय तावदेनम्। ११.१२

बकुलावलिका अइ सरीरअं सि मे। *नाट्येन चरणसंस्कारमारभते।*
अयि शरीरमसि मे। ११.१३

राजा ११.१४

चरणान्तनिवेशितां प्रियायाः सरसां पश्य वयस्य रागरेखाम् ।
प्रथमामिव पल्लवप्रसूतिं हरदग्धस्य मनोभवद्रुमस्य ।। ११ ।।

विदूषकः चरणाणुरूवो क्खु तत्तहोदीओ अहिआरो उवक्खित्तो।
चरणानुरूपः खलु तत्रभवत्या अधिकार उपक्षिप्तः। १२.१

राजा सम्यगाह भवान् । १२.२

नवकिसलयरागेणाग्रपादेन बाला
स्फुरितनखरुचा द्वौ हन्तुमर्हत्यनेन ।
अकुसुमितमशोकं दोहदापेक्षया वा
प्रणमितशिरसं वा कान्तमार्द्रापराधम् ।।१२।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका (बैठकर) सखि! तू अपनी योग्यता से देवी के द्वारा दोहद करने में नियुक्त की गई है। तो तू अपना एक चरण दे इसमें अलता लगाऊँ और नूपुर पहनाऊँ।

मालविका (स्वगत) हृदय! अपने को सुखी मत मान यह उत्कर्ष प्राप्त हुआ है यह सोचकर। परन्तु कैसे खुद को छुडाऊँ। अथवा यही मेरा मृत्युमण्डन होगा।

बकुलावलिका सखि! क्या सोच रही है। देवी उत्सुक है इस तपनीयाशोक के फूल जाने के लिए।

राजा अच्छा। तो यह आयोजन अशोकदोहद के लिए है।

विदूषक क्या तुम सोच रहे थे कि मेरे लिए देवी ने इसे अन्तःपुर के अलंकरण से सजाया है।

मालविका हला क्षमा करना इसे। (एक पैर बढ़ाती है)

बकुलावलिका अयि तू मेरा शरीर है। (चरणालङ्करण का अभिनय करती है।)

राजा **वयस्य! देखो प्रिया के चरणान्त में लगाई इस रागलेखा को। यह तो हरदग्ध कामद्रुम में फूटा पहला पल्लवप्रसव है ॥११॥**

विदूषक चरण के अनुरूप ही तत्रभवती को अधिकार भी दिया गया है।

राजा ठीक कहा आपने –

नवकिसलय जैसे लाल वर्ण के चमकती नखकान्ति वाले, इस पंजे से यह बाला दो पर ठोकर लगा सकती है अकुसुमित अशोक पर, दोहद के लिए, और आर्द्रापराधी प्रिय के प्रणाम में नत सिर पर ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः पहरिस्सदि तत्तहोदी तुमं अवरद्धम्। प्रहरिष्यति तत्रभवती त्वामपराद्धम्। १३.१

राजा प्रतिगृहीतं वचः सिद्धिदर्शिनो ब्राह्मणस्य। १३.२

॥ ४ ॥

ततः प्रविशति युक्तमदा इरावती चेटी च १३.३

इरावती हञ्जे णिउणिए! सुणामि बहुसो मदो किल इत्थिआजणस्स विसेसमंडणं त्ति। अवि सच्चो एसो लोअवादो? सखि निपुणिके! शृणोमि बहुशो मदः किल स्त्रीजनस्य विशेषमण्डनमिति। अपि सत्य एष लोकवादः? १३.४

निपुणिका पढमं लोअवादो येव्व, अज्ज उण सच्चो संवुत्तो।
प्रथमं लोकवाद एव, अद्य पुनः सत्यः संवृत्तः। १३.५

इरावती अलं मइ सिणेहेण। कुदो दाणिं ओगतव्वं दोलाघरं पढमं गदो भट्टा ण वे त्ति। अलं मयि स्नेहेन। कथय कुत इदानीमवगन्तव्यं दोलागृहं प्रथमं गतो भर्ता न वेति। १३.६

निपुणिका भट्टिणीए अखंडिदादो पणआदो। भट्टिन्या अखण्डितात् प्रणयात्। १३.७

इरावती अलं सेवाए। मज्झत्थदं परिगहिअ भणाहि। अलं सेवया। मध्यस्थतां परिगृह्य भण। १३.८

निपुणिका वसंदोवाअणलोलुवेण अज्जगोदमेण कहिअं। तुवरदु भट्टिणी।
वसन्तोपायनलोलुपेनार्यगौतमेन कथितम्। त्वरतां भट्टिनी। १३.९

इरावती *अवस्थासदृशं परिक्रम्य* हञ्जे! मदेण किलामिअमाणं अत्ताणं अज्जउत्तस्स दंसणे हिअअं तुवरेदि, चरणा उण ण मह पसरंदि। चेटि! मदेन क्लाम्यमानमात्मानमार्यपुत्रस्य दर्शने हृदयं त्वरयति, चरणौ पुनर्न मम प्रसरतः। १३.१०

निपुणिका णं संपत्ते म्ह डोलाघरं। ननु संप्राप्ते स्वो दोलागृहम्। १३.११

इरावती णिउणिए ण एत्थ अज्जपुत्तो दीसदि।
निपुणिके! नात्र आर्यपुत्रो दृश्यते। १३.१२

निपुणिका णं आलोअदु भट्टिणी। परिहासणिमित्तं कहिं वि गूढेण भत्तुणा होदव्वं। अम्हे वि पिअंगुलदापरिक्खित्तं असोअसिलापट्टअं पविसामो। ननु अवलोकयतु भट्टिनी। परिहासनिमित्तं कुत्रापि गूढेन भर्त्रा भवितव्यम्। आवामपि प्रियङ्गु–लतापरिक्षिप्तमशोकशिलापट्टकं प्रविशावः। १३.१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक — तत्रभवती तुम्हारे ऊपर भी करेगी प्रहार जब करोगे अपराध।

राजा — शिरोधार्य किया सिद्धिदर्शी ब्राह्मण का वचन।

॥ ४ ॥

(प्रवेश करती है नशे में धुत्त इरावती और चेटी।)

इरावती — सखि निपुणिके! बहुत बार सुना है मद जो है सो स्त्रियों का विशेष मण्डन होता है। यह लोकवाद क्या सच है?

निपुणिका — पहले यह लोकवाद ही था, आज यह सत्य हो गया।

इरावती — मुझ पर स्नेह छोड़। कैसे समझा जाए कि इस समय तक आर्यपुत्र दोलागृह पहुँचे या नहीं।

निपुणिका — भट्टिनी के अखंडित प्रणय से।

इरावती — मेरी सेवा छोड़, तटस्थ होकर कह।

निपुणिका — वसन्तोपायन लोलुप आर्य गौतम ने कहा है। भट्टिनी जल्दी करें।

इरावती — (अवस्था के अनुरूप घूमकर) सखि! मद से क्लान्त मुझे हृदय आर्यपुत्र के शीघ्र दर्शन हेतु प्रेरित कर रहा है, परन्तु मेरे पैर ही नहीं चल रहे हैं।

निपुणिका — पहुँच ही गए हम दोलागृह।

इरावती — निपुणिके नहीं दिखाई दे रहे यहाँ आर्यपुत्र!

निपुणिका — खोजें आप। हो सकता है परिहास के लिए कहीं छिप कर खड़े हों स्वामी। हम भी प्रियंगुलता से घिरे अशोकशिलापट्ट में प्रवेश करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती तह। तथा। १३.१४

निपुणिका *परिक्रम्य विलोक्य च* आलोअदु भट्टिणी चूदंकुरं विचिण्णंतीणं अम्हाणं पिपीलिआहिं दंसिदं। अवलोकयतु भट्टिनी चूताङ्कुरं विचिन्वत्योः आवयोः पिपीलिकाभिर्दष्टम्। १३.१५

इरावती कधं विअ एदं? कथमिवेदम्। १३.१६

निपुणिका एसा बउलावलिआ असोअपादवच्छआए मालविआए चरणालंकारं णिव्वट्टेदि। एषा बकुलावलिका अशोकपादपच्छायायां मालविकाया चरणालङ्कारं निर्वर्तयति। १३.१७

इरावती *शङ्कां रूपयित्वा* अभूमी इअं मालविआए। कहिं एत्थ तक्केसि? अभूमिरियं मालविकायाः। कथमत्र तर्कयसि। १३.१८

निपुणिका तक्केमि दोलापरिब्भंसिदाए सरुअचलणाए देवीए असोअदोहदाहिआरे मालविआ णिउत्ते त्ति। अण्णहा कधं देवी सअं धारिअं णेउरजुअलं परिअणस्स अब्भणुजाणिस्सदि। तर्कयामि दोलापरिभ्रष्टया सरुजचरणया देव्याऽशोकदोहदाधिकारे मालविका नियुक्तेति। अन्यथा कथं देवी स्वयं धारितं नूपुरयुगलं परिजनायाभ्यनुज्ञास्यति। १३.१९

इरावती महदी क्खु से संभावणा। महती खल्वस्याः संभावना। १३.२०

निपुणिका किं ण अण्णेसीअदि भट्टा? किं नान्विष्यते भर्ता। १३.२१

इरावती हला! ण मे चलणा अण्णदो पवट्टंदि। मओ मं विआरेदि। आसंकिदस्स दाव अंतं गमिस्सं। *मालविकां निरूप्य आत्मगतम्* ठाणे क्खु कादरं मे हिअअं। सखि! न मे चरणावन्यतः प्रवर्तेते। मदो मां विकारयति। आशङ्कितस्य तावदन्तं गमिष्यामि। (मालविकां निरूप्य आत्मगतम्) स्थाने खलु कातरं मे हृदयम्। १३.२२

बकुलावलिका *मालविकायै चरणं दर्शयन्ती* अवि रोअदि दे राअरेहाविण्णासो? अपि रोचते ते रागरेखाविन्यासः? १३.२३

मालविका हला! अत्तणो त्ति लज्जेमि णं पसंसिदुं। केण वा पसाहणकलाए अहिविणीदासि? सखि! आत्मनश्चरण इति लज्जे एनं प्रशंसितुम्। केन वा प्रसाधनकलायामभिनीतासि? १३.२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती ठीक।

निपुणिका (घूमकर देखकर) देखिए भट्टिनी हमें चूताङ्कुर की खोज थी और उसे डँस लिया चीटियों ने।

इरावती यह कैसे?

निपुणिका यह बकुलावलिका अशोक की छाया में मालविका के चरणों में अलंकार रच रही है।

इरावती (शंका का अभिनय कर) यह तो मालविका की पहुँच के बाहर है। ऐसा कैसे हुआ यह सोच रही हूँ ।

निपुणिका लगता है दोला पर से गिरने के कारण पैरों में चोट आ जाने से देवी ने इस अशोक के दोहद के लिए मालविका को नियुक्त कर दिया है, नहीं तो देवी खुद धारण किए नूपुर परिजन को पहनने के लिए देतीं?

इरावती बहुत बड़ा है यह इसका सम्मान।

निपुणिका स्वामी को क्यों न खोजा जा रहा?

इरावती नहीं चल पा रहे हैं मेरे पैर अन्यत्र। नशा मुझे विकार में डाल रहा है। पहले इस रहस्य को सुलझाना चाहूँगी।

(मालविका को देखकर स्वगत) ठीक ही है जो मेरा इतना कातर है हृदय।

बकुलावलिका (मालविका को पैर दिखलाती हुई)

पसंद आ रहा है तुझे यह रागरेखाविन्यास?

मालविका सखि! मेरा पैर है इसलिए लाज आ रही है इसकी प्रशंसा करने में। प्रसाधनकला में किसने किया है तुझे शिक्षित?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका एत्थ क्खु भत्तुणो सीसम्मि। अत्र खलु भर्तुः शिष्यास्मि। १३.२५

विदूषकः तुवरेहि दाव णं गुरुदक्खिणाए। त्वरय तावदेनां गुरुदक्षिणायै। १३.२६

मालविका दिट्ठिआ ण गव्विदासि। दिष्ट्या न गर्वितासि। १३.२७

बकुलावलिका उवदेसाणुरूवा चरणा लंभिअ अज्ज दाव गव्विदा भविस्सं *रागं विलोक्य आत्मगतम्* हंत सिद्धो मह दप्पो। *प्रकाशम्* सहि! एकस्स दे चरणस्स अवसिदो राअणिक्खेवो। केवलं मुहमारुदो लंभइदव्वो। अधवा पवादं एदं ठाणं।

उपदेशानुरूपौ चरणौ लब्ध्वा अद्य तावद् गर्विता भविष्यामि। (रागं विलोक्य आत्मगतम्) हन्त सिद्धो मे दर्पः। (प्रकाशम्) सखि! एकस्य ते चरणस्यावसितो रागनिक्षेपः। केवलं मुखमारुतो लम्भयितव्यः। अथवा प्रवातमेतत् स्थानम्। १३.२८

राजा सखे! पश्य १३.२९

आर्द्रालक्तकमस्याश्चरणं मुखमारुतेन शोषयितुम् ।
प्रतिपन्नः प्रथमतरः संप्रति सेवावकाशो मे ।।१३।।

विदूषकः कुदो दे अणुसओ? चिरं भवदा एदं अणुहविदव्वं अइरेण।

कुतस्तेऽनुशयः? चिरं भवता एतत् अनुभवितव्यम् अचिरेण। १४.१

बकुलावलिका सहि! अरुणसदवत्तं विअ सोहइ दे चरणं। सव्वहा भत्तुणो अंकपरिवट्टिणी होहि। सखि! अरुणशतपत्रमिव शोभते ते चरणः। सर्वथा भर्तुरङ्कपरिवर्तिनी भव। १४.२

इरावती *निपुणिकामवेक्षते* १४.३

राजा ममेयमाशीः। १४.४

मालविका हला! मा अवअणीअं मंतेहि। सखि मा अवचनीयं मन्त्रयस्व। १४.५

बकुलावलिका मंतइदव्वं य्येव मंतिदं मए। मन्त्रयितव्यमेव मन्त्रितं मया। १४.६

मालविका पिआ क्खु अहं तुह। प्रिया खल्वहं तव। १४.७

बकुलावलिका ण केवलं मह। न केवलं मम। १४.८

मालविका कस्स वा अण्णस्स? कस्य वान्यस्य? १४.९

बकुलावलिका गुणेसु अहिणिवेसिणो भत्तुणो वि। गुणेष्वभिनिवेशिनो भर्तुरपि। १४.१०

मालविका अलिअं मंतेसि। एदं य्येव्व मइ णत्थि।

अलीकं मन्त्रयसे। एतदेव मयि नास्ति। १४.११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका इस कला में मैं मालिक की शिष्या हूँ।

विदूषक तो शीघ्रता कर इसे गुरुदक्षिणा दिलाने की।

मालविका संयोग से तुझे गर्व नहीं है।

बकुलावलिका जैसा उपदेश वैसे चरण पाकर आज गर्विता होऊँगी।
(राग देख कर स्वगत) हन्त मेरा दर्प सिद्ध हुआ।
(प्रकाश) सखि! तेरे एक चरण का रागनिक्षेप पूरा हुआ। इसे केवल मुखमारुत की फूँक मिलनी है। अथवा यह स्थान प्रवात ही है।

राजा सखे! देख –
इसके भीगे अलते को अपनी फूँक से सुखाने का प्राप्त हुआ है सबसे पहला सेवावसर ॥१३॥

विदूषक आप में यह संकोच कैसे? यह अवसर तो आपको शीघ्र ही प्राप्त होने वाला है बार बार।

बकुलावलिका सखि! लालकमल जैसा शोभित दिखलाई दे रहा है तेरा चरण सर्वथा तू प्रिय की अंकशायिनी होना।

इरावती (निपुणिका को देखती है।)

राजा यह आशीष तो मुझे मिला है।

मालविका सखि! अवचनीय मत बोल।

बकुलावलिका जो बोलना उचित था वही बोला है मैंने।

मालविका मैं तेरी प्यारी जो हूँ।

बकुलावलिका न केवल मेरी।

मालविका और किसकी?

बकुलावलिका गुणों पर लुटे स्वामी की भी।

मालविका गलत कह रही है। यही मुझ में नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका सच्चं तुइ णत्थि। भत्तुणो किसेसु दरपण्डरेसु दीसइ अंगेसु।

सत्यं त्वयि नास्ति। भर्तुः कृशेषु दरपाण्डुरेषु दृश्यते अङ्गेषु। १४.१२

मालविका पढमं गणिदं विअ हदासाए उत्तरं।

प्रथमं गणितमिव हताशा(श)या उत्तरम्। १४.१३

बकुलावलिका अणुराओ अणुराएण परिक्खितब्बो त्ति सुहिअवअणं पमाणीकरेहि।

अनुरागोऽनुरागेण प्रत्येष्टव्य इति सुजनवचनं प्रमाणीकुरु। १४.१४

मालविका किं अत्तणो छन्देण मन्तेसि। किमात्मनश्छन्देन मन्त्रयसि। १४.१५

बकुलावलिका णहि णहि! भत्तुणो क्खु एदाइ पणयमिदुलाइं अक्खराइं वत्तंदरिदाइं।

नहि नहि! भर्तुः खल्वेतानि प्रणयमृदुलान्यक्षराणि वक्त्रान्तरितानि। १४.१६

मालविका हला! देविं चिन्तिअ ण मे हिअअं विस्ससिदि।

सखि! देवीं चिन्तयित्वा न मे हृदयं विश्वसिति। १४.१७

बकुलावलिका मुद्धे! भमरसंपादो भविस्सदि त्ति वसंतावदारसव्वस्सं किं ण चूदप्पसवो ओदंसिदव्वो। मुग्धे! भ्रमरसंपातो भविष्यतीति वसन्तावतारसर्वस्वं किं न चूतप्रसवोऽवतंसितव्यः। १४.१८

मालविका तुमं दाव दुज्जादे गच्छंतस्स सहाइणी होहि।

त्वं तावद् दुर्जाते गच्छन्त्या सहायिनी भव। १४.१९

बकुलावलिका विमद्दसुरही वउलावलिआ क्खु अहं।

विमर्दसुरभिर्बकुलावलिका खल्वहम्। १४.२०

राजा साधु बकुलावलिके! साधु। १४.२१

भावज्ञानानन्तरं प्रस्तुतेन प्रत्याख्याने दत्तयुक्तोत्तरेण।
वाक्येनेयं स्थापिता स्वे निदेशे स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः॥ १४॥

इरावती हंजे! पेक्ख कारिदा य्येव्व बउलावलिआए एदस्सिं पदं मालविका।

सखि! पश्य कारितैव बकुलावलिकया एतस्मिन् पदं मालविका। १५.१

निपुणिका भट्टिणि! अहिआरस्स उइदो वदेसो।

भट्टिनि! अधिकारस्योचित उपदेशः/—चितोऽपदेशः। १५.२

इरावती ठाणे क्खु संकिदं मे हिअअं। गिहीदत्था अणंदरं चिंदइस्सं।

स्थाने खलु शङ्कितं मे हृदयम्। गृहीतार्था अनन्तरं चिन्तयिष्यामि। १५.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका सचमुच तुझ में नहीं है, मालिक के कृश और कुछ पाण्डु अंगों में तो दिखाई दे रहा है।

मालविका हताशा ने उत्तर पहले से ही चुन रखा था।

बकुलावलिका अनुराग का बदला अनुराग से दिया जाता है, यह सुहृद्वचन इसमें प्रमाण है।

मालविका अपने मन से ही सोच रही है।

बकुलावलिका नहि नहि, स्वामी के ही हैं ये प्रणयमृदुल अक्षर, कह भर रही हूँ मैं।

मालविका सखि! देवी को देखकर मेरा हृदय विश्वास कर नहीं रहा है।

बकुलावलिका मुग्धे! भौरें टूट पड़ेंगे यह सोचकर क्या वसंतावतार की सर्वस्व आम्रमञ्जरी कान में नहीं लगाई जाती।

मालविका तू ही बनना सहायक संकट में। (दुर्जाते = बकुलावलिका को गाली भी)

बकुलावलिका मसलने से अधिक सुगन्ध फेंकती मैं बकुलावलिका हूँ।

राजा साधु बकुलावलिके! साधु।

भाव की परख कर लेने के बाद प्रस्तुत कर और निषेध करने पर उपयुक्त उत्तर देकर, वाणी से इसने इसे मेरे निदेश में ला दिया। सचमुच कामियों के प्राण दूती के अधीन होते हैं।।१४।।

इरावती सखि! देख, बकुलावलिका ने इस (अग्निमित्र) के चित्त में बिठला ही दिया मालविका को।

निपुणिका भट्टिनि! अधिकार का यह उचित उपयोग है।

इरावती ठीक ही थी मेरी शंका। ठीक से समझ लूँ। फिर देखूँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका एसो दुदीओ वि दे णिवुत्तपरिकम्मा चरणो। जाव दुवे वि **सणेउरे** करेमि। *नाट्येन नूपुरयुगलमामुच्य* हला! उट्ठेहि असोअविआसइत्तअं देविए णिओअं अणुचिट्ठ। एष द्वितीयोऽपि ते निर्वृत्तप्रतिकर्मा चरणः। **यावद्** द्वावपि सनूपुरौ करोमि। (नाट्येन नूपुरयुगलमामुच्य) हला! उत्तिष्ठ। **अशोक**–विकासयितृकं देव्या नियोगमनुतिष्ठ। १५.४

उभे *उत्तिष्ठतः* १५.५

इरावती सुदो देविए णिओगो त्ति? होदु दाणिं।
श्रुतो देव्या नियोग इति? भवत्विदानीम्। १५.६

बकुलावलिका एसो उपारूढराओ उअभोगक्खमो पुरतो दे वट्टइ।
एष उपारूढराग उपभोगक्षमः पुरतस्ते वर्तते। १५.७

मालविका *सहर्षं* किं भट्टा? किं भर्ता ? १५.८

बकुलावलिका *सस्मितम्* ण दाव भट्टा। एसो असोअसाहावलंबी पल्लवगुच्छओ। ओदंसेहि दाव णं। न तावद् भर्ता। एषः अशोकशाखावलम्बी पल्लवगुच्छः। अवतंसय तावदेनम्। १५.९

मालविका *विषादं नाटयति।* १५.१०

विदूषकः अवि सुदं भवदा। अपि श्रुतं भवता। १५.११

राजा सखे! पर्याप्तमेतावता कामिनाम्। १५.१२

अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिद्ध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति ।
परस्परप्राप्तिनिराशयोर् वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः ।। १५।।

मालविका *रचितपल्लवावतंसा पादमशोकाय प्रहिणोति।* १६.१

राजा वयस्य! १६.२

आदाय कर्णकिसलय–मियमस्मै चरणमरुणमर्पयति ।
उभयोः सदृशविनिमयादन्योन्यमवञ्चितं मन्ये ।। १६।।

मालविका अवि णाम अम्हाणं संभावणा सफला भवे? १७.१
अपि नाम आवयोः सम्भावना सफला भवेत्?

बकुलावलिका हला! णत्थि दे दोसो। णिग्गुणो अअं असोओ जइ कुसमोब्भेदमंथरो भवे जो ईरिसं चरणसक्कारं लंभिदो। सखि! नास्ति ते दोषः। निर्गुणोऽ**यमशोकः** यदि कुसुमोद्भेदमन्थरो भवेत्, यः ईदृशं चरणसत्कारं लम्भितः। १७.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका ले यह तेरा दूसरा चरण भी सज गया। ला अब दोनों में नूपुर पहना दूँ। (दो नूपुर पहनाने का अभिनय करती हैं) हला! उठ अशोक के विकास के लिए देवी की आज्ञा पूरी कर।

दोनों (उठती हैं।)

इरावती सुना 'देवी की आज्ञा' यह? कोई बात नहीं।

बकुलावलिका यह रहा तेरे सामने राग लिए उपभोगक्षम।

मालविका (सहर्ष) स्वामी तो नहीं?

बकुलावलिका (मुसकुराकर) नहीं, स्वामी नहीं, यह अशोक शाखा पर लगा पल्लवगुच्छ। लगा इसे कान में।

मालविका (विषाद का अभिनय करती है)

विदूषक सुना आपने?

राजा इतना ही पर्याप्त है कामियों के लिए –

एक हो अनातुर और एक हो उत्कण्ठित तो उनका मिलन भी हो जाए तो किसी काम का नहीं, जबकि समानुरागों का परस्पर की प्राप्ति में निराश होकर शरीर भी छूट जाए तो अच्छा।।१५।।

मालविका (पल्लव का अवतंस पहन कर अशोक को पाद से छूती है।)

राजा वयस्य! **यह इससे कर्ण किसलय लेकर इसे अपना अरुण चरण सौंप रही है। दोनों का लेन–देन** (विनिमय) **बराबर । दोनों ही अवञ्चित, किसी की हानि नहीं ।।१६।।**

मालविका क्या हमारी संभावना सफल होगी।

बकुलावलिका सखि! तेरा दोष नहीं है। यह अशोक ही निर्गुण ठहरेगा जो कुसुम निकालने में मन्थर रहे, ऐसा चरण–सत्कार पाकर भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा १७.३

अनेन तनुमध्यया मुखरनूपुराराविणा
नवाम्बुरुहकोमलेन चरणेन संभावितः ।
अशोक! यदि सद्य एव मुकुलैर्न संपत्स्यसे
वृथा वहसि दोहदं ललितकामिसाधारणम् ।।१७।।

सखे! वचनानुसरणपूर्वकं प्रवेष्टुमिच्छामि। १८.१

विदूषकः एहि णं परिहासइस्सं। एहि एनां परिहासयिष्यामि। १८.२

उभौ *प्रवेशं कुरुतः।* १८.३

निपुणिका भट्टिणि भट्टिणि! भट्टा एत्थ पविसदि। भट्टिनि भट्टिनि! भर्ताऽत्र प्रविशति। १८.४

इरावती एदं मह पढमं चिंतिदं हिअएण। एतन्मम प्रथमं चिन्तितं हृदयेन। १८.५

विदूषकः *उपेत्य* भोदि! जुत्तं णाम अत्तहोदो पिअवअस्सो अअं असोओ णं वामपादेण ताडितुं। भवति! युक्तं नाम अत्रभवतः प्रियवयस्योऽयमशोको ननु वामपादेन ताडयितुम्। १८.६

उभे *ससंभ्रमम्* अम्हो! भट्टा। अहो! भर्ता। १८.७

विदूषकः बउलावलिए! गहीदत्थाए तुए अत्तभोदी ईरिसं अविणअं करेन्ती कीस ण णिवारिदा? बकुलावलिके! गृहीतार्थया त्वयात्रभवती ईदृशमविनयं कुर्वन्ती कस्मान्न निवारिता? १८.८

मालविका *भयं नाटयति।* १८.९

निपुणिका भट्टिणि! पेक्ख किं पउत्तं अज्जगोदमेण।
भट्टिणि! पश्य किं प्रवृत्तमार्यगौतमेन। १८.१०

इरावती कधं णु बम्हबंधू अण्णहा जीविस्सदि?
कथं खलु ब्रह्मबन्धुरन्यथा जीविष्यति? १८.११

बकुलावलिका अज्ज! एसा देविए णिओअं अणुचिट्ठदि। एदस्सिं अदिक्कमे परवदी इअं। पसीददु भट्टा। आर्य! एषा देव्या नियोगमनुतिष्ठति। एतस्मिन्नतिक्रमे परवतीयम्। प्रसीदतु भर्ता। *आत्मना सहैनां प्रणिपातयति* १८.१२

राजा यद्येवमनपराद्धासि। उतिष्ठ भद्रे! *हस्तेन गृहीत्वैनामुत्थापयति* १८.१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — अशोक! मध्यभाग में तनु इस सुन्दरी के नूपुर बजाते और नवकमल से कोमल चरण की संभावना पाकर भी यदि तुरंत ही तुम्हारे भीतर कलियाँ न फूट पड़ें तो फिर व्यर्थ है तुम्हारा यह ललितकामी जैसा दोहद ॥१७॥

सखे! इसी वचन का अनुकरण करते हुए चाहता हूँ प्रवेश कर लेना।

विदूषक — आओ परिहास नहीं करूँगा।

उभौ — (दोनों प्रवेश करते हैं)

निपुणिका — भट्टिनि भट्टिनि! स्वामी इधर ही आ रहे हैं।

इरावती — यह मेरे हृदय ने पहले ही सोच रखा था।

विदूषक — (पहुँचकर) भवति! अत्रभवान् राजा साहब का प्रिय वयस्य है यह अशोक। इसे पैर की ठोकर मारना ठीक नहीं।

दोनों — (घबराहट के साथ) अये! मालिक।

विदूषक — बकुलावलिके! तुझे तो बात विदित थी, तूने इन्हें (मालविका को) ऐसा अविनय करते समय क्यों नहीं रोका?

मालविका — (भय का अभिनय करती है।)

निपुणिका — भट्टिनि! देखिए क्या करना शुरू कर दिया आर्य गौतम ने।

इरावती — यह क्षुद्र ब्राह्मण अन्यथा जिएगा कैसे?

बकुलावलिका — आर्य! यह तो देवी की आज्ञा का पालन कर रही है। इस अतिक्रमण में यह बेचारी निर्दोष है। मालिक प्रसन्न हों । (मालविका से प्रणाम करवाती है और खुद भी प्रणाम करती है।)

राजा — यदि ऐसा है तो तुमने कोई अपराध नहीं किया। भद्रे! उठ। (हाथ से पकड़कर इसको उठाता है।)[१]

---

१. यह हुआ नायक के द्वारा नायिका का प्रथम स्पर्श।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः जुज्जइ देवी एत्थ माणइदव्वा। युज्यते देवी अत्र मानयितव्या। १८.१४

राजा *विहस्य* १८.१५

किसलयमृदोर्विलासिनि! कठिने निहतस्य पादपस्कन्धे ।
चरणस्य न ते बाधा संप्रति वामोरु! वामस्य ॥१८॥

मालविका *लज्जां नाटयति* १९.१

इरावती *सासूयम्* अहो णवणीदकप्पहिअओ अज्जउत्तो।
(सासूयम्) अहो नवनीतकल्पहृदय आर्यपुत्रः। १९.२

मालविका बउलावलिए! एहि, अणुट्ठिदं अत्तणो णिओअं देवीए णिवेदेम्ह।
बकुलावलिके! एहि, अनुष्ठितमात्मनो नियोगं देव्यै निवेदयावः। १९.३

बकुलावलिका विण्णवेहि भट्टारं विसज्जेहि त्ति। विज्ञापय भर्तारं विसर्जयेति। १९.४

राजा भद्रे! यास्यसि। मम तावदुत्पन्नावसरमर्थित्वं श्रूयताम्। १९.५

बकुलावलिका अवहिदा सुणाहि। आणवेदु भट्टा। अवहिता शृणु। आज्ञापयतु भर्ता। १९.६

राजा १९.७

धृतिपुष्पमयमपि जनो बध्नाति न तादृशं चिरात् प्रभृति ।
स्पर्शामृतेन पूरय दोहदमस्याप्यनन्यरुचेः ॥१९॥

इरावती *सहसोपसृत्य* पूरेहि पूरेहि। असोओ कुसुमं ण दंसेदि। अअं उण पुफदि येव्व। पूरय पूरय। अशोकः कुसुमं न दर्शयति। अयं पुनः पुष्पत्येव। २०.१

सर्वे *इरावतीं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः* २०.२

राजा *अपवार्य* वयस्य! का प्रतिपत्तिरत्र? २०.३

विदूषकः किं अण्णं। जंघाबलं ज्जेव्व। किमन्यत्। जङ्घाबलमेव। २०.४

इरावती बउलावलिए! तुए साहु उवक्कंतं। मालविए! तुमं दाव सहलब्भत्थणं करेहि अज्जउत्तं। बकुलावलिके! त्वया साधूपक्रान्तम्। मालविके! त्वं तावत् सफलाभ्यर्थनं कुरु आर्यपुत्रम्। २०.५

उभे पसीददु भट्टिणी। के अम्हे भत्तुणो पणअपरिग्गहस्स?
प्रसीदतु भट्टिनी। के आवां भर्तुः प्रणयपरिग्रहस्य? *निष्क्रान्ते* २०.६

इरावती अहो अविस्ससणिज्जा पुरिसा। मए क्खु अत्तणो वंचणावअणं पमाणीकदुअ वाहगीदरत्ताए हिरणीए विअ असंकिदाए एदं ण विण्णादं। अहो अविश्वसनीयाः पुरुषाः, मया खलु आत्मनो वञ्चनावचनं प्रमाणीकृत्य व्याधगीतरक्तया हरिण्येव अशङ्कितया एतन्न विज्ञातम्। २०.७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक ठीक है। देवी की आज्ञा माननी ही चाहिए।

राजा (हँसकर) **विलासिनि! तेरा वाम चरण किसलय जैसा मृदु। पेड़ के कठिन स्कन्ध पर चोट की इससे, तो हे वामोरु! इसमें कोई बाधा** (पीडा) **तो नहीं आई? ॥१८॥**

मालविका (लज्जा का अभिनय करती है।)

इरावती (असूया के साथ) अहो नवनीत जैसा हृदय आर्यपुत्र का।

मालविका बकुलावलिका! आ, पालन कर दिया आज्ञा का यह देवी से निवेदन कर दें।

बकुलावलिका स्वामी से अनुरोध कर कि जाने दें।

राजा भद्रे! चली जाना अवसर आया है तो मेरी माँग सुन लो।

बकुलावलिका ध्यानपूर्वक सुन। स्वामी आज्ञा दें।

राजा **यह जन भी बहुत दिनों से धृतिपुष्प धारण नहीं कर पा रहा है। इसका दोहद भी स्पर्शामृत से पूराकर दे। कोई अन्य इच्छा नहीं है॥१९॥**

इरावती (सहसा पहुँचकर) पूरा कर, कर पूरा। अशोक तो कलियाँ नहीं दिखा रहा, यह तो फूल ही उठा।

सब (इरावती को देखकर असमञ्जस में पड़ गए।)

राजा (अलग से) वयस्य! क्या किया जाए अब?

विदूषक क्या अब जंघाबल को छोड़कर।

इरावती बकुलावलिका! तूने ठीक किया। मालविके! तू आर्यपुत्र की प्रार्थना को कर सफल।

दोनों महारानी प्रसन्न हों। मालिक के प्रणय में हम कहाँ आती हैं।

(दानों निकल जाती हैं।)

इरावती अहो पुरुष कितने अविश्वसनीय होते हैं। मैं तो अपने वंचनावचन को सही मानकर व्याध की गीति पर अनुरक्त हरिणी के समान अशंक थी। नहीं ज्ञात था मुझे यह सब।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः *जनान्तिकं* भो पडिवज्जेहि किंपि। कम्मगिहीदेण वि कुंभीलएण संधिच्छदे सिक्खिओ म्हि त्ति वत्तव्वं होदि।

(जनान्तिकं) भो प्रतिपद्यस्व किमपि। कर्मगृहीतेनापि कुम्भीलकेन संधिच्छेदे शिक्षितोऽस्मीति वक्तव्यं भवति। २०.८

राजा सुन्दरि! न मे मालविकया कश्चिदर्थः। मया त्वं चिरयसीति कथञ्चिदात्मा विनोदितः। २०.९

इरावती विस्ससणीओसि। ण मए विण्णादं ईरिसं विणोदवत्थुअं अज्जउत्तेण उवलब्धं त्ति। अण्णहा मंदभाइणीए एव्वं ण करीअदि।

विश्वसनीयोऽसि। न मया विज्ञातम् ईदृशं विनोदवस्तु आर्यपुत्रेणोपलब्धमिति। अन्यथा मन्दभागिन्या एवं न क्रियेत। २०.१०

विदूषकः मा दाव अत्तभोदी अत्तभोदो दक्खिण्णस्स उवरोहं करेहि। समावत्तिदिट्ठेण देविए परिचारिआजणेण संकधावि जइ अवराहो ठावीअदि एत्थ तुमं येव्व प्पमाणं।

मा तावदत्रभवती अत्रभवतो दाक्षिण्यस्योपरोधं कुरु। समापत्तिदृष्टेन देव्याः परिचारिकाजनेन संकथापि यदि अपराधः स्थाप्यते अत्र त्वमेव प्रमाणम्। २०.११

इरावती ण संकहा णाम होदु। किंत्ति अत्ताणं आआसइस्सं। *रुषा प्रस्थिता*

ननु संकथा नाम भवतु। किमित्यात्मानमायासयिष्यामि। (रुषा प्रस्थिता) २०.१२

राजा *अनुसरन्* प्रसीदतु भवती। २०.१३

इरावती *रसनाधारितचरणा व्रजत्येव* २०.१४

राजा सुन्दरि! न शोभते प्रणयिजने निरपेक्षता। २०.१५

इरावती सठ! अविस्ससणिज्ज—हिअओसि। शठ! अविश्वसनीयहृदयोऽसि। २०.१६

राजा २०.१७

शठ इति मयि तावदस्तु ते
परिचयवत्यवधीरणा प्रिये! ।
चरणपतितया न चण्डि! तां
विसृजसि मेखलयापि याचिता? ॥२०॥

इरावती इअं वि हदासा तुमं एव्व अणुसरदि। *रसनामादाय राजानं ताडयितुमिच्छति* इयमपि हताशा त्वामेवानुसरति। २१.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक (जनान्तिक) कुछ तो करो। चोरी करते भी पकड़ाया चोर कहता है 'मैं तो सेंध लगाने की शिक्षा ले रहा था'।

राजा सुन्दरि! मेरा मालविका से कोई प्रयोजन नहीं। तुमने आने में देरी की तो मैंने किसी प्रकार मन बहलाया।

इरावती बड़े विश्वसनीय हो। मैं नहीं जानती थी कि आर्यपुत्र ने ऐसा विनोदविषय पा लिया है। नहीं तो मैं मन्दभाग्या ऐसा न करती।

विदूषक इस प्रकार आप राजा साहब के दाक्षिण्य को एकदम न छोड़ें। एक साथ आ पड़े देवी के परिजनों से संकथा (बातचीत) भी यदि अपराध गिना जाए तो इसमें तुम्हीं प्रमाण हो।

इरावती तो ठीक है। संकथा हो। मैं अपने को कष्ट में क्यों डालूँ। (जाना चाहती है)

राजा (पीछे चलते हुए) प्रसन्न हो जाओ देवि!

इरावती (करधनी के पैर में फँस जाने पर भी रुकती नहीं।)

राजा सुन्दरि! प्रणयिजन पर इतनी निरपेक्षता शोभा नहीं देती।

इरावती शठ! अविश्वसनीय हृदय हो तुम।

राजा **हे प्रिये! मैं परिचित हूँ अतः मुझे शठ कहकर जो मेरी अवधीरणा की वह की जा सकती है पर, हे चण्डि! चरणों पर पड़ी मेखला की प्रार्थना पर उसको** (अवधीरणा को) **छोड़ क्यों नहीं रही हो? ॥२०॥**

इरावती यह हताशा भी तुम्हारा ही अनुसरण करती है। (रसना को लेकर राजा को मारना चाहती है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *विदूषकं प्रति* वयस्य! इयमिरावती — २१.२

बाष्पसारा हेमकाञ्चीगुणेन
श्रोणीबिम्बादप्युपेक्षाच्युतेन ।
चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता मां
विद्युद्दाम्ना मेघराजीव विन्ध्यम् ।। २१ ।।

इरावती किं मं एव्वं भूओ वि अवरद्धं करेसि?

किं मामेव भूयोऽप्यपराद्धां करोषि? २२.१

राजा *इरावत्याः सरसनं हस्तमवलम्बते* २२.२

अपराधिनि मयि दण्डं संहरसि किमुद्यतं कुटिलकेशि !
वर्धयसि विलसितं त्वं दासजनायात्र कुप्यसि च ।। २२ ।।

आत्मगतम् नूनमिदमिदानीमनुज्ञातम्। *पादयोः पतति* २३.१

इरावती ण क्खु इमे मालविआचलणा जा दे फरिसदोहदं पूरइस्संति। *निष्क्रान्ता सह चेट्या* । न खल्विमौ मालविकाचरणौ यौ ते स्पर्शदोहदं पूरयिष्यतः। २३.२

विदूषकः उट्ठेहि किदप्पसादो सि। उत्तिष्ठ। कृतप्रसादोऽसि। २३.३

राजा *उत्थाय इरावतीमपश्यन्* कथं गतैव प्रिया। २३.४

विदूषकः वअस्स! दिट्ठिआ इमस्स अविणअस्स अप्पसण्णा गदा एसा। ता वअं सिग्घं अवक्कमाम जाव अंगारको रासिं विअ अणुवंकं परिगमणं ण करेदि। वयस्य! दिष्ट्या अनेनाविनयेन अप्रसन्ना गतैषा। तद् वयं शीघ्रमपक्रमामः यावदङ्गारको राशिमिवानुवक्रं प्रतिगमनं न करोति। २३.५

राजा अहो मदनस्य वैषम्यम्। २३.६

मन्ये प्रियाहृतमनास्तस्याः प्रणिपातलङ्घनं सेवाम् ।
एवं हि प्रणयवती सा शक्यमुपेक्षितुं कुपिता ।। २३ ।।

निष्क्रान्तः सह वयस्येन २४.१

इति महाकविकालिदासकृतौ मालविकाग्निमित्रे नाटके
तृतीयोऽङ्कः ।। ३ ।।[१] २४.२

---

१. इति सनातनकविमहामहोपध्यायरेवाप्रसादद्विवेदिकृते मालविकाग्निमित्रप्रतिसंस्कृतप्रतिलिपिकर्म्मणि तृतीयाङ्कप्रतिलेख एष मार्गशीर्षकृष्णप्रतिपदि २०५९तमे गते वैक्रमेऽब्दे काश्यामपूरि। २०.११.२००२।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (विदूषक से) वयस्य! यह इरावती –

आँसू बहाती हुई, सोने की करधनी से, चण्डी बन कर मुझे कस के मारना चाहती है, मेघराजी बिजली से विन्ध्य के समान। यह करधनी ध्यान न देने से कमर से गिर गई थी।। २१।।

इरावती इस प्रकार मुझको ही फिर से अपराधी बतला रहे हो?

राजा (इरावती के रसना लिए हाथ को पकड़ लेता है)

अपराधी ठहरा मैं। मुझ पर उठाया दण्ड वापस क्यों कर रही है? कुटिलकेशि! विलास बढ़ा रही है और इस दास पर कोप भी कर रही है।। २२।।

(स्वगत) निश्चित ही अब अनुज्ञा मिल गयी। (पैरों पर गिरता है)

इरावती ये चरण मालविका के नहीं हैं जो तुम्हारे स्पर्श दोहद को पूरा करेंगे (निकल ही जाती है चेटी के साथ)।

विदूषक उठो, कर दिया तुम पर प्रसाद।

राजा (उठकर इरावती को न देख) क्या प्रिया चली ही गई।

विदूषक वयस्य! इस धृष्टता पर नाराजगी लिए ही चली गई। तो हमलोग भी शीघ्र ही भाग निकलें, जब तक मंगल के समान वक्री होकर लौट न पड़े।

राजा देखो तो कैसी कठिन स्थिति है काम की –

मेरा मन तो प्रिया ने हर रखा है, अतः इरावती ने जो मेरे प्रणिपात का लङ्घन किया इसे मैं सेवा ही मानता हूँ। इस स्थिति में कुपित वह किसी माँग पर उपेक्षित की जा सकती है।। २३।।

(मित्र के साथ निकल जाता है)।

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति मालविकाग्निमित्र नामक नाटक में तृतीय अङ्क पूरा हुआ।। ३।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ चतुर्थोऽङ्कः।। १.१

।।१।।

ततः प्रविशति पर्युत्सुको राजा प्रतीहारी च १.२

राजा *आत्मगतम्* १.३

तामाश्रित्य श्रुतिपथगतामाशया बद्धमूलः
संप्राप्तायां नयनविषयं रूढरागप्रवालः ।
हस्तस्पर्शैर्मुकुलित इव व्यक्तरोमोद्गमत्वात्
कुर्यात् क्लान्तं मनसिजतरुर्मा रसज्ञं फलस्य ।। १।।

प्रकाशम् सखे गौतम! २.१

प्रतीहारी *प्रविश्य* जेदु जेदु भट्टा। असंणिहिदो गोदमो।
जयतु जयतु भर्ता। असंनिहितो गौतमः। २.२

राजा *आत्मगतम्* आः मालविकावृत्तान्तज्ञानाय मया प्रेषितः। २.३

विदूषकः *प्रविश्य* वड्ढदु भवं। वर्धतां भवान्। २.४

राजा जयसेने! जनीहि तावत् क्व वा देवी धारिणी कथं वा सरुजचरणत्वाद् विनोद्यत इति। २.५

प्रतीहारी जं देवो आणवेदि। *निष्क्रान्ता* यद् देव आज्ञापयति। २.६

राजा गौतम! को वृत्तान्तस्तत्रभवत्यास्ते सख्याः? २.७

विदूषकः जो बिडालपरिगहीदाए परहुदिआए। यो बिडालगृहीतायाः परभृतिकायाः। २.८

राजा *सविषादम्* कथमिव? २.९

विदूषकः सा क्खु तवस्सिणी ताए पिंगलक्खीए सारभण्डभूघरए मिच्चुमुहे विअ णिक्खित्ता। सा खलु तपस्विनी तया पिङ्गलाक्ष्या सारभाण्डभूगृहे मृत्युमुख इव निक्षिप्ता। २.१०

राजा ननु मत्संपर्कमुपलभ्य? २.११

विदूषकः अध इं? अथ किम्? २.१२

राजा क एवं विमुखोऽस्माकं येन चण्डीकृता देवी? २.१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्थ अङ्क।।

।।१।।

(प्रवेश करते हैं पर्युत्सुक राजा तथा प्रतीहारी)

राजा (स्वगत) **कामरूपी वृक्ष – उस प्रिया की प्रशंसा सुनकर इच्छा जागने से हुआ बद्धमूल, आँखों के सामने आने से उसमें उत्पन्न हुआ प्रवाल, हस्तस्पर्श से रोमाञ्च प्रकट होने से हुआ मुकुलित अब यह मुझे फलका रस–प्रदान कर मेरा क्लम भी कदाचित् दूर करेगा।। १।।**

(प्रकाश) सखे! गौतम।

प्रतीहारी (प्रवेश कर) देव की जय। गौतम यहाँ है नहीं।

राजा (स्वगत) अच्छा, मालविका का हाल जानने के लिए उसे मैंने ही भेज रखा है।

विदूषक (प्रवेश कर) आप की वृद्धि हो।

राजा जयसेने! जानो कि देवी धारिणी कहाँ है और पैर में तकलीफ के कारण कहाँ मन बहला रही हैं?

प्रतीहारी जो आज्ञा महाराज की (निकल जाती है)

राजा गौतम! तुम्हारी सखी मालविका का क्या है हाल?

विदूषक जो विलाव के द्वारा पकड़ ली गई कोयल का होता है।

राजा (विषाद सहित) कैसे?

विदूषक उस बेचारी को उस पिंगलाक्षी ने सारभाण्ड के तहखाने में जैसे, मृत्यु के मुख में, डाल रखा है।

राजा क्या मेरा संपर्क होने से?

विदूषक और क्या?

राजा कौन है हमसे इतना विमुख जिसने देवी को इतना नाराज कर दिया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः सुणादु भवं परिव्वाजिआ मे कधेदि। हिओ किल तत्तभोदी इरावदी रुआक्कंतचरणं देविं सुहपुच्छिआ आअदा। शृणोतु भवान् परिव्राजिका मे कथयति। ह्यः किल तत्रभवती इरावती रुजाक्रान्तचरणां देवीं सुखपृच्छिका आगता। २.१४

राजा ततस्ततः? २.१५

विदूषकः तदो सा देविए पुच्छिदा– 'किं णु ओलोइदो वल्लहजणो' त्ति। ताए उत्तं 'मंदो वो उवआरो जं परिजणे संकंतं वल्लहत्तणं ण जाणीअदि।' ततः सा देव्या पृष्टा–'किंन्ववलोकितो वल्लभजन' इति। तयोक्तम्–'मन्दो व उपचारः यत् परिजने संक्रान्तं वल्लभत्वं न ज्ञायते।' २.१६

राजा *आत्मगतम्* अहो निर्भेदादृतेऽपि मालविकायामयममुपन्यासः शङ्क्यते। *प्रकाशम्* ततस्ततः? २.१७

विदूषकः तदो ताए अणुबन्धिज्जमाणा सा भवदो अविणअं अंदरेण परिगदत्था किदा देवी। ततस्तयानुबध्यमाना सा भवतः अविनयमन्तरेण परिगतार्था कृता देवी। २.१८

राजा अहो दीर्घरोषता तत्रभवत्याः। अतः परं कथय। २.१९

विदूषकः किं अवरं मालविआ बडलावलिआ अ णिगलपदीओ णाअकण्णकाओ विअ अदिट्ठसुज्जपादं पादालवासं अणुहोन्ति। किमपरं मालविका बकुलावलिका च निगडपद्यौ नागकन्यके इव अदृष्टसूर्यपादं पातालवासमनुभवतः।२.२०

राजा कष्टं कष्टम् २.२१

मधुररवा परभृतिका भ्रमरी च विबुद्धचूतसङ्गिन्यौ ।
कोटरमकालवृष्ट्या प्रबलपुरोवातया गमिते ।। २।।

वयस्य! अप्यत्र कस्यचिदुपक्रमस्य गतिः स्यात्? ३.१

विदूषकः कहं भविस्सदि। जं सारभण्डघरव्वावारिदा माहविआ देविए संदिट्ठा मह अंगुलीअअमुद्दिअं अदेक्खिअ ण मोत्तव्वा तुए हदासा मालविआ बउलावलिआ अ त्ति। कथं भविष्यति, यत् सारभाण्ड–गृहव्यापारिता माधविका देव्या संदिष्टा। ममाङ्गुलीयकमुद्रिकामदृष्ट्वा न मोक्तव्या त्वया हताशा मालविका बकुलावलिका चेति। ३.२

राजा *निःश्वस्य सपरामर्शम्* सखे! किमत्र कर्तव्यम्? ३.३

विदूषकः *विचिन्त्य* अत्थि एत्थ उवाओ। अस्त्यत्रोपायः। ३.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक सुनिए महाराज! मुझसे परिव्राजिका ने कहा है 'कल इरावती पैर की तकलीफ के बारे में कुशल पूछने के लिए देवी के पास पहुँची'।

राजा तब–

विदूषक तब उससे देवी ने पूछा – 'क्या वल्लभजन के दर्शन हुए' तो उसने कहा 'आपकी यह औपचारिकता मन्द है जो आप वल्लभ को परिजन पर रीझा नहीं' जानती।

राजा (स्वगत) अहो बात है तो छिपी, तब भी यह मालविका को लक्ष्य करती हुई लगती है। (प्रकाश) तो फिर,

विदूषक तब उसके बार बार पूछने पर उसने आपकी धृष्टता की बात देवी को बतला दी।

राजा कितना दीर्घ है रोष अत्रभवती का। आगे जो हुआ वह कहो।

विदूषक और क्या मालविका और बकुलावलिका को बेड़ी पहँना कर नागकन्याओं के समान पातालवास दे दिया जहाँ सूर्य की किरण के भी दर्शन नहीं होते। वहीं वे पड़ी हैं।

राजा बड़े दु:ख की बात है –

मधुररवा कोयल और भ्रमरी केवल इसलिए सामने की प्रबल हवा के सहयोग से अकालवृष्टि के द्वारा कोटर में डाल दी गई कि उनका संबन्ध खिले सहकार से है।। २।।

वयस्य! इसमें कोई उपाययोजना संभव है क्या?

विदूषक कैसे हो सकती है, क्योंकि सारभाण्डगृह में नियुक्त माधविका को देवी ने हिदायत दी है कि 'अंगुलीयकमुद्रा' को बिना देखे इन्हें न छोड़ना, हताशा मालविका को और बकुलावलिका को।

राजा (लम्बी साँस छोड़ कर सोचते हुए) सखे! इस स्थिति में क्या किया जाना चाहिए?

विदूषक (सोचकर) उपाय है तो इसमें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा क इव? ३.५

विदूषकः *सदृष्टिक्षेपम्* कोवि अदिट्ठो सुणिस्सदि। कण्णे दे कधेमि। *उपश्लिष्य कर्णे* एव्वं विअ। कोऽप्यदृष्टः श्रोष्यति। कर्णे ते कथयामि (उपश्लिष्य कर्णे) एवमिव। आवेदयति। ३.६

राजा *सहर्षम्* सुष्ठु प्रयुज्यतां सिद्धये। ३.७

प्रविश्य ३.८

प्रतीहारी देव! पवादसअणे देवी णिसण्णा रत्तचंदणधारिणा परिअणहत्थगदेण चरणेण भअवदी कधाहिं विणोदिज्जमाणा चिट्ठदि।

देव! प्रवातशयने देवी निषण्णा रक्तचन्दनधारिणा परिजनहस्तगतेन चरणेन भगवत्या कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति। ३.९

राजा तस्मादस्मत्प्रवेशयोग्योऽयमवसरः। ३.१०

विदूषकः भो गच्छदु भवं। अहं वि देविं पेक्खिदुं अरित्तपाणी हुविस्सं।

भो गच्छतु भवान्। अहमपि देवीं द्रष्टुमरिक्तपाणिर्भविष्यामि। ३.११

राजा वयस्य! गच्छ जयसेनायास्तावदस्मद्रहस्यं विदितं कुरु। ३.१२

विदूषकः तह। होदि! *प्रतीहारीमुपेत्य कर्णे* एव्वं विअ। *आवेद्य निष्क्रान्तः*

तथा। भवति! (प्रतीहारीमुपेत्य कर्णे) एवमिव। (आवेद्य निष्क्रान्तः) ३.१३

राजा जयसेने! प्रवातशयनमार्गमादेशय। ३.१४

प्रतीहारी इदो इदो देवो। इत इतो देवः। *निष्क्रान्तौ* ३.१५

॥ २॥

प्रविशति शयनस्था देवी परिव्राजिका विभवतश्च परिवारः ३.१६

देवी भअवदि! रमणिज्जं कधावत्थु। तदो तदो?

भगवति! रमणीयं कथावस्तु। ततस्ततः? ३.१७

परिव्राजिका *सदृष्टिक्षेपं* अतः परं पुनः कथयिष्यामि। अत्रभवान् विदिशेश्वरः सम्प्राप्तः। ३.१८

देवी अम्हो अज्जउत्तो। अहो आर्यपुत्रः। *अभ्युत्थातुमिच्छति।* ३.१९

राजा अलमलमुपचारयन्त्रणया— ३.२०

अनुचितनूपुरविरहं नार्हति तपनीयपीठिकालम्बि ।
चरणं रुजा परीतं कलभाषिणि! मां च पीडयितुम् ॥ ३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — कौन सा?

विदूषक — (इधर उधर दृष्टि डाल कर) कोई छुप कर सुनता न हो? तुम्हारे कान में कहूँगा। (कान में चिपटकर) ऐसा। (बतलाता है)

राजा — (खुश होकर) ठीक। लगो इसमें, पाओ सिद्धि।

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी — देव! देवी हवादार शयन पर बैठी हैं। इनका पैर लालचन्दन से पुता है और परिजन उसे अपने हाथ में लिए हैं। भगवती कौशिकी इनका मन कथाएँ सुना सुना कर बहला रही हैं।

राजा — तो यह अवसर है हमारे प्रवेश के योग्य।

विदूषक — भो जाइए आप! मैं भी आता हूँ देवी के दर्शन के लिए, किन्तु खाली हाथ नहीं।

राजा — वयस्य! जाओ जयसेना को हमलोगों का रहस्य बतला दो।

विदूषक — जो आज्ञा (प्रतीहारी के पास पहुँचकर) भवति! इस प्रकार। (कान में बतलाकर निकल गया।)

राजा — जयसेने! प्रवातशयन का मार्ग बतला।

प्रतीहारी — इधर से, इधर से देव! (दोनों निकल जाते हैं)।

॥ २॥

प्रवेश करती है बिस्तर पर बैठी देवी परिव्राजिका और आसपास परिजन।

देवी — भगवति! कथावस्तु बड़ी रमणीय है। आगे क्या हुआ?

परिव्राजिका — (दृष्टि डालकर) इसके आगे फिर सुनाऊँगी। ये देखो अत्रभवान् विदिशेश्वर (अग्निमित्र) आ पहुँचे हैं।

देवी — अहो! आर्यपुत्र। (उठने का यत्न करती है)

राजा — रहने दें उपचार का कष्ट।

हे मधुरभाषिणि! जिसे नूपुर के विरह का अनुभव नहीं रहा और जो सोने के पीठ पर रखा हुआ है ऐसे इस चरण को और मुझे मत दो पीड़ा॥ ३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी जेदु जेदु अज्जउत्तो। जयत्वार्यपुत्रः। ४.१

परिव्राजिका विजयतां देवः। ४.२

राजा *परिव्राजिकां प्रणम्योपविशय च* देवि! अपि सह्या वेदना? ४.३

देवी अत्थि मे विसेसो। अस्ति मे विशेषः। ४.४

॥ ३ ॥

ततः प्रविशति यज्ञोपवीतबद्धाङ्गुष्ठः संभ्रान्तो विदूषकः ४.५

विदूषकः परित्ताअदु परित्ताअदु भवं। सप्पेण म्हि दट्ठो। परित्रायतां परित्रायतां भवान्। सर्पेणास्मि दष्टः। ४.६

सर्वे *विषण्णाः।* ४.७

राजा कष्टं कष्टम्। क्व भवान् परिभ्रान्तः? ४.८

विदूषकः देविं देक्खिस्सं त्ति आआरपुफग्गहणकारणादो पमदवणं गदो म्हि। देवीं द्रक्ष्यामीत्याचारपुष्पग्रहणकारणात् प्रमदवनं गतोऽस्मि। परित्रायताम् परित्रायताम्। ४.९

देवी हद्धी हद्धी। अहं येव्व बम्हणस्स जीविदसंसअणिमित्तं जादा। हा धिक्! हा धिक्! अहमेव ब्राह्मणस्य जीवितसंशयनिमित्तं जाता। ४.१०

विदूषकः तहिं असोअप्पसवग्गहणकालणादो पसारिदो दक्खिणहत्थो। तदो कोडरविणिग्गदेण सप्परूविणा कालेण दंसिदो म्हि। णं एदाणि दुवे दंतपदानि।*दर्शयति* तस्मिन्नशोकस्तबकग्रहणकारणात् प्रसारिते दक्षिणहस्ते कोटरनिर्गतेन सर्परूपेण कालेन दष्टोऽस्मि। नन्वेते द्वे दन्तपदे। ४.११

राजा ननु दंशे छेदः पूर्व्वकर्म्मेति श्रूयते। स तावदस्य क्रियताम्। ४.१२

परिव्राजिका ४.१३

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम् ।
एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः ॥४॥

सम्प्रति विषवैद्यानां कर्म्म। ५.१

राजा एवं तर्हि, जयसेने! ध्रुवसिद्धिः क्षिप्रमानीयताम्। ५.२

प्रतीहारी जं देवी आणवेदि। *निष्क्रान्ता* । यद् देव आज्ञापयति। (निष्क्रान्ता) ५.३

विदूषकः अहो! पावेन मिच्चुणा गहीदो म्हि। अहो! पापेन मृत्युना गृहीतोऽस्मि। ५.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी — आर्यपुत्र की जय हो जय हो।

परिव्राजिका — देव विजयी हों।

राजा — (परिव्राजिका को प्रणामकर बैठकर) देवि! वेदना सह्य तो है?

देवी — मुझे लग रहा है कुछ अन्तर।

॥ ३ ॥

(प्रवेश करता है जनेऊ से अँगूठा बाँधे घबराया हुआ विदूषक)

विदूषक — रक्षा करें रक्षा करें आप। साँप ने डँस लिया मुझे।

सभी — (विषाद में पड़ जाते हैं।)

राजा — दु:ख की बात है। कहाँ भटक गए थे तुम?

विदूषक — देवी के दर्शन करूँगा यह सोच उपचारार्थ पुष्प लेने के लिए प्रमदवन गया था।

देवी — हा धिक्, मैं ही बनी ब्राह्मण के प्राणों के संदेह में निमित्त।

विदूषक — वहाँ अशोक के पुष्प के लिए दाहिना हाथ फैलाया तो कोटर से निकल सर्परूपी काल ने डँस लिया मुझे। ये रहे दो दाँत के निशान। (दिखलाता है)।

राजा — ऐसा है कि सर्पदंश की पहली चिकित्सा होती है डँसे अंग को काट डालना या जला देना। यह उपाय किया जाए।

परिव्राजिका — **काटना, जलाना, डँसे स्थान से खून निकालना ये उपाय तो डँसते ही किए जाते हैं ॥४॥** (अब तो विलम्ब हो गया है)
अत: आवश्यकता है विषवैद्य की।

राजा — ऐसा है तो जयसेने! जा वैद्य ध्रुवसिद्धि को अतिशीघ्र ले आ।

प्रतीहारी — देव की जो आज्ञा। (निकल जाती है)

विदूषक — अहो! पापी मृत्यु ने पकड़ लिया मुझे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा मा कातरो भूः। अविषोऽपि कदाचिद् दंशो भवति। ५.५

विदूषकः कधं ण भाइस्सं। सिमसिमाअन्ति मे अंगाइं। *विषवेगं रूपयति*

कथं न भेष्यामि, सिमसिमायन्ति मेऽङ्गानि। ५.६

देवी हा! दंसिदं असुहं विआरेण। अवलम्बह णं।

हा! दर्शितमशुभं विकारेण। अवलम्बध्वम् एनम् ५.७

परिजनः *ससंभ्रममवलम्बते* ५.८

विदूषकः *राजानं विलोक्य* भो! बालत्तणादो वि पिअवअस्सो म्हि दे। तं विआरिअ अपुत्ताए मे जणणीए जोगक्खेमं वहेहि। भोः! बाल्यादपि प्रियवयस्योऽस्मि ते। तं विचार्य अपुत्राया मे जनन्या योगक्षेमं वह। ५.९

राजा मा भैषीर्गौतम! स्थिरो भव। अचिरात् त्वां वैद्यश्चिकित्सते। ५.१०

प्रतीहारी *प्रविश्य* देव! धुवसिद्धी विण्णावेदि इह एव्व आणीअदु सो गोदमो त्ति।

देव! ध्रुवसिद्धिर्विज्ञापयति इहैवानीयतां स गौतम इति। ५.११

राजा तेन हि वर्षवरप्रतिगृहीतमेनं तत्रभवतः सकाशं प्रापय। ५.१२

प्रतीहारी तध तथा। ५.१३

विदूषकः *देवीं विलोक्य* भोदि! जीवेअं वा ण वा। जं मए अत्तभवंतं सेवमाणेण दे अवरद्धं तं मरिसेहि।

भवति! जीवेयं वा न वा। यन्मयात्रभवन्तं सेवमानेन तेऽपराद्धं तन्मृष्यस्व। ५.१४

देवी दीघाऊ होहि। दीर्घायुर्भव। ५.१५

निष्क्रान्तो विदूषकः प्रतीहारी च ५.१६

राजा प्रकृतिभीरुस्तपस्वी ध्रुवसिद्धेरपि यथार्थनाम्नः सिद्धिं न मन्यते। ५.१७

प्रविश्य ५.१८

प्रतीहारी जेदु भट्टा। धुवसिद्धी विण्णावेदि उदकुंभविहाणेण सप्पमुद्दिअं किं पि कप्पिदव्वं। तं अण्णेसीअदु त्ति। जयतु भर्ता। ध्रुवसिद्धिर्विज्ञापयति— उदकुम्भविधानेन[१] सर्पमुद्रितं किमपि कल्पयितव्यम्। तदन्विष्यतामिति। ५.१९

देवी इदं सप्पमुद्दिअं अंगुलीअअं। पच्छा मह हत्थे देहि णं। *अङ्गुलीयकं ददाति।*

इदं सर्पमुद्रितमङ्गुलीयकम्। पश्चान्मम हस्ते देह्येतत् ५.२०

प्रतीहारी *नाट्येन गृहीत्वा प्रस्थिता।* ५.२१

---

१. उदकुम्भविधानं कुम्भविधृतस्य जलस्य सर्पाङ्कितया प्रोक्षण्या सर्पमन्त्रजपपूर्वकं १०८वारान् प्रोक्षणम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — घबराओ मत। कभी कभी सर्पदंश में विष नहीं भी रहता।

विदूषक — कैसे नहीं डरूँगा मेरे अंग सिमसिमा रहे हैं।

(विषवेग का अभिनय करता है)

देवी — हाय! दिखाना शुरू कर दिया अशुभ विकार ने, इसे पकड़ो।

परिजन — (घबराहट लिए पकड़ते है।)

विदूषक — (राजा को देख कर) भो। तुम्हारा मैं बचपन से लेकर प्रिय वयस्य हूँ मैं। उसे ध्यान में रख मेरी अपुत्रा माता का योगक्षेम वहन करते रहना।

राजा — गौतम! डरो मत। स्थिर होओ। अतिशीघ्र वैद्य तुम्हें ठीक कर देगा।

प्रतीहारी — (प्रवेश कर) देव! ध्रुवसिद्धि कह रहें हैं कि गौतम को यहीं ले आओ।

राजा — तो, इसे ध्रुवसिद्धि के पास पहुँचाओ वर्षवर इसे सम्हाले रहेंगे।

प्रतीहारी — जो आज्ञा।

विदूषक — (देवी को देखते हुए) भवति! बचूँ या नहीं। मैंने अत्रभवान् की सेवा करते हुए जो अपराध किए हों उन्हें क्षमा करेंगी।

देवी — दीर्घायु होओ।

(विदूषक निकल गया और प्रतीहारी भी)

राजा — स्वभाव से भीरु है बेचारा। यथार्थनाम के ध्रुवसिद्धि से भी सिद्धि नहीं मानता।

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी — स्वामी की जय हो! ध्रुवसिद्धि कह रहे हैं। उदकुम्भविधान से गौतम की चिकित्सा होनी है, उसके लिए सर्पमुद्रित कुछ चाहिए। उसे खोजा जाए।

देवी — यह अंगुलीयक है सर्पमुद्रित। बाद में मेरे ही हाथ में देना।

(अँगूठी देती है)

प्रतीहारी — (ग्रहण का अभिनय कर निकल जाती हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा जयसेने! कर्म्मसिद्धावाशु प्रतिपत्तिमानय। ५.२२

प्रतीहारी जं देवो आणवेदि। *निष्क्रान्ता* । यद् देव आज्ञापयति। (निष्क्रान्ता) ५.२३

परिव्राजिका यथा मे हृदयमाचष्टे तथा निर्विषो गौतमः। ५.२४

राजा भूयादेवम्। ५.२५

प्रविश्य ५.२६

प्रतीहारी जेदु भट्टा। णिवुत्तविसवेगो गोतमो मुहुत्तेण पकिदित्थो संवुत्तो।
जयतु भर्ता। निवृत्तविषवेगो गौतमो मुहूर्तेन प्रकृतिस्थः संवृत्तः। ५.२७

देवी दिट्ठिआ वअणीआदो मुत्तम्हि। दिष्ट्या वचनीयान्मुक्तास्मि ५.२८

प्रतीहारी एषो उण अमच्चो वारिहदओ विण्णवेदि राअकज्जं बहु मंतेदव्वं, दंसणेण अणुग्गहं इच्छम्मि त्ति। एष पुनरमात्यो बार्हतको विज्ञापयति राजकार्यं बहु मन्त्रयितव्यम्, दर्शनेन अनुग्रहमिच्छामीति। ५.२९

देवी गच्छदु अज्जउत्तो कज्जसिद्धीए। गच्छत्वार्यपुत्रः कार्यसिद्धये। ५.३०

राजा आतपाक्रान्तोऽयमुद्देशः। शीतक्रिया चास्या रुजः प्रशस्ता। तदन्यत्र नीयतां शयनीयम्। ५.३१

देवी बालिआओ! अज्जउत्तवअणं अणुचिट्ठह। बालिकाः! आर्यपुत्रवचन–मनुतिष्ठत। ५.३२

परिजनः तध। तथा *निष्क्रान्तास्तथाकर्तुं प्रक्रान्तः परिजनः देवी परिव्राजिका च।* ५.३३

राजा जयसेने! मां गूढेन पथा प्रमदवनं प्रापय। ५.३४

प्रतीहारी इदो इदो देवो। इत इतो देवः। ५.३५

राजा जयसेने! ननु समाप्तकाम्यो गौतमः। ५.३६

प्रतीहारी अह इं। अथ किम् ५.३७

राजा ५.३८

इष्टाधिगमनिमित्तं प्रयोगमेकान्तसाध्यमपि मत्वा ।
संदिग्धमेव सिद्धौ कातरमाशङ्कते हृदयम् ॥ ५॥

प्रविश्य ६.१

विदूषकः वड्ढदु भवं। सिद्धाणि दे मंगलकम्माणि।
वर्धतां भवान्। सिद्धानि ते मङ्गलकर्माणि। ६.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — जयसेने! कार्य बन जाने पर शीघ्र देना खबर।

प्रतीहारी — देव की जो आज्ञा। (निकल गई)।

परिव्राजिका — जैसा मेरा हृदय कहता है गौतम का विष उतर गया।

राजा — ऐसा ही हो।

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी — स्वामी की जय हो! गौतम का विषवेग दूर हो गया और थोड़ी ही देर में वह स्वस्थ हो गया।

देवी — चलो मैं कलंक से बच गई।

प्रतीहारी — ये अमात्य बार्हतक निवेदन कर रहे हैं कि बहुत सारे राजकार्यों में मन्त्रणा करनी है। अनुग्रह कर दर्शन दें।

देवी — आर्यपुत्र जावें कार्य संपन्न करें।

राजा — इस स्थान पर धूप आ रही है। आपके इस कष्ट के लिए शीतक्रिया अपेक्षित है। तो अपना शयनीय अन्यत्र ले जावें।

देवी — बालिकाओं! आर्यपुत्र का वचन पूरा करो।

परिजन — जो आज्ञा (वैसा ही करने लगते हैं परिजन, देवी और परिजन निकल जाते हैं।)

राजा — जयसेने! मुझे छिपे रास्ते प्रमदवन पहुँचा।

प्रतीहारी — इधर से, इधर से देव।

राजा — गौतम का प्रयोजन तो पूरा हो गया।

प्रतीहारी — और क्या।

राजा — **इष्ट की प्राप्ति में उपाययोजना सफल ही होने वाली है तब भी कातर चित्त सिद्धि में संदेह की ही आशंका करता है ॥५॥**

(प्रवेश कर)

विदूषक — बढ़ें आप। आपके मंगलकार्य सिद्ध हो गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा जयसेने! त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु। ६.३

प्रतीहारी जं देवो आणवेदि। यद् देव आज्ञापयति। *निष्क्रान्ता* ६.४

राजा गौतम! क्षुद्रा माधविका। न खलु किञ्चिद् विचारितमनया? ६.५

विदूषकः देविए अंगुलीअअमुद्दिअं देक्खिअ कधं विआरेदि?
देव्या अङ्गुलीयकमुद्रां दृष्ट्वा कथं विचारयति। ६.६

राजा न खलु मुद्रामधिकृत्य ब्रवीमि। एतयोर्द्वयोः किन्निमित्तो मोक्षः, किं वा देव्याः परिजनमतिक्रम्य भवान् संदिष्टः इत्येवमनया प्रष्टव्यम्। ६.७

विदूषकः णं पुच्छिदोम्हि! पुणो मंदस्स मे तस्सिं पच्चुप्पण्णा मदी।
ननु पृष्टोऽस्मि। पुनर्मन्दस्य मे तस्मिन् प्रत्युत्पन्ना मतिः। ६.८

राजा कथ्यताम्। ६.९

विदूषकः भणिदं मए। देवचिंतएहिं विण्णाविदो राआ 'सोवसग्गं वो णक्खत्तं ता अवस्सं सव्वबंधमोक्खो करीअदु' त्ति। भणितं मया। दैवचिन्तकैर्विज्ञापितो राजा—'सोपसर्गं वो नक्षत्रम्। तदवश्यं सर्वबन्धमोक्षः क्रियतामि'—ति। ६.१०

राजा *सहर्षं* ततस्ततः। ६.११

विदूषकः तं सुणिअ देवीए इरावदीए चित्तं रक्खन्तीए राआ किल मुञ्चेदि त्ति अहं संदिट्ठो त्ति। तदो जुज्जदि त्ति ताए एव्वं संपादिदो अत्थो।
तच्छ्रुत्वा देव्या इरावत्याश्चित्तं रक्षन्त्या राजा किल मोचयतीत्यहं संदिष्ट इति। ततो युज्यत इति तयैवं सम्पादितोऽर्थः। ६.१२

राजा *विदूषकं परिष्वज्य* सखे! प्रियोऽहं खलु तव। ६.१३

नहि बुद्धिगुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम् ।
कार्य्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते ।। ६।।

विदूषकः तुवरदु भवं। समुद्दघरम्मि सहीसहिदं मालविअं ठाविअ अत्तभवंदं पच्चुग्गदो म्हि। त्वरतां भवान्। समुद्रगृहे सखीसहितां मालविकां स्थापयित्वा अत्रभवन्तं प्रत्युद्गतोऽस्मि। ७.१

राजा अहमेनां संभावयामि। गच्छाग्रतः। ७.२

विदूषकः एदु भवं। *परिक्रम्य* एदं समुद्दघरं। एतु भवान् । (परिक्रम्य) इदं समुद्रगृहम्। ७.३

राजा *साशङ्कम्* वयस्य! एषा कुसुमावचयव्यग्रहस्ता सख्यास्ते इरावत्याः परिचारिका चन्द्रिका सन्निकृष्टमागच्छति। इतस्तावदावां भित्तिगूढौ भवावः। ७.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा जयसेने! तुम भी अपना कार्य पूरा करो।

प्रतीहारी जैसी देव की आज्ञा। (निकल जाती है)

राजा गौतम! माधविका बड़ी क्षुद्र है। इसने कुछ भी विचार नहीं किया।

विदूषक देवी की अंगुलीयक मुद्रा देख कर कैसे करती विचार।

राजा मुद्रा के विषय में नहीं कह रहा हूँ। उसे यह तो पूछना था कि उन दोनों को छोड़ने का क्या निमित्त है और देवी ने अपने परिजनों को छोड़कर आपको संदेश के लिए क्यों चुना।

विदूषक पूछा था, परन्तु मुझ मन्दमति की बुद्धि उस समय काम कर गई।

राजा कहो कैसे?

विदूषक मैंने कहा दैवज्ञों ने कहा है कि महाराजा साहब का नक्षत्र अनिष्टकारी है तो आवश्यक है कि सभी बन्दियों को मुक्त कर दिया जाए।

राजा (खुश होकर) तब क्या हुआ?

विदूषक उसे सुनकर देवी ने इरावती का मन रखने के लिए राजा साहब ने इन्हें मुक्त किया है इस कारण मुझे भेजा है संदेश लेकर। तब उसने 'ठीक है' ऐसा कहकर यह कार्य करने का आदेश कर दिया।

राजा (विदूषक का आलिंगन कर) सखे! सचमुच मैं तुम्हारा प्रिय हूँ।

अच्छे लोग केवल बुद्धि के गुणों से प्रयोजनसिद्धि नहीं करते, उनकी कार्यसिद्धि का सूक्ष्म पथ भी है, वह मिलता है स्नेह से।। ६।।

विदूषक आप जल्दी करें। मैं समुद्रगृह में सखी सहित मालविका को बिठाकर आया हूँ आपके पास।

राजा मैं करता हूँ इसकी संभावना। तुम आगे चलो।

विदूषक आइए आप। (घूमकर) यह रहा समुद्रगृह।

राजा (आशङ्का कर) यह फूल तोड़ती तुम्हारी सखी इरावती की परिचारिका चन्द्रिका पास आ रही है यहाँ । हम दोनों भित्ति के पीछे छिप जाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः अहो कुंभीलएहिं कामुएहिं अ परिहरणिज्जा चंदिआ।
अहो कुम्भीलकैः कामुकैश्च परिहरणीया खलु चन्द्रिका। ७.५

उभौ *यथोक्तं कुरुतः* ७.६

राजा गौतम! कथं नु ते सखी मां प्रतिपालयति । एहि। एनां गवाक्षमाश्रित्य विलोकयावः । ७.७

विदूषक तह । तथा । ७.८

उभौ *विलोकयन्तौ तिष्ठतः* ७.९

॥ ४ ॥

ततः प्रविशति मालविका बकुलावलिका च ७.१०

बकुलावलिका सहि! पणम भट्टारं। सखि! प्रणम भर्तारम्। ७.११

मालविका णमो दे। नमस्ते। ७.१२

राजा शङ्के प्रतिकृति मे निर्दिशति। ७.१३

मालविका *सहर्षं द्वारमवलोक्य सविषादम्* हला मं विप्पलंभेसि।
सखि! मां विप्रलम्भयसि। ७.१४

राजा हर्षविषादाभ्यामत्रभवत्याः प्रीतोऽस्मि। ७.१५

सूर्योदये भवति या सूर्यास्तमये च पुण्डरीकस्य ।
वदनेन सुवदनायास्ते समवस्थे क्षणादूढे ॥७॥

बकुलावलिका णं एषो चित्तगदो भट्टा। नन्वेष चित्रगतो भर्ता। ८.१

उभे *प्रणिपत्य* जेदु भट्टा। जयतु भर्त्ता। ८.२

मालविका *चित्रं निर्वर्ण्य* हला! तदा संमुहत्थिदे भत्तुणो रूवे ण तह वितिण्हम्हि जह अज्ज। विभाविदो मए चित्तगदो अवितिण्हदंसणो भट्टा।
सखि! तदा संमुखस्थिते भर्तृ रूपे न तथा वितृष्णाऽस्मि यथा अद्य। विभावितो मया चित्रगतः अवितृष्णदर्शनो भर्त्ता। ८.३

विदूषकः सुदं भवदा? तत्तहोदी चित्ते जधा दिट्ठो ण तधा दिट्ठो भवं त्ति मंतेदि। मुहा दाणिं मंजूसा विअ रदणभण्डं जोव्वणगव्वं वहेसि।
श्रुतं भवता? तत्रभवती 'चित्रे यथा दृष्टो न तथा दृष्टो भवानि'—ति मन्त्रयति। मुधेदानीं मञ्जूषेव रत्नभाण्डं यौवनगर्वं वहसि। ८.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक अहो चोरों और कामियों के लिए चन्द्रिका से बचना होता ही है।

दोनों (यथोक्त करते हैं भित्ति के पीछे छिप जाते हैं।)

राजा गौतम! तेरी सखी कैसे जोहती है मेरा रास्ता। आ गवाक्ष से झाँककर देखें इसे।

विदूषक ठीक।

दोनों (देखते हैं)

॥४॥

(प्रवेश करती हैं मालविका और बकुलावलिका)

बकुलावलिका सखि! भर्त्ता को प्रणाम कर।

मालविका आपको प्रणाम।

राजा लगता है मेरी प्रतिकृति (फोटू) को प्रणाम कर रही है।

मालविका (खुशी में दरवाजा देख विषाद के साथ) सखि! ठग रही है मुझे।

राजा इसके हर्ष और विषाद दोनों से मैं तृप्त हूँ।

कमल की जो दशा सूर्योदय के समय होती है (खिली) और जो सूर्यास्त के समय (मुकुलित) इस सुवदना के वदन ने वे दोनों समवस्थाएँ क्षण भर में धारण कर लीं॥७॥

बकुलावलिका अरे यह चित्रगत भर्त्ता जो हैं।[१]

दोनों (प्रणिपात कर) जय हो स्वामी की।

मालविका (चित्र को ध्यान से देखकर) सखि! उस समय जब स्वामी का शरीर (रूप) सामने उपस्थित था इतनी तृप्ति नहीं हुई थी मुझे जितनी आज। जी भर कर देखा (विभावित) मैंने आज स्वामी को। इनके दर्शन से तो प्यास मिटती ही नहीं।

विदूषक सुना आपने? यह कह रही है कि जैसा जी भर कर चित्र में देखा वैसे साक्षात् देखने को नहीं मिले आप। इतने पर भी झूठे ही तुम यौवनगर्व ढोते फिर रहे हो जैसे पेटी रत्नों का गर्व ढोती रहती हो।

---

१. पहले राजा ने चित्र में मालविका को देखा था। यहाँ मालविका राजा को देख रही है। इरावती को अभी तक मालविका ने देखा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सखे! कुतूहलवानपि निसर्गशालीनः स्त्रीजनः। पश्य— ८.५

कार्त्स्न्येन निर्वर्णयितुं च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्व्वसमागमानाम् ।
न च प्रियेष्वायतलोचनानां समग्रपातीनि विलोचनानि ॥८॥

मालविका हला! का एसा पासपरिउत्तमुहेण भट्टिणा सिणिद्धाए दिट्ठिए णिज्झाईअदि? सखि! का एषा पार्श्वपरिवृत्तमुखेन भर्त्रा स्निग्धया दृष्ट्या निध्यायते? ९.१

बकुलावलिका णं इअं भट्टिणो पासगदा इरावदी। नन्वियं भर्तुः पार्श्वगता इरावती। ९.२

मालविका सहि! अदक्खिणो विअ भट्टा मे पडिभादि जो सव्वं देवीजणं उज्झिअ एक्काए मुहे बद्धलक्खो। सखि! अदक्षिण इव भर्ता मे प्रतिभाति यः सर्वं देवीजनमुज्झित्वा एकस्या मुखे बद्धलक्ष्यः। ९.३

बकुलावलिका *आत्मगतम्* चित्तगदं भट्टारअं परमत्थदो संकप्पिअं असूअदि। होदु। कीडिस्सं दाव एदाए। *प्रकाशम्* हला! भट्टिणो वल्लहा एसा। (आत्मगत) चित्रगतं भर्तारं परमार्थतः संकल्प्यासूयति। भवतु। क्रीडिष्यामि तावदेतया। (प्रकाशम्) सखि! भतुर्वल्लभैषा। ९.४

मालविका तदो किं दाणिं अत्ताणं आआसइस्सं। *सासूयं परावर्त्तते* ततः किमिदानीमात्मानमायासयिष्यामि। ९.५

राजा सखे! पश्य — ९.६

भ्रूभङ्गभिन्नतिलकं स्फुरिताऽधरोष्ठं
सासूयमाननमितः परिवर्त्तयन्त्या ।
कान्तापराधकुपितेष्वनया विनेतुः
संदर्शितेव ललिताऽभिनयस्य शिक्षा ॥९॥

विदूषकः अणुणअसज्जो दाणिं होहि। अनुनयसज्जः इदानीं भव। १०.१

मालविका अज्जगोदमो वि एत्थ एव्व सेवदि णं। *भूयः स्थानान्तराभिमुखी भवितुमिच्छति।* आर्यगौतमोऽप्यत्रैव सेवत एनम्। १०.२

बकुलावलिका *मालविकां रुद्ध्वा* ण क्खु कुविदा दाणिं तुमं? न खलु कुपितेदानीं त्वम्?१०.३

मालविका जइ चिरं कुविदं ज्जेव्वं मं मण्णेसि एसो पच्चाणीअदि कोवो। यदि चिरं कुपितामेव मां मन्यसे एष प्रत्यानीयते कोपः। १०.४

---

१. वृत्तीनि इति पाठभेदः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सखे! स्त्रियों में कुतूहल तो खूब होता है परन्तु स्वभाव से शालीन हुआ करती हैं वे। देखो – **पहले पहल मिलन हुआ तो रूप को पूरी तरह निहारना चाहती हैं किन्तु वे अपने आयत नेत्र प्रिय पर खुल कर पूरे पूरे नहीं डाल पातीं ॥८॥**

मालविका सखि! कौन है यह जो पास खड़े स्वामी को स्निग्ध दृष्टि से निहारती खड़ी है?

बकुलावलिका यह स्वामी के पास इरावती है।

मालविका सखि! स्वामी दाक्षिण्य का पालन नहीं कर रहे हैं। ऐसा लग रहा है जो सभी देवियों को छोड़ एक अकेली मुझ पर ही दृष्टि बाँधे हैं।

बकुलावलिका (स्वगत) अरे यह चित्र में बने प्रिय को वास्तविक मानकर असूया (दोष दर्शन) कर रही है। चलो। खेल करूँ इसके साथ। (प्रकाश)। सखि! यह (इरावती) स्वामी की बहुत अधिक प्यारी है।

मालविका तो फिर मैं क्यों इस स्थिति में खुद को आयास में डाल रही हूँ? (असूया के साथ लौटती है।)

राजा सखे! देखो –

'इसने भ्रूभङ्ग किया और तिलक विषम कर दिया, अधरोष्ठ फड़काए, और असूया से चेहरा घुमाया' – यह सब प्रिय पर अपराध के समय कोप करने की नाट्यशिक्षा है। वही इसने दिखला दी है॥९॥

विदूषक मनाने के लिए हो जाओ अब तैयार।

मालविका आर्य गौतम भी इन्हें यहाँ भी सेवा दे रहे हैं। (फिर से दूसरी ओर देखती है)

बकुलावलिका (मालविका को रोक कर) तू तो कुपित ही हो गई है अब।

मालविका यदि तू मुझे सदा कुपित ही देखती है तो ले यह लौटा लिया मैंने कोप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *उपेत्य* १०.५

कुप्यसि कुवलयनयने! चित्रार्पितचेष्टया किमेवमयि ।
ननु तव साक्षादयमहमनन्यसाधारणो दासः[१] ॥१०॥

बकुलावलिका जेदु भट्टा। जयतु भर्ता। ११.१

मालविका *आत्मगतम्* कहं चित्तगदो भट्टा मए असूइदो? *प्रकाशम्, सव्रीडवदनमञ्जलिं करोति।* कथं चित्रगतो भर्ता मया असूयितः। ११.२

राजा *मदनकातर्यं रूपयति।* ११.३

विदूषकः किं भवं उदासीणो विअ दीसइ? किं भवानुदासीन इव दृश्यते? ११.४

राजा अविश्वसनीयत्वात् सख्यास्तव। ११.५

विदूषकः मा दाव अत्तभोदीए कधं तुह अविस्सासो?
मा तावत् अत्रभवत्यां कथं तव अविश्वासः? ११.६

राजा श्रूयताम्। ११.७

पथि नयनयोः स्थित्वा स्वप्ने तिरोभवति क्षणात्
सरति सहसा बाह्वोर्मध्यं गतापि सखी तव ।
मनसिजरुजा क्लिष्टस्यैवं समागममायया
कथमिव सखे! विस्रब्धं स्यादिमां प्रति मे मनः ॥११॥

बकुलावलिका सहि! बहुसो क्खु भट्टा विप्पलद्धो। ता तुए अत्ता विस्ससणिज्जो करीअदु। सखि! बहुशः किल भर्ता विप्रलब्धः। तत् त्वया आत्मा विश्वसनीयः क्रियताम्। १२.१

मालविका सहि! मह उण मंदभग्गाए सिविणसमागमो वि भट्टिणो दुल्लहो आसि।
सखि! मम पुनर्मन्दभाग्यायाः स्वप्नसमागमोऽपि भर्तुर्दुर्लभ आसीत्। १२.२

बकुलावलिका (राजानं प्रति) भट्टा कधेदु से उत्तरं। भर्ता कथयत्वस्या उत्तरम्। १२.३

राजा १२.४

उत्तरेण किमात्मैव पञ्चबाणाग्निसाक्षिकम् ।
तव सख्यै मया दत्तो न सेव्यः सेविता रहः ॥१२॥

बकुलावलिका अणुग्गहीदम्हि। अनुगृहीतास्मि। १३.१

---

१. प्रणयकुपिता प्रेयसी हि काली तस्यै दासः कालिदास इति कवेरस्य स्वनाममुद्रेयमिति कलयामहे। 'ननु तव काल्या अयमहमनन्यसाधारणो दासः' इति त्वत्र वक्तुमुचितायेत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (पास पहुँच कर)

अयि नीलकमल जैसी आँखों वाली सुन्दरि! चित्र में लिखित चेष्टा देख कर कोप कर रही है क्यों ऐसा? अरे मैं स्वयं तो तेरे लिए अनन्यसाधारण दास बना उपस्थित हूँ ॥१०॥[१]

बकुलावलिका स्वामी की जय हो ।

मालविका (स्वगत) क्या मैंने चित्रगत मालिक से असूया की?

(प्रकाश) (चेहरे पर लज्जा लिए अञ्जलि बाँधती है।)

राजा (काम की कातरता का अभिनय करता है।)

विदूषक क्यों आप दीख रहे हैं उदासीन से?

राजा तुम्हारी सखी का भरोसा नहीं।

विदूषक क्या बात है, उन पर आपका अविश्वास कैसा?

राजा सुना जाए –

स्वप्न में आँखों के सामने क्षणभर के लिए आकर छिप जाती है, बाहुओं के बीच ले लेने पर भी तेरी सखी सहसा खिसक जाती है, मैं तो डूबा हूँ काम के ज्वर में और समागम में ऐसी माया । सखे! कैसे करे इसका विश्वास मेरा मन॥११॥

बकुलावलिका सखि! अनेक बार तूने मालिक को ठगा। तो तू स्वयं को विश्वसनीय बना।

मालविका सखि! मुझे तो इनका स्वप्न में भी समागम दुर्लभ रहा।

बकुलावलिका (राजा के प्रति) मालिक। दीजिए उत्तर।

राजा **उत्तर से क्या? स्वयं ही मैंने काम के साक्ष्य में अपने आप को तुम्हारी सखी को दान कर दिया। सेव्य थोड़े ही बनेगा सेवक अकेले में॥१२॥**

बकुलावलिका अनुगृहीत हूँ।

---

१. यहाँ यदि ऐसा पाठ पढ़ा जाए–'ननु तव काल्या अयमहमनन्यसाधारणो दास' प्रणयकुपित कामिनी है काली उसके लिए दास' यह हुई कवि के अपने नाम की यहाँ सूचित निरुक्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः *परिक्रम्य ससंभ्रमम्* वउलावलिए! एसो बालासोअरुक्खस्स पल्लवाइं लंघेदि हिरणो। एहि णिवारएम णं। बकुलावलिके! एष बालाशोकवृक्षस्य पल्लवानि लङ्घयति हरिणः। एहि, निवारयाम एनम्। १३.२

बकुलावलिका तध। तथा। *प्रस्थिता* १३.३

राजा वयस्य! एवमेवास्मिन् रक्षणीयेऽवहितेन त्वया भवितव्यम्। १३.४

विदूषकः एव्वं वि गोदमो संदिसेअदि? एवमपि गौतमः सन्दिश्यते? १३.५

बकुलावलिका *परिक्रम्य* अज्ज गोदम! अहं अप्पआसे चिट्ठामि। तुमं दुवाररक्खओ होहि। आर्य गौतम! अहमप्रकाशे[1] तिष्ठामि। त्वं द्वाररक्षको भव। १३.६

विदूषकः जुज्जदि। युज्यते। १३.७

बकुलावलिका *निष्क्रान्ता* १३.८

विदूषकः इदं दाव फलिहत्थलं अस्सिदो होमि। *तथा करोति*। अहो सुहप्फरिसदा सिलाविसेसस्स। *निद्रायते*। इदं तावत् स्फटिकस्थलमाश्रितो भवामि। तथा करोति अहो सुखस्पर्शता शिलाविशेषस्य। १३.९

मालविका *ससाध्वसा तिष्ठति।* १३.१०

राजा १३.११

विसृज सुन्दरि संगमसाध्वसं ननु चिरात् प्रभृति प्रणयोन्मुखे ।
परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुक्तलताचरितं मयि ।।१३।।

मालविका देवीए भएण अत्तणो वि पिअं कादुं ण पारेमि।
देव्या भयेनात्मनोऽपि प्रियं कर्तुं न पारयामि। १४.१

राजा अयि न भेतव्यम्। १४.२

मालविका *सोपालम्भम्* जो ण भाएदि सो मए भट्टिणीदंसणे दिट्ठसामत्थो भट्टा।
यो न बिभेति स मया भट्टिनीदर्शने दृष्टसामर्थ्यो भर्ता। १४.३

राजा १४.४

दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि! बैम्बिकानां कुलव्रतम् ।
तन्मे दीर्घाक्षि! ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धनाः ।।१४ ।।

संश्लेषमुपजनयति।[2] १५.१

मालविका *नाट्येन परिहरति।* १५.२

---

१. अप्पआसे अप्रकाशे निभृत इति यावत्।

२. अयं द्वितीयः स्पर्शः प्रियायाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक (घूमकर घबराहट के साथ) बकुलावलिके! यह हरिण बालाशोक वृक्ष के पत्ते चबाने जा रहा है। आ इसे रोकें।

बकुलावलिका ठीक है (चल देती है)।

राजा वयस्य! इसी प्रकार इसकी[1] रक्षा में सावधान रहना।

विदूषक गौतम से यह भी कहना है?

बकुलावलिका (घूमकर) आर्य गौतम। मैं छिपकर बैठती हूँ, तुम रहो द्वार रक्षक।

विदूषक ठीक है।

बकुलावलिका (निकल गई।)

विदूषक मैं इस स्फटिकस्थल पर बैठा हूँ। (वैसा ही करता है)
अहो कितना सुखदायी है स्पर्श इस शिला का? (सो जाता है)

मालविका (साध्वस लिए बैठती है।)

राजा **सुन्दरि! संगम का भय छोड़। मैं बहुत समय से उन्मुख हूँ इसकी (रति) प्रार्थना लिए। मैं बना हूँ सहकार और तू बन जा मुझसे लिपटी अतिमुक्ता (लता)।।१३।।**

मालविका देवी का इतना भय है कि मैं अपनी चाह भी पूरी नहीं कर पा रही हूँ।

राजा अयि! डरो मत।

मालविका (उलाहना के साथ) जो नहीं डरता मैं उसे भट्टिणी–दर्शन के समय देख चुकी हूँ।

राजा **हे बिम्बोष्ठि! दाक्षिण्य तो बैम्बिकों का कुलव्रत है।**
परन्तु, हे दीर्घाक्षि! मेरे जो प्राण हैं वे तो बचे हुए हैं केवल तेरी आस पर।।१४।।

(संश्लेष करता है।)[2]

मालविका (परिहार का अभिनय करती है।)

---

१. इसकी = अशोक की और मेरी अग्निमित्र की।

२. यह है प्रिया का द्वितीय स्पर्श ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *आत्मगतम्* रमणीयः खलु नवाङ्गनानां मदनविषयावतारः। एषा हि — १५.३

हस्तं कम्पवती रुणद्धि रशनाव्यापारलोलाङ्गुलिं
स्वौ हस्तौ नयति स्तनावरणतामालिङ्ग्यमाना बलात् ।
पातुं पक्ष्मलनेत्रमुन्नमयतः साचीकरोत्याननं
व्याजेनाप्यभिलाषपूरणसुखं निर्वर्त्तयत्येव मे ॥१५॥

॥५॥

ततः प्रविशति इरावती निपुणिका च १६.१

इरावती हंजे णिउणिए! सच्चं तुमं परिगदत्था चंदिआए समुद्दघर अलिंदसइदो एआई अज्जगोदमो दिट्ठो त्ति। हञ्जे निपुणिके! सत्यं त्वं परिगतार्था चन्द्रिकया समुद्रगृहालिन्दशयित एकाकी आर्यगौतमो दृष्ट इति। १६.२

निपुणिका अण्णधा कहं भट्टिणीए विण्णावेमि। अन्यथा कथं भट्टिन्यै विज्ञापयामि। १६.३

इरावती तेण हि तहिं येव्व गच्छम्ह संसआदो मुत्तं अज्जउत्तस्स पिअवअस्सं पुच्छिदुं अ। तेन हि तत्रैव गच्छामः संशयान्मुक्तमार्यपुत्रस्य प्रियवयस्यं प्रष्टुं च..। १६.४

निपुणिका सावसेसं विअ भट्टिणीए वअणं। सावशेषमिव भट्टिन्या वचनम्। १६.५

इरावती [1]चित्तगदं अज्जउत्तं पसादेदुं अ। चित्रगतमार्यपुत्रं प्रसादयितुं च। १६.६

निपुणिका अध दाणिं कधं णु भट्टा येव्वं अणुणीअदि? अथेदानीं कथं नु भर्ता एवमनुनीयते। १६.७

इरावती मुद्धे! जारिसो चित्तगदो णं तारिसो येव्व अण्णसंकंतहिअओ अज्जउत्तो। केवलं उवआरादिक्कमं परिमज्जिदुं अअं आरंभो। मुग्धे! यादृशश्चित्रगतो ननु तादृश एवान्यसंक्रान्तहृदय आर्यपुत्रः। केवलमुपचारातिक्रमं प्रमार्जितुमयमारम्भः। १६.८

निपुणिका इदो इदो भट्टिणी। इत इतो भट्टिनी। १६.९

उभे *परिक्रामतः।* १६.१०

प्रविश्य १६.११

चेटी जेदु भट्टिणी! भट्टिणी देवी भणदि ण मे मच्छरस्स एसो कालो[2]। तहु क्खु बहुमाणं बड्ढेदुं वअस्साए सह निअडबंधणे किदा मालविआ। जइ अणुमण्णेसि अज्जउत्तस्स पिअ कादुं तधा करेमि । जं तुह इच्छिदं तं मे

---

१. चित्तं चेतः चित्रं च। २. एसो मस्सइस्स कालो इति हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (स्वगत) बड़ा ही रमणीय होता है नवाङ्गनाओं का कामविषयक व्यापार। देखो न –

मेरा हाथ करधनी छूने के लिए ज्यों ही उँगलियाँ हिलाता है, काँपती हुई यह उसे रोकने लगती है। अपने हाथों को बना रही है स्तनों का आवरण बलात् आलिङ्गन में। भरी बरौनी वाले नेत्र से शोभित मुख को पान करने हेतु उठाता हूँ तो उसे टेढ़ा कर लेती है। चल तो रही है उल्टी पर अभिलाष पूर्त्ति का सुख दे रही है यह।।१५।।

।।५।।

(प्रवेश करती हैं इरावती तथा निपुणिका)

इरावती सखि निपुणिके! क्या सचमुच चन्द्रिका ने तुझे बतलाया है कि समुद्रगृह के अलिंद पर अकेला आर्य गौतम दिखाई दिया।

निपुणिका अन्यथा कैसे मैं भट्टिनी को सूचना देती।

इरावती तो वहीं चलें, जीवन संशय से बचे आर्यपुत्र के प्रियवयस्य से पूछने के लिए भी।

निपुणिका भट्टिनी का वाक्य अधूरा सा है।

इरावती चित्त/त्रगत आर्यपुत्र को प्रसन्न करने के लिए भी।

निपुणिका अच्छा। मालिक को क्यों इस प्रकार मना रही हैं?

इरावती मुग्धे! जैसा चित्रगत वैसा ही है अन्य–संक्रान्त–हृदय आर्यपुत्र। केवल उपचार का जो अतिक्रमण हुआ उसका परिमार्जन करने के लिए है यह उपक्रम।

निपुणिका इधर से इधर से भट्टिनी।

दोनों (घूमती हैं।)

(प्रवेश कर)

चेटी भट्टिनी की जय हो, जय हो। भट्टिनि! देवी कह रही है 'मेरे लिए मात्सर्य का यह समय नहीं। तुम्हारा आदर बढ़ाने के लिए वयस्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भणाहि त्ति[1]। जयतु भट्टिनी। भट्टिनी! देवी भणति– न मे मत्सरस्यैष कालः। तव खलु बहुमानं वर्धयितुं वयस्यया सह निगडबन्धने कृता मालविका। यदि अनुमन्यसे आर्यपुत्रस्य प्रियं कर्तुं तथा करोमि। यत्तवेष्टं तन्मे भणेति। १६.१२

इरावती णाअरिए! विण्णावेहि देविं का वअं भट्टिणीं णिओजेदुं। परिजणनिग्गहेण दंसिदो मइ अणुग्गहो। कस्स वा पसादेण अअं जणो वड्ढदि त्ति। तह। नागरिके! विज्ञापय देवीम्–'का वयं भट्टिनीं नियोजयितुम् परिजननिग्रहेण दर्शितो मय्यनुग्रहः। कस्य वा प्रसादेनायं जनो वर्धत इति। १६.१३

चेटी तध। तथा। *निष्क्रान्ता* १६.१४

निपुणिका *परिक्रम्यावलोक्य च* भट्टिणि! एस दुआरुद्देसे समुद्दगिहकस्स विपणिगदो विअ बलीवद्दो गोदमो आसीणो एव्व णिद्दाअदि। भट्टिनी! एष द्वारोद्देशे समुद्रगृहस्य विपणिगत इव बलीवर्दः आर्यगौतमः आसीन एव निद्रायते। १६.१५

इरावती किं णु क्खु अच्चाहिअं? सावसेसो विसविआरो हवे।
किं नु खलु अत्याहितम्? सावशेषो विषविकारो भवेत्। १६.१६

निपुणिका पसण्णमुहवण्णो दीसइ। अवि अ धुअसिद्धिणा चिइच्छिदो। ता से असंकणिज्जं पावं। प्रसन्नमुखवर्णो दृश्यते। अपि च ध्रुवसिद्धिना चिकित्सितः। तदस्याशङ्कनीयं पापम्। १६.१७

विदूषकः *उत्स्वप्नायते* भोदि मालविऐ! भवति मालविके! १६.१८

निपुणिका सुदं भट्टिणिए कस्स वा एसो अत्तणिओअसंवादणे विस्ससणिज्जो हदासो। सव्वकालं यिदो येव्व सोत्थिवाअणमोअएहि कुक्खिं पूरिअ संवदं मालविआं सिविणावेदि।? श्रुतं भट्टिन्या? कस्यैष आत्मनियोगसम्पादने विश्वसनीयो हताशः। सर्वकालमित एव स्वस्तिवाचनमोदकैः कुक्षिं पूरयित्वा साम्प्रतं मालविकां स्वप्नायते। १६.१९

विदूषकः इरावदिं अतिक्कमंदी होहि। इरावतीमतिक्रामन्ती भव। १६.२०

निपुणिका एदं अच्चाहिदं। इमं भुअंगभीरुअं बम्हबंधुं इमिणा भुअंगकुटिलेण अत्तणो दंडकट्ठेण खंभंदरिदा भाअइस्सं।
एतदत्याहितम्। इमं भुजङ्गभीरुं ब्रह्मबन्धुमनेन भुजङ्गकुटिलेन आत्मनो दण्डकाष्ठेन स्तम्भान्तरिता भीषयिष्यामि। १६.२१

---

१. उत्तं पि तुइ किदे विणणावइस्स। इरावती णाअरिए इति हामा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ बेड़ी में डाल दिया है मालविका को। यदि चाहती हो आर्यपुत्र का प्रिय करना तो वैसा किए देती हूँ। जो तुमको प्रिय हो कहो।

इरावती — नागरिके! देवी से निवेदन करो जाकर कि परिजन के निग्रह द्वारा मुझ पर अनुग्रह दिखलाया। किसके प्रसाद से यह जन आगे बढ़ रहा है। हम कौन हैं भट्टिनी को निर्देश देने वालीं।

चेटी — जो आज्ञा । (निकल जाती है।)

निपुणिका — (घूमकर और देखकर) मालकिन! ये देखिए समुद्रगृह के दरवाजे पर बाजार में बैठे बैल जैसा गौतम बैठा ही बैठा सो रहा है।

इरावती — क्या हुआ अनर्थ! संभव है विषवेग बचा हो।

निपुणिका — चेहरे का रंग तो खिला खिला दीख रहा है और चिकित्सा की है ध्रुवसिद्धि ने। इसलिए इसके विषय में पाप (मृत्यु) की शंका करना उचित नहीं।

विदूषक — (बर्राता है) 'भवति! मलविके!'

निपुणिका — सुना भट्टिनी ने? किसका होगा यह विश्वसनीय अपना कार्य पूरा करने में? सदा इधर से ही स्वस्तिवाचन के लड्डू से कुक्षि भर भर कर स्वप्न देख रहा है मालविका का।

विदूषक — इरावती से आगे बढ़ जा।

निपुणिका — ऊपर से यह अनर्थ। सर्प से डरे निकृष्ट इस ब्राह्मण को सर्प जैसे टेढ़े इस दण्डकाष्ठ से खम्भे के पीछे छिप कर डराऊँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती अरुहदि किदग्घो उपद्दवस्स। अर्हत्येव कृतघ्न उपद्रवस्य। १६.२२

निपुणिका *विदूषकस्योपरि दण्डकाष्ठं पातयति।* १६.२३

विदूषकः *सहसा प्रबुद्ध्य* अविहा अविहा। भो वअस्स। सप्पो मे उवरि पडिदो।

अविधा अविधा। भो वयस्य! सर्पो मे उपरि पतितः। १६.२४

राजा *सहसोपसृत्य* सखे न भेतव्यम् न भेतव्यम्। १६.२५

मालविका *अनुसृत्य* भट्टा! मा दाव सहसा निष्क्रम। सप्पो त्ति भणीअदि।

भर्तः! मा तावत् सहसा निष्क्राम। सर्प इति भण्यते। १६.२६

इरावती हद्धी हद्धी। भट्टा इदो येव्व धावदि।

हा धिक् हा धिक्! भर्ता इत एव धावति। १६.२७

विदूषकः *सप्रहासं* कधं दंडकट्ठं एदं। अहं उण जाणे जं मए केदईकंटएहि दंसं करिअ सप्पस्स उवरि अअसो किदं तं मे फलिदं त्ति।

कथं दण्डकाष्ठमेतत्। अहं पुनर्जाने यन्मया केतकीकण्टकैर्दंशं कृत्वा सर्पस्योपरि अयशः कृतं तन्मे फलितमिति। १६.२८

प्रविश्य पटाक्षेपेण १६.२९

बकुलावलिका *ससंभ्रमं* मा दाव भट्टा पविसदु। इह कुटिलगई सप्प विअ दीसदि।

मा तावद् भर्ता प्रविशतु। इह कुटिलगतिः सर्प इव दृश्यते। १६.३०

इरावती *राजानं सहसोपेत्य* अवि णिब्बिग्घमणोरधो दिवासंकेदो मिधुणस्स?

अपि निर्विघ्नमनोरथो दिवासङ्केतो मिथुनस्य? १६.३१

सर्वे इरावतीं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः। १६.३२

राजा प्रिये! अपूर्वोऽयमुपचारः । १६.३३

इरावती वउलावलिए! दिट्ठिआ दुच्चाहिसारविसआ संपुण्णा दे पइण्णा?

बकुलावलिके! दिष्ट्या दूत्याभिसारविषया संपूर्णा ते प्रतिज्ञा। १६.३४

बकुलावलिका पसीदतु भट्टिणी! दद्दुरा वाहरंदि त्ति किं देवो पुहवीं वरिसिदुं सुमरदि?

प्रसीदतु भट्टिनि! दर्दुरा व्याहरन्तीति किं देवः पृथिव्यां वर्षितुं स्मरति? १६.३५

विदूषकः मा दाव। भवदिए दंसणमत्तेण अत्तभवं पणिवादलंघणं विसुमरिदो। भोदी उण अज्जवि पसादं ण गेण्हदि।

मा तावत्। भवत्याः दर्शनमात्रेणात्रभवान् प्रणिपातलङ्घनं विस्मृतः। भवती पुनरद्यापि प्रसादं न गृह्णाति। १६.३६

---

१. एकान्तव्यतिकर एष कामुकानामन्योन्यप्रणयफलागमोत्सुकानाम् ।
कस्मिन् वा कवितरि लभ्यतां विहाय शुङ्गानां कविमिह कालिदासमेकम् ।। रे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती होना चाहिए इस कृतघ्न का उपद्रव।

निपुणिका (विदूषक के ऊपर दण्डकाष्ठ डालती है।)

विदूषक एकाएक जागकर) अविहा अविहा। भो वयस्य! मेरे ऊपर सर्प आ गिरा।

राजा (सहसा पास पहुँच कर) सखे! मत डरो मत डरो।

मालविका (पीछे पीछे आकर) भर्त्तः, सहसा मत निकलो। सर्प है ऐसा कहा जा रहा है।

इरावती हा धिक् हा धिक्। भर्त्ता इधर ही दौड़ रहे हैं।

विदूषक हँसकर। यह तो दण्डकाष्ठ है। मैं समझा कि मैंने केतकी के काँटों से दंश बनाकर सर्प के ऊपर जो अपयश पटका था वह फल गया।

(प्रवेश कर पटाक्षेप के साथ)

बकुलावलिका (घबरा कर) महाराज प्रवेश न करें । यहाँ कुटिल सर्प के समान दिखाई दे रहा है ।

इरावती (राजा के पास सहसा पहुँचकर) 'इस (जोड़ी) का दिवासंकेत निर्विघ्न मनोरथ तो रहा?

(सभी इरावती को देखकर घबराते हैं।)

राजा यह उपचार तो अपूर्व है।

इरावती बकुलावलिका! दूत्य और अभिसार/कार की तेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई न?

बकुलावलिका प्रसन्न हों भट्टिनी, मेंढक बोल रहे हैं यह सोचकर क्या मेघ पृथिवी पर बरसने का स्मरण करता है?

विदूषक यह अंधेर कि आपके दर्शनमात्र से अत्रभवान् ने प्रणिपातलंघन को भुला दिया और आप हैं जो अभी तक प्रसन्न नहीं हो रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती कुविदा दाणिं अहं किं करिस्सं? कुपितेदानीमहं किं करिष्यामि? १६.३७

राजा एवमेतत्। अस्थाने कोप इत्यनुपपन्नं त्वयि। तथाहि — १६.३८

कदा मुखं वरतनु! कारणादृते
तवागतं क्षणमपि कोपपात्रताम् ।
अपर्व्वणि ग्रहकलुषेन्दुमण्डला
विभावरी कथय कथं भविष्यति [१] ।।१६।।

इरावती अट्ठाणे त्ति सुट्ठु वाहरिदं अज्जउत्तेण। अण्णसंकंतेसु अम्हाणं भाअहेएसु जइ उण कुप्पेअं तदो णं अहं हस्सा भवेअं।

अस्थान इति सुष्ठु व्याहृतमार्यपुत्रेण। अन्यसंक्रान्तेष्वस्माकं भागधेयेषु यदि पुनः कुप्येयम् ततो नन्वहं हास्या भवेयम्। १७.१

राजा त्वमन्यथा कल्पयसि। अहं पुनः सत्यमेव कोपस्थानं न पश्यामि। कुतः १७.२

नार्हति कृतापराधोऽप्युत्सवदिवसेषु परिजनो बन्धम् ।
इति मोचिते मयैते प्रणिपतितुं मामुपगते च ।।१७।।

इरावती णिउणिए गच्छ देविं वण्णावेहि दिट्ठो भवदीए पक्खवादो णं अज्ज त्ति।

निपुणिके! गच्छ। देवीं विज्ञापय– 'दृष्टो भवत्याः पक्षपातो नन्वद्येति'। १८.१

निपुणिका तध। तथा। *निष्क्रान्ता* १८.२

विदूषकः *आत्मगतम्* अहो अणत्थो संपडिदो। बंधणब्भट्ठो गिहकवोदो बिडालिआआलोए पडिदो। अहो अनर्थः संपतितः। बन्धनभ्रष्टो गृहकपोतो बिडालिकालोके पतितः। १८.३

प्रविश्य १८.४

निपुणिका *अपवार्य* भट्टिणी! जदिच्छादिट्ठाए माहविआए आचक्खिदं एव्वं क्खु एदं णिव्वुत्तं त्ति। भट्टिनि! यदृच्छादृष्टया माधविकयाख्यातम्– एवं खल्वेतन्निर्वृत्तमिति। *कर्णे कथयति* १८.५

इरावती *आत्मगतम्* उववण्णं सव्वं। अअं एत्थ बम्हबंधुणा किदो पओओ। *विदूषकं विलोक्य प्रकाशम्* इअं इमस्स कामतंतसचिवस्स णीदी। (आत्मगतम्) उपपन्नं सर्वम्। अयमत्र ब्रह्मबन्धुना कृतः प्रयोगः। (विदूषकं विलोक्य प्रकाशम्) इयमस्य कामतन्त्रसचिवस्य नीतिः। १८.६

---

१. द्र. कु ५.४४ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती कुपित भी होकर मैं अब करूँगी क्या?

राजा ठीक ही है। आप अस्थान पर कोप करें यह संभव नहीं। क्योंकि –

हे वरतनु! तुम्हारा मुख कब बिना कारण के क्षणभर के लिए भी कोप का आश्रय बना। पर्व (पूर्णिमा) न आवे तो रात्रि का चन्द्र ग्रहग्रसित कैसे हो सकता है।।१६।।

इरावती 'अस्थाने' यह ठीक कहा आर्यपुत्र ने। जब मेरा भाग्य अन्य में संक्रान्त हो गया तो फिर यदि मैं कोप करूँ तो मैं ही हँसी की पात्र बनूँगी।

राजा तुम अन्यथा कल्पना कर रही हो। मैं तो सचमुच कोप का कारण नहीं देखता। क्योंकि –

उत्सव के दिनों में अपराधी परिजन भी बन्धन में नहीं रखा जाता इसलिए इन दोनों को मैंने छुड़वा दिया और ये यहाँ मुझे प्रणाम करने हेतु आई।।१७।।

इरावती निपुणिके! जा और देवी से कह दे कि 'देख लिया आज आपका पक्षपात।

निपुणिका जो आज्ञा (चली जाती है)।

विदूषक (स्वगत) अहो। अनर्थ आ पड़ा। बंधन से भागा पालतू कबूतर बिल्ली को दिखाई दे गया।

(प्रवेश करके)

निपुणिका (अपवारण के साथ) भट्टिनी। एकाएक मिली माधविका ने बतलाया कि यह सब ऐसे हुआ। (कान में कहती है)

इरावती (स्वगत) ठीक ही है यह। यह इस क्षुद्र ब्राह्मण का रचा जाल है। (विदूषक को देखकर प्रकाश) इस कामतन्त्रसचिव की है यह नीति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः भोदि! जदि णीदिगदं एक्कं वि अक्खरं पढेअं तदो गाअत्तिं वि विसुमरेअं।

भवति! यदि नीतिगतमेकमप्यक्षरं पठेयं तदा गायत्रीमपि विस्मरेयम्। १८.७

राजा *आत्मगतम्* कथं नु खल्वस्मात् संकटादात्मानं मोचयिष्यामि? १८.८

प्रविश्य सावेगा १८.९

जयसेना देव! कुमारी वसुलच्छी कंदुअं अणुधावंदी पिंगलवाणरेण बलीअं तासिदा अंकणिसण्णा देवीए पवादकिसलअं विअ वेवमाणा ण दाणिं वि पकिदिं पडिवज्जइ। देव! कुमारी वसुलक्ष्मीः कन्दुकमनुधावन्ती पिङ्गलवानरेण बलीयस्त्रासिता अङ्कनिषण्णा देव्याः प्रवातकिसलयमिव वेपमाना नेदानीमपि प्रकृतिं प्रतिपद्यते। १८.१०

राजा कष्टम्। कातरो बालभावः। १८.११

इरावती *सावेगम्* तुवरदु अज्जउत्तो णं समासासिदुं। मा से संतासजणिदो विआरो बड्ढदु। त्वरतामार्यपुत्र एनां समाश्वासयितुम्। मास्याः संत्रासजनितो विकारो वर्धताम्। १८.१२

राजा अयमेनामहं संज्ञापयामि। *सत्वरं परिक्रामति।* १८.१३

विदूषकः साहु रे पिंगलवानर! साहु। परित्तादो तुए संकटादो सपक्खो।

साधु रे पिङ्गलवानर! साधु। परित्रातस्त्वया संकटात् स्वपक्षः। १८.१४

निष्क्रान्तौ राजा विदूषकश्च, इरावती निपुणिका प्रतीहारी च। १८.१५

मालविका हला देविं चिंतिअ वेवइ मे हिअअं । ण जाणे अदो वरं किं अणुहविदव्वं त्ति। सखि! देवीं चिन्तयित्वा वेपते मे हृदयम्। न जाने अतः परं किमनुभवितव्यं भविष्यतीति। १८.१६

नेपथ्ये १८.१७

अच्चरिअं अच्चरिअं। अपुण्णे पंचरत्ते दोहलस्स मुउलेहिं संणद्धो तवणीआसोअओ। जाव देवीए णिवेदेमि। आश्चर्यमाश्चर्यम्। अपूर्णे पञ्चरात्रे दोहदस्य मुकुलैः संनद्धस्तपनीयाशोकः। यावद् देव्यै निवेदयामि। १८.१८

उभे *श्रुत्वा प्रहृष्टे।* १८.१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक भवति! यदि नीति का एक भी अक्षर पढ़ा होऊँ तो गायत्री भी भूल जाऊँ।

राजा (स्वगत) इस संकट से अपने को कैसे छुटकारा दिलाऊँ।

(प्रवेश कर आवेग सहित)

जयसेना देव! कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद के पीछे दौड़ती हुई पिंगलवानर से बहुत अधिक डर गई है। देवी की गोद में बैठी प्रवातकिसलय के समान काँप रही है, अभी तक ठीक नहीं हो रही है।

राजा बड़ा कष्ट है। बचपन कातर होता ही है।

इरावती (आवेगसहित) जल्दी करें आर्यपुत्र उसे ढाढ़स बँधाने के लिए। उसका भय से उत्पन्न विकार बढ़े न।

राजा यह मैं उसे समझाता हूँ। (त्वरा के साथ घूमता है)

विदूषक साधु रे पिंगल वानर साधु! बचा लिया तूने संकट से अपने पक्ष को।

(निकल गए राजा विदूषक, इरावती, निपुणिका और प्रतीहारी।)

मालविका सखि! देवी का स्मरण कर मेरा हृदय काँप रहा है। न जाने इसके बाद क्या भोगना है?

(नेपथ्य में)

आश्चर्य, आश्चर्य, दोहद के पाँच दिन पूरे नहीं हुए और कलियों से लद गया यह तपनीयाशोक। चलूँ देवी को बतलाऊँ।

दोनों (सुनकर खुश होती हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका आस्ससिदु सहि! सच्चप्पइण्णा देवी।

आश्वसितु सखि! सत्यप्रतिज्ञा देवी। १८.२०

मालविका तेण हि पमदवणपालिआए पिट्ठदो होम्ह।

तेन हि प्रमदवनपालिकायाः पृष्ठतो भवाव। १८.२१

बकुलावलिका तध। तथा। १८.२२

निष्क्रान्ते १८.२३

इति मालविकाग्निमित्रे नाटके कपोतबिडालो नाम चतुर्थोऽङ्कः।।४।।[१] १८.२४

---

१. कविनटगतौ यौ वै कौचित् परस्परसंहतौ प्रभवत इह व्यापारौ द्वौ चमत्कृतये सताम्।
निपुणनिपुणं दृब्धौ तावत्र वस्तुनि विस्मयाऽऽवहतनुतया वाचा सुश्लिष्टया प्रतिपादिते।।
प्रतिपदमिह पाठे भिद्यमाने न बुद्धिः प्रभवति परमार्थं वेदितुं हन्त सद्यः।
न तु विरमति साध्वी सा ततः संप्रसादं कमपि कुरुत एव प्रातिभस्तेन लोकः।।
१८.९.२००१ एक्टन अमेरिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका सखी आश्वस्त रह। देवी सत्यप्रतिज्ञ हैं।

मालविका तो प्रमदवनपालिका के पीछे हो लें।

बकुलावलिका ठीक। (दोनों निकल जाती हैं)

इस प्रकार कालिदास की कृति मालविकाग्निमित्र नाटक में
कपोतबिडाल नामक चतुर्थ अङ्क पूर्ण हुआ।। ४।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चमाङ्कारम्भकप्रवेशकः ।। १.१

।। १ ।।

ततः प्रविशत्युद्यानपालिका १.२

उद्यानपालिका उवक्खित्तो मए किदसक्कारविहिणा तवणीआसोअस्स भित्तिवेदि–आबंधो। जाव अणुटिठ्दणिओअं अत्ताणं देवीए णिवेदेमि। *परिक्रम्य* अहो देवस्स अणुकंपणिज्जा मालविआ। तस्सिं तह चंडिआ देवी। इमिणा असोअकुसुमवुत्तंतेण पसादसुमुही हविस्सदि। कहिं णु क्खु भवे देवी? *विलोक्य* अम्मो एसो देवीए परिजणाभ्यन्दरो किंवि जदुमुद्दालंछिदं मंजूसं गेण्हिअ चतुस्सालादो खुज्जो णिक्कामदि। पुच्छिस्सं दाव णं।

उपक्षिप्तो मया कृतसत्कारविधिस्तपनीयाशोकस्य भित्तिवेदिकाबन्धः। यावदनुष्ठित–नियोगमात्मानं देव्यै निवेदयामि। (परिक्रम्य) अहो दैवस्य अनुकम्पनीया मालविका! तस्यां तथा चण्डी देवी अनेनाशोककुसुमवृत्तान्तेन प्रसादसुमुखी भविष्यति। कुत्र नु खलु देवी भवेत्? (विलोक्य) अहो एष देव्याः परिजनाभ्यन्तरः किमपि जतुमुद्रालाञ्छितां मञ्जूषां गृहीत्वा चतुःशालतः कुब्जः सारसको निष्क्रामति। पृच्छामि तावदेनम्। १.३

।। २ ।।

ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टहस्तः कुब्जः १.४

उद्यानपालिका सारसक! कहिं पत्थिदोसि? सारसक! कुत्र प्रस्थितोऽसि? १.५

सारसकः महुअरिआए! विज्जापारिआणं बम्हणाणं इमाणि दक्खिणानिक्काणि[1] पुरोहिदस्स हत्थं पावइस्सं। मधुकरिके! विद्यापारगाणां ब्राह्मणानां इमानि दक्षिणानिष्काणि पुरोहितस्य हस्तं प्रापयिष्यामि। १.६

उद्यानपालिका अह किंणिमित्तं? अथ किंनिमित्तम्? १.७

---

१. निष्केति काचित् विपणनमुद्रा ईशुसंवत्सरात् प्रागेव चलति स्मेति पुराविदः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चमाङ्कारम्भ–प्रवेशक।।

।। १ ।।

(प्रवेश करती है उद्यानपालिका)

उद्यानपालिका तपनीयाशोक के चबूतरे की भित्तियों को मैंने सजा दिया है। चलूँ देवी से चलकर कहूँ 'उनकी आज्ञा का पालन हो गया'। (घूम कर) अहो मालविका पर कितनी कृपा है विधाता की। उस पर उतनी नाराज थी देवी। इस अशोक–कुसुम के वृत्तान्त से अब प्रसादसुमुखी हो जाएगी। कहाँ होंगी इस समय देवी? (देख कर) ओहो, यह देवी का अभ्यन्तर परिचारक कुबड़ा सारसक लाख की मुद्रा से मुद्रित मंजूषा लिए हुए चौसाले से निकल रहा है। इससे पूछूँ।

।। २ ।।

(प्रवेश करता है उक्त स्थिति में कुब्ज।)

उद्यानपालिका सारसक कहाँ चला?

सारसक मधुकरिके! विद्याओं में आचार्य ब्राह्मणों को देने हेतु ये दक्षिणा 'निष्क' पुरोहित के हाथ में पहुँचाना है।

उद्यानपालिका किस निमित्त?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारसकः जदप्पहुदि सेणावदिजण्णतुरंगक्खणे णिउत्तो भट्टदारओ वसुमित्तो तदप्पहुदि तस्स आउसणिमित्तं [1]णिक्कसदसुवण्णपरिमाणं दक्खिणं देवी दक्खिणीएहिं परिग्गाहेदि। यतः प्रभृति सेनापतियज्ञतुरङ्गरक्षणे नियुक्तो भर्तृदारको वसुमित्रः ततः प्रभृति तस्यायुर्निमित्तं निष्कशतसुवर्णपरिमाणां दक्षिणां देवी दक्षिणीयैः परिग्राहयति। १.८

उद्यानपालिका जुज्जइ। अह कहिं देवी? किं वा अणुचिट्ठदि?
युज्यते। अथ कुत्र देवी? किं वानुतिष्ठति? १.९

सारसकः मंगलघरे आसणत्था भविअ विदब्भविसआदो भादुणा वीरसेणेण पेसिदं लेहं लेहकरीहिं वाइअमाणं सुणादि। मङ्गलगृहे आसनस्था भूत्वा विदर्भविषयाद् भ्रात्रा वीरसेनेन प्रेषितं लेखं लेखकरीभिर्वाच्यमानं शृणोति। १.१०

उद्यानपालिका को उण विदब्भराअवुत्तंतो? कः पुनर्विदर्भराजवृत्तान्तः? १.११

सारसकः वसीकिदो क्खु वीरसेनप्पमुहेहिं भट्टिणो विअअदण्डेहिं विदब्भणाहो। मोइदो से दाआदो माहवसेणो। तेण महासाराणि रदणाणि वाहणाणि सिप्पआरिआभूइट्ठं परिअणं अ उवाअणीकरिअ भट्टिणो सआसं पेसिदो दूदो त्ति। वशीकृतः किल वीरसेनप्रमुखैर्भर्तुर्विजयदण्डैर् विदर्भनाथः। मोचितोऽस्य दायादो माधवसेनः। तेन महासाराणि रत्नानि वाहनानि शिल्पकरिका–भूयिष्ठं परिजनञ्चोपायनीकृत्य भर्तुः सकाशं प्रेषितो दूत इति। १.१२

उद्यानपालिका गच्छ अणुचिट्ठ अत्तणो णिओअं। अहं वि देविं पेक्खिस्सं।
गच्छानुतिष्ठात्मनो नियोगम्। अहमपि देवीं प्रेक्षिष्ये। १.१३

उभौ *निष्क्रान्तौ* १.१४

॥ ३ ॥

ततः प्रविशति प्रतीहारी १.१५

प्रतीहारी आणत्तम्हि असोअ–सक्कार–वावुदाए देविए विण्णावेहि अज्जउत्तं इच्छम्मि अज्जउत्तेण सह असोअरुक्खस्स पसूणलच्छिं पञ्चक्खीकादुं त्ति। जाव धम्मासणागदं देवं पडिवालेमि। आज्ञप्तास्मि अशोकसत्कार–व्यापृतया देव्या – 'विज्ञापय आर्यपुत्रम् इच्छामि आर्यपुत्रेण सहाशोकवृक्षस्य प्रसूनलक्ष्मीं प्रत्यक्षीकर्तुमि'ति। यावद् धर्मासनागतं देवं प्रतिपालयामि। *परिक्रामति* १.१६

---

१. एतन्मुद्राविंशतिं बिभ्रदेकं कठलानामकं ग्रैवेयकमिदानीं यावदपि प्रचलितमासीत्। एतदपि कुमारसंभवे प्रोल्लिख्यते जयाशा यत्र चास्माकमिति २.४९ पद्ये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारसक जब से सेनापति (पुष्यमित्र) के यज्ञतुरङ्ग की रक्षा में नियुक्त किया गया है राजकुमार वसुमित्र तबसे उसके आयुष्य के निमित्त निष्कशत सुवर्ण परिमाण की दक्षिणा देवी दक्षिणायोग्य ब्राह्मणों को प्रदान करती हैं।

उद्यानपालिका ठीक ही है। अच्छा देवी हैं कहाँ? क्या कर रहीं हैं?

सारसक मंगलगृह में आसन पर बैठ विदर्भ जनपद से भाई वीरसेन ने एक लेख भेजा है, उसे लेखकरियाँ बाँच रही हैं। वे सुन रही हैं।

उद्यानपालिका विदर्भराज का क्या है वृत्तान्त?

सारसक मालिक की वीरसेन आदि की विजयसेना ने वश में कर लिया है विदर्भनाथ को। दायाद माधवसेन को छुड़ा दिया है। उसने महासार रत्न और महासार वाहन और शिल्पकरिकाबहुल परिजन भेंट के रूप में लेकर दूत भेजा है।

उद्यानपालिका जा, अपना काम कर। मैं भी देवी के दर्शन करूँगी।

दोनों (निकल जाते हैं।)

॥ ३ ॥

(प्रवेश करती है प्रतीहारी।)

प्रतीहारी अशोक के सत्कार में व्यस्त देवी ने मुझे आज्ञा दी है, कि – आर्यपुत्र से कहो कि चाहती हूँ आपके साथ अशोकवृक्ष की प्रसूनलक्ष्मी का प्रत्यक्ष करना। चलूँ, धर्मासन से आए देव की प्रतीक्षा करूँ। (घूमती है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपथ्ये १.१७

वैतालिकौ विजयतां देवः। १.१८

प्रथमः दिष्ट्या दण्डैरेव रिपुशिरस्सु वर्त्तते देवः। १.१९

परभृतकलव्याहारेषु त्वमात्तरतिर्मधुं
नयसि विदिशातीरोद्यानेष्वनङ्ग इवाङ्गवान् ।
विजयकरिणामालानत्वं गतैः प्रबलस्य[1] ते
वरद! वरदारोधोवृक्षैः सहावनतो रिपुः ॥ १॥

द्वितीयः २.१

विरचितपदं वीरप्रीत्या सुरोपम! सूरिभि–
श्चरितमुभयोर्मध्येकृत्य स्थितं क्रथकैशिकान् ।
तव हृतवतो दण्डानीकैर्विदर्भपतेः श्रियं
परिघगुरुभिर्दोर्भिर्विष्णोः प्रसह्य च रुक्मिणीम्[2] ॥ २॥

प्रतीहारी एसो जअसद्दसूइदप्पत्थाणो भट्टा इदो एव्व आअच्छदि। अहं वि दाव इमस्स पमुहादो ओसरिअ एदं मुहालिंदतोरणं समस्सिदा होमि।

एष जयशब्दसूचितप्रस्थानो भर्ता इत एवागच्छति। अहमपि तावदस्य प्रमुखादपसृत्य एतन्मुखालिन्दतोरणं समाश्रिता भवामि। *एकान्ते स्थिता* ३.१

॥ इति प्रवेशकः[3] ॥ ३.२

---

१. **मालानत्वं गतैः प्रबलस्य** इति काग्र. पाठः। **मालानाङ्कैरुपोढबलस्य** इति हामा., काग्र. पाठभेदः। अत्र रघुवंश ४.६९ संवादः।

२. उक्तिरियमिदमेव नाटकं विसिनोति। क्रथकैशिका अत्र विषयः। वैवाहिको विधिरेवात्र साधनं यज्ञमाधवसेनयोः समबलत्वौपयिके विदर्भद्वैराज्ये। एवमनुपद्रवेदानीं पूर्वतः पश्चिमां यावत् संपूर्णापि भारतीया भूः। एवं द्वितीयो वैतालिकोऽत्र कालिदास एव।

३. वैतालिकोक्त्योः संस्कृतबद्धत्वात् प्रवेशकबाह्यत्वमुत्प्रेक्ष्येत, अथवा मिश्रविष्कम्भकत्वं स्वीक्रियेत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नेपथ्य में)

दो वैतालिक — देव की जय हो!

एक — संयोग से ही देव दण्डों (सेनाओं) से ही रिपुओं के सिरों पर विद्यमान हैं। तुम तो यहाँ कोयल की मधुर कूक में रस लेते हुए वसन्त को विदिशा के तीरोद्यानों में, शरीरधारी काम के समान बिता रहे हो और उधर हे वरद! शत्रु झुक गया विजय दिलाने वाले हाथियों के बन्धन बने वरदा तटवर्ती वृक्षों के ही साथ। आप उससे बलवान् जो थे ॥१॥

दूसरा — क्रथकैशिक (विदर्भों) को केन्द्र बना करके दो चरितों पर कवियों ने रचनाएँ बनाई हैं। एक तो तुम्हारा जिन्होंने दण्डरूप सेनाओं से विदर्भपति की श्री का हरण किया है और एक परिघ जैसी दीर्घ भुजाओं से रुक्मिणी को जबरन हरण करने वाले विष्णु (कृष्ण) का॥ २॥[१]

प्रतीहारी — मालिक इधर ही आ रहे हैं, क्योंकि उनका जयकारा होने लगा है। मैं भी तब तक इसके सामने से हटकर इस सामने के अलिन्द के तोरण से टिककर खड़ी हो जाती हूँ।

(एकान्त में खड़ी हो जाती है)

॥ प्रवेशक समाप्त ॥

---

१. यह द्वितीय वैतालिक इस नाटक का कर्त्ता स्वयं कालिदास ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ पञ्चमोऽङ्कः ।। ३.३

।। ४ ।।

ततः प्रविशति सवयस्यो राजा। ३.४

राजा ३.५

कान्तां विचिन्त्य सुलभेतरसंप्रयोगां
श्रुत्वा विदर्भपतिमानमितं बलैश्च ।
धाराभिरातप इवाभिहतं सरोजं
दुःखायते मम मनः सुखमश्नुते च ।। ३ ।।

विदूषकः जह अहं पेक्खामी तह एक्कंतसुहिदो भवं हविस्सदि।

यथाहं प्रेक्षे तथा एकान्तसुखितो भवान् भविष्यति। ४.१

राजा कथमिव? ४.२

विदूषकः अज्ज किल देविए एव्वं पंडितकोसिई भणिदा भअवदि! जं तुमं पसाहणगव्वं वहसि तं दंसेहि मालविआए सरीरे वेदब्भं विवाहणेवत्थं[१] त्ति। ताए सविसेसालंकिदा मालविआ। तत्तभोदी कदावि पूरए भवदो वि मणोरधं। अद्य किल देव्या एवं पण्डितकौशिकी भणिता– भगवति! यत् त्वं प्रसाधनगर्वं वहसि तद् दर्शय मालविकायाः शरीरे वैदर्भं विवाहनेपथ्यमिति। तया सविशेषालंकृता मालविका। तत्रभवती कदाचित् पूरयेद् भवतोऽपि मनोरथम्। ४.३

राजा सखे! मदपेक्षानुवृत्त्या निवृत्तेर्ष्याया धारिण्याः [२]पूर्व्वचरितैः संभाव्यत एवैतत्। ४.४

प्रतीहारी *उपगम्य* जेदु भट्टा! देवी विण्णावेदि तवणीआसोअस्स कुसुमसोहग्ग–दंसणेण मह आरंभो सहलो करीअदु त्ति। जयतु भर्ता। देवी विज्ञापयति– तपनीयाशोकस्य कुसुमसौभाग्यदर्शनेन ममारम्भः सफलः क्रियतामिति। ४.५

राजा ननु तत्रैव देवी तिष्ठति? ४.६

---

१. वैदब्भम् इति हामायां नास्ति। काग्र. पुनः वैदब्भविवाहेति पठति।

२. ०मदपेक्षामनुमाप्यानया धारिण्याऽपूर्वच० इति हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चम अङ्क ।।

।। ४ ।।

(प्रवेश करता है वयस्य के साथ राजा)

राजा — यह सोचकर कि कान्ता दुर्लभ है और सुनकर कि विदर्भपति को सेनाओं ने झुका दिया है मेरा मन दुःखी भी हो रहा है और सुखी भी, धूप में खिले और धाराओं से आहत कमल पुष्प के समान।। ३ ।।

विदूषक — जैसा मुझे लग रहा है आप निश्चित रूप से सुखी होने वाले हैं।

राजा — कैसे?

विदूषक — आज पण्डित कौशिकी से देवी ने कहा भगवति! आपको जो प्रसाधन का गर्व है उसे दिखलाएँ मालविका के शरीर पर वैदर्भ विवाह–नेपथ्य रचकर। उसने मालविका को विशेष रूप से अलंकृत किया। कदाचित् वे (देवी) आपका मनोरथ पूरा कर दें।

राजा — ऐसा होना सम्भव है । सखे! धारिणी पहले भी मुझे आतुर देख कर ईर्ष्या छोड़कर ऐसा कर चुकी है।

प्रतीहारी — (पास में जाकर) स्वामी की जय हो। देवी का निवेदन है कि तपनीयाशोक के कुसुम–सौभाग्य के दर्शन कर मेरा उत्सव सफल करें।

राजा — क्या देवी वहीं हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारी अध किं। जहरिहसंहारासुहितं अंतेउरं विसज्जिअ मालविआपुरोएण अत्तणो परिअणेण सह देवं पडिवालेदि। अथ किम् यथार्हसम्भारसुखितमन्तःपुरं विसृज्य मालविकापुरोगेण आत्मनः परिजनेन सह देवं प्रतिपालयति। ४.७

राजा *सहर्षं विदूषकं विलोक्य* जयसेने! गच्छाग्रतः। ४.८

प्रतीहारी एदु एदु देवो। एत्वेतु देवः। *परिक्रामति* ४.९

विदूषकः *विलोक्य* भो वअस्स! किंवि परिवुत्तजोव्वणो विअ वसंतो पमदवणे लक्खीअदि। भो वयस्य! किंचित्परिवृत्तयौवन इव वसन्तः प्रमदवने लक्ष्यते। ४.१०

राजा यथाह भवान् — ४.११

अग्रे विकीर्ण-कुरबक-फल-जालक-भिद्यमान-सहकारम् ।
परिणामाभिमुखमृतोरुत्सुकयति यौवनं चेतः ॥४॥

विदूषकः *परिक्रम्य* अहो! अअं सो दिण्णणेवत्थो विअ कुसुमत्थवएहिं तवणीआसोओ। ओलोअदु भवं। अहो! अयं स दत्तनेपथ्य इव कुसुमस्तबकैः स्तपनीयाशोकः। अवलोकयतु भवान्। ५.१

राजा स्थाने खलु प्रसवमन्थरोऽयमभूत् यदिदानीमनन्यसाधारणीं शोभामुद्वहति। पश्य — ५.२

सर्वाशोकतरूणां प्रथमं सूचितवसन्तविभवानाम् ।
निर्वृत्तदोहदेऽस्मिन् संक्रान्तानीव कुसुमानि ॥५॥

विदूषकः तधा। भो वीसद्धो होहि अम्हेसु संणिहिदेसु धारिणी पासपरिवट्टिणीं मालविअं अणुमण्णेदि। तथा। भोः विस्रब्धो भव। अस्मासु संनिहितेषु धारिणी पार्श्वपरिवर्तिनीं मालविकामनुमन्यते। ६.१

राजा *सहर्षं* सखे! पश्य— ६.२

मामियमभ्युत्तिष्ठति देवी विनयादनूत्थिता प्रियया ।
विस्मृतहस्तकमलया नरेन्द्रलक्ष्म्या वसुमतीव ॥६॥

॥५॥

ततः प्रविशति धारिणी मालविका परिव्राजिका विभवतश्च परिवारः ७.१

मालविका *आत्मगतम्* जाणामि णिमित्तं कोदुआलंआरस्स तधावि भिसिणीवत्तगदं सलिलं विअ वेवदि मे हिअअं। दक्खिणेदरं णअणं अ पप्फुरदि।

जानामि निमित्तं कौतुकालंकारस्य अथापि बिसिनीपत्रगतं सलिलमिव वेपते मे हृदयम्। दक्षिणेतरं नयनञ्च प्रस्फुरति। ७.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारी — और क्या। यथोचित सामान से सुखपूर्ण अन्तःपुर को छोड़ वे मालविका आदि अपने परिजनों के साथ देव की प्रतीक्षा कर रही हैं।

राजा — (हर्ष के साथ विदूषक को देखकर) जयसेने! आगे चल।

प्रतीहारी — आएँ आएँ देव! (घूमते हैं।)

विदूषक — (देखकर) भो वयस्य! ऐसा लगता है कि वसंत का यौवन कुछ कुछ लौट आया है प्रमदवन में।

राजा — जैसा कहा तुमने—

ऋतु का यह यौवन परिपक्व होने जा रहा है। देखो इस समय कुरबक के लाल फलों के बीच सहकार का अङ्कुर फूट रहा है। इससे चित्त में उत्सुकता जाग उठी है ।।४।।

विदूषक — (घूमकर) यह तपनीयाशोक ऐसा लग रहा है कि इसे अलंकार पहना दिए गए हैं, क्योंकि इसमें पुष्पगुच्छ निकल आए हैं, देखिए।

राजा — इसने कुसुम के प्रसव में भी मन्थरता ठीक ही दिखलाई, क्योंकि अब इसकी शोभा अन्य किसी भी वृक्ष में नहीं है। देखो—

सभी अशोक वृक्षों के वे सभी पुष्प, जिन्होंने वसन्त के वैभव की सूचना दी थी, इसी वृक्ष में इकट्ठे हो गए हैं दोहद के कारण।।५।।

विदूषक — तुम ठीक कह रहे हो। विश्वस्त हो जाओ। देखो हमारे सामने भी धारिणी मालविका को साथ लिए हुए है ।

राजा — (सहर्ष) सखे! देख —

देवी मेरा अभ्युत्थान कर रही है और इसके पीछे उठकर खड़ी है प्रिया! ऐसा लग रहा है कि जैसे वसुमती, हाथ का कमल छोड़कर उपस्थित नरेन्द्रलक्ष्मी से युक्त हो ।।६।।

।।५।।

(प्रवेश करती हैं धारिणी, मालविका, परिव्राजिका और चारों ओर खड़े परिजन)

मालविका — (स्वगत) जान तो रही हूँ इस कौतुक (कंगन) और अलंकार का कारण तथापि बिसिनीपत्रगत जलबिन्दु सा काँप रहा है मेरा हृदय। साथ ही फड़क रहा है बाँया नेत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः भो वअस्स! विवाहणेवत्थेण सविसेसं क्खु सोहदि अत्तभोदी मालविआ।
भो वयस्य! विवाहनेपथ्येन सविशेषं खलु शोभते अत्रभवती मालविका। ७.३

राजा पश्याम्येनाम्। एषा — ७.४

अनतिलम्बिदुकूलनिवासिनी [1]लघुभिराभरणैः प्रतिभाति मे ।
उडुगणैरुदयोन्मुखचन्द्रिका हतहिमैरिव चैत्रविभावरी ।। ७।।

धारिणी *उपेत्य* जेदु जेदु अज्जउत्तो। जयत्वार्यपुत्रः। ८.१

विदूषकः वड्ढदु भोदी। वर्धतां भवती। ८.२

परिव्राजिका विजयतां देवः। ८.३

राजा भगवति! अभिवादये। ८.४

परिव्राजिका अभिप्रेतसिद्धिरस्तु। ८.५

धारिणी *सस्मितम्।* अज्जउत्त! एस दे अम्हेहिं तरुणीअणसहाअस्स असोओ संकेतगेहको [2]कप्पिदो। आर्यपुत्र! एष ते अस्माभिस्तरुणीजनसहायस्य अशोकः संकेतगृहं कल्पितः। ८.६

विदूषकः भो! आराहिओसि। भोः आराधितोऽसि। ८.७

राजा *सव्रीडमशोकमभितः परिक्रामन्— ८.८*

नायं देव्या भाजनत्वं न नेयः सत्काराणामीदृशानामशोकः ।
यः सावज्ञो माधवश्रीनियोगे पुष्पैः शंसत्यादरं त्वत्प्रयत्ने ।। ८।।

विदूषकः भो! वीसद्धो भविअ तुमं जोव्वणवदिं इमं पेक्ख।
भो! विस्रब्धो भूत्वा त्वं यौवनवतीमिमां प्रेक्षस्व। ९.१

धारिणी कं ? काम्? ९.२

विदूषकः भोदि! तवणीआसोअस्स कुसुमलच्छीं।
भवति! तपनीयाशोकस्य कुसुमशोभाम्। ९.३

सर्वे *उपविशन्ति।* ९.४

राजा *मालविकां विलोक्य* कष्टं खलु सन्निधिवियोगः — ९.५

---

१. बहुभिरिति काग्र.। प्रस्तुतस्तु पाठः हामागतः।
२. संकप्पिदो इति हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक भो वयस्य! विवाह नेपथ्य से अत्रभवती मालविका और अधिक शोभित हो रही है।

राजा देख रहा हूँ इसे– **इसने जो दुकूल पँहना है वह** (विदर्भदेश की रीति के अनुसार) **अधिक लम्बा नहीं है और आभरण भी छोटे छोटे ही धारण किए हैं तो यह चैत्र मास की रात्रि सी लग रही है जिसमें ओस को मिटा चुके उडुगण** (नक्षत्रसमूह) **छिटके हों और चाँदनी उदित होने वाली हो।।७।।**

धारिणी (पास पहुँचकर) आर्यपुत्र की जय हो, जय हो!

विदूषक आपकी वृद्धि हो।

परिव्राजिका देव की जय हो!

राजा भगवति! अभिवादन।

परिव्राजिका आपकी इच्छा पूर्ण हो।

धारिणी (मुसकुराकर) आर्यपुत्र! हमने आपके लिए तरुणियों के साथ संकेतगृह बनाया है अशोक।

विदूषक भो! आराधना कर दी गई आपकी।

राजा (लज्जापूर्वक अशोक की प्रदक्षिणा करते हुए) **आपको इस अशोक का ऐसा सत्कार अवश्य ही करना चाहिए, जिसने वसन्तश्री की अवज्ञा कर आपके शासन को आदर दिया फूलने में।।८।।**

विदूषक भो! पूरे इतमीनान के साथ इस यौवनवती को देखो।

धारिणी किसे?

विदूषक भवति! तपनीय अशोक की कुसुमशोभा को।

सब (बैठ जाते हैं)

राजा (मालविका को देखकर) सन्निधि भी और वियोग भी कष्टकर है निश्चित ही –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहं रथाङ्गनामेव प्रिया सहचरीव मे ।
अननुज्ञातसंपर्का धारिणी रजनीव नौ ॥ ९॥

ततः प्रविशति कञ्चुकी १०.१

कञ्चुकी विजयतां देवः। अमात्यो विज्ञापयति– विदर्भविषयोपायने द्वे शिल्पकारिके मार्गपरिश्रमादलघुशरीरे इति पूर्वं न प्रवेशिते। संप्रति देवोपस्थानयोग्ये तदाज्ञां देवो दातुमर्हतीति। १०.२

राजा प्रवेशय ते। १०.३

॥ ६॥

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः! *निष्क्रम्य ताभ्यां सह प्रविश्य* इत इतो भवत्यौ। *उभे उपसर्पतः* १०.४

प्रथमा *जनान्तिकम्* हला मदणिए! अपुव्वं इमं राअउलं पविसन्तीए पसीददि मे हिअअं।

सखि मदनिके! अपूर्वमिदं राजकुलं प्रविशन्त्याः प्रसीदति मे हृदयम्। १०.५

द्वितीया जोसिणिए! मह वि एव्वं येव। अत्थि क्खु लोकवादो आआमि सुहं दुक्खं वा हृदयसमवत्था कधेदि त्ति। ज्योत्स्निके! ममाप्येवमेव। अस्ति खलु लोकप्रवादः आगामि सुखं दुःखं वा हृदयसमवस्था कथयतीति। १०.६

प्रथमा सो सच्चो दाणिं होदु। स सत्य इदानीं भवतु। १०.७

कञ्चुकी एष देव्या सह देवस्तिष्ठति। उपसर्पेतां भवत्यौ। १०.८

उभे *उपसर्पतः*। १०.९

मालविका परिव्राजिका च चेट्यौ विलोक्य परस्परं विलोकयतः १०.१०

उभे *प्रणिपत्य* जेदु भट्टा। जेदु भट्टिणी। जयतु भर्ता। जयतु भट्टिनी। १०.११

राजा इतो निषीदतम् । १०.१२

उभे *उपविष्टे* । १०.१३

राजा कस्यां कलायामभिविनीते भवत्यौ? १०.१४

उभे भट्टा! संगीदए अब्भंदरे म्हः। भर्तः! संगीतके अभ्यन्तरे स्वः। १०.१५

राजा देवि! गृह्यतामनयोरन्यतरा। १०.१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी विडम्बना है। मैं ठहरा रथाङ्गनाम(चक्रवाक) सा, प्रिया है सहचरी (चक्रवाकी), धारिणी है रात्रि जो हम दोनों के संपर्क की अनुज्ञा नहीं दे रही।। ९।।

(प्रवेश करता है कञ्चुकी)

कञ्चुकी — देव की जय हो। अमात्य ने सूचना भेजी है कि – विदर्भ क्षेत्र के उपहार में दो शिल्पकरियाँ मार्ग के परिश्रम के कारण थकी थीं इसलिए पहले इन्हें उपस्थित नहीं किया। अब ये आपके समक्ष उपस्थित होने की स्थिति में हैं। देव की आज्ञा हो।

राजा — भेजो उन्हें।

।। ६ ।।

कञ्चुकी — जैसी महाराज की आज्ञा (निकल कर उन दोनों के साथ फिर से प्रवेश करता है।) इधर से इधर से। (दोनों पास पहुँचती हैं।)

प्रथमा — (जनान्तिक) हला मदनिके! यह राजकुल अपूर्व है। प्रविष्ट हुई कि मेरा चित्त प्रसन्न होने लगा।

द्वितीय — ज्योत्स्निके! मुझे भी ऐसा ही लग रहा है। कहा जाता है आगामी सुख या दुःख की सूचना हृदय की समवस्था से मिल जाती है।

प्रथमा — वह सत्य हो।

कञ्चुकी — ये बैठे हैं देव देवी के साथ। पास जावें आप।

दोनों — (पास पहुँचती हैं।)

(मालविका और परिव्राजिका चेटियों को देखकर एक दूसरे को देखती हैं)

दोनों — (प्रणाम कर) स्वामी की जय हो, जय हो देवी की।

राजा — इधर बैठें।

दोनों — (बैठ जाती हैं।)

राजा — आप किस कला में शिक्षित हैं?

दोनों — स्वामिन्! संगीत में है हमारा कुछ परिश्रम।

राजा — देवि! चुन लें इनमें से कोई एक!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारिणी मालविए! इदो पेक्ख। कदरा दे संगीदसहआरिणी रुच्चदि?

मालविके! इतः पश्य। कतरा ते संगीतसहकारिणी रोचते? १०.१७

उभे *मालविकां दृष्ट्वा* अम्हो भट्टदारिआ। जेदु जेदु भट्टदारिआ। अहो भर्तृदारिका। जयतु जयतु भर्तृदारिका। *प्रणम्य तया सह बाष्पं विसृजतः।* १०.१८

सर्वे सविस्मयं विलोकयन्ति १०.१९

राजा के भवत्यौ? का वा इयम् ? १०.२०

उभे भट्टा! एसा अम्हाणं भट्टदारिआ। भर्तः! एषास्माकं भर्तृदारिका। १०.२१

राजा कथमिव? १०.२२

उभे सुणादु भट्टा! जो सो भट्टिणा विअअदंडेहिं विदब्भणाधं वसीकरिअ बंधणादो मोइदो कुमारो माहवसेणो णाम तस्स इयं कणीअसी बहिणिआ मालविआ णाम।

शृणोतु भर्ता! यः स भर्त्रा विजयदण्डैर्विदर्भनाथं वशीकृत्य बन्धनान्मोचितः कुमारो माधवसेनो नाम तस्येयं कनीयसी भगिनी मालविका नाम। १०.२३

धारिणी कथं राअदारिआ इअं। चंदणं क्खु मए पादुआवदेसेण दूसिदं।

कथम् राजदारिकेयम्। चन्दनं खलु मया पादुकोपयोगेन दूषितम्। १०.२४

राजा अथ अत्रभवती कथमित्थंभूता? १०.२५

मालविका *निःश्वस्य आत्मगतम्* । विहिणिओएण। विधिनियोगेन। १०.२६

द्वितीया सुणादु भट्टा! दाआदवसंगदे भट्टदारए माहवसेणे तस्स अमच्चेण अज्जसुमदिणा अम्हारिसं परिअणं उज्झिअ गूढं आणीदा एषा।

शृणोतु भर्ता! दायादवशंगते अस्माकं भर्तृदारके माधवसेने तस्यामात्येनार्यसुमतिना अस्मादृशं परिजनमुज्झित्वा गूढमानीतैषा। १०.२७

राजा श्रुतपूर्व्वं मयैतत्। ततस्ततः? १०.२८

द्वितीया भट्टा! अदो अवरं ण जाणामि। भर्तः! अतः परं न जानामि। १०.२९

परिव्राजिका अतः परमहं मन्दभागिनी कथयिष्यामि। १०.३०

उभे भट्टदारिए! अज्जकोसिइए विअ सरसंजोगो। णं सा एव्व।

भर्तृदारिके! आर्यकौशिक्या इव स्वरसंयोगः। ननु सैव। १०.३१

मालविका अध किं। अथ किम्। १०.३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारिणी — मालविके! इधर देख तुझे संगीत में कौन सी सहयोगिनी पसंद है।

दोनों — (मालविका को देख कर) अहो यह तो हमारी राजकुमारी है। राजकुमारी आपकी जय हो, जय हो! (प्रणाम करती हैं और तीनों आँसू बहाती हैं।)

(सब विस्मयपूर्वक देखते हैं।)

राजा — आप दोनों कौन हैं और ये कौन?

दोनों — स्वामिन्! यह हमारी राजकुमारी है।

राजा — कैसे?

दोनों — सुनें स्वामी! आपकी विजयसेना ने विदर्भनाथ को जीतकर जिन कुमार माधवसेन को बन्धन से छुड़ाया है, यह उनकी छोटी बहन है। नाम है इसका मालविका।

धारिणी — अच्छा यह राजपुत्री है। चन्दन को मैंने पादुका बनाकर दूषित किया।

राजा — ये इस स्थिति में कैसे पहुँची?

मालविका — (साँस लेकर स्वगत) विधाता की इच्छा से।

द्वितीया — स्वामिन्! दायाद के वश में चले गए जब कुमार माधवसेन तो उनके अमात्य आर्य सुमति ने हम जैसे परिजनों को छोड़कर इसे गोपनीय ढंग से बाहर निकाल दिया।

राजा — इतना तो हमने पहले से सुन रखा है। आगे क्या हुआ?

द्वितीया — स्वामिन् इसके आगे मुझे विदित नहीं।

परिव्राजिका — इसके आगे मैं मन्दभागिनी कहूँगी।

दोनों — भट्टदारिके! अज्जा कौशिकी सा स्वर है। नहीं नहीं, वे ही हैं।

मालविका — और क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभे यदिवेसधारिणी अज्जकोसिइ दुःखेण विभावीअदि। भअवदि! णमो दे।

यतिवेषधारिणी आर्यकौशिकी दुःखेन विभाव्यते। भगवति! नमस्ते। १०.३३

परिव्राजिका स्वस्ति भवतीभ्याम्। १०.३४

राजा कथमयमाप्तवर्गोऽयं भगवत्याः? १०.३५

परिव्राजिका एवमेतत्। १०.३६

विदूषकः तेण हि कधेदु भअवदी अत्तहोदीए वुत्तंतावसेसं।

तेन हि कथयतु भगवती अत्रभवत्या वृत्तान्तावशेषम्। १०.३७

परिव्राजिका *सवैक्लव्यम्* श्रूयतां तावत्। माधवसेनसचिवं ममाग्रजं सुमतिमवगच्छ। १०.३८

राजा उपलक्षितः। ततस्ततः ? १०.३९

परिव्राजिका स इमां तथागतभ्रातृकां मया सार्धमपवाह्य भवत्संबन्धापेक्षया पथिकसार्थं विदिशागामिनमनुप्रविष्टः। १०.४०

राजा ततस्ततः? १०.४१

परिव्राजिका स च अटव्यन्तरे निविष्टो गताध्वा वणिग्गणः। १०.४२

राजा ततस्ततः? १०.४३

परिव्राजिका ततः १०.४४

तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तरालमापार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि।
कोदण्डपाणि निनदत् [1]प्रतिरोधकानामापातदुष्प्रसहमाविरभूदनीकम्॥ १०॥

मालविका *भयं रूपयति* ११.१

विदूषकः भोदि! मा भआहि। अदिक्कंतं क्खु तत्तभोदी कधेदि।

भवति! मा बिभेहि। अतिक्रान्तं खलु तत्रभवती कथयति। ११.२

राजा ततस्ततः। ११.३

परिव्राजिका ततो मुहूर्त्तं बद्धयुद्धास्ते पराङ्मुखीभूताः सार्थवाहयोद्धारस्तस्करैः। ११.४

राजा भगवति! अतः कष्टमिदानीं श्रोतव्यम्। ११.५

परिव्राजिका ततः स मत्सोदर्यः — ११.६

इमां परीप्सुर्दुर्जाते[2] पराभिभवकातराम् ।
भर्तृप्रियः प्रियैर्भर्त्तुरानृण्यमसुभिर्गतः ॥११॥

---

१. प्रतिरोधकास्तस्कराः। प्रतिरोधका दस्यव इत्यमरः।

२. दुर्जातं विपत्कालः। रघुवंशे १३.७२, दुर्जातिर्दुष्टा जातिः। सा चात्र भिल्लजातिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों — यतिवेषधारिणी आर्य कौशिकी कठिनाई से पँहचान में आ रही हैं। भगवति! आपको प्रणाम।

परिव्राजिका — तुम दोनों का कल्याण हो।

राजा — अच्छा, भगवती का यह अपना वर्ग है।

परिव्राजिका — ऐसा ही है।

विदूषक — तो कहिए भगवती, अत्रभवती मालविका का शेष वृत्तान्त।

परिव्राजिका — (व्याकुलता के साथ) सुना जाए। माधवसेन के सचिव आर्य सुमति मेरे बड़े भाई थे।

राजा — ऐसा ही लगता है। फिर क्या हुआ?

परिव्राजिका — वह (सुमति) इसे, जब इसका भाई उस स्थिति में पहुँच गया तो, मेरे साथ लेकर चला आपके साथ सम्बन्ध कराने की इच्छा से। बीच में विदिशा आने वाले पथिकों का समूह मिला। हमलोग उसमें मिल गए।

राजा — फिर?

परिव्राजिका — वह व्यापारी वर्ग कुछ मार्ग तय कर पहुँचा दूसरे जंगल में।

राजा — तब?

परिव्राजिका — तब— **लुटेरों** (प्रतिरोधकों) **की एक सेना सामने आई उनका भुजाओं के बीच का अंग तूणीरपट्ट से बँधा हुआ था, मोरंगों का वस्त्र ऐड़ी तक लटक रहा था, हाथ में कोदण्ड** (धनुष) **थे और वह हल्ला कर रहा था। देखने में ही लग रहा था वह दुष्प्रसह।।१०।।**

मालविका — (भय का अभिनय करती है।)

विदूषक — भवति! डरो मत! बीती घटना सुना रही हैं भगवती।

राजा — फिर क्या हुआ?

परिव्राजिका — तब कुछ देर तक तो उन सार्थवाह योद्धाओं ने सामना किया, किन्तु बाद में वे टिक नहीं सके और भाग खड़े हुए।

राजा — भगवति! इसके बाद अवश्य कष्टपूर्ण घटना घटी होगी।

परिव्राजिका — उसके बाद मेरे उस सगे भाई ने —

इस संकट में इसी को बचाते बचाते मालिक के ऋण को अपने प्राणों से चुका दिया। भर्तृप्रिय था वह और उसे भी भर्त्ता अतीव प्रिय थे ।।११।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविका[1] हा! हतो सुमदि। हा, हतः सुमतिः। १२.१

द्वितीया तदो क्खु भट्टदारिकाया इअं समवत्था संवुत्ता।

ततः खल्वियं भर्तृदारिकायाः समवस्था संवृत्ता। १२.२

परिव्राजिका *बाष्पं विसृजति* । १२.३

राजा भगवति! [2]तनुभृतामीदृशी लोकयात्रा। न शोच्यस्तत्रभवान् सुमतिः सफलीकृतभर्तृपिण्डस्तपस्वी। १२.४

परिव्राजिका ततोऽहं मोहमुपगता यावत् संज्ञां लभे तावदियं दुर्लभदर्शना संवृत्ता। १२.५

राजा महत् खलु कृच्छ्रमनुभूतं तत्रभवत्या। १२.६

परिव्राजिका ततो भ्रातुः शरीरमग्निसात्कृत्वा पुनर्नवीकृतवैधव्यदुःखया त्वदीयं देशमवतीर्य काषाये[3] गृहीते। १२.७

राजा युक्तः सज्जनस्यैष पन्थाः। १२.८

परिव्राजिका सेयमाटविकेभ्यो वीरसेनं वीरसेनाद् देवीं गता। देवगृहे लब्धप्रवेशया मया दृष्टेत्येतदवसानं कथायाः। १२.९

मालविका (आत्मगत) किं णु क्खु भट्टा भणादि? किं नु खलु सांप्रतं भर्त्ता भणति? १२.१०

राजा अहो परिभवे प्रहारिणो विनिपाताः! कुतः १२.११

प्रेष्यभावेन नामेयं देवीशब्दक्षमा सती ।
स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्त्रोर्णेवो/र्ण वोपयुज्यते ॥१२॥

धारिणी भअवदि! तुए अहिजणवदिं मालविअं अणाचक्खंतीए असंपदं किदं।

भगवति! त्वया अभिजनवतीं मालविकामनाचक्षाणया असांप्रतं कृतम्। १३.१

परिव्राजिका शान्तं पापम्। कारणेन कलु मया नैर्घृण्यमवलम्बितम्। १३.२

धारिणी किं वि तत् कारणं? किमिव तत् कारणम्? १३.३

राजा यदि वक्तव्यं कथ्यताम् ।१३.४

परिव्राजिका इयं पितरि जीवति केनापि देवयात्रागतेन सिद्धादेशकेन साधुना मत्समक्षमादिष्टा वत्सरमात्रमियं प्रेष्यभावमनुभूय ततः [4]सदृशभर्तृगामिनी भविष्यतीति। तमेनमवश्यभाविनमादेशमस्यास्त्वत्पादशुश्रूषया परिणमन्तमवेक्ष्य कालप्रतीक्षया मया साधु कृतमिति पश्यामि। १३.५

---

१. प्रथमा इति काग्र.। मालविका इति हामा.। २. तनुत्यजामिति हामा.।

३. सीतायाः काषायग्रहणं रघुवंशेऽपि। १५.७७। ४.भर्तृ इत्यस्योपरि हामायां लिखितं दृश्यते भ्रातृ इति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविका हा, सुमति नहीं रहे?

द्वितीया उसके बाद राजकुमारी जी की यह स्थिति हुई।

परिव्राजिका (आँसू बहाती है।)

राजा भगवति! शरीरधारियों को तो यह दिन देखना ही पड़ता है। तत्रभवान् सुमति के लिए शोक नहीं करना है, उन्होंने तो स्वामी का अन्न सफल कर दिया। वे तपस्वी थे।

परिव्राजिका तब मुझे मूर्च्छा आ गई और जब मैं होश में आई तब तक यह दुर्लभदर्शना हो गई थी ।

राजा आपने बहुत अधिक कष्ट सहा।

परिव्राजिका फिर भाई के शरीर का अग्निसंस्कार कर वैधव्यदुःख फिर से नया हुआ, इसलिए मैंने आपके राज्य में आकर ये काषाय धारण कर लिए।

राजा सत्पुरुष यही करते हैं।

परिव्राजिका और यह मालविका उन जंगली लुटेरों के पास से वीरसेन के पास पहुँची और वीरसेन के पास से यहाँ देवी के पास। आपके भवन में जब मुझे प्रवेश मिला तो इसे मैंने यहाँ पाया। इतना ही अंश इस कथा का बचा था। इसी के साथ कथा समाप्त हुई।

मालविका (स्वगत) न जाने स्वामी क्या कहते हैं?

राजा अहो परिभव में ऐसी विपत्तियाँ। क्योंकि– **यह थी तो 'देवी' कहलाने योग्य, परन्तु इसे करना पड़ रहा है सेविका का कार्य। पत्रोर्णा**(उत्तम ऊनी शाल) **से काम लिया गया स्नानयोग्य वस्त्र**(टाबिल) **का ॥ १२॥**

धारिणी भगवति! आपने बहुत अनुचित किया कि मालविका को उच्चकुल की बालिका नहीं बतलाया।

परिव्राजिका शान्तं पापम्। कारण था जिससे मैंने इतनी निर्दयता दिखलाई।

धारिणी क्या था वह कारण?

राजा यदि बतलाने योग्य है तो बतलाएँ।

परिव्राजिका जब इसके पिता जीवित थे तभी तीर्थयात्रा पर आए किसी सिद्धादेशी साधु ने मेरे सामने यह आदेश किया था कि 'एक वर्ष दासी रहने के बाद अनुरूपपति पा जाएगी यह'। यह होना निश्चित था। इसकी पूर्त्ति आपके चरणों की सेवा में पूरी होती देख कालप्रतीक्षा में चुप रहकर मैंने ठीक ही किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा युक्ता प्रतीक्षा। १३.६

कञ्चुकी *प्रविश्य* देव! कथान्तरेणान्तरितम्। अमात्यो विज्ञापयति विदर्भगतम–नुष्ठेयमवधारितमस्माभिः। देवस्य तावदभिप्रायं श्रोतुमिच्छामि इति।१३.७

राजा मौद्गल्य ! तत्रभवतोर्यज्ञसेनमाधवसेनयोर्द्वैराज्यम् अवस्थापयितु–कामोऽस्मि। १३.८

तौ पृथग् वरदाकूले शिष्टामुत्तरदक्षिणे ।
नक्तन्दिवं विभज्योभौ शीतोष्णकिरणाविव ।।१३।।

कञ्चुकी देव! एवममात्यपरिषदे विज्ञापयामि। १४.१

राजा *अङ्गुल्याऽनुमनुते* १४.२

कञ्चुकी *निष्क्रान्तः* १४.३

प्रथमा *जनान्तिकम्* भट्टिदारिए! दिट्ठिआ भट्टिदारओ अर्द्धरज्जे पडिट्ठां गमिस्सदि। भर्तृदारिके! दिष्ट्या भर्तृदारकः अर्द्धराज्ये प्रतिष्ठां गमयिष्यते। १४.४

मालविका एदं दाव बहु मणिदव्वं जो जीविदसंसआदो विमुक्को।
एतत् तावद् बहु मन्तव्यम् यज्जीवितसंशयान्मुक्तः। १४.५

पुनः प्रविश्य १४.६

कञ्चुकी विजयतां देवः। अमात्यो विज्ञापयति– कल्याणी देवस्य बुद्धिः। मन्त्रिपरिषदोऽप्येतदेव दर्शनम् । कुतः – १४.७

द्विधा विभक्तां श्रियमुद्वहन्तौ धुरं रथाश्वाविव सङ्ग्रहीतुः ।
तौ स्थास्यतस्ते नृपतेर्निदेशे परस्परावग्रहनिर्विकारौ ।।१४।।

।।७।।

राजा तेन हि मन्त्रिपरिषदं ब्रूहि सेनान्ये वीरसेनाय लेख्यताम् एवं क्रियतामिति। १५.१

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रम्य सप्राभृतकं लेखं गृहीत्वा पुनः प्रविष्टः।* अनुष्ठिता प्रभोराज्ञा। अयं देवस्य सेनापतेः पुष्यमित्रस्य सकाशात् सोत्तरीयप्राभृतको लेखः प्राप्तः। प्रत्यक्षीकरोत्वेनं देवः। १५.२

राजा *उत्थाय सप्राभृतकं लेखं सोपचारं गृहीत्वा परिजनायार्पयति* १५.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा प्रतीक्षा करना ठीक था।

कञ्चुकी (प्रवेश कर) देव! दूसरी बात बीच में आ गई। अमात्य सूचित कर रहे हैं कि विदर्भ के लिए जो करना है वह हम लोगों ने निश्चित कर लिया है। अब आपका अभिप्राय जानना है।

राजा यज्ञसेन और माधवसेन दोनों का राज्य चाहता हूँ स्थापित करना—

वे दोनों पृथक् पृथक् वरदा (नदी) के तट पर उत्तर और दक्षिण में राज्य करें, रात और दिन का विभाजन कर जैसे चन्द्र और सूर्य करते हैं शासन ॥१३॥

कञ्चुकी देव! अमात्यपरिषद् से ऐसा ही कहे देता हूँ।

राजा (उँगली से अनुमति देता है।)

कञ्चुकी (निकल जाता है।)

प्रथमा (जनान्तिक) भट्टदारिके! खुशी की बात है कि भट्टदारक (माधवसेन) आधे राज्य में प्रतिष्ठित कर दिया गया।

मालविका इतना भी बहुत मानना चाहिए कि वह प्राणों के संशय से मुक्त हो गया।

(पुनः प्रविष्ट होकर)

कञ्चुकी देव की जय हो! अमात्य कह रहे हैं कि आपकी बुद्धि बड़ी ही कल्याणी है। मन्त्रिपरिषद् का भी यही सोचना था। क्योंकि—

राज्यश्री की धुरा को दो भागों में विभक्त दोनों, दो रथाश्वों के समान वहन करते हुए वे आपके निदेश पर चलते रहेंगे, परस्पर की टकराहट को छोड़॥१४॥

॥७॥

राजा तो मन्त्रिपरिषद् से कहो कि सेनापति वीरसेन को लिखकर भेज दिया जाए कि वह ऐसा करे।

कञ्चुकी जैसी देव की आज्ञा (निकल कर और सौगात सहित लेख लेकर फिर से आता है) देव! देव की आज्ञा का पालन कर दिया। यह है देव सेनापति पुष्पमित्र के पास से भेंट सहित आया लेख। इसे देखें देव।

राजा (खड़े होकर भेंट सहित लेख को आदरपूर्वक ग्रहण कर परिजन को सौंप देता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिजनः *लेखं नाट्येनोद्वेष्टयति* १५.४

धारिणी अंम्हहे! तदोमुहं एव्व णो हिअअं। सुणिस्सं दाव गुरुअणस्स कुसलाणंदरं पुत्तअस्स वसुमित्तस्स वुत्ततं। अदिहोरे क्खु पुत्तओ सेणापती णिउत्तो।

अहो! ततोमुखमेव नो हृदयम्। श्रोष्यामि तावद् गुरुजनस्य कुशलानन्तरं पुत्रकस्य वसुमित्रस्य वृत्तान्तम्। अतिघोरे खलु मे पुत्रकः सेनापतिर्नियुक्तः। १५.५

राजा *उपविश्य वाचयति* स्वस्ति। यज्ञशरणात् सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तम् अग्निमित्रं स्नेहात् परिष्वज्य अनुदर्शयति— विदितमस्तु योऽसौ राजयज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य संवत्सरोपावर्त्तनीयो निरर्गलस्तुरङ्गमो विसर्ज्जितः स सिन्धोर्दक्षिणे रोधसि चरन्नश्वानीकेन ज(य)वनेन प्रार्थितः। तत उभयोः सेनयोर्महानासीत् संमर्दः। १५.६

धारिणी *विषादं नाटयति* १५.७

राजा कथं तादृशं संवृत्तम्? पुनर्वाचयति— १५.८

ततः परान् पराजित्य वसुमित्रेण धन्विना ।
प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्त्तितः ॥१५॥

धारिणी इमिणा आसासिदं मे हिअअं। अनेनाश्वस्तं मे हृदयम्। १६.१

राजा *लेखशेषं वाचयति* सोऽहमिदानीमंशुमतेव सगरः पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये। तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह [1]यज्ञसवनायागन्तव्यमिति अनुगृहीतोस्मि। १६.२

परिव्राजिका[2] दिष्ट्या पुत्रविजयेन दम्पती वर्धेते *धारिणीं विलोक्य* —१६.३

भर्त्रासि वीरपत्नीनां श्लाघ्यायां स्थापिता धुरि ।
वीरसूरिति शब्दोऽयं तनयात् त्वामुपस्थितः ॥१६॥

विदूषकः भोदि! परितुट्ठोम्हि जं पिदरं अणुजादो वच्छओ।

भवति! परितुष्टोस्मि यत् पितरमनुजातो वत्सकः। १७.१

---

१. यज्ञसेवनायेति हामा.।

२. १६.३ आरभ्य १७.२ पर्यन्तं वक्तृणां भेदः। द्रष्टव्यमस्माकं कालिदासग्रन्थावल्या द्वितीयं संस्करणम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिजन (लेख को खोलता है।)

देवी अंम्ह हे! हमारा हृदय उसी तरफ लगा है। सुनें गुरुजन के कुशल समाचार के अनन्तर वसुमित्र का वृत्तान्त। भारी भार में लगा दिया है पुत्रक को सेनापति ने।

राजा (बैठकर बाँचता है) – स्वस्ति! यज्ञशाला से सेनापति पुष्यमित्र विदिशा क्षेत्र में स्थित पुत्र आयुष्मान् अग्निमित्र से स्नेहालिङ्गनपूर्वक सूचित करता (अनुदर्शयति) है– विदित हो जो राजयज्ञ में दीक्षित मैंने सौ राजपुत्रों से घिरे वसुमित्र को रक्षक नियुक्त कर एक वर्ष में लौटने वाला छूटा अश्व छोड़ा था, उसे सिन्धु के दक्षिण तट पर घूमते समय सेना के साथ किसी यवन ने पकड़ लिया था। तब दोनों सेनाओं में भारी संघर्ष हुआ।

धारिणी (विषाद की मुद्रा बनाती है।)

राजा अच्छा वैसा हुआ? (फिर बाँचता है) –

उसके बाद शत्रुओं को हटाकर धन्वी वसुमित्र ने जबरन हरण किया जा रहा मेरा वाजिराज लौटा लिया।।१५।।

धारिणी इससे मेरा हृदय आश्वस्त हुआ।

राजा (बचा लेख बाँचता है) 'मेरा अश्व पौत्र वसुमित्र लौटा कर ले आया है, अतः यज्ञ कर रहा हूँ वैसे ही जैसे पौत्र अंशुमान् के द्वारा अश्व लौटा लाने पर किया था सगर ने। इसमें बिना विलम्ब किए चित्त से रोष हटा कर वधूजनों के साथ यज्ञसवन के लिए तुम्हें आना चाहिए।' अनुगृहीत हूँ।

परिव्राजिका खुशी की बात है, आप दोनों को बधाई पुत्र विजय के लिए। (धारिणी को देखकर) – **पति ने तो तुम्हें वीरपत्नी के बड़े ही श्लाघनीय पद पर स्थापित किया। अब पुत्र से प्राप्त हो गया है वैसा ही श्लाघनीय वीरसू शब्द ।।१६।।**

विदूषक भवति! मुझे बड़ा ही परितोष है कि वत्स पिता के जैसा सिद्ध हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कञ्चुकी ननु कलभेन यूथपतेरनुकृतम्। किन्तु — १७.२

नैतावता वीरविजृम्भितेन चित्तस्य नो विस्मयमादधाति ।
यस्याप्रधृष्यः प्रभवस्त्वमुच्चैरग्नेरपां दग्धुरिवोरुजन्मा ।।१७।।

राजा मौद्गल्य! यज्ञसेनश्यालमुररीकृत्य मुच्यन्तां सर्वे बन्धनस्थाः। १८.१

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रान्तः* १८.२

धारिणी जअसेणे! गच्छ। इरावदीमुहाण[1] अंदेउराणं पुत्तस्स विअअवुत्तंतं णिवेदेहि। जयसेने! गच्छ। इरावतीप्रमुखेभ्योऽन्तःपुरेभ्यः पुत्रस्य विजयवृत्तान्तं निवेदय। १८.३

प्रतीहारी तध। तथा। *प्रस्थिता* १८.४

धारिणी एहि दाव। एहि तावत् १८.५

प्रतीहारी *प्रतिनिवृत्य* इय म्हि। इयमस्मि। १८.६

धारिणी *जनान्तिकम्* जं मए असोअदोहदणिओए मालविआए पडिण्णादं तं से अभिअणं अ णिवेदिअ मम वअणेण इरावदिं अणुणेहि— 'तुह अहं सच्चादो ण विभंसिदव' त्ति। यन्मयाशोकदोहदनियोगे मालविकायै प्रतिज्ञातम् तदस्या अभिजनं च निवेद्य मम वचनेनेरावतीमनुनय— 'त्वया अहं सत्यान्न विभ्रंशयितव्ये'ति। १८.७

प्रतीहारी यद् देवी आणवेदि। *निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य* च भट्टिणि! पुत्तविअअ—णिमित्तेण पारिदोसिएण अंतेउराणं आहरणाणं मंजूसिआ म्हि संवुत्ता। यद् देवी आज्ञायति। (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) भट्टिनि! पुत्रविजयनिमित्तेन परितोषेण अन्तःपुराणामाभरणानां मञ्जूषास्मि संवृत्ता। १८.८

धारिणी किं एत्थ अच्छरिअं साधारणो णं अब्भुदओ ताणं मह अ। किमत्राश्चर्यम् ननु साधारणः खलु तासां मम चायमभ्युदयः। १८.९

प्रतीहारी *जनान्तिकम्* भट्टिणि! इरावदी उण विण्णवेदि— सरिसं देवीए पुहवीए पहवंतीए। तुह वअणं संकप्पिदं ण जुज्जदि अण्णहा कादुं त्ति। भट्टिनि! इरावती पुनर्विज्ञापयति— सदृशं देव्याः पृथिव्यां प्रभवन्त्याः। तव वचनं संकल्पितं न युज्यते अन्यथा कर्तुमिति। १८.१०

---

१. हामायामत्र पाठः मलेकप्पमुहीणं मलेकेति नूनं मालविकाया अपलेखनम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कञ्चुकी — यह तो कलभ ने वह कर दिखाया जो यूथपति कर सकता था। किन्तु– **इस वीर–वाद से मेरे चित्त में विस्मय नहीं हो रहा, क्योंकि इसके पिता आप हैं, जिसे कोई दबा नहीं सकता ऊरुजन्मा मुनि से उत्पन्न अग्नि के समान, जो समुद्र के जलों को जलाता रहता है।।१७।।**[१]

राजा — मौद्गल्य! यज्ञसेन के साले को लेकर सभी बन्धनस्थों को छोड़ दिया जाए।

कञ्चुकी — जो आज्ञा। (निकल जाता है)

धारिणी — जयसेने! जा इरावती आदि अन्तःपुर के सभी लोगों को पुत्र के विजय की खबर कर दे।

प्रतीहारी — जैसी आज्ञा (चल दी)

धारिणी — इधर आ।

प्रतीहारी — (लौटकर) ये हूँ।

धारिणी — (जनान्तिक) मैंने अशोकदोहद के निमित्त मालविका को वचन दिया था उसे और इस (मालविका) का कुल बतलाकर मेरे शब्दों में इरावती का अनुनय करना कि कृपाकर तू मुझे सत्य से मत डिगाना।

प्रतीहारी — जैसी आज्ञा देवी की। (निकल जाती है और फिर प्रवेश करके) भट्टिनि! पुत्रविजय के उपलक्ष्य में दिए पारितोषिकों से मैं तो अन्तःपुर के आभरणों की पिटारी बन गई हूँ।

धारिणी — इसमें आश्चर्य ही क्या? यह अभ्युदय साधारण है उनका भी और मेरा भी।

प्रतीहारी — *जनान्तिक* भट्टिनि! इरावती ने यह भी कहा है कि यह ठीक ही है देवी तो मालकिन हैं उसकी जो मालिक है पूरी पृथिवी का। तुमने जो संकल्प किया और वचन दिया है उसे अन्यथा नहीं होना चाहिए।

---

१. ऊरुजन्मा के समान अग्निमित्र, और्व के समान वसुमित्र, यवनों की अश्वसेना पानी के समान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारिणी भअवदि! तुह अणुमदा इछामि अज्जसुमदिणां पढमं संकप्पिदां मालविआं अज्जउत्तस्स उववादेदुं। भगवति! त्वयानुमता इच्छामि आर्यसुमतिना प्रथमसंकल्पितां मालविकामार्यपुत्राय प्रतिपादयितुम्। १८.११

परिव्राजिका इदानीमपि त्वमस्याः प्रभवसि। १८.१२

॥ ८ ॥

धारिणी *मालविकां हस्ते गृहीत्वा* इमं अज्जउत्तो पिअणिवेदणाणुरूवं पारिदोसिअं पडिच्छदु। इदमार्यपुत्रः प्रियनिवेदनानुरूपं पारितोषिकं प्रतीच्छत्विति। १८.१३

राजा *व्रीडां नाटयति* १८.१४

धारिणी *सस्मितं* किं अवधीरेदि मं अज्जउत्तो? किम् अवधीरयति मामार्यपुत्रः? १८.१५

विदूषकः भोदि! एसो लोअव्ववहारो। सव्वो हि णववरो लज्जादुरो होदि त्ति। भवति! एष लोकव्यवहारः। सर्वो नववरो लज्जातुरो भवतीति। १८.१६

राजा *विदूषकमवेक्षते* १८.१७

विदूषकः अध देवीए एव्व किदप्पणिव्विसेसं दिण्णदेवीसद्दं मालविअं अत्तभवं पडिग्गहीदुं इच्छदि। अथ देव्यैव कृतात्मनिर्विशेषां दत्तदेवीशब्दां मालविकामत्रभवान् प्रतिग्रहीतुमिच्छति। १८.१८

धारिणी एदाए राजदारिआए अहिजणेण एव्व दिण्णो देवीसद्दो किं पुणरुत्तेण? एतस्या राजदारिकाया अभिजनेनैव दत्तो देवीशब्दः किं पुनरुक्तेन? १८.१९

परिव्राजिका मा मैवम्। १८.२०

अप्याकरसमुत्पन्नो रत्नजातिपुरस्कृतः ।
जातरूपेण कल्याणि! मणिः संयोगमर्हति ॥ १८॥[१]

धारिणी *स्मृत्वा* मरिसेदु भअवदी अब्भुदअकहाए पढमं मए ण लक्खिदं। जअसेणे! गच्छ दाव। कोसेअपत्तोण्णजुगलं उवणेहि।
(स्मृत्वा) मर्षयतु भगवती। अभ्युदयकथया प्रथमं मया न लक्षितम्। जयसेने! गच्छ तावत् कौशेयपत्रोर्णयुगलमुपनय। १९.१

---

१. बहुतरमत्र पाठान्तरम्। तदर्थं द्रष्टव्याऽस्माकं काग्र.–२।
हार्वर्डमातृकायां पुनरयं पाठः – अस्माकमुत्सवमणिर्मणिजातिपुरस्कृतः ।
जातरूपेण कल्याणि! तर्हि संयोगमर्हति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारिणी भगवति! आपकी अनुमति मिले तो चाहती हूँ, अर्यसुमति ने जो संकल्प पहले ही किया था तदनुसार, मालविका को आर्यपुत्र को अर्पित करना।

परिव्राजिका अब भी तुम ही हो इसकी स्वामिनी । तुम्हारा पूरा अधिकार है इस पर।

॥ ८ ॥

धारिणी (मालविका को हाथ में लेकर) प्रिय–सूचना के उपलक्ष्य में आर्यपुत्र का पारितोषिक यह है। इसे ग्रहण करें।

राजा (लज्जा का अभिनय करता है।)

धारिणी (मुसकुराती हुई) क्या आर्यपुत्र मेरी अवज्ञा कर रहे हैं?

विदूषक भवति! यह तो लोक का व्यवहार ही है कि सभी नवीन वर लज्जातुर होते हैं।

राजा (विदूषक को देखता है।)

विदूषक और स्वयं देवी ने मालविका को अपनी बराबरी का देवी शब्द भी दे दिया है। अब इसे अत्रभवान् ग्रहण करना चाहते हैं।

धारिणी इस राजदारिका को तो अपने वंश ने ही देवी शब्द दे रखा है। पुनरुक्ति से क्या?

परिव्राजिका ऐसा नहीं।

मणि भले ही उत्पन्न हो आकर में और भले ही सभी रत्नों में उसका स्थान पहला हो, तब भी हे कल्याणि! आवश्यक होता है उसका सुवर्ण के साथ संयोग ॥ १८॥

धारिणी (याद करके) क्षमा करेगी भगवती अभ्युदय की कथा के कारण मुझे पहले स्मरण नहीं रहा। जयसेने! जा कौषेय पत्रोर्णयुगल ले आ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारी जं भट्टिणी आणवेदि। *निष्क्रम्य पत्रोर्णं गृहीत्वा पुनः प्रविश्य* देवि! एदं। यद् देव्याज्ञापयति। (निष्क्रम्य पत्रोर्णं गृहीत्वा पुनः प्रविश्य) देवि! एतत्। १९.२

धारिणी *मालविकामवगुण्ठनवतीं कृत्वा* अज्जउत्तो दाणिं इमं पडिच्छदु। आर्यपुत्र! इदानीमिमां प्रतीच्छतु। १९.३

राजा त्वच्छासनं प्रत्यनुत्तरा वयम्। *अपवार्य* प्रतिगृहीतम्। १९.४

धारिणी *मालविकां राज्ञो वामपार्श्वे निवेशयति* १९.५

परिव्राजिका हन्त प्रतिगृहीता। १९.६

विदूषकः अहो देवीए अणुऊलदा। अहो देव्या अनुकूलता। १९.७

धारिणी *परिजनमवलोकयति* १९.८

प्रतीहारी *मालविकामुपेत्य* जेदु भट्टिणी। जयतु भट्टिनी। १९.९

धारिणी *परिव्राजिकां निरीक्षते* १९.१०

परिव्राजिका नैतच्चित्रं त्वयि। १९.११

प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः [1]साध्व्यः ।
अन्यसरितामपि जलं/शतं[2] समुद्रगाः प्रापयन्त्युदधिम् ॥१९॥

प्रविश्य २०.१

निपुणिका जेदु भट्टा! इरावती विण्णावेदि जं उवआरातिक्कमेण तदा भट्टिणो अवरद्धं तं सअं एव्व भत्तुणो अणुऊअं णाम मए आअरिदं। संपदं पुण्णमणोरधेण भत्तुणा पसादमत्तेण संभावइदव्वे त्ति। जयतु भर्ता। इरावती विज्ञापयति– यदुपचारातिक्रमेण भर्त्रे अपराद्धा तत् स्वयमेव भर्तुरनुकूलं नाम मया आचरितम्। साम्प्रतं पूर्णमनोरथेन भर्त्रा प्रसादमात्रेण संभावयितव्येति। २०.२

॥ ९ ॥

धारिणी णिउणिए! अवस्सं से[3] सेविदं अज्जउत्तो जाणिस्सदि। निपुणिके! अवश्यमस्याः सेवितमार्यपुत्रो ज्ञास्यति। २०.३

निपुणिका अणुगहीद म्हि। अनुगृहीतास्मि। *निष्क्रान्ता* २०.४

परिव्राजिका देव! अमुं तावत् त्वत्संबन्धेन चरितार्थं माधवसेनं त्वदाज्ञया दृष्ट्वा नयनसाफल्यं कर्तुमिच्छामि। २०.५

---

१. सत्यः इति तदुपरि च तन्व्यः इति हामा। द्र० रघुवंशे १९.२० २. जलम् इति केचित्।
३. वसन्ते सेवितम् इति हामा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारी — जो आज्ञा भट्टिणी की (निकल कर पत्रोर्ण लेकर पुनः आती है।) देवि। यह रहा पत्रोर्ण।

धारिणी — (मालविका को घूँघट करा कर) 'आर्यपुत्र! अब ग्रहण कीजिए इसे'।

राजा — तुम्हारी आज्ञा पर हमारे पास कोई उत्तर नहीं। (अपवारण के साथ) प्रतिगृहीता।

धारिणी — (मालविका को राजा के बाँई ओर खड़ी करती है।)

परिव्राजिका — हन्त। कर लिया इसे ग्रहण।

विदूषक — अहो देवी की अनुकूलता।

धारिणी — (परिजनों को देखती है।)

प्रतीहारी — (मालविका के पास पहुँचकर) भट्टिनी की जय हो!

धारिणी — (परिव्राजिका को देखती है)

परिव्राजिका — आप में यह कोई अनोखी बात नहीं—

जो साध्वी पति पर प्रेम करती हैं वे अपने विरुद्ध कार्य से भी पति की सेवा किया करती हैं। जो नदियाँ समुद्र में मिलती हैं वे अन्य नदियों का भी जल समुद्र में पहुँचाती रहती हैं।।१९।।

(प्रवेश कर)

निपुणिका — स्वामी की जय। इरावती निवेदन करती है कि मैंने उपचार का उल्लंघन किया था और आर्यपुत्र का मुझसे अपराध बन पड़ा था, वह खुद ही स्वामी के अनुकूल ही मैंने किया। अब स्वामी का मनोरथ पूर्ण हो गया तो प्रसादमात्र की कृपा होती रहे।

॥ ९ ॥

धारिणी — निपुणिके! अवश्य उसने जो सेवा की है उसे आर्यपुत्र याद रखेंगे।

निपुणिका — अनुगृहीत हूँ। (चली जाती है)

परिव्राजिका — देव! तुम्हारे साथ हुए संबन्ध से चरितार्थ माधवसेन के, आप आज्ञा दें तो, दर्शन कर नेत्रों को सफल कर लूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारिणी भअवदि! ण जुत्तं अम्हाणं परिच्चत्तुं।

भगवति! न युक्तमस्मान् परित्यक्तुम्। २०.६

राजा भगवति! मदीयेष्वेव पत्त्रेषु तत्रभवतस्त्वामुद्दिश्य सभाजनं निपातयिष्यामः। २०.७

परिव्राजिका युवयोः स्नेहात् परवानयं जनः। २०.८

धारिणी आणवेदु अज्जउत्तो! भूओ वि किं दे पिअं उअचरिस्सं?

आज्ञापयतु आर्यपुत्र! भूयोऽपि किं ते प्रियमुपचरिष्ये? २०.९

राजा ममैतावदेव प्रियम् । तथापि – २०.१०

(भरतवाक्यम्)

त्वं मे प्रसादसुमुखी भव देवि! नित्य–
मेतावदेव हृदये प्रतिपालनीयम् ।[१]
आशास्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानां
संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे ।। २०।।

।। निष्क्रान्ताः सर्व्वे।। २१.१

इति महाकविकालिदासकृतौ मालविकाग्निमित्रे नाटके साम्मनस्यसिद्धिर्नाम पञ्चमोऽङ्कः ।।[२] २१.२

।। समाप्तमिदं कविचक्रचूडामणिकालिदासविरचितं मालविकाग्निमित्रं नाम नाटकम्।।[३]

---

१. मेतावदेव मृगये प्रतिपक्षहेतोः – इति हामा.।

२. पञ्चोऽङ्कः समाप्तमिदं ००० नाम नाटकम् इति हामा.।

३. मया रेवाप्रसादेन काश्यपेन द्विवेदिना
एक्टने ज्येष्ठपुत्रस्य सर्वज्ञस्य निकेतने ।
न्यूयार्कविश्ववाणिज्यकेन्द्रध्वंसाशिवे क्षणे
वसता कालिदासस्य समपादि कृतिस्त्विवयम् ।। श्रीरस्तु।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारिणी भगवति! हमें छोड़ना ठीक नहीं।

राजा भगवति! हमारे ही संदेश में आपकी शुभकामनाएँ सूचित कर दी जाएँगी।

परिव्राजिका तुम दोनों के स्नेह से बँधी हूँ मैं।

धारिणी आर्यपुत्र! आज्ञा दें। आपका और क्या प्रिय करूँ?

राजा मेरा तो इतना ही प्रिय है –

(भरतवाक्य)

देवि! तुम मेरे ऊपर सदा प्रसन्नवदना बनी रहो इतना ही हृदय में प्रतीक्षित है। ईति–बाधा (विघ्नबाधा) **आदि से बचाव की जो अपेक्षा है वह तो तब तक सम्पन्न हुए बिना नहीं रहेगी जब तक 'गोप्ता' अग्निमित्र है ॥ २०॥**

(सभी निकल जाते हैं।)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति मालविकाग्निमित्र में पाँचवा 'साम्मनस्यसिद्धि' नामक अङ्क पूर्ण हुआ।

॥ इस प्रकार कविचक्रचूडामणि कालिदास की नाट्यकृति मालविकाग्निमित्र पूर्ण हुई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। विक्रमोर्वशीयम् ।।

(विक्रमौर्वशेयम्)

विक्रमोर्वशीये पात्राणि –

पुरुषाः– **सूत्रधारः**– नाटकस्य प्रबन्धकः, **पारिपार्श्विकः**– सूत्रधारस्य सहचरः, **पुरूरवा**– नायकः सोमवंश्यो राजा, **माणवकः**– विदूषकः, **आयुः**– पुरूरवसः पुत्रः, **नारदः**– देवर्षिः, **चित्ररथः**– गन्धर्वेश्वरः, **कञ्चुकी**– अन्तःपुराध्यक्षः, **पल्लवः गालवश्च**– भरतमुनेः शिष्यौ।

स्त्रियः– **उर्वशी**– नायिका अप्सरोविशेषः, **चित्रलेखा**– अप्सरोविशेषः उर्वश्याः सखी, **सहजन्या, मेनका, रम्भा**– अप्सरोऽन्तराणि, **देवी**– राज्ञी काशिराजस्य कन्या, **निपुणिका**– राज्ञः परिचारिका, **तापसी**– तपस्विनी, **परिजनः**– राज्ञः परिचारिका, **यवनी**– राज्ञः परिचारिका।

आधाराः – पाण्डुप्रतयः –

१. अस्माभिः स्वयं २०००–२००१ ईशाब्दे स्वहस्तेन लिखिता मातृका।

२–४. काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य कलाभवने सुरक्षिता ०८५, ३९४७, ३९५०क्रमाङ्कीयं मातृकात्रयम्।

प्रकाशितानि संस्करणानि–

५. **काग्र.**– कालिदासग्रन्थावल्यामस्मत्संपादितायां १९८६ ईशाब्दे काशीहिन्दूविश्वविद्यालयतः प्रकाशितं द्वितीयं संस्करणम्।

६. **चा.** – भारतानामेव लाहौरनगरतः १९२९ ईशाब्दे प्रकाशितं पं०चारुदेवशास्त्रिणा संपादितं काटयवेमस्य कुमारगिरिराजीयया टीकया सहितं संस्करणम्।

७. **पं.** – पण्डितोपाह्वशंकरपाण्डुरंगकृतं तृतीयं संस्करणम्, बाम्बेसंस्कृतसीरीज–१६, १९०१, संस्कर्ता भास्कररामचन्द्रअर्त्ते।

८. **बो.** – जर्मनीदेशस्य लिपजिगनगरतः १८४६ ई० प्रकाशितं बोलेन्सेनसंपादितं संस्करणम्।

९. **मा.** – हर्टफोर्डनगरतः १८४९ ई० प्रकाशितं मोनियरविलियम्ससंपादितं संस्करणम्। अत्र नवीनं २, ३,४,६ इत्येतच्चतुष्टयगतं मूलं यदस्माभिः नान्वशीलि कालिदाग्रन्थावल्या १९८६ईशाब्दे प्रकाशिते द्वितीये संस्करणे। एतदत्र विज्ञेयं यन्नाटकत्रितयेऽपि प्राकृतं भेदजुष्टमेव। वैदेशिकानामप्ययमेवानुभवः। इत्थं संपादकैः स्वमनीषिकयैव किमप्येकं प्राकृतमादाय नवीना लेखा आरम्भत आन्तं निर्वर्त्तनीयाः। तत्रापि वक्तृभेदेनोपस्थितेषु प्राकृतभेदेषु निश्चितैवापरिहरणीयता भेदस्य।

१०. **रं.** – रंगनाथटीकासहितं निर्णयसागरीयं चतुर्थं संस्करणम्, मुम्बई, १९१४ ई०।

११. **ले.** – इटलीदेशस्य बेरौलिनीनगरतः १८३३ ईशाब्दे प्रकाशितं रौवर्टलेञ्जसंपादितं संस्करणम्।

१२. **वे.** – एच.डी.वेलणकरमहोदयेन सम्पादितं संस्करणं, साहित्यअकादमीतः प्रकाशितम्, १९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ अथ ॥

महाकविकालिदासकृतं

सनातनकविरेवाप्रसादद्विवेदिप्रतिसंस्कृतं

विक्रमोर्वशीयं त्रोटकम्[१]

॥ पूर्व्वरङ्गः ॥[२]

नेपथ्ये

॥ पुष्करघोषनान्दी ॥

तदन्ते मङ्गलश्लोकनान्दी[३] १.१

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो [४]यथार्थाक्षरः ।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु[५] वः ॥ १ ॥

मङ्गलश्लोकनान्द्यन्ते २.१

॥ १ ॥

सूत्रधारः प्रविश्य *नेपथ्याभिमुखमवलोक्य* अलमतिविस्तरेण[६]। मारिष! इतस्तावत्। २.२

प्रविश्य २.३

पारिपार्श्विकः भाव! अयमस्मि। २.४

सूत्रधारः मारिष! परिषदेषा पूर्वेषां कवीनां दृष्टरसप्रबन्धा। अहमस्यां **कालिदास**ग्रथितवस्तुना नवेन **विक्रमोर्वशीय**नामधेयेन त्रोटकेनोपस्थास्ये। तदुच्यतां पात्रवर्गः स्वेषु स्वेषु [७]पाठेष्ववहितैर्भाव्यमिति। २.५

---

१. ले. बो. मा. सन्दर्भमिमं **विक्रमोर्वशी** इति केवलं भणन्ति। **विक्रमौर्वशेयमिति** तु कदाचित् स्यात् अभिज्ञानशाकुन्तलमितिवत् पुत्रस्यापि संग्रहात्। रङ्गनाथोऽत्र तूष्णीं तिष्ठति।

२–३. इयमस्मत्कृता योजना। **विक्रमोर्वशी । प्रस्तावना। नान्दी । वेदा०** इति तु ले.

४. **यथार्थान्वय** इत्येके। स्थाणुः शिव एवाष्टमूर्त्तिरिति कृत्वा तस्यैवैकस्येश्वरत्वं नान्यस्य।

५. निःश्रेयसं मुक्तिः, भक्त्या भगवत्प्राप्तिः। सा चाधिकरसा मोक्षादिति भावकानां हृदयम्।

६. **विस्तरेण। मारिष। परिषदेषा पू'** ले.बो.मा., मूलं रं.पं.चा.वे.काग्र.

७. **०विस्तरेण। मारिष! परिषदेषा पू०** इति ले.बो.मा.। मूलन्तु रं.पं.चा.वे.काग्र.; **पाठेष्व** इत्यस्य स्थाने **स्थानेष्व** ले.बो.मा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ अथ ॥

महाकविकालिदासकृत

सनातनकविरेवाप्रसादद्विवेदिप्रतिसंस्कृत

विक्रमोर्वशीय-त्रोटक

॥ पूर्वरङ्ग ॥

(नेपथ्य में)

(पुष्करघोषनान्दी)

(उसके अन्त में मङ्गलपाठनान्दी)

आपके निःश्रेयस की सिद्धि करे वह स्थाणु जो स्थिरभक्तियोग से सुलभ होता है, जिसे सभी उपनिषदों में प्रमुख पुरुष कहा जाता है, ऐसा पुरुष तो रोदसी ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर अवस्थित रहता है, जिसमें 'ईश्वर' यह शब्द जो अन्य किसी को विषय नहीं बनाता अक्षरशः यथार्थ सिद्ध है, अरे जिसको मुमुक्षुजन प्राणादि को नियमित कर अपने भीतर ही खोजते रहते हैं॥ १॥

(मङ्गलपाठनान्दी के अन्त में)

॥ १ ॥

सूत्रधार (नेपथ्य की ओर मुख करके) बस बस, अतिविस्तार रोको। मारिष! थोड़ा इधर आओ।

(प्रवेश कर)

पारिपार्श्विक भाव! यह हूँ!

सूत्रधार मारिष! यह परिषद् पुराने कवियों के सरस प्रबन्धों को देख चुकी है। मैं इस परिषद् में **कालिदास**–रचित नवीन **'विक्रमोर्वशीय'** नामक त्रोटक की उपस्थापना करना चाहता हूँ। तो सभी पात्रों से कह दो सब अपने अपने पाठ में सावधान रहें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिपार्श्विकः यदाज्ञापयति भावः। *निष्क्रान्तः* २.६

सूत्रधारः यावदिदानीमार्य्यमिश्रान् विज्ञापयामि। *प्रणिपत्य* २.७–

प्रणयिषु वा दाक्षिण्यादथवा सद्वस्तुपुरुषबहुमानात् ।
शृणुत जना अवधानात् क्रियामिमां कालिदासस्य ।। २।।

आकाशे ३.१

अज्जा! परित्ताअध, परित्ताअध जो सुरपक्खवादी जस्स वा अंबरअले गई अत्थि। आर्याः! परित्रायध्वम्, परित्रायध्वम्, यः सुरपक्षपाती यस्य वाम्बरतले गतिरस्ति। ३.२

सूत्रधारः *कर्णं दत्त्वा* अये! किं नु खलु मद्विज्ञापनानन्तरमार्त्तानां कुररीणामिवाकाशे शब्दः श्रूयते – ३.३

[1]मत्तानां कुसुमरसेन षट्पदानां
शब्दोऽयं परभृतनाद एष धीरः ।
आकाशे सुरगणसेविते समन्तात्
किं नार्यः/किन्नर्यः कलमधुराक्षरं प्रगीताः।। ३।।

विचिन्त्य भवतु ज्ञातम्। ४.१

ऊरूद्भवा नरसखस्य मुनेः सुरस्त्री
कैलासनाथमुपसृत्य निवर्त्तमाना ।
वन्दीकृता विबुधशत्रुभिरर्धमार्गे
क्रन्दत्यतः [2]करुणमप्सरसां गणोऽयम् ।। ४।।

।। निष्क्रान्तः।। ५.१

।। प्रस्तावना पूर्व्वरङ्गश्च।।

---

१. ले.बो.मा. पद्यमिदं न पठन्ति।

२. **शरणम** ले.मा.पं.चा.वे., **करुणम** रं.बो.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिपार्श्विक जो आज्ञा भाव की। (निकल जाता है।)

सूत्रधार चलूँ इस अवसर पर आर्यमिश्रों से प्रणिपातपूर्वक निवेदन करूँ –

यदि आप में प्रणयीजनों के प्रति लगाव हो, अथवा सद् वस्तु और सत् पुरुषों के प्रति समादर का भाव हो, तो सभी जन सुनें कालिदास की इस कृति को, पर ध्यान देकर ॥२॥

(आकाश में)

आर्यो! बचाओ, बचाओ जो देवताओं का पक्षधर हो और जिसकी आकाशतल में गति हो।

सूत्रधार (सुनकर) अये! क्या यह मेरी प्रार्थना के तुरंत बाद त्रस्त कुररियों जैसा शब्द सुनाई दे रहा है आकाश में।

क्या यह पुष्परस पीकर मत्त हुए भौरों का शब्द है, या यह कोयल की तेज (धीर) **कूक है। आकाश में जहाँ सुरगण चहुँओर विचरण करते रहते हैं क्या किन्नरियों/नारियों का कलमधुराक्षर गीतस्वर है यह ॥३॥**

(सोचकर) आ गया समझ में।

नरों के सखा (नारायण) **मुनि की जाँघ से उत्पन्न अप्सरा उर्वशी कुबेर की सेवा से लौट रही थी कि दानवों ने बीच मार्ग में उसे बन्दी बना लिया। इसलिए कर रही हैं आर्त्तक्रन्दन ये अप्सराएँ ॥४॥**

(निकल जाता है।)

॥ यह हुई प्रस्तावना और पूर्वरङ्ग ॥

127151
श्री विश्वेश्वरानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ प्रथमोऽङ्कः ।।

।। २ ।।

प्रविशन्त्यप्सरसः ५.२

अप्सरसः अज्जा! परित्ताअध परित्ताअध। जो सुरपक्खवादी जस्स वा अंबरअले गई अत्थि। आर्याः! परित्रायध्वं, परित्रायध्वम्। यः सुरपक्षपाती यस्य वाम्बरतले गतिरस्ति। ५.३

ततः प्रविशतोऽपटीक्षेपेण रथाधिरूढो राजा सूतश्च। ५.४

राजा अलमाक्रन्दितेन। सूर्योपस्थाननिवृत्तं[१] पुरूरवसं मामेत्य कथ्यतां कुतो भवत्यः परित्रातव्याः। ५.५

रम्भा असुरावलेवादो। असुरावलेपात्। ५.६

राजा किं पुनरसुरावलेपेन भवतीनामपराद्धम्? ५.७

रम्भा सुणादु महाराओ। जा तवोविसेससंकिदस्स सुउमारं पहरणं महिंदस्स पच्चादेसो रूबगव्विदाए सिरिगोरिए अलंकारो सग्गस्स सा णो पिअसही [२]उव्वसी कुबेरभवणादो णिवत्तमाणा केणावि दाणवेण चित्तलेहादुदीआ अद्धपधं ज्जेव्व बंदिग्गाहं गिहीदा। शृणोतु महाराजः। या तपोविशेषशङ्कितस्य सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य, प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः श्रीगौर्याः, अलंकारः सर्गस्य सा नः प्रियसखी उर्वशी, कुबेरभवनान्निवर्तमाना केनापि दानवेन चित्रलेखाद्वितीया अर्धपथ एव बन्दिग्राहं गृहीता। ५.८

राजा अपि ज्ञायते कतमेन दिग्विभागेन गतः स जाल्मः? ५.९

अप्सरसः ईसाणीए दिसाए। ऐशान्या दिशा। ५.१०

राजा तेन हि मुच्यतां विषादः। यतिष्ये वः सखीं प्रत्यानेतुम्। ५.११

अप्सरसः सरिसं एदं सोमवंससंभवस्स। सदृशमेतत् सोमवंशसंभवस्य। ५.१२

राजा क्व पुनर्मा भवत्यः प्रतिपालयिष्यन्ति? ५.१३

अप्सरसः एतस्सिं हेमकूडसिहरे। एतस्मिन् हेमकूटशिखरे। ५.१४

---

१. **प्रतिनि** रं.बो.पं.चा.वे., **संनिवृ** ले.मा., **निवृ** काग्र.।

२. **०सही कुबेर०** बो.मा. उव्वसी तिपदमिमौ त्यजतः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। प्रथम अङ्क ।।

।। २ ।।

(प्रवेश करती हैं अप्सराएँ)

अप्सराएँ आर्यो! बचाओ बचाओ। जो सुरपक्षपाती हो और जिसकी गति आकाश में हो।

(प्रवेश करता है अपटीक्षेप के साथ रथ पर बैठा राजा और सूत।)

राजा आक्रन्दन मत करो। सूर्योपस्थान से निवृत्त मुझ पुरूरवा के पास आओ और बतलाओ कि किससे आप लोगों को बचाना है।

रम्भा असुरों के अवलेप से।

राजा असुरों के अवलेप ने आप लोगों का क्या बिगाड़ा?

रम्भा सुनिए महाराज! जो विशिष्ट तप से शंकित इन्द्र का सुकुमार प्रहरण (अस्त्र) है, निराकरण है रूपगर्वित श्रीगौरी का और अलंकार है स्वर्ग का वह हमारी प्रियसखी उर्वशी कुबेर भवन से लौट रही थी कि किसी दानव के द्वारा चित्रलेखा के साथ आधे रास्ते में ही बन्दी जैसी पकड़ ली गई।

राजा क्या जानती हैं कि वह जाल्म किस दिशा में गया है?

अप्सराएँ ऐशान दिशा में।

राजा तो विषाद छोड़ा जाए । प्रयत्न करूँगा आपकी सखी को ले आने के लिए।

अप्सराएँ अनुरूप ही है यह सोमवंश की सन्तान आपके।

राजा पर मेरी प्रतीक्षा आप कहाँ करेंगीं?

अप्सराएँ इस हेमकूट के शिखर पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सूत! ऐशानीं दिशं प्रति चोदयाश्वानाशुगमनाय। ५.१५

सूतः यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। यथोक्तं करोति। ५.१६

राजा *रथवेगं रूपयित्वा* साधु साधु। अनेन रथवेगेन पूर्व्वप्रस्थितं वैनतेयमप्यासादयेयम् किं पुनस्तमपकारिणं मघोनः? मम — ५.१७

अग्रे यान्ति रथस्य रेणुवदमी[1] चूर्णीभवन्तो घना—
श्चक्रभ्रान्तिररान्तरेषु जनयत्यन्यामिवारावलीम् ।
[2]चित्रन्यस्तमिवायतं हरिशिरस्यायामवच्चामरं
[3]यष्ट्यग्रे च समं स्थितो ध्वजपटः प्रान्ते च वेगानिलात् ॥५॥

निष्क्रान्तो रथेन राजा सूतश्च। ६.१

सहजन्या हला! गदो राएसी। ता अम्हे वि जधासंदिठ्ठं पदेसं गच्छम्ह।
सखि! गतो राजर्षिः। तद् वयमपि यथासंदिष्टं प्रदेशं गच्छेम। ६.२

मेनका सहि! एव्वं करेम्ह। सखि! एवं कुर्मः। ६.३

हेमकूटशिखरे नाट्येनाधिरोहन्ति ६.४

रम्भा सहि! अवि णाम सो राएसी उद्धरदि णो हिअअसल्लं?
सखि! अपि नाम स राजर्षिरुद्धरति नो हृदयशल्यम्। ६.५

मेनका सहि! मा दे संसओ होदु। सखि! मा ते संशयो भूत्। ६.६

रम्भा णं दुज्जआ दाणवा। ननु दुर्जया दानवाः। ६.७

मेनका उवटिठ्दसंपराओ महिंदो वि मज्झमलोआदो सबहुमाणं आणविअ तं एव विबुधविअआअ सेणामुहे णिओजेदि। उपस्थितसंपरायो महेन्द्रोऽपि मध्यमलोकात् सबहुमानमानाय्य तमेव विबुधविजयाय सेनामुखे नियोजयति। ६.८

रम्भा सव्वहा विअई भोदु। सर्वथा विजयी भवतु। ६.९

मेनका *क्षणमात्रं स्थित्वा* हला! समस्ससध समस्ससध। एस उल्लसिद—हरिणकेदणो तस्स राएसिणो सोमदत्तो रथो दीसदि। ण एसो अकिदत्थो पडिणिउत्तिस्सदि त्ति तक्केमि। सख्यः! समाश्वसित समाश्वसित। एष उल्लसितहरिणकेतनः तस्य राजर्षेः सोमदत्तो रथो दृश्यते। नैषः अकृतार्थः प्रतिनिवर्तिष्यत इति तर्कयामि। ६.१०

निमित्तं सूचयित्वावलोकयन्त्यः स्थिताः। ६.११

---

१. **रेणुपदवीं** ले.बो.मा.।
२. **चित्रारम्भविनिश्चलं** ले.बो.मा.।
३. **यन्मध्ये समवस्थितो** ले.बो.मा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सूत! ऐशानी दिशा की ओर घेरो तेजी से जाने के लिए अश्वों को।

सूत जो आयुष्मान् की आज्ञा। (यथोक्त करता है)

राजा (रथवेग का अभिनय कर) साधु साधु! इस रथवेग से आगे गए गरुड को पकड़ सकता हूँ मैं, उस इन्द्र के अपकारी की तो बात ही क्या? मेरे – **रथ के आगे चल रहे हैं उनमें लगे रेणु के समान चूर्णित हो रहे मेघ, चक्र इतनी तीव्रता के साथ घूम रहे हैं कि उनमें अरों में एक दूसरी अरावली पैदा हो रही है। घोड़ों की गरदन पर जो बाल हैं, निष्कम्प हैं वे, उनकी लम्बाई लगता है चित्रलिखित सी है और ध्वजपट वायुवेग से यष्टि के अगले हिस्से के की समान अन्त में भी समान रूप में स्थिर है ॥ ५॥**

(निकल जाते हैं रथ से राजा और सूत)।

सहजन्या सखि! राजर्षि चले गए। हम भी निश्चित स्थान पर पहुँचे।

मेनका सखि! ऐसा करें।

(हेमकूट के शिखर पर चढ़ने का अभिनय करती हैं)।

रम्भा सखि! शायद वह राजर्षि हमारा हृदयशल्य निकाल दे।

मेनका सखि! संशय नहीं होना चाहिए तुझे।

रम्भा दानव बड़े दुर्जेय होते हैं।

मेनका जब महेन्द्र को युद्ध करना होता है तब वे भी मध्यम लोक से बड़े आदर के साथ बुलवा कर उसी राजर्षि को देवताओं की जीत के लिए सेना का अग्रणी नियुक्त करते हैं।

रम्भा सर्वथा विजयी हों।

मेनका (क्षणमात्र रुककर) हला ढाढस बाँधो, ढाढस बाँधो – यह उसी राजर्षि का सोमदत्त नामक रथ दिखाई दे रहा है, जिसका केतु हरित (केसरिया) है। यह देखें! वह दिखाई पड़ रहा है। काम न बना होता तो ये लौटते नहीं। ऐसा सोचती हूँ मैं।

(शकुन होने का प्रदर्शन करती है और वहीं खड़ी रहती है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ३ ॥

ततः प्रविशति रथारूढो राजा सूतश्च। भयनिमीलिताक्षी चित्रलेखादक्षिणहस्तावलम्बिता उर्वशी च। ६.१२

चित्रलेखा सहि! समस्सस। सखि! समाश्वसिहि। ६.१३

राजा सुन्दरि! समाश्वसिहि। ६.१४

गतं भयं भीरु! सुरारिसम्भवं त्रिलोकरक्षी महिमा हि वज्रिणः।
तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं निशावसाने सरसीव पङ्कजम् ॥ ६॥

चित्रलेखा अम्महे कधं उच्छसिदमेत्तसंभाविदजीविदा अज्ज वि एसा सञ्ञं ण पडिवज्जदि।

अहो कथमुच्छ्वसितमात्रसंभावितजीविता, अद्याप्येषा संज्ञां न प्रतिपद्यते। ७.१

राजा बलवदत्रभवती परित्रस्ता। तथाहि— ७.२

मन्दारकुसुमदाम्ना गुरुरस्याः सूच्यते हृदयकम्पः ।
मुहुरुच्छ्वसता मध्ये परिणाहवतोः पयोधरयोः ॥ ७॥

चित्रलेखा *सकरुणम्* हला उव्वसि! पज्जवत्थावेहि अत्ताणं। अणच्छरा विअ पडिभासि। सखि उर्वशि! पर्यवस्थापयात्मानम्। अनप्सरा इव प्रतिभासि। ८.१

राजा ८.२

मुञ्चति न तावदस्याः भयकम्पः कुसुमकोमलं हृदयम् ।
सिचयान्तेन कथञ्चित् स्तनमध्योच्छ्वासिना कथितः ॥ ८॥

उर्वशी *प्रत्यागच्छति।* ९.१

राजा *सहर्षम्* चित्रलेखे! दिष्ट्या वर्धसे। प्रकृतिमापन्ना ते प्रियसखी! पश्य—९.२

आविर्भूते शशिनि तमसा [1]मुच्यमानेव रात्रि—
र्नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव च्छिन्नभूयिष्ठधूमा ।
मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा
गङ्गा रोधःपतनकलुषा [2]गृह्णतीव प्रसादम् ॥ ९॥

---

१ **रिच्यमाने** रं.ले.बो., **मुच्यमाने** पं.चा.वे.काग्र.।

२ **गृह्णती** पं.चं.वे., **गच्छती** रं.ले.बो.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ३ ॥

(प्रवेश होता है रथारूढ़ राजा और सूत का, भय से आँख नीचे की उर्वशी का और उसे दाहिने हाथ में सम्हाले चित्रलेखा का।)

चित्रलेखा सखि! आश्वस्त हो, सम्हल।

राजा सुन्दरि! सम्हल।

हे भीरु। दानवभय बीत चुका है – वज्रधारी महेन्द्र की महिमा तीनों लोकों की रक्षा में समर्थ है। तो अब खोल तेरा यह दीर्घ नेत्र, रात बीतने पर जैसे सरसी कमल को विकसित करती है ॥ ६॥

चित्रलेखा अहो, साँस लेने मात्र से लग रहा है कि यह जीवित है। अभी तक यह होश में नहीं आ रही है।

राजा यह बहुत अधिक डर गई है। क्योंकि –

इसके विपुल स्तनों के बीच बार–बार हिलते इस मन्दारपुष्प के हार से इसके हृदय की तेज धड़कन समझ पड़ रही है ॥ ७॥

चित्रलेखा (करुणापूर्ण होकर) हला उर्वशि! सम्हाल खुद को। तू तो लग रही है कि अप्सरा ही नहीं है।

राजा **इसके कुसुमकोमल हृदय में भयजनित कम्पन हो ही रहा है, छोड़ नहीं रहा यह इसके हृदय को। दोनों स्तनों के बीच के इस हिल रहे पल्ले** (आँचल) **से इसे लक्षित किया जा सकता है ॥ ८॥**

उर्वशी (होश में आती है।)

राजा (सहर्ष) चित्रलेखे! बधाई तुम्हें। प्रकृति (होश) में आ रही है तुम्हारी प्रिय सखी। देखो – **चन्द्र उदित हो जाने पर तम से रिक्त हो रही रात्रि सी, रात्रिकालीन अग्नि की लपट सी, काफी छूट चुका हो धुआँ जिससे ऐसे ही यह सुन्दरी मूर्च्छा से मुक्त हुई सी लग रही है, अथवा तट की मिट्टी के ढहने से मटमैली गङ्गा के समान स्वच्छ होती सी ॥ ९॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा सहि उव्वसि! वीसद्धा होहि। पडिहदा क्खु दे तिदसपरिपंथिणो हदासा दाणवा। सखि उर्वशि! विस्रब्धा भव। प्रतिहताः खलु ते त्रिदशपरिपन्थिनो हताशा दानवाः। १०.१

उर्वशी *चक्षुषी उन्मील्य* किं [१]पहावदंसिणा महिंदेण अब्भुववण्ण म्हि?

किं प्रभावदर्शिना महेन्द्रेणाभ्युपपन्नास्मि? १०.२

चित्रलेखा ण महिंदेण। महिंदसरिसाणुहावेण राएसिणा पुरुरवसेण।

न महेन्द्रेण। महेन्द्रसदृशानुभावेन राजर्षिणा पुरूरवसा। १०.३

उर्वशी *राजानमवलोक्य आत्मगतम्* उवकिदं क्खु दाणविंदसंरंहेण।

उपकृतं खलु दानवेन्द्रसंरम्भेण। १०.४

राजा *उर्वशीं विलोक्य आत्मगतम्* स्थाने खलु नारायणमृषिं विलोभयन्त्यः तदूरुसंभवामिमां विलोक्य व्रीडिताः सर्वा अप्सरसः इति। अथवा नेयं तपस्विनः सृष्टिरित्यवैमि — १०.५

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तप्रभः[२]
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन् मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः॥१०॥

उर्वशी हला चित्तलेहे! सहीअणो कहिं क्खु °वे?

सखि चित्रलेखे! सखीजनः कुत्र खलु भवेत्? ११.१

चित्रलेखा सहि! अहअप्पदाई महाराओ जाणादि।

सखि! अभयप्रदायी महाराजो जानाति। ११.२

राजा *उर्वशीं विलोक्य* महति विषादे वर्तते सखीजनः। पश्यतु भवती — ११.३

यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्ययोः
पथि स्थिता सुन्दरि! यस्य नेत्रयोः ।
त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्
सखीजनस्ते [३]किमुतात्तसौहृदः ॥११॥

---

१. **संपहारदं** ले.बो.मा., **पभावदं** रं.चा.काग्र.।

२. **कान्तिप्रदः** काग्र.बो.मा., **कान्तप्रभः** इति त्वस्मत्कल्पितम्।

३. **तात्त/र्द्रसौ०** काग्र. रं अपरे च, **रूढ** बो.मा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा सखि उर्वशि! निश्चिन्त हो मारे जा चुके हैं वे सभी देवविरोधी दानव।

उर्वशी (आँखे खोलकर) क्या प्रभाव दिखला कर महेन्द्र ने कृपा की है?

चित्रलेखा महेन्द्र ने नहीं, अपितु महेन्द्र जैसे प्रभावशाली राजर्षि पुरूरवा ने।

उर्वशी (राजा को देखकर आत्मगत) उपकार ही किया दानवेन्द्र के उपद्रव ने।

राजा (उर्वशी को देखकर आत्मगत) ठीक ही हुआ कि नारायण ऋषि को आकृष्ट करने में लगीं सभी अप्सराएँ उनके ऊरु से उत्पन्न इसे देखकर लज्जित हो गईं। **अथवा मैं नहीं समझता कि यह तपस्वी की सृष्टि है। या तो, इसकी रचना में प्रजापति बना था चन्द्र, जिसकी प्रभा बड़ी ही कमनीय है, अथवा स्वयं मदन, जिसका मुख्य रस है शृङ्गार, अथवा वसन्तमास जो पुष्पों का भण्डार है। मनोहर रूप को वह मुनि कैसे बना सकता है, जो एक तो वेद रटते रटते जड़ हो गया और विषयों से भी उसका कौतूहल लौट गया है ॥ १०॥**

उर्वशी सखि चित्रलेखे! सखीजन कहाँ हैं।

चित्रलेखा सखि! अभयप्रदायी महाराज जानते हैं।

राजा (उर्वशी को देखकर) भारी विषाद में हैं सभी सखियाँ। देखें आप –
हे सुन्दरि! तू जिसके भी अवन्ध्य नेत्रों के पथ में एक बार भी कैसे तो भी आ जाए तो वह भी तेरे बिना उत्सुक ही नहीं समुत्सुक होने लगे (जैसे मैं) **फिर सखीजन का तो क्या कहना, जिनका तुझसे सौहार्द है ॥११॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी *आत्मगतम्* [१]अहिजादं क्खु से वअणं। अहवा चंदादो अमिअं त्ति किं अच्छरिअं। *प्रकाशम्* अदो जेव्व मे पेक्खिदुं तुवरदि हिअअं।

(आत्मगतम्) अभिजातं खलु अस्य वचनम्। अथवा चन्द्रादमृतमिति किमाश्चर्यम्। *(प्रकाशम्)* अत एव मे प्रेक्षितुं त्वरते हृदयम्। १२.१

राजा *हस्तेन दर्शयन्* – १२.२

एताः सुतनु मुखं ते सख्यः पश्यन्ति हेमकूटगताः।
[२]उत्सुकनयना लोकाश्चन्द्रमिवोपप्लवान्मुक्तम्।।१२।।

उर्वशी *साभिलाषं पश्यति* १३.१

चित्रलेखा हला! किं पेक्खसि? सखि! किं प्रेक्षसे? १३.२

उर्वशी णं समदुक्खगदो पिबीअदि लोअणेहिं।

ननु समदुःखगतः पीयते लोचनाभ्याम्। १३.३

चित्रलेखा *सस्मितम्* अइ को? अयि कः? १३.४

उर्वशी णं पणयिअणो? ननु प्रणयिजनः? १३.५

रम्भाः *सहर्षमवलोक्य* हला! चित्तलेहादुदीअं पिअसहिं उव्वसि गेण्हिअ विसाहासहिदो विअ भअवं सोमो समुपट्ठिदो राएसी। चित्रलेखाद्वितीयां प्रियसखीमुर्वशीं गृहीत्वा विशाखासहित इव भगवान् सोमः, समुपस्थितो राजर्षिः। १३.६

मेनका *निर्वर्ण्य* सहि! दुवे वि णो एत्थ प्पिआ उवणदा इअं पच्चाणीदा पिअसही अअं अ अपरिक्खदसरीरो राएसी। (निर्वर्ण्य) सखि! द्वे अपि नोऽत्र प्रिये उपनते इयं प्रत्यानीता प्रियसखी, अयं चापरिक्षतशरीरो राजर्षिः। १३.७

सहजन्या सहि! जुत्तं भणसि दुज्जओ दाणवो त्ति।

सखि! युक्तं भणसि दुर्जयो दानव इति। १३.८

राजा सूत! इदं तच्छैलशिखरम्। अवतारय रथम्। १३.९

सूतः यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। [३] *तथा करोति।* १३.१०

उर्वशी *रथावतारक्षोभं नाटयन्ती सत्रासं राजानमवलम्बते।* [४] १३.११

---

१. **अमिअं** बो.मा.। २. **उत्सुकनयना** काग्र., **उन्मुखनयना** बो.मा.।
३. **तथा करोतीति** सर्वे। ले.बो.पुनः **'तथा करोति। रम्भा रथावतारक्षोभं नाटयति। उर्वशी सत्रासम्'** इति पठतः। ४. अयं प्रथमः स्पर्शो नायिकाकर्तृको नायककर्मकश्च।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी (स्वगत) इसकी बोली बड़ी मीठी है। अथवा चन्द्र से अमृत का स्राव हो इसमें क्या आश्चर्य (प्रकाश) इसीलिए मेरा हृदय देखने के लिए त्वरा कर रहा है (दोनों ओर लगने वाली उक्ति राजा की ओर भी और सखियों की ओर भी)।

राजा (हाथ से दिखलाता है) **ये देख सुतनु! तेरी सखियाँ हेमकूट पर उत्सुकनयन होकर तेरा मुख देख रही हैं जैसे लोग ग्रहण से मुक्त चन्द्रबिम्ब को देखते हैं ॥ १२॥**

उर्वशी (अभिलाष के साथ देखती है।)

चित्रलेखा हला क्या देख रही है?

उर्वशी समदु:खजन को लोचनों से पी रही हूँ। (उभयपक्षी)

चित्रलेखा (स्मितपूर्वक) अरे कौन?

उर्वशी कौन? प्रणयिजन (उभयपक्षी)।

रम्भा (हर्षपूर्वक देखकर) हला! चित्रलेखा के साथ प्रियसखी उर्वशी को लेकर राजर्षि उपस्थित हो रहे हैं, विशाखा के साथ भगवान् सोम के समान।

मेनका (अच्छी तरह देखकर) दोनों ही हमारे प्रिय हमें प्राप्त हो गए। एक तो यह प्रियसखी वापस आ गई और दूसरे ये राजर्षि भी सुरक्षित लौट आए।

सहजन्या सखि! ठीक कहती है कि दानव दुर्जय होते हैं।

राजा सूत! यही है वह शैलशिखर। उतारो रथ।

सूत आयुष्मान् की जो आज्ञा। (वैसा ही करता है)

उर्वशी (रथ उतरने के क्षोभ का अभिनय करती और भयपूर्वक राजा को पकड़ लेती है।)[1]

---

१. यह हुआ नायिका के द्वारा किया गया नायक का प्रथम स्पर्श।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *आत्मगतम्* हन्त सफलो मे [१]विषमावतारः। १३.१२

यदिदं रथसंक्षोभादङ्गेनाङ्गं[२] ममायतेक्षणया।
स्पृष्टं [३]सरोमविक्रियमङ्कुरितं मनसिजेनेव॥१३॥

उर्वशी सहि! किं वि परदो/परत्तो ओसर। सखि! किमपि परतोऽपसर। १४.१

चित्रलेखा णाहं सक्केमि। नाहं शक्नोमि। १४.२

रम्भा एत्थ पिअकारिणं संभावेम्ह राएसिं। *सर्व्वा राजानमुपसर्पन्ति*
अत्र प्रियकारिणं संभावयामो राजर्षिम्। १४.३

राजा सूत! उपश्लेषय रथम्। १४.४

यावत् पुनरियं सुभ्रूरुत्सुकाभिः समुत्सुका।
सखीभिर्याति संपर्कं लताभिः श्रीरिवार्त्तवी॥१४॥

सूतः यदाज्ञपयति आयुष्मान्। *रथं स्थापयति* १५.१

अप्सरसः दिट्ठिआ महाराजो विअएण बडढ्सि। दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धसे। १५.२

राजा भवत्यश्च सखीसमागमेन। १५.३

उर्वशी *चित्रलेखादत्तहस्तावलम्बा रथादवतीर्य* हला! अहिअं परिस्सअधं। ण क्खु मे आसी आसासो जधा पुणो वि सहीअणं पेक्खिस्सं त्ति। *सख्यः परिष्वजन्ते।*
सख्यः अधिकं परिष्वजथ। न खलु मे आसीदाश्वासो यथा पुनरपि सखीजनं प्रेक्षिष्य इति। (सख्यः परिष्वजन्ते।) १५.४

मेनका *साशंसम्* सव्वहा कप्पसदं महाराजो पुहविं पालअंतो होदु।
(साशंसम्) सर्वथा कल्पशतं महाराजः पृथिवीं पालयन् भवतु। १५.५

सूतः आयुष्मन्! पूर्वस्यां दिशि महता [४]रथवंशेनोपदर्शितः — १५.६

अयं स[५] गगनात् कोऽपि तप्तचामीकराङ्गदः।
अधिरोहति शैलाग्रं तडित्वानिव तोयदः॥१५॥

---

१. **विषमा** इति बो.पं.चा.वे., **विषया** इति तु रं.ले.। विषयोऽत्र कामः।
२. अत्र अङ्गपदं हस्तपरम्।
३. **सरोमविक्रिय** बो.पं.चा.वे.काग्र., **सरोमकण्टक** रं.ले.मा.।
४. **रथवंशेनोपदर्शितः अयं** इत्यस्य स्थाने **रथवेगेनोपदर्शितः शब्दः अयं** इति रं.पं.चा.वे.काग्र., **रथवंशेनोद्दर्शितम्** इति ले.मा., **रथवेगेनोद्दर्शितं** बो.; **शैलाग्रं** ले. **शैलाग्रं** परे।
५. **अयं स** प्रकरणानुरोधात् **अयञ्च** रं.ले.बो.पं.चा.वे.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (स्वगत) हन्त! मेरा विषम[1] भूमि में उतरना सफल हो गया कि –
रथसंक्षोभ के कारण इस विशालाक्षी ने मेरा रोमाञ्चित अंग अपने अंग से छू दिया। रोमाञ्च क्या यह तो कामरूपी बीज का अंकुर है।। १३।।

उर्वशी सखि! कुछ उधर खिसक जा।

चित्रलेखा नहीं खिसक पाऊँगी मैं।

रम्भा आओ प्रियकारी राजर्षि का सत्कार करें। (सभी राजा के पास पहुँच जाती हैं)

राजा सूत! रथ को रोक लो–
यह समुत्सुक सुभ्रू उत्सुक सखियों से मिल ले जैसे ऋतुकाल की श्री लताओं से मिलती है ।।१४।।

सूत जो आज्ञा आयुष्मान्। (रथ को रोकता है)

अप्सराएँ महाराज को विजय की बधाई।

राजा आपको भी सखी के समागम की।

उर्वशी (रथ से उतरती है, उसे चित्रलेखा हाथ का सहारा देती है) हला! खूब जोर से करो मेरा आलिङ्गन। तनिक भी आशा नहीं थी मुझे कि मैं सखियों से फिर मिल सकूँगी। (सखियाँ आलिंगन करती हैं।)

मेनका (शुभाशंसापूर्वक) सर्वथा सौ कल्पों तक महाराज राज्य करें पृथिवी का।

सूत आयुष्मन्! पूर्वदिशा में रथ का यह लम्बा बाँस[2] बतला रहा है कि –
आकाश से यह तप्त सुवर्ण सा अंगद पहने कोई शैल के शिखर पर उतर रहा है। लग रहा है जैसे बिजली चमकाता मेघ हो ।। १५।।

---

१. पाठान्तर – विषयावतार।

२. ध्वजायुक्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्सरसः *पश्यन्त्यः* अम्मो चित्तरहो। अहो चित्ररथः। १६.१

ततः प्रविशति चित्ररथः १६.२

चित्ररथः *राजानं दृष्ट्वा सबहुमानम्* दिष्ट्या [१] महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्द्धते भवान्। १६.३

राजा अये! गन्धर्वराजः *रथादवतीर्य* स्वागतं प्रियसुहृदे। १६.४

परस्परं हस्तौ स्पृशतः। १६.५

चित्ररथः वयस्य! केशिना हृतामुर्व्वशीं नारदादुपश्रुत्य प्रत्याहरणार्थमस्याः शतक्रतुना गन्धर्व्वसेना[२] समादिष्टा। ततो वयमन्तरा चारणेभ्यस्त्वदीयं [३] जयोदाहरणं श्रुत्वा त्वामिहस्थमुपागताः। भवानिमां पुरस्कृत्य महेन्द्रं द्रष्टुमर्हति। महत् खलु तत्रभवतो मघोनः प्रियमनुष्ठितं भवता। पश्य— १६.६

पुरा नारायणेनेयमतिसृष्टा मरुत्वते।[४]
दैत्यहस्तादपाच्छिद्य सुहृदा संप्रति त्वया।।१६।।

राजा सखे! मा मैवम्। १७.१

ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद् विजयन्ते द्विषतो यदस्य [५]पक्षाः।
वसुधाधरकन्दराविसर्पी प्रतिशब्दो हि हरेर्हिनस्ति नागान्।।१७।।

चित्ररथः युक्तम्। अनुत्सेकः[६] खलु विक्रमालङ्कारः। १८.१

राजा सखे! नायमवसरः शतक्रतुं द्रष्टुम्। त्वमेवात्रभवतीं प्रभोरन्तिकं प्रापय। १८.२

चित्ररथः यथा भवान् मन्यते। इत इतो भवत्यः। *सर्वा प्रस्थिताः।* १८.३

उर्वशी *जनान्तिकम्* हला चित्तलेहे! उवआरिणं राएसिं ण सक्कुणोमि आमंतेदुं। ता तुमं एव्व मे मुहं होहि। सखि चित्रलेखे! उपकारिणं राजर्षिं न शक्नोम्यामन्त्रयितुम् तत् त्वमेव मे मुखं भव। १८.४

---

१. **महेन्द्रो** रं.बो.पं.चा.काग्र., **महोप** ले.मा.।
२. **सेनाः समादिष्टाः** ले.बो.मा., **सेना०दिष्टाः** इत्यपरे। द्र. रघुवंशे ४.७८, अत्रैव ३.१३ जयोदाहरणम्।
३. **मति** रं.बो.पं.चा.व.काग्र., **मभि** ले.।
४. **मरुत्वते** रं.बो.पं.चा.वं.काग्र., **मरुत्वतः** ले.।
५. **पक्षाः** ले.बो.मा., **पक्ष्याः** रं. काग्र.।
६. **अनुत्सुकता** ले.बो.मा., **अनुत्सेकः** पं.चा.बेल.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्सराएँ (देखती हुई) ओहो चित्ररथ हैं ये।

(इसके बाद चित्ररथ करता है प्रवेश)

चित्ररथ (राजा को देखकर आदरपूर्वक) अपने पराक्रम की महेन्द्र तक के उपकार में पर्याप्त महिमा के लिए बधाई।

राजा अये! ये तो गन्धर्वराज हैं। (रथ से उतरकर) प्रिय सुहृद् का स्वागत।

(दोनों हाथ छूते हैं।)

चित्ररथ वयस्य! नारद ने सूचित किया कि उर्वशी का हरण केशी ने कर लिया है तो उसे वापस लाने के लिए गन्धर्वसेना को आदेश दिया। बीच में हम लोगों ने चारणों से आपकी जीत की बात सुनी तो आपके पास यहाँ आ गए। आप उर्वशी को आगे करके महेन्द्र के पास चल सकते हैं। महेन्द्र का बहुत बड़ा प्रिय कार्य किया है आपने। देखिए—

एक बार पहले तो इस सुन्दरी को इन्द्र को दिया था नारायण ऋषि ने, और दूसरी बार इस समय महेन्द्र के सुहृद् तुमने दैत्य के हाथ से छीन कर ॥१६॥

राजा सखे! ऐसा नहीं — **यह तो वज्री इन्द्र के ही वीर्य की महिमा है कि इनके पक्ष के लोग शत्रुओं को जीत ले रहे हैं। पर्वतकन्दरा में फैलता सिंह का प्रतिशब्द भी हाथियों को समाप्त कर देता है ॥१७॥**

चित्ररथ ठीक। अनुत्सेक[1] ही होता है विक्रम[2] का अलंकार।

राजा सखे! मेरे लिए यह उपयुक्त अवसर नहीं है महेन्द्र को देखने का। इन्हें आप ही उनके पास पहुँचा दें।

चित्ररथ जैसी आपकी मान्यता। आप सब इधर आवें। (सभी प्रस्थान करती हैं।)

उर्वशी (जनान्तिक) हला चित्रलेखे। उपकारी राजर्षि से मैं सीधे बात कर नहीं पा रही हूँ। तो तू ही बन जा मेरा मुख।

---

१. निरहंकारिता ।

२. पराक्रम ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा *राजानमुपेत्य* महाराज! उव्वसी विण्णवेदि 'महाराएण अब्भणुण्णादा इच्छामि [1]पिअसहीं विअ महाराअस्स कित्तिं सुरलोअं णेदुं' त्ति।

(राजानमुपेत्य) महाराज! उर्वशी विज्ञापयति– 'महाराजेनाभ्यनुज्ञाता इच्छामि प्रियसखीमिव महाराजस्य कीर्तिं सुरलोकं नेतुम्' इति। १८.५

राजा गम्यतां पुनर्दर्शनाय। १८.६

सर्व्वाः सगन्धर्व्वाः आकाशोत्पनं रूपयन्ति। १८.७

उर्वशी [2]*उत्पतनभङ्गं रूपयित्वा* अम्मो! लदाविडवे एआवली मे लग्गा। *सव्याजं परिवृत्य राजानं पश्यन्ती* सहि चित्तलेहे! मोआवेहि दाव णं।

(उत्पतनभङ्गं रूपयित्वा) अहो! लताविटपे एषैकावली मे लग्ना। (सव्याजं परिवृत्य राजानं पश्यन्ती) सखि चित्रलेखे! मोचय तावदेनाम्। १८.८

चित्रलेखा *विलोक्य विहस्य च* आ दिढं क्खु लग्गा। ण सक्का मोओवेदुं।

(विलोक्य विहस्य च) आह दृढं खलु लग्ना। न शक्या मोचयितुं। १८.९

उर्वशी अलं परिहासेण। अलं परिहासेन। १८.१०

चित्रलेखा आं दुम्मोआ विअ पडिभादि। तहवि जदिस्से दाव।

दुर्मोकेव मे प्रतिभाति। तथापि यतिष्ये तावत्। १८.११

उर्वशी *स्मितं कृत्वा* पिअसहि! सुमरेहिं क्खु एदं अत्तणो वअणं।

(स्मितं कृत्वा) प्रियसखि! स्मर खल्वेतदात्मनो वचनम्। १८.१२

चित्रलेखा *मोचनं नाटयति।* १८.१३

राजा *आत्मगतम्* १८.१४

प्रियमाचरितं लते त्वया मे गमनेऽस्याः क्षणविघ्नमाचरन्त्या।
यदियं पुनरप्यरालनेत्रा[3] परिवृत्तार्धमुखी मयाऽद्य दृष्टा ॥१८॥

सूतः आयुष्मन्! १९.१

अदः[4] सुरेन्द्रस्य कृतापराधान् प्रक्षिप्य दैत्याँल्लवणाम्बुराशौ।
वायव्यमस्त्रं शरधिं पुनस्ते महोरगः श्वभ्रमिव प्रविष्टम्॥१९॥

---

१. **पियं विअ** ले. बो.मा., **पियसहीं विअ** रं. काग्र.।

२. **परिहासप्रसङ्गेऽत्र** बो. पाठः। काग्र. तु **पडिभादि**। **उर्वशी**– अलं परिहासेण। **चित्रलेखा**– भोदु जदिस्से दाव। **उर्वशी**– *स्मितं कृत्वा* **पिअसहि सुमरेहि'** इत्येवमिमं प्रस्तौति।

३. **अरालनेत्रा मा** अरालं कुटिलम्। **अपाङ्गनेत्रा** रं.बो.पं. चा.वेल. काग्र.।

४. **अदः** रं.पं.चा.वेल.काग्र., **अधः** ले.बो.मा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा (राजा के पास पहुँचकर) महाराज। उर्वशी निवेदन कर रही है 'महाराज की आज्ञा से चाहती हूँ महाराज की कीर्त्ति को प्रियसखी के समान सुरलोक ले जाना।'

राजा जाएँ पुनदर्शन के लिए।

(सभी गन्धर्वों के साथ आकाशोत्पतन का अभिनय करते हैं।)

उर्वशी (उड़ने में भङ्ग होने का अभिनय कर) अहो! लता की टहनी में मेरी एकावली अटक गई। (बहाने से पीछे फिरकर राजा को देखती है) सहि चित्रलेखे! छुड़वा इसे।

चित्रलेखा (देखकर और हंसकर) आह जोर से अटक गई है। छुड़ा पाना कठिन है ।

उर्वशी परिहास मत कर ।

चित्रलेखा हाँ हाँ, कठिन लग रहा है इसका छुड़ाना। तब भी यत्न करूँगी।

उर्वशी (मुसकुराकर) प्रियसखि! याद रखना अपने इस वचन को।

चित्रलेखा (छुड़ाने का अभिनय करती है।)

राजा (स्वगत)

हे लते! तूने मेरा प्रिय कार्य किया कि इसके गमन में क्षण भर का विलम्ब कर दिया जिससे इस क्षण मैं इस अरालनेत्रा[1] और आधा मुँह घुमाकर खड़ी सुन्दरी को एक बार पुनः देख सका।।१८।।

सूत आयुष्मन्!

तुम्हारा यह वायव्य अस्त्र महेन्द्र का अपराध करने वाले दैत्यों को क्षारसमुद्र में फेंककर पुनः तुम्हारे तरकश में आकर प्रविष्ट हो गया, अपने बिल में महोरग के समान।।१९।।

---

१. टेढ़ी नजर वाली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा तेन हि ह्युपश्लेषय रथम्। यावदारोहामि। २०.१

सूतः यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। *रथमुपश्लेषयति* २०.२

राजा *रथारोहणं नाटयति।* २०.३

उर्वशी अवि णाम पुणो वि उवआरिणं एणं पेक्खिस्सं? *सस्पृहं राजानमवलोकयन्ती सगन्धर्वा सह सखीभिर्निष्क्रान्ता।* अपि नाम पुनरप्युपकारिणमेनं प्रेक्षिष्ये। २०.४

राजा *उर्वशीवर्त्मोन्मुखः*

अहो! दुर्लभाभिनिवेशी मदनः। २०.५

एषा मनो मे प्रसभं शरीरात् पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती ।
सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रात् सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ।।२०।।

।। निष्क्रान्ताः सर्वे।। २१.१

इति महाकविकालिदासकृतौ विक्रमोर्वशीये त्रोटके नायकप्रीतियोगारम्भो नाम प्रथमोऽङ्कः।।१।।[१]

---

१. महामहोपाध्यायरेवाप्रसादद्विवेदिना पर्यपूरि प्रतिलेख एषोऽद्य ४.१.२००३, कालिदाससंस्थानम्, वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा तो रथ को खड़ा कर लो जब तक उतरूँ मैं।

सूत जैसी आज्ञा आयुष्मान् की। (रथ को खड़ाकर लेता है)

राजा (रथ से उतरने का अभिनय करता है।)

उर्वशी क्या इस उपकारी को फिर कभी देख सकूँगी?

(सस्पृह राजा को देखती हुई गन्धर्वों सहित सखियों के साथ निकल गई।)

राजा (उर्वशी के मार्ग की ओर देखते हुए)

अहो! मदन दुर्लभ में ही अभिनिवेश करता है।

यह सुराङ्गना एक ओर तो मेरा मन शरीर से बलात् खींचती हुई आकाश में उड़ रही है और दूसरी ओर यह राजहंसी खण्डिताग्र मृणाल से उसका सूत्र खींचती हुई ।।२०।। (प्रस्तुतोभयोपमा)

(सभी निकल जाते हैं।)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति विक्रमोर्वशीय नामक त्रोटक में 'नायकप्रीतियोगारम्भ' नामक पूर्ण हुआ प्रथम अङ्क ।।१।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ द्वितीयाङ्कप्रवेशकः ।। १.१

।।१।।

ततः प्रविशति विदूषकः १.२

विदूषकः *ससंभ्रमम्* भो अविहा अविहा णिमंतणिओ [१] परमण्णेण विअ राअरहस्सेण फुट्टमाणो ण सक्कणोमि जणाइण्णे अत्तणो जिव्हं धारिदुं। ता जाव सो राआ धम्मासणदो इदो आअछइ इमस्सिं विरलअणसंवादे देवच्छन्दअ–प्पासादे आरुहिअ चिट्ठिसं। ही ही भोः, निमन्त्रणिकः परमान्नेनेव राजरहस्येन स्फुटन् न शक्नोमि जनाकीर्णे आत्मनो जिह्वां धारयितुम्। तद् यावत् स राजा धर्मासनत इत आयाति तावदेतस्मिन् विरलजनसंपाते देवच्छन्दकप्रासादे, आरुह्य स्थास्यामि। *परिक्रम्योपविश्य पाणिभ्यां मुखं पिधाय स्थितः।* १.३

ततः प्रविशति चेटी १.४

चेटी आणत्तम्हि देवीए कासिराजधूदाए[२] जधा 'हंजे णिउणिए! जदो पहुदि भअअदो सुज्जस्स उवत्थाणं कदुअ पडिणिउत्तो अज्जउत्तो तदो पहुदि सुण्णहिअओ विअ लक्खिअदि। ता तुमं तस्स पिअवअस्सादो अज्जमाणवआदो जाणाहि दाव से उक्कण्ठाकालणं' त्ति। कहं क्खु सो बम्हबंधू अदि–संधादव्वो? अहवा तिणग्गलग्गं विअ अवस्साअसलिलं ण तस्सिं राअरहस्सं चिरं चिट्ठदि त्ति तक्केमि। जाव णं अण्णेसामि। *परिक्रम्यावलोक्य च* अम्मो! आलेक्खवाणरो विअ किं वि मंतअंतो णिहुदो अज्जमाणवओ चिट्ठदि। ता जाव णं उवसप्पामि। *उपसृत्य* अज्ज! वंदामि। आज्ञप्तास्मि देव्या काशिराजदुहित्रा यथा – 'सखि निपुणिके! यतः प्रभृति भगवतः सूर्यस्योपस्थानं कृत्वा प्रतिनिवृत्त आर्यपुत्रः, ततः प्रभृति शून्यहृदय इव लक्ष्यते। तत् त्वं तस्य प्रियवयस्यादार्यमाणवकाज्जानीहि अस्योत्कण्ठाकारणमि'ति। कथं खलु स ब्रह्मबन्धुरतिसंधातव्यः? अथवा तृणाग्रलग्नमिवावश्यायसलिलं न तस्मिन् राजरहस्यं चिरं तिष्ठतीति तर्कयामि। तावदेनमन्वेषयामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) अहो! आलेख्यवानर इव किमपि मन्त्रयन् निभृत आर्यमाणवकस्तिष्ठति। तद्, यावदेनमुपसर्पामि। (उपसृत्य) आर्य! वन्दे। १.५

---

१. **परममन्नं पायसमिति** रं.।

२. **दुहिदाए** ले., **धूदाए** बो., **पुत्तीए** पं.चा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीयाङ्क प्रवेशक ।।

।।१।।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक (घबराहट के साथ) अविहा अविहा, न्यौता खाकर आये को जैसे परमान्न पच नहीं पाता वैसे ही वह राज रहस्य मुझे फोड़कर बाहर निकलना चाह रहा है। इस जनाकीर्ण राजकुल में अपनी जीभ को नियन्त्रण में नहीं रख पा रहा हूँ। तो पहले तो चलूँ जब तक यह राजा धर्मासन से इधर ही आ रहा है इस इने गिने लोगों की पहुँच वाले 'देवच्छन्द'– नामक प्रासाद पर चढ़कर जा बैठूँ।

(घूमकर हाथों से मुख ढँककर बैठता है)

(प्रवेश करती है चेटी)

चेटी देवी काशिराजदुहिता ने आदेश दिया है कि निपुणिके! जब से भगवान् सूर्य का उपस्थान करके आर्यपुत्र लौटे हैं तभी से शून्यहृदय जैसे दिखाई दे रहे हैं। तो तू उनके प्रियमित्र आर्य माणवक से जान कर आ कि उनकी उत्कण्ठा का कारण है क्या। कैसे ठगा जाए वह अधम ब्राह्मण? अथवा, तिनके की नोंक पर अटकी ओस की बूँद के समान उसके भीतर राजरहस्य अधिक समय तक टिक नहीं पाएगा ऐसा मेरा तर्क है। चलूँ पहले तो इसे खोजूँ । (घूमकर और देखकर)
ओहो! यह रहा आर्य माणवक चित्रित वानर की भाँति छिपकर बैठा हुआ है। कुछ बड़बड़ा रहा है। तो चलूँ इसके पास पहुँचूँ।
(पास जाकर) आर्य! प्रणाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः सत्थि भोदीए। *आत्मगतम्* एदं दुठ्ठचेडिअं पेक्खिअं तं राअरहस्सं हिअअं भिंदिअ णिक्कामदि विअ। *किञ्चिन्मुखं संवृत्य प्रकाशम्* भवति णिउणिए! संगीदव्वावारं उज्झिअ कहिं पत्थिदासि? स्वस्ति भवत्यै। (आत्मगतम्) एतां दुष्टचेटिकां प्रेक्ष्य तद् राजरहस्यं हृदयं भित्त्वा निष्क्रामतीव। (किञ्चिन्मुखं संवृत्य प्रकाशम्) भवति निपुणिके संगीतव्यापारमुज्झित्वा कुत्र प्रस्थितासि? १.६

निपुणिका देवीए वअणेण अज्जं एव्व पेक्खिदुं। देव्या वचनेनार्यमेव प्रेक्षितुम्। १.७

विदूषकः किं तत्तभोदी आणवेदि? किं तत्रभवती आज्ञापयति? १.८

निपुणिका देवि भणादि जधा 'अज्जस्स मम उवरि अदक्खिण्णं। मं अणुइदवेदणं दुक्खिदं उवेक्खदि' त्ति। देवी भणति यथा– 'आर्यस्य ममोपरि अदाक्षिण्यम्। मामनुचितवेदनां दुःखितामुपेक्षत' इति। १.९

विदूषकः णिउणिए! किं वा पिअवअस्सेण देवीए पडिऊलं किं वि समाचरिदं? निपुणिके! किंवा प्रियवयस्येन देव्याः प्रतिकूलं किमपि समाचरितम्? १.१०

निपुणिका जंणिमित्तं उण भट्टा उक्कंठिदो ताए इत्थिआए णामेण भट्टिणा देवी आलविदा। यन्निमित्तं पुनर्भर्ता उत्कण्ठितः, तस्याः स्त्रिया नाम्ना भर्त्रा देवी आलपिता। १.११

विदूषकः *आत्मगतम्* कधं सअं एव्व तत्तभवदा वअस्सेण रहस्सभेदो किदो। किं दाणिं अहं जीहाजंतणेण दुक्खं अणुहवम्मि? *प्रकाशम्* किं तत्तभोदी उव्वसीत्ति आमंतिदा? (आत्मगतम्) कथं स्वयमेव तत्रभवता वयस्येन रहस्यभेदः कृतः। किमिदानीम् अहं जिह्वायन्त्रणेन दुःखमनुभवामि। (प्रकाशम्) किं तत्रभवती उर्वशीत्यामन्त्रिता। १.१२

निपुणिका अज्ज! का सा उव्वसी? आर्य! का सा उर्वशी? १.१३

विदूषकः अत्थि उव्वसि त्ति अच्छरा। ताए दंसणेण उम्मादिदो ण केवलं तं आआसेदि मं वि बम्हणं असिदव्वविमुहो दिढं पीडेदि।

अस्ति उर्वशीत्यप्सराः। तस्या दर्शनेनोन्मादितो न केवलं तामायासयति मामपि ब्राह्मणमशितव्यविमुखो दृढं पीडयति। १.१४

निपुणिका *आत्मगतम्* उत्पादिदो मए भेओ भट्टिणो रहस्सदुग्गस्स। *प्रकाशम्* अज्ज किं दाव देविए णिवेदेमि। (आत्मगतम्) उत्पादितो मया भेदो भर्तृ रहस्यदुर्गस्य। (प्रकाशम्) आर्य किंतावद् देव्यै निवेदयामि। १.१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक आपका कल्याण हो ।

(स्वगत) इस दुष्ट चेटिका को देखकर वह राजरहस्य हृदय फाड़ कर निकल सा रहा है

(मुख को कुछ ढँककर)— (प्रकाश) भवति निपुणिका! संगीत—व्यापार छोड़कर कहाँ चली?

निपुणिका देवी की आज्ञा से आपके ही दर्शन करने।

विदूषक क्या आदेश है महारानी जी का?

निपुणिका देवी कहती हैं कि आर्य मेरे ऊपर नाराज हैं। मैंने कभी पीड़ा नहीं भोगी, (अनुचित) सो मैं दु:ख मे पड़ी हूँ और आर्य मेरी उपेक्षा कर रहे हैं।

विदूषक निपुणिका! प्रियवयस्य ने देवी के प्रतिकूल कुछ कर दिया है क्या?

निपुणिका जिसके कारण मालिक उत्कण्ठित हैं उसी के नामसे मालिक ने देवी को पुकार दिया।

विदूषक (स्वगत) लीजिए महाराजा सा. ने खुद ही अपना रहस्य खोल दिया। अब मैं ब्राह्मण कैसे करूँ जिह्वा की रक्षा। (प्रकाश) क्या उन्हें उर्वशी कहकर पुकार दिया?

निपुणिका आर्य! कौन है वह उर्वशी?

विदूषक है यह उर्वशी नाम की एक अप्सरा। उसके दृष्टि में आते ही वयस्य को उन्माद ने आ घेरा और केवल देवी को ही नहीं, भोजन से विमुख होकर मुझ ब्राह्मण को बड़ी पीड़ा पहुँचा रहा है।

निपुणिका (स्वगत) मैंने सेंध लगा ली मालिक के रहस्य दुर्ग में। (प्रकाश) आर्य क्या कहूँ देवी से ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः णिउणिए! विण्णवेहि मह वअणेण तत्तभोदीं 'परिस्संतोम्हि इमाए मिअतिण्हिआए वअस्सं णिअत्तावेदुं। जइ भोदीए मुहकमलं पेक्खिस्सदि तदो णिअत्तिस्सदि' त्ति।

निपुणिके! विज्ञापय मम वचनेन तत्रभवतीं – 'परिश्रान्तोऽस्म्येतस्या मृगतृष्णिकाया वयस्यं निवर्त्तयितुम्। यदि भवत्या मुखकमलं प्रेक्षिष्यते ततो निवर्तिष्यते' इति। १.१६

निपुणिका जं अज्जो आणवेदि। यदार्य आज्ञापयति। *निष्क्रान्ता*। १.१७

नेपथ्ये वैतालिकः १.१८

जयतु जयतु देवः १.१९

आ लोकान्तात् प्रतिहततमोवृत्तिरासां प्रजानां
तुल्योद्योगस्तव च सवितुश्चाधिकारो मतो नः।
तिष्ठत्येकः क्षणमधिपतिर्ज्योतिषां व्योममध्ये
षष्ठे भागे त्वमपि लभसे देव विश्रान्तिमह्नः॥१॥

विदूषकः *कर्णं दत्त्वा* एसो उण पिअवअस्सो धम्मासणसमुत्थिदो इदो एव्व आअच्छदि। ता जाव पस्सपरिवत्ती होमि। *निष्क्रान्तः*। एष पुनः प्रियवयस्यो धर्मासनसमुत्थित इत एवागच्छति। यावदस्य पार्श्वपरिवर्ती भवामि। २.१

॥ प्रवेशकः ॥ २.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक निपुणिके! मेरे शब्दों में कहना काशिराज पुत्री से 'मैं तो प्रियवयस्य को इस मृगतृष्णा से बचाने के लिए काफी परिश्रम करके थक गया, कदाचित् आपका मुखकमल देखकर हो जाए उधर से निवृत्त'।

निपुणिका जो आर्य की आज्ञा। (निकल जाती है)

(नेपथ्य में वैतालिक)

देव की जय हो, जय हो देव की–

लोक के अन्त तक 'पूरी प्रजा की तमोवृत्ति[1] हटाने का समान उद्योग करना दोनों का अधिकार है' – आपका भी और सूर्य का भी। एक क्षण भर के लिए आकाश में रुकता है, क्योंकि वह है ज्योतिश्चक्र का स्वामी और आप भी, हे देव! दिन के छठे भाग में विश्राम पाते हैं ॥ १॥

विदूषक (कान देकर/सुनकर) और यह प्रियवयस्य धर्मासन से उठकर इधर ही आ रहा है। तो इसके पास पहुँचूँ। (निकल जाता है)

॥ प्रवेशक समाप्त ॥

---

१. तम = अन्धकार, दुःख। अन्धकार सूर्य दूर करता है, दुःख को राजा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ द्वितीयोऽङ्कः।। २.३

ततः प्रविशत्युत्कण्ठितो राजा विदूषकश्च २.४

राजा **आ दर्शनात् प्रविष्टा सा मे सुरलोकसुन्दरी हृदयम्।**
बाणेन मकरकेतोः कृतमार्गमवन्ध्यपातेन।। २।।

विदूषकः *आत्मगतम्* सपीडा क्खु जादा तत्तभोदी कासिराजदुहिदा।
सपीडा खलु जाता तत्रभवती काशिराजदुहिता। ३.१

राजा *निरीक्ष्य* अपि रक्ष्यते भवता रहस्यनिक्षेपः? ३.२

विदूषकः *आत्मगतम्* हा धिक्, वंचिदोम्हि दासीए धूदाए णिउणिआए। अण्णधा कधं विअ मं एवं पुच्छदि वअस्सः। (आत्मगतम्) हा धिक्? वञ्चितोऽस्मि दुष्टदास्या निपुणिकया। अन्यथा कथमेवं पृच्छति वयस्यः। ३.३

राजा किं तूष्णीं भवानास्ते? ३.४

विदूषकः भो! एव्वं मए जिव्हा जंतिदा जेण भवदि वि णत्थि मे पडिवअणं।
भोः! एवं मया जिह्वा संयन्त्रिता येन भवतोऽपि नास्ति प्रतिवचनम्। ३.५

राजा युक्तम्। अथ केनेदानीमात्मानं विनोदयामि? ३.६

विदूषकः भो! महाणसं गच्छम्ह। भो! महानसं गच्छाव। ३.७

राजा किं तत्र? ३.८

विदूषकः तहिं पञ्चविहस्स अब्भवहारस्स[१] उवणदसंभारस्स जोजणं पेक्खमाणेहिं सक्कं उक्कण्ठं विणोदिदुं। तत्र हि पञ्चविधस्य अभ्यवहारस्य उपनतसंभारस्य योजनां प्रेक्षमाणाभ्यां शक्यमुत्कण्ठां विनोदयितुम्। ३.९

राजा तत्रेप्सितसन्निधानाद् भवान् रंस्यते। मया खलु दुर्लभप्रार्थनः कथमात्मा विनोदितव्यः? ३.१०

विदूषकः णं भवं वि तत्तभोदीए उव्वसीए दंसणपहं गदो?
ननु, भवानपि तत्रभवत्या उर्वश्या दर्शनपथं गतः? ३.११

---

१. **०हारस्स भोजणं पेक्खन्तेण सक्कं बलवदी उक्कंठा** बो.; **०हारस्स उत्तमण्णसंहारस्स भोअणं मोदअसक्करापप्पलेहिं उक्कंठं विणोदेतु** ले.मा.मूलं, रं.पं.चा.वेल.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीय अङ्क ।।

(प्रवेश करते हैं उत्कण्ठित राजा और विदूषक)

राजा **जब से वह स्वर्गसुन्दरी दिखाई दी है तभी से वह मेरे हृदय में प्रविष्ट हो गई है। हृदय में काम के अवन्ध्यपात बाण ने मार्ग सा बना दिया था ।। २।।**

विदूषक (स्वगत) तत्रभवती काशिराज दुहिता को पीडा हो गई (गिरने से अधिक अब)।

राजा (देखकर) हमारे रहस्य की धरोहर सुरक्षित तो है?

विदूषक (स्वगत) दासी की पुत्री निपुणिका ने मुझे ठग लिया। नहीं तो कैसे मुझ से वयस्य यह पूछते।

राजा क्यों चुप बैठे हो तुम?

विदूषक मैंने जिह्वा को इतना कस रखा है कि आपके लिए भी उत्तर नहीं है।

राजा ठीक। अच्छा किस से करूँ इस समय मनोविनोद?

विदूषक भो! चलें महानस (भोजनालय)।

राजा वहाँ क्यों?

विदूषक वहाँ पाँच प्रकार के अभ्यवहार (रसोई) खूब बढ़ चढ़कर आएँगे, उन्हें देख देख कर उत्कण्ठा दूर की जा सकती है।

राजा वहाँ तो तुम्हारी अभीष्ट वस्तु सुलभ रहेगी तो तुम्हारा मन रम सकेगा। मैंने तो ऐसी चाह बना रखी है जिसकी पूर्त्ति दुष्कर है। वहाँ मेरा बहलाव कैसे होगा?

विदूषक क्या आप भी तत्रभवती उर्वशी के दर्शनपथ में पड़े थे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा ततः किम्? ३.१२

विदूषकः ण क्खु से दुल्लह त्ति समथ्थए। न खलु सा दुर्लभेति समर्थये। ३.१३

राजा पक्षपातोऽपि[१] तस्यां रूपस्य अलौकिक एव। ३.१४

विदूषकः एव्वं मंतअंतेण मे वडिढ्दं कोदूहलं। किं [२]तत्तभोदी उव्वसी अद्दुदीआ रूवेण अहं विअ विरूवदाए? एवं मन्त्रयता मम वर्धितं कौतूहलम्। किं तत्रभवती उर्वशी अद्वितीया रूपेण अहमिव विरूपतया। ३.१५

राजा माणवक! [३]प्रत्यवयवमशक्यवर्णनां तामवेहि। तेन हि समासतः श्रूयताम्। ३.१६

विदूषकः अवहिदो म्हि। अवहितोऽस्मि। ३.१७

राजा ३.१८

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः।
उपमानस्यापि सखे! प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः॥ ३॥

विदूषकः अदो दाव तुए दिव्वरसाहिलासिणा चादकव्वदं गहीदं[४]। ता दाव तुमं कहिं पत्थिदो? अतस्तावत् त्वया दिव्यरसाभिलाषिणा चातकव्रतं गृहीतम्। तत् तावत् त्वं कुत्र प्रस्थितः। ४.१

राजा विविक्तादृते नान्यदुत्सुकस्य शरणम्। तद् भवान् प्रमदवनमार्गं दिशत[५]। ४.२

विदूषकः *आत्मगतम्* का गई? *प्रकाशम्* इदो इदो भवं। *परिक्रामतः* ।
(आत्मगतम्) का गतिः। (प्रकाशम्) इत इतो भवान्। (परिक्रामतः)। ४.३
एसो पमदवणपरिसरो। *स्पर्शं रूपयित्वा* अणालविदो वि पज्चुग्गदो भवं आअंदुएण दक्खिणमालुदेण। एष प्रमदवनपरिसरः (स्पर्शं रूपयित्वा) अनालपितोऽपि प्रत्युद्गतो भवानागन्तुकेन दक्षिणमारुतेन। ४.४

---

१. ०तोऽपि सतस्तस्य। बो.; ०तोऽपि तस्या ले.।
२. ०तत्तभोदीए उव्वसीए रूवेण अहं ज्जेव दुदिओ विरूवदाए ले.बो.;
०तत्तभोदीए उव्वशीए रूवेण अहं एव्व द्वितीयो निरूपितः मा.।
३. ०यववर्णना तु न कृता मयेति। तेन हि श्रूयतां समासतः ले.बो.मा।
४. इदं दाव मिअतिण्णिरसाहिलासिणा चारूत्तणं परिग्गहिदं ले.मा. इदं दाव भवदा दिव्वरसाहिलाषिणा चादअव्वदं गिहीदं बो. मूलं तु रं. पं.चा.बेल.काग्र। अत्र दिव्यरसपदे श्लेषनैपुणी निध्येया।
५. ०ग्गहिदं। राजा वयस्य विविधशिशिरोपचारान्नान्यच्छरणमस्ति। तद् भवान् ले.मा.;
ग्गहिदं०। राजा विविक्तशि० बो.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा उससे क्या?

विदूषक तब फिर वह दुर्लभ नहीं होगी ऐसा मेरा तर्क है।

राजा उसमें रूप का पक्षपात भी अलौकिक है।

विदूषक ऐसा कहकर मेरा कुतूहल आपने बढ़ा दिया। क्या उर्वशी रूप में वैसे ही अद्वितीय है जसे विरूपता में मैं?

राजा माणवक! मैं तो उसके प्रत्येक अवयव का वर्णन अशक्य मानता हूँ। संक्षेप में सुनो।

विदूषक सावधान हूँ ।

राजा **उसका शरीर आभरण का है आभरण, प्रसाधनविधि का भी है विशिष्ट प्रसाधन और मित्र! वह उपमानों का भी है प्रत्युपमान ॥ ३॥**

विदूषक इसीलिए तुमने दिव्यरस की चाह में चातकव्रत ग्रहण कर रखा है। अच्छा आप कहाँ चले?

राजा एकान्त को छोड़ उत्सुक के लिए कोई स्थान रक्षक नहीं। तो तुम प्रमदवन का मार्ग बतलाओ।

विदूषक (स्वगत) क्या किया जाए? (प्रकाश) इधर से इधर से आप। (दोनों घूमते हैं) यह रहा प्रमदवन का परिसर। (स्पर्श का अभिनय कर) बिना कहे ही आपकी अगवानी कर रहा है, आगन्तुक दक्षिणपवन मलयानिल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *विलोक्य* उपपन्नं [१]विशेषणमस्य वायोः। अयं हि— ४.५

निषिञ्चन् [२]माधवीं लक्ष्मीं लतां [३]कौन्दीं च लासयन् ।
स्नेहदाक्षिण्ययोर्योगात् कामीव प्रतिभाति मे ।।४।।

विदूषकः *आत्मगतम्*[४] ईरिसो येव्व से अहिणिवेसो। *परिक्रामन्*। *प्रकाशम्*[५] इदं पमदवणं। पविसदु भवं। (आत्मगतम्) ईदृश एवास्याभिनिवेशः। (परिक्रामन्)। (प्रकाशम्) एतत् प्रमदवनम्। प्रविशतु भवान्। ५.१

राजा वयस्य! प्रविशाग्रतः। ५.२

उभौ *प्रवेशं नाटयतः।* ५.३

राजा *त्रासं रूपयित्वा* वयस्य! न[६] मया समर्थितम् आपत्प्रतीकारः किल ममोद्यानप्रवेश इति। ५.४

[७]विविक्षुर्यदहं नूनमुद्यानं [८]तापशान्तये ।
स्रोतोजवोह्यमानस्य प्रतीपतरणं तु तत्।।५।।

विदूषकः कहं विअ? कथमिव? ६.१

राजा ६.२

इदमसुलभ–वस्तु–प्रार्थना–दुर्निवारं
प्रथममपि मनो मे पञ्चबाणः क्षिणोति।
किमुत मलय–वातोन्मूलितापाण्डुपत्रै–
रुपवन–सहकारैर् दर्शितेष्वङ्कुरेषु।। ६।।

विदूषकः अलं परिदेविदेण। अइरेण इट्ठसंवादइत्तओ अणंगो येव्व दे सहाओ हविस्सदि। अलं भवतः परिदेवितेन। अचिरेण इष्टसम्पादयितानङ्ग एव ते सहायो भविष्यति। ७.१

---

१. 'दक्षिणमारुत' इत्युक्तौ विशेषणं 'दक्षिण' इति।

२. इयं प्रत्यग्रा ज्येष्ठा। अस्यां स्नेहः।

३. इयं पर्युषिता। कनिष्ठासौ। अस्यां दाक्षिण्यं नामाऽप्रातिकूल्यम्।

४–५. रङ्गनिर्देशाविमावस्माभिरुपकल्पितौ।

६. **वयस्य साधु मनसा समर्थित ००० प्रवेश इति तञ्चान्यथैव** ले.बो.मा.।

७. **विविक्षोः** ले.बो.मा.।

८. **ताप = तन्न** काग्र. किन्तु निषेधोऽत्र वैपरीत्यादेव प्रसिद्ध उत्तरार्धदर्शितात्। द्रष्टव्याऽत्र काग्रगता पादटिप्पणी, **ताप = नाद्य** ले.बो.मा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (देखकर) ठीक कहते हो। इस वायु का विशेषण सही है। यह जो है सो—

माधवी लक्ष्मी को तो कर रहा है निषिक्त[1] और कुन्द लता को रहा है नचा। इस प्रकार इसमें स्नेह भी है और दाक्षिण्य भी। इन दोनों के योग से यह, दक्षिण वायु, मुझे कामी सा लग रहा है ॥ ४॥

विदूषक (स्वगत) इसका भी अभिनिवेश ऐसा ही है। (घूमते हुए) (प्रकाश) यह है प्रमदवन। करिए इसमें प्रवेश।

राजा वयस्य। तू आगे प्रवेश कर।

दोनों (प्रवेश करने का अभिनय करते हैं।)

राजा (भय का अभिनय कर) वयस्य! मैंने तो नहीं कहा था कि मेरा उद्यान में प्रवेश बनेगा आफत का प्रतीकार। क्योंकि —

मैं चाहता तो हूँ कि ताप शान्त हो और जा रहा हूँ उद्यान में। यह तो नदी में उल्टे तैरना है, जबकि प्रवाह उल्टे बहाए ले जा रहा है ॥ ५॥

विदूषक कैसे?

राजा **अरे, काम ने मेरा मन असुलभ वस्तु की प्रार्थना में ऐसा लगा दिया है कि उससे हटने का नाम ही नहीं लेता। पहले तो यही मार पड़ रही है, और अब ये देखो मलयवात से पाण्डुपत्र झड़ जाने पर उपवन सहकारों ने दिखलाना शुरू कर दिया अङ्कुर। अब क्या कहना ॥ ६॥**

विदूषक अधिक व्यथित मत होओ। देरी नहीं कि खुद काम ही तुम्हारी सहायता करेगा इष्टजन के साथ समागम कराने में।

---

१. निषेक = गर्भाधान, स्नेह, माधवी ज्येष्ठा, कौन्दीलता कनिष्ठा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचनम्। ७.२

परिक्रामतः ७.३

विदूषकः पेक्खदु भवं वसंदावदारसूइदं से अहिरामत्तणं पमदवणस्स।

प्रेक्षतां भवान् वसन्तावतारसूचितमभिरामत्वं प्रमदवनस्य। ७.४

राजा प्रतिपदमेव तदवलोकयामि। अत्र हि – ७.५

अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरबकं श्यामं द्वयोर्भागयो–
र्बालाशोकमुपोढरागसुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति ।
ईषद्बद्धरजःकणाग्रकपिशा चूते नवा मञ्जरी
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे! मध्ये मधुश्रीः स्थिता ॥ ७॥

विदूषकः भो एसो क्खु कसणमणिसिलावट्टअसणाहो अदिमुत्तलदामंडवो भमर–संघट्टपडिदेहिं[१] कुसुमेहिं किदोवआरो विअ भवंतं पडिच्छदि। ता अणु–ग्गेण्हीअदु दाव एस। भोः एष खलु कृष्णमणिशिलापट्टकसनाथः अतिमुक्तलतामण्डपः भ्रमरसङ्घट्टपतितैः कुसुमैः कृतोपचार इव भवन्तं प्रतीच्छति। तदनुगृह्यतां तावदेषः।८.१

राजा यदभिरोचते भवते। ८.२

उभौ परिक्रम्योपविशतः। ८.३

विदूषकः दाणिं सुहासीणो भवं ललिद–लदा–विलोहिअमाण–णअणो उव्वसीगदं उक्कण्ठं विणोदेदु । इदानीं सुखासीनो भवाँल्ललित–लता–विलोभ्यमान–नयनः, उर्वशीगतामुत्कण्ठां विनोदयतु। ८.४

राजा *निःश्वस्य* ८.५

[२]बहुकुसुमितास्वपि सखे! नोपवनलतासु नम्रविटपासु ।
चक्षुर्बध्नाति धृतिं, [३]तदङ्गनाऽऽलोकदुर्ललितम् ॥ ८॥

तदुपायश्चिन्त्यतां यथा सफलप्रार्थनो भवेयम्। ९.१

---

१. **संहपदविघटि०** ले.मा.,**संहविध०** रं.बो., **मूलं तु** काग्र.। उपहारो नाम आस्तरणम्। रघुवशे ५.७४। उपचार इति तु गृह्यते कैश्चित्।

२. **मम कु०** काग्र., **बहुकु०** ले.बो.मा.।

३. **तद्रूपा** काग्र.। अङ्गनापदे प्राशस्त्यार्थक एव प्रत्ययः। अन्याः स्त्रियः स्त्रियः एव, उर्वशी पुनः अङ्गना प्रशस्ताङ्गीति व्यतिरेकोऽत्र फलितः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा ब्राह्मण का वचन स्वीकार।

(दोनों घूमते हैं)

विदूषक देखिए आप वसन्तावतार का सूचक प्रमदवन का सौन्दर्य।

राजा प्रतिपद ही देख रहा हूँ उसे। इस समय—

कुरबक अगले भाग में तो स्त्रीनख सा लाल और दोनों भागों में श्याम, अशोक में नए लाल—लाल पत्ते और फूल अब फूटने ही वाले हैं। आम में आई नई मञ्जरी कुछ उद्भूत रजःकणों से अग्रभाग में कपिश। तो सखे! यह जो मधुश्री है यह बचपन और यौवन दोनों की वयःसन्धि में विद्यमान है ॥ ७॥

विदूषक यह देखो कृष्णमणि के शिलापट्ट से युक्त अतिमुक्ता लता का मण्डप। इस पर भौरों की टक्कर से गिरे पुष्पों का उपहार बन चुका है आपके लिए। इस पर अनुग्रह करें।

राजा जो तुम्हें रुचे।

(दोनों घूमकर बैठते हुए।)

विदूषक अब यहाँ बैठकर आप ललित लताओं को निहारें और उर्वशीगत उत्कण्ठा का विनोद करें।

राजा (साँस लेकर) —

सखे ये लताएँ खूब कुसुमित हैं और इनकी टहनियाँ झुकी हैं, किन्तु मेरी आँखों को धीरज नहीं धरने देतीं जो उस उत्तमाङ्गी के रूप के आलोक का हठ पकड़े हैं ॥ ८॥

तो उपाय सोचो जिससे मेरी यह कामना पूरी हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः *विहस्य* भो! अहल्लाकामुकस्स महिंदस्स वज्जो सचिवो, उव्वसी–पज्जुस्सुअस्स अ भवदो अहं। दुवे वि एत्थ उंमत्तआ।

(विहस्य) भोः! अहल्याकामुकस्य महेन्द्रस्य वज्रः सचिवः, उर्वशीपर्युत्सुकस्य च भवतः अहम्। द्वावप्यत्रोन्मत्तौ। ९.२

राजा मा मैवम्। अतिस्नेहः खलु कार्यदर्शी। तदुपायश्चिन्त्यताम्। ९.३

विदूषकः एसो चिंतेमि। मा उण परिदेविदेण मम समाहिं भिंधि।

एष चिन्तयामि। मा पुनः परिदेवितेन मम समाधिं भिन्धि। *चिन्तां नाटयति* ९.४

राजा *निमित्तं सूचयित्वा आत्मगतम्* ९.५

न [१]सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनङ्गविचेष्टितम्।
अभिमुखीष्वपि काङ्क्षितसिद्धिषु व्रजति निर्वृतिमेकपदे मनः॥ ९॥

[२]*जाताशस्तिष्ठति।* १०.१

॥ २॥

ततः प्रविशत्याकाशयानेनोर्वशी चित्रलेखा च १०.२

चित्रलेखा सहि उव्वसि! कहिं दाणिं अणिद्दिट्ठकारणं गच्छीअदि?

सखि उर्वशि! क्वेदानीमनिर्दिष्टकारणं गम्यते। १०.३

उर्वशी *मदनवेदनामभिनीय सलज्जम्* सहि! तदा हेमकूडसिहरे लदाविडवेण खण–विग्घिदआआस–गमणं मं ओहसिअ किमिदाणीं पुच्छसि कहिं गछीअदि त्ति। सखि! तदा हेमकूटशिखरे लताविटपेन क्षणविघ्नितागमनां मामुपहस्य किमिदानीं पृच्छसि क्व गम्यते इति। १०.४

चित्रलेखा किं णु क्खु तस्स राएसिणो पुरूरवस्स सआसं पत्थिदासि?

किं नु खलु तस्य राजर्षेः पुरूरवसः सकाशं प्रस्थितासि? १०.५

उर्वशी अधं किं। अअं मे [३]अवहत्थिदलज्जो ववसाओ।

अथ किम्। अयं मे अपहस्तितलज्जो व्यवसायः। १०.६

चित्रलेखा को उण सहीए तहि पुढमं पेसिदो? कः पुनः सख्या तत्र प्रथमं प्रेषितः। १०.७

---

१. **असुलभा** रं.ले.बो.मा., **न सुलभा** काग्र.

२. **जाताशस्ति** काग्र., **मदनोत्सुकस्ति** रं.ले.बो.मा आशाया एव नवमेन पद्येन प्रतिपादितत्वात्। अपूर्व एष विश्वासः।

३. **अगणिदलज्जो** ले.बो.मा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक (हँसकर) भो! अहल्या को चाह रहे महेन्द्र का सचिव था वज्र और उर्वशी के लिए पर्युत्सुक आपका मैं। दोनों ही हैं उन्मत्त।

राजा ऐसा नहीं। अतिस्नेह से भी कार्य का मार्ग सूझ जाता है। तो उपाय सोचो।

विदूषक यह लो मैं सोच रहा हूँ, पर किलप कर मेरी समाधि मत तोड़ना। (चिन्ता का अभिनय करता है)।

राजा (शकुन देखकर आत्मगत)—

वह पूर्णेन्द्रमुखी सुलभ है नहीं और काम का यह उत्पात ऐसा। इष्टसिद्धि सामने आ जाती है तो उस समय भी मन में तृप्ति का अनुभव होता है ॥९॥

(आशान्वित होकर बैठता है)

॥२॥

(आकाशयान से उर्वशी और चित्रलेखा का प्रवेश)

चित्रलेखा सखि उर्वशी! इस समय कारण बताए बिना कहाँ जा रही हो।

उर्वशी (मदनवेदना का अभिनय कर लज्जासहित)
सखि! उस समय हेमकूटशिखर पर लता की टहनी से जब क्षणभर के लिए आकाशगमन में विघ्न हुआ था तो तू मुझ पर हँसी थी, तो अब क्यों पूछ रही है 'कहाँ जा रही है'।

चित्रलेखा क्या उस राजर्षि पुरूरवा के पास जा रही है?

उर्वशी और क्या। यह मेरा निर्लज्ज व्यवहार है।

चित्रलेखा सखी ने वहाँ किसे भेजा है पहले?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी णं हिअअं[१]। ननु हृदयम्। १०.८

चित्रलेखा तथा वि सअं एव्व साहु संपधारिअदु दाव। को तुमं णिओजेदि?
तथापि स्वयमेव साधु सम्प्रधार्यतां तावत्। कस्त्वां नियोजयति? १०.९

उर्वशी सहि! मअणो क्खु मं णिओएदि। किं एत्थ संपधारीअदि?
सखि! मदनः खलु मां नियोजयति। किमत्र सम्प्रधार्यते? १०.१०

चित्रलेखा अदो वरं णत्थि मे वअणं। अतः परं नास्ति मे वचनम्। १०.११

उर्वशी तेण हि आदिसदु मे सही मग्गं जेण तहिं गच्छन्तीए अंतराओ ण हवे।
तेन ह्यादिशतु मे सखी मार्गं येन तत्र गच्छन्त्याः, अन्तरायो न भवेत्। १०.१२

चित्रलेखा सहि! विस्सब्धा होहि। णं भअवदा देवगुरुणा अवराजिदं णाम सिहाबंधणिं विज्जं उअदिसंतेण तिदसपडिवक्खस्स अलंघणिए किदाम्हः।
सखि! विस्रब्धा भव। ननु भगवता देवगुरुणा अपराजितां नाम शिखाबन्धन–विद्यामुपदिशता त्रिदशप्रतिपक्षस्यालङ्घीनये कृते स्वः। १०.१३

उर्वशी *सलज्जम्* अहो! विसुमरिदं मे हिअअं। अहो! विस्मर्तृ मे हृदयम्। १०.१४

उभे *भ्रमणं रूपयतः।* १०.१५

चित्रलेखा सहि! पेक्ख पेक्ख इदं भअवदीए भाईरधीए जमुणासंगमविसेसपावणेसु सलिलेसु अत्ताणअं ओलोअंतस्स विअ पइठ्ठाणस्स सिहाहरणभूदं तस्स राएसिणो भवणं उवट्ठिद म्ह। सखि! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व। एतद् भगवत्याः भागीरथ्याः यमुनासङ्गमविशेषपावनेषु सलिलेष्वात्मानमवलोकयत इव प्रतिष्ठानस्य शिखाभरणभूतं तस्य राजर्षेर्भवनमुपस्थिते स्वः। १०.१६

उर्वशी *सस्पृहमवलोक्य* णं वत्तव्वं ठाणंतरगदो सग्गो त्ति। *विमृश्य* सहि! कहिं णु क्खु सो आवण्णाणुकंपी भवे ? (सस्पृहमवलोक्य) ननु वक्तव्यं स्थानान्तरगतः स्वर्ग इति। (विमृश्य) सखि! क्व नु खलु स आपन्नानुकम्पी भवेत्? १०.१७

---

१. कालिदासग्रन्थावल्या **हिअअं। चित्रलेखा तहावि सअं साहु संपधारिअदु दाव को तुमं णिओजेदि। उर्वशी सहि मअणो क्खु मं णिओएदि। किं एत्थ संप्पहारीअदि। चित्रलेखा अदो वरं**–इमावपि संवादौ मुद्रितौ। बोलेन्शनः इमावेवैवं प्रस्तवीति–**ववसाओ। चित्रलेखा सहि तथावि संपधारीअदु दाव। को उण सहीए तहिं पढमं पेसिदं। उर्वशी णं हिअअं । चित्रलेखा अदो वरं।** ले.मा. **पुनरेवम् उर्वशी ०ववसाअः। चित्रलेखा०० प्रेषितः०००हिअअं। तथापि संप्रधार्यतां तावत्। उर्वशी मदनः संप्रधारणा। चित्रलेखा अदो वरं।** सर्वोऽप्येष प्रौढाव्यापारः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी हृदय को।

चित्रलेखा तब भी स्वयं ही ठीक ठीक समझ लिया जाए। तुम्हें वहाँ जाने हेतु कौन प्रेरित कर रहा है?

उर्वशी सखि! मदन भेज रहा है मुझे। इसमें सोचना क्या है?

चित्रलेखा इसके आगे मैं क्या कहूँ?

उर्वशी तो सखि! मुझे रास्ता बतला जिससे वहाँ जाने में विघ्न न आए।

चित्रलेखा सखि! विस्रब्ध हो। भगवान् देवगुरु ने अपराजिता नामक शिखा में बाँधी जाने वाली विद्या दे रखी है। उससे अब हमें सुरशत्रु छू भी नहीं सकते।

उर्वशी (लज्जा के साथ) अहो! भूल गया मेरा हृदय।

दोनों (घूमने का अभिनय करती हैं)

चित्रलेखा सखि! देख, देख यह भगवती भागीरथी के यमुना के संगम से और अधिक पावन जल में अपने आपको देख रहा उस राजर्षि का भवन जो प्रतिष्ठानपुर का शिखाभरण है। आ पहुँची हम यहाँ।

उर्वशी (सस्पृह देखकर) कहना चाहिए दूसरे स्थान पर आया स्वर्ग ही है यह। (सोचकर) सखि! कहाँ होगा वह आपन्न पर अनुकम्पा करने वाला राजर्षि?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा हला! एदस्सिं णंदणवणेक्कदेसे विअ पमदवणे ओदरिअ जाणिस्सामो।
सखि! एतस्मिन् नन्दनवनैकदेश इव प्रमदवने अवतीर्य ज्ञास्यावः। १०.१८

उभे *अवतरतः।* १०.१९

चित्रलेखा *राजानं दृष्ट्वा सहर्षं* सहि! एसो क्खु पढमोदिदो विअ चंदो कौमुदिं विअ तुमं पडिछदि। सखि! एष खलु प्रथमोदित इव चन्द्रः कौमुदीमिव त्वां प्रतीच्छति। १०.२०

उर्वशी *विलोक्य* हला! दाणिं पढमदंसणादो सविसेसं पिअदंसणो महाराओ पडिभादि। सखि! इदानीं प्रथमदर्शनात् सविशेषं प्रियदर्शनो महाराजः प्रतिभाति। १०.२१

चित्रलेखा जुज्जदि। ता एहि उवसप्पम्ह। युज्यते। तदेहि उपसर्पावः। १०.२२

उर्वशी ण दाव उवसप्पिस्सं। तिरक्करिणीपडिछन्ना पासगदा से हविअ सुणिस्सं दाव पासवत्तिणा वअस्सेण सह विअणे किं मंतअंदो चिट्ठदि त्ति।
न तावदुपसर्पिष्यामि। तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्वगतास्य भूत्वा श्रोष्यामि तावत् पार्श्ववर्तिना वयस्येन सह विजने किं मन्त्रयमाणस्तिष्ठतीति। १०.२३

चित्रलेखा जं दे रोअदि। यत् ते रोचते । १०.२४

यथोक्तमनुतिष्ठतः। १०.२५

विदूषकः भोः! चिन्तिदो मए दुल्लहपणइणीसमागमोवाओ।
भोः! चिन्तितो मया दुर्लभ–प्रणयिनी–समागमोपायः। १०.२६

राजा *तूष्णीमास्ते।* १०.२७

उर्वशी *सेर्ष्यम्* का णु क्खु धण्णा इत्थिआ जा इमिणा [१]पत्थिअमाणा अत्ताणं [२]किदत्थेदि। का नु खलु धन्या स्त्री या अनेन प्रार्थ्यमानात्मानं कृतार्थयति। १०.२८

चित्रलेखा किं उण माणुस्सकं विडंबीअदि[३] ? किं पुनर्मानुष्यकं विडम्ब्यते? १०.२९

उर्वशी सहि! भीआमि सहसा पभावादो विण्णादुं।
सखि! बिभेमि सहसा प्रभावाद् विज्ञातुम् । १०.३०

विदूषकः भो! णं भणामि चिंतिदो मए उवाओ त्ति।
भोः! ननु भणामि चिन्तितो मया उपाय इति। १०.३१

राजा तेन कथ्यताम्। १०.३२

---

१. **परिमग्गमाणा** ले.बो.मा., **पडिमुग्गमाणा** रं.।
२. **विणोददि** ले.बो.मा.
३. **सहि झाणस्सं किं विलंबीअदि** ले.बो.मा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा सखि! यह है प्रमदवन, जैसे नन्दन वन का एक टुकड़ा हो। इसमें उतर कर पता लगाएँगी ।

दोनों (उतरती हैं)

चित्रलेखा (राजा को देखकर खुशी में) सखि! यह है वह राजर्षि। तेरी प्रतीक्षा कर रहा है, पहले से उदित चन्द्रमा जैसे कौमुदी की प्रतीक्षा करे।

उर्वशी (देखकर) सखि! इस समय प्रथम दर्शन से अधिक प्रियदर्शन लग रहे हैं महाराज।

चित्रलेखा ठीक कह रही है। तो आ पास पहुँचें।

उर्वशी मैं पास नहीं जाऊँगी। तिरस्करिणी में छिपी हुई इसके पास खड़ी होकर पहले सुनूँगी कि पास में बैठे मित्र से यह एकान्त में क्या बात कर रहा है।

चित्रलेखा जो रुचे तुझे।

(यथोक्त कार्य करती हैं)।

विदूषक भो! सोच लिया मैंने दुर्लभ प्रणयिनी के समागम का उपाय।

राजा (चुप रहता है।)

उर्वशी (ईर्ष्यापूर्वक) कौन है वह धन्य स्त्री जिसको ये चाह रहे हैं और जो अपने आपको कृतार्थ कर रही है।

चित्रलेखा क्यों मनुष्य सी चेष्टा कर रही है।

उर्वशी सखि! डर रही हूँ प्रभाव से एकाएक जान लेने में।

विदूषक भो! सोच लिया मैंने उपाय ।

राजा तो कहा जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः सिविणसमाअमआरिणीं णिद्दं सेवदु भवं। अहवा तत्तभोदीए उव्वसीए पडिकिदिं चित्तफलहे अहिलिहिअ आलोअंतो ओलोअंदो चिट्ठदु।

स्वप्नसमागकारिणीं निद्रां सेवतां भवान्। अथवा तत्रभवत्याः उर्वश्याः प्रतिकृतिं चित्रफलके आलिख्य अवलोकयंस्तिष्ठतु। १०.३३

उर्वशी हीनसत्त हिअअ! समस्ससिहि समस्ससिहि।

हीनसत्त्व। हृदय। समाश्वसिहि समाश्वसिहि। १०.३४

राजा तदुभयमप्यनुपपन्नम्। पश्य — १०.३५

हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा
कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम् ।
न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य तां
मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे! न भविष्यति ॥१०॥

चित्रलेखा सुदं तुए वअणं? श्रुतं त्वया वचनम्? ११.१

उर्वशी सहि! सुदं, ण उण पज्जत्तं हिअअस्स।

सखि! श्रुतं, न पुनः पर्याप्तं हृदयस्य। ११.२

विदूषकः एत्तिओ एव्व मे मदिविहवो। एतावानेव मे मतिविभवः। ११.३

राजा *निःश्वस्य* ११.४

नितान्तकठिनां रुजं मम न वेद सा मानसीं
प्रभावविदितानुरागमवमन्यते वापि माम्।
अलब्धफलनीरसं [1]मम विधाय तस्मिन् जने
समागममनोरथं भवतु पञ्चबाणः कृती॥११॥

चित्रलेखा सहि! सुदं तुए? सखि! श्रुतं त्वया। १२.१

उर्वशी हद्धी हद्धी! मं एव्वं ओगच्छदि? *सखीमवलोक्य* सहि! असमत्थम्हि अग्गदो भविअ अत्ताणं दस्सिदुं। ता पहावणिम्मिदेण भुज्जवत्तेण लेहं संपादिअ उत्तरं खिविदुं इच्छम्हि। हा धिक् हा धिग्! माम् एवमवगच्छति। *(सखीमवलोक्य)* सखि! असमर्थास्म्यग्रतो भूत्वा आत्मानं दर्शयितुम्। तत्, प्रभावनिर्मितेन भूर्जपत्रेण लेखं संपाद्य उत्तरं क्षेप्तुमिच्छामि। १२.२

चित्रलेखा हला! अणुमदं मे। सखि! अनुमतं मे। १२.३

---

१. **प्रतिनिधाय** ले.म.; **मम विधाय** रं बो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक निद्रा ले लो, वह स्वप्न में समागम करावे, या फिर तत्रभवती उर्वशी की प्रतिकृति चित्रफलक पर बनाकर उसे देखकर अपना मन बहलाओ।

उर्वशी हीनसत्त्व हृदय! समाश्वस्त हो, समाश्वस्त हो।

राजा ये दोनों ही संभव नहीं। ऐसा है –

मित्र! यह हृदय सदा ही काम के बाणों से भीतर ही भीतर घायल है, अतः निद्रा कैसे ले सकता हूँ जो स्वप्न में समागम करा सकती है, और उस सुवदना को आलेख्य में भी लिखकर पूरा होने के पहले मेरी आँखों में आँसू न आवें ऐसा नहीं ॥ १०॥

चित्रलेखा सुना तूने वचन!

उर्वशी सखि! सुना, किन्तु इतना पर्याप्त नहीं है हृदय के लिए।

विदूषक मैं तो इतना ही सोच सकता था।

राजा (निःश्वास लेकर)

मेरे मन की नितान्त कठिन पीड़ा को वह जान नहीं रही है, अथवा प्रभाव से मुझे अनुरक्त जान करके भी मेरी अवमानना कर रही है। उस जन में मेरा समागम मनोरथ उत्पन्न करके भी पञ्चबाण सफल हो ले, भले ही वह फल से वञ्चित और नीरस रहे ॥ ११॥

चित्रलेखा सखि! सुना तूने।

उर्वशी हाय हाय! मुझे ऐसी समझ रहे हैं ये। (सखी को देखकर) सखि! असमर्थ हूँ आगे होकर अपने को दिखलाने में। तो प्रभाव से निर्मित भूर्जपत्र पर लेख लिखकर उत्तर फेंकना चाहती हूँ।

चित्रलेखा हला! अनुमोदन है मेरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी *नाट्येनाभिलिख्य क्षिपति*[1]। १२.४

विदूषकः *ससंभ्रमम्* अविहा अविहा। भोः किं णु क्खु एदं? भुअंगणिम्मोअकं किं मं खादितुं णिवदिदं? (ससंभ्रमम्) अविहा अविहा, भोः किंनु खलु एतत्? भुजङ्गनिर्मोकः किं मां खादितुं निपतितः। १२.५

राजा *दृष्ट्वा* नायं भुजङ्गनिर्मोकः। भूर्जपत्रगतोऽयमक्षरविन्यासः? १२.६

विदूषकः णं अदिठ्ठाए उव्वसीए भवदो परिदेविअं सुणिअ भुज्जवत्ते समानाणुराअ–सूअआइं अक्खराईं अहिलिहिय विसज्जिदं भवे? ननु अदृष्टया उर्वश्या भवतः परिदेवितं श्रुत्वा भूर्जपत्रे समानानुरागसूचकान्यक्षराणि आलिख्य विसृष्टानि स्युः।१२.७

राजा नास्त्यगतिर्मनोरथानाम्[2]। *गृहीत्वाऽनुवाच्य च सहर्षं* सखे! उपपन्नस्ते तर्कः। १२.८

विदूषकः ही ही भो। किं बम्हणवअणाण अण्णधा होन्दि। दाणिं पसीददु भवं। जं एत्थ आलिहिदं तं सुणिदुं इछामि। ही ही भोः। किं ब्राह्मणवचनान्यन्यथा भवन्ति। तदिदानीं प्रसीदतु भवान्। यदत्र लिखितं तच्छ्रोतुमिच्छामि। १२.९

उर्वशी साहु अज्ज! णाअरोसि। साधु आर्य! नागरोऽसि। १२.१०

राजा वयस्य श्रूयताम्। १२.११

विदूषकः अवहिदो म्हि। अवहितोऽस्मि। १२.१२

राजा श्रूयताम्। *वाचयति* १२.१३

सामिअ संभाविआ जधा अहं तुए अमुणिआ[3]
तधा अणुरत्तस्स जइ णाम तुज्झ उवरि अहं[4]।
किं मे ललिअ–पारिआअ–सअणिज्जे
णंदणवणवादा वि अच्चुण्हआ सरीरए ।।१२।।

(स्वामिन् संभाविता यथाऽहं त्वयाऽज्ञात्री तथानुरक्तस्य यदि नाम तवोपर्यहम्।
किं मे ललितपारिजातशयनीये नन्दनवनवाता अप्यत्युष्णकाः शरीरे।।१२।।)

उर्वशी किं णु क्खु संपदं भणिस्सदि? किं नु खलु साम्प्रतं भणिष्यति? १३.१

चित्रलेखा णं भणिदं एव्व मिलाणकमलणालाअमणेहिं अंगेहिं।
ननु भणितमेव म्लान–कमलनालायमानैरङ्गैः। १३.२

---

१. पातयति इत्यन्ये। २. मनोरथानामगतिर्न विद्यते कुमारसंभवेऽपि ५.६४।
३. अमुणिआ अज्ञात्रीत्यर्थकमव्ययमिदम्। अअलिआ ले.
४. तह अ अणुरत्तस्स सुहअ एअमेअ तुह ण परि रं; रथेअ०० एअमेअ तुह णवरि ले.बो.मों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी (लिखने का अभिनय कर फेंकती है।)

विदूषक (चौंककर) अविहा अविहा। भो! क्या है वह? भुजंग की केचुल क्या मुझे खाने के लिए गिरी है?

राजा (देखकर) यह केचुँली नहीं है। भूर्जपत्र पर इसमें यह कुछ लिखा हुआ है।

विदूषक निश्चित ही यहीं कहीं छिपी उर्वशी ने तुम्हारा बिलखना सुनकर भूर्जपत्र पर तुल्य अनुरागसूचक अक्षर लिखकर इसे छोड़ा है।

राजा मनोरथ कहीं भी पहुँच सकते हैं। (उठाकर और बाँचकर सहर्ष) सखे! तेरा तर्क ठीक है।

विदूषक ही ही भो, क्या ब्राह्मण का वचन अन्यथा होता है। अब तो होलें आप प्रसन्न। पर जो इसमें लिखा है उसे सुनना चाहता हूँ।

उर्वशी साधु आर्य तुम नागर हो।

राजा सुना जाए।

विदूषक सावधान हूँ।

राजा सुना जाए (बाँचता है) —

स्वामिन्! तुमने मेरे विषय में जो संभावना की, कि मैं जानती नहीं हूँ, परन्तु मुझ पर अनुरक्त तुम्हारे ऊपर मैं, वैसी ही होती तो क्यों बन जाते नन्दनवन के वात, ललित पारिजात के शयन पर सोए मेरे शरीर पर लपट।। १२।।

उर्वशी अब देखो क्या कहते हैं ये?

चित्रलेखा अरे! कह ही दिया, कुम्हलाई मृणाल जैसे अंगों से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः दिट्ठिया मए बुभुक्खिदेण सोत्थिवाअणं विअ उवलद्धं भवदा उक्कंठिदेण समासासणं। दिष्ट्या, मया बुभुक्षितेन स्वस्तिवाचनमिव, उपलब्धं भवता उत्कण्ठितेन समाश्वासनम्। १३.३

राजा समाश्वासनमिति किमुच्यते। १३.४

तुल्यानुरागपिशुनं ललितार्थबन्धं
पत्रे निवेशितमुदाहरणं[१] प्रियायाः।
उत्पक्ष्मणो मम सखे! मदिरेक्षणाया–
स्तस्याः समागतमिवाननमाननेन ॥१३॥

उर्वशी एत्थ णो समभावा[२] मदी[३]। अत्रावयोः समविभागा मतिः। १४.१

राजा वयस्य! अङ्गुलीस्वेदेन दूष्येरन्नक्षराणि। धार्यतामयं स्वहस्ते निक्षेपः [४]प्रियायाः। १४.२

विदूषकः *गृहीत्वा* किं दाणिं तत्तभोदी उव्वसी भवदो मणोरधानां कुसुमं दंसिअ फले विसंवदति? (गृहीत्वा) किमिदानीं तत्रभवती उर्वशी भवतो मनोरथानां कुसुमं दर्शयित्वा फले विसंवदति? १४.३

उर्वशी हला! जाव उवअमणकादरं अत्ताणं समवत्थावेमि ताव तुमं अत्ताणअं दंसिअ जं मे अणुमदं तं भणाहि। सखि! यावदुपगमनकातरं आत्मानं समवस्थापयामि तावत्, त्वमस्य आत्मानं दर्शयित्वा यन्मम अनुमतं, तद् भण। १४.४

चित्रलेखा तधा। तथा। *तिरस्करिणीमपनीय राजानमुपेत्य* जयदु जयदु महाराओ। जयतु जयतु महाराजः। १४.५

राजा *ससंभ्रममादरगर्भं* स्वागतं भवत्यै। *पार्श्वमवलोक्य* भद्रे! १४.६

न तथा नन्दयसि मां सख्या विरहिता तया।
सङ्गमे दृष्टपूर्वेव यमुना गङ्गया विना[५] ॥१४॥

चित्रलेखा णं पढमं मेहराई दीसदि पच्छा विज्जुलदा।
ननु प्रथमं मेघराजिर्दृश्यते पश्चाद् विद्युल्लता। १५.१

---

१. जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरानिति रघुवंशेऽपि ४.७८।
२. **समभावा** रं.बो.; **समविभावा** ले.मा.पं.चा.वेल.काग्र.।
३. **पीदी** पं.चा.वेल., **मदी** रं.ले.बो.मा.काग्र.।
४. **०मयं मम प्रियायाः स्वहस्तः** काग्र.। ५. **यथा** निर्णयसागरीये १८८८ ईशाब्दीये संस्करणे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक बड़े भाग्य, कि तुमने वैसे ही पा लिया समाश्वासन जैसे मैं पा लेता हूँ स्वस्तिवाचन के मोदक, जब मुझे भूख लगती है।

राजा 'समाश्वासनमात्र' यह कैसे कहा जाए।

सखे! यह तो उठी बरौनी और मदिर नेत्रों वाली उस प्रिया का मुख ही मेरे मुख से आ मिला। इस पत्र में सूचना है तुल्य अनुराग की और मधुर है अर्थबन्ध ।।१३।।[१]

उर्वशी इस विषय में हम दोनों की मति समभाव है।

राजा वयस्य! मेरी उँगलियों में आ रहे पसीने से अक्षर फैल न जाएँ, इसलिए तेरे हाथों में है यह धरोहर (निक्षेप) प्रिया की।

विदूषक (लेकर) तो तत्रभवती उर्वशी मनोरथवृक्ष में पुष्प दिखलाकर फल क्यों नहीं दिखला रही है?

उर्वशी सखि! जब तक मैं पास जाने में कातर अपने आपको सम्हालती हूँ, तब तक तू अपने आप को दिखलाकर जो मैं चाहती हूँ, वह कह।

चित्रलेखा जैसी तेरी इच्छा (तिरस्करिणी हटाकर राजा के पास पहुँचती है) जय हो जय हो महाराज की।

राजा (हड़बड़ी में आदरपूर्वक) स्वागत आपका। (पास में दृष्टि डालकर)

भद्रे! उतना आनन्दित नहीं कर रही हो मुझे उस सखी के बिना, जैसे सङ्गम में दिखी यमुना गङ्गा के बिना ।। १४।।

चित्रलेखा ऐसा है कि पहले मेघमाला दिखाई देती है, पश्चात् विद्युल्लता।

---

१. उदाहरण रघु. ४.७८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः *अपवार्य* कहं ण एसा उव्वसी उवगदा? तत्तभोदीए उव्वसीए अहिमदा सहअरीए एदाए होतव्वं। कथं नैषोर्वशी उपगता? तत्रभवत्या उर्वश्या अभिमतया सहचर्या। एतया भवितव्यम्। १५.२

राजा एतदासनमास्यताम्। १५.३

चित्रलेखा *उपविश्य* उव्वसी महाराअं सिरसा पणमिअ विण्णवेदि।
उर्वशी महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयति। १५.४

राजा किमाज्ञापयति? १५.५

चित्रलेखा मम तस्सिं सुरारिसंभवे दुज्जादे महाराओ एव्व सरणं आसी। संपदं सा अहं तुह दंसणसमुत्थेण आआसिणा मअणेण बलिअं बाधिअमाणा भुओवि महाराअस्स अणुकंपणिज्जा होमि। मम तस्मिन् सुरारिसम्भवे दुर्जाते महाराज एव शरणमासीत्। साम्प्रतं साहं तव दर्शनसमुत्थेन आयासिना मदनेन, बलीयो बाध्यमाना भूयोऽपि महाराजस्यानुकम्पनीया भवामि। १५.६

राजा अयि सखि! १५.७

पर्युत्सुकां कथयसि प्रियदर्शनां ता–
मार्त्तिं न पश्यसि पुरूरवसस्तदर्थाम् ।
साधारणोऽयमुभयोः प्रणयः स्मरस्य[1]
तां कौमुदीमिव समागमयेन्दुबिम्बे ॥१५॥

चित्रलेखा *उर्वशीमुपेत्य* हला! इदो एहि। तुवत्तोवि णिद्दअदरं भीसणं मअणं पेक्खिअ पिअदमस्स दे दूदिम्हि संवुत्ता। सखि! इत एहि। त्वत्तोऽपि निर्दयतरं मदनं प्रेक्ष्य प्रियतमस्य ते दूत्यस्मि संवृत्ता। १६.१

उर्वशी *तिरस्करिणीमपनीय शोकात् सकम्पा ससाध्वसा* अयि अणवत्थिदे! लहुअ एव्व तुए उज्झिदम्हि। अपि अनस्थिते! लघु एव त्वया उज्झितास्मि। १६.२

चित्रलेखा *सस्मितम्* सहि! इदो मुहुत्तादो जाणिस्सं का कं उज्झिस्सदि त्ति। आआरं दाव पडिवज्जसु। सखि! इतो मुहूर्तादेव ज्ञास्यामि का कामुज्झिष्यतीति। आचारं तावत् प्रतिपद्यष्व। १६.३

---

१. **स्मरस्य** तां कौमु ००० बिम्बे इत्यस्य स्थाने स्मरस्य तप्तेन तप्तमयसा **घटनाय योग्यमिति** पं.चा.वेल.काग्र; **यतस्व तां०००बिम्बे** रं.ले.बो.मा.। तत्र तप्तेन तप्तमयसाऽय इवाभियोज्यमिति तु वक्तव्यं भवति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक (अपवार्य) क्या यह उर्वशी नहीं आई है? इसे तत्रभवती उर्वशी की सखी होना चाहिए।

राजा यह है आसन। बैठो।

चित्रलेखा (बैठकर) उर्वशी शिर से प्रणाम कर महाराज से निवेदन करती है –

राजा क्या है उसकी आज्ञा?

चित्रलेखा मेरे सहायक और उस दानव के संकट में रक्षक आप ही थे। अब वही मैं आपके दर्शन से उठे अत्यधिक आयास पहुँचा रहे मदन से तीव्र संकट में हूँ, पुनः महाराज के ही द्वारा अनुकम्पनीय हूँ।

राजा अयि सखि!

तू उस प्रियदर्शना को तो पर्युत्सुक बतला रही है और उसके लिए पुरूरवा की जो पीड़ा है उसे नहीं देख रही। काम का यह प्रणय (अन्योन्य की प्रार्थना) **हम दोनों का एक सा ही है। चन्द्रबिम्ब में कौमुदी के समान उसको ला मिला दे ॥१५॥**

चित्रलेखा (उर्वशी के पास पहुँचकर) सखि! इधर आ। इसका काम तो इतना अधिक निर्दय और भीषण है कि मैं तेरे प्रियतम की दूती बन गई हूँ।

उर्वशी (तिरस्कारिणी को हटाकर शोक से काँपती और डरती हई चित्रलेखा से) अयि अनवस्थिते! चञ्चल तुरन्त ही तू मुझे छोड़ जाएगी।

चित्रलेखा (सस्मित) सखि! अभी थोड़ी ही देर में जान जाएँगे कि कौन किसे छोड़ती है। आचार का पालन कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी *ससाध्वसं राजानमुपेत्य प्रणम्य च* जेदु जेदु महाराओ।

जयतु जयतु महाराजः। १६.४

राजा *सहर्षं* सुन्दरि! १६.५

मया नाम जितं यस्य त्वयाऽयं समुदीर्यते।
जयशब्दः सहस्राक्षादगतः[1] पूरुषान्तरम्॥१६॥

हस्ते गृहीत्वाऽऽसन उपवेशयति। १७.१

विदूषकः भोदि! रण्णो पिअवअस्सो बम्हणो किं ण बंदीअदि।

भवति! राज्ञः प्रियवयस्यो ब्राह्मणः किं न वन्द्यते। १७.२

उर्वशी *सस्मितम् प्रणमति।* १७.३

विदूषकः सत्थि भोदीए। स्वस्ति भवत्यै। १७.४

आकाशे १७.५

देवदूतः चित्रलेखे! त्वरयोर्व्वशीम् — १७.६

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयो निबद्धः।
ललिताभिनयं तमद्य भर्त्ता मरुतां द्रष्टुमनाः सलोकपालः॥१७॥

सर्वे आकर्णयन्ति उर्वशी विषादं नाटयति। १८.१

चित्रलेखा सुदं तुए देवदूअस्स वअणं। ता अणुजाणाहि महाराअं।

श्रुतं त्वया देवदूतस्य वचनम्। तदनुमान्यतां महाराजः। १८.२

उर्वशी *निःश्वस्य* णत्थि मे वाआविहवो। नास्ति मे वाग्विभवः। १८.३

चित्रलेखा महाराअ! उव्वसी विण्णवेदि 'परवसो अअं जणो। महाराएण अब्भणुण्णादा इच्छामि देवदेवस्स अणवरद्धं अत्ताणअं कादुं' त्ति।

महाराज! उर्वशी विज्ञापयति– 'परवशोऽयं जनः। तन्महाराजेनाभ्यनुज्ञाता इच्छामि देवेष्वनपराद्धमात्मानं कर्तुम्' इति। १८.४

राजा *कथमपि वचनं संस्थाप्य* नास्मि भवत्योरीश्वरनियोगपरिपन्थी। स्मर्तव्यस्त्वयं जनः। १८.५

उर्वशी *वियोगदुःखं रूपयित्वा राजानं पश्यन्ती सह सख्या निष्क्रान्ता।* १८.६

राजा *निःश्वस्य* वैयर्थ्यमिव चक्षुषोः संप्रति। १८.७

---

१. **अगतः** पं.चा.काग्र., **आगतः** रं.ले.बो.मा.वेल.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी (साध्वससहित राजा के पास पहुँचकर और प्रणाम कर)
जय हो, जय हो महाराज की।

राजा (सहर्ष) सुन्दरि! **अवश्य ही मैं जीत गया जिसके लिए तुमने जय शब्द का उच्चारण किया जो इन्द्र के बाद अन्य किसी पुरुष के लिए सुलभ नहीं था ॥ १६॥**

(हाथ पकड़कर आसन पर बिठाता है)

विदूषक कैसी स्थिति है कि राजा का प्रिय मित्र होते हुए भी ब्राह्मण को प्रणाम नहीं किया जा रहा है।

उर्वशी (मुस्कुराकर प्रणाम करती है।)

विदूषक आपका कल्याण हो।

(आकाश में)

देवदूत चित्रलेखे! उर्वशी से जल्दी कराओ—
मुनि भरत ने अष्टरसी जो प्रयोग आप सबको सिखाया है, उसका ललित अभिनय लोकपालों सहित देवराज इन्द्र देखना चाहते हैं आज ही ॥ १७॥

(सभी सुनते हैं। उर्वशी विषाद का अभिनय करती है।)

चित्रलेखा सुना तूने देवदूत का वचन। तो महाराज से ले अनुज्ञा।

उर्वशी (लम्बी साँस लेकर) मैं तो बोलने में अक्षम हूँ।

चित्रलेखा महाराज! उर्वशी निवेदन कर रही है कि 'यह जन परवश है'। महाराज की अनुज्ञा हो तो चाहूँगी कि देवराज के प्रति अपराधिनी न बनूँ।

राजा (किसी प्रकार वाणी को सम्हालकर) मैं आप दोनों के मालिक की आज्ञा का विरोधी नहीं हूँ। केवल इतना चाहता हूँ कि इस जन का भी स्मरण किया जाए।

उर्वशी (वियोग दुःख का अभिनय कर राजा को देखती हुई सखी के साथ निकल जाती है)

राजा (साँस लेकर) अब तो आँखे निरर्थक हो गईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः *पत्रं दर्शयितुकामः* णं एदं *इत्यर्धोक्ते सविषादमात्मगतम्।* अविद अविद भो! उव्वसीदंसणविम्हिदेण मए तं भुज्जवत्तं पब्भट्ठं वि हत्थादो ण विण्णादं।

(पत्रं दर्शयितुकामः) ननु एतत् (इत्यर्धोक्ते सविषादमात्मगतम्) हा धिक्, हा धिक् भो! उर्वशीदर्शनविस्मितेन मया तद् भूर्जपत्रं प्रभ्रष्टमपि हस्तात् प्रमादेन न विज्ञातम्। १८.८

राजा किमसि वक्तुकामः? १८.९

विदूषकः वअस्स एव्वं वत्तुकामोम्हि मा भवं अंगाइं मुंचदु। दिढं क्खु तुइ बद्धभावा उव्वसी। ण सा इदोगदं अणुराअं सिढिलेदि त्ति।

एवं वक्तुकामोऽस्मि–'मा भवानङ्गानि मुञ्चतु। दृढं खलु त्वयि बद्धभावा उर्वशी। न सा इतोगतमनुरागं शिथिलयति'– इति। १८.१०

राजा ममाप्येतदाशंसि मनः। तया खलु प्रस्थाने– १८.११

अनीशया शरीरस्य हृदयं स्ववशं मयि।
स्तनकम्पक्रिया–[1]लक्ष्यैर्न्यस्तं निःश्वसितैरिव॥१८॥

विदूषकः *आत्मगतम्* वेवदि मे हिअअं इमं वेलं अत्तभवदा तस्स भुज्जवत्तस्स णाम गेण्हिदव्वं त्ति।

वेपते मे हृदयमिमां वेलामत्रभवता तस्य भूर्जपत्रस्य नाम ग्रहीतव्यमिति। १९.१

राजा वयस्य केनेदानीं दृष्टिं विलोभयामि? *स्मृत्वा* आः उपनयतु भवान् भूर्ज्जपत्रम्। १९.२

विदूषकः *सर्वतो दृष्ट्वा विषादं नाटयति* हंत ण दीसदि। भो! दिव्वं क्खु तं भुज्जवत्तं गदं उव्वसीए मग्गेण।

हन्त न दृश्यते। भोः! दिव्यं खलु तद् भूर्जपत्रं गतमुर्वश्या मार्गेण। १९.३

राजा *सासूयम्* अहो सर्व्वत्र प्रमादी वैधेयः। ननु विचिनोतु भवान्। १९.४

विदूषकः *उत्थाय* णं इदो भवे, इह वा भवे। *विचेतव्यं नाटयति।*

ननु इतो भवेत्, इतो भवेत् । (विचेतव्यं नाटयति) १९.५

॥४॥

ततः प्रविशति सपरिजना देवी काशिराजपुत्री चेटी च १९.६

देवी हंजे णिउणिए! सच्चं तुए भणिदं इमं लदागेहं पविसंतो अज्जमाणवअसहाओ अज्जउत्तो पदिट्ठो त्ति। हञ्जे निपुणिके! सत्यं त्वया भणितमिदं लतागृहं प्रविशन्नार्यमाणवकसहाय आर्यपुत्रो प्रवृष्ट इति। १९.७

---

१. ०लक्ष्यै पं.चा.वेलं.काग्र.; लक्ष्यम् रं.ले.बो.मा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक (पत्र दिखलाना चाहता है) 'अच्छा तो भूर्ज' (इतना बोलकर विषादपूर्वक आत्मगत) हाय हाय! उर्वशी के दर्शन से विस्मित रहा मैं और वह भूर्जपत्र हाथ से गिर भी गया और मुझे समझ में नहीं आया।

राजा क्या कहना चाहता है?

विदूषक वयस्य! ऐसा कहना चाहता हूँ कि आप अपने अङ्गों को सुखाएँ नहीं। बहुत ही अधिक अनुरक्त है आप पर उर्वशी। वह इधर के अनुराग को शिथिल नहीं करेगी।

राजा मेरे मन में भी यह बात आ रही है। वह जब यहाँ से चली तब –

उसके शरीर पर तो उसका अधिकार नहीं था, परन्तु उसके अधिकार में जो था वह हृदय उसने मुझ पर न्यस्त कर दिया। न्यास करने वाले थे उसके निश्वास। वे दिखलाई दे रहे थे स्तनों की कंपक्रिया से ॥ १८॥

विदूषक (स्वगत) मेरा हृदय काँप रहा है। अब ये लेंगे उस भूर्जपत्र का नाम।

राजा किससे अब दृष्टि को बहलाऊँ। (यादकर) आः, वह भूर्जपत्र दो।

विदूषक (सर्वत्र देखकर विषाद का अभिनय करता है।) हंत नहीं दीख रहा। भो! दिव्य था वह भूर्जपत्र। हो सकता है उर्वशी के रास्ते ही चला गया।

राजा (असूयापूर्वक) अहो सर्वत्र प्रमादी है यह मूर्ख, खोज उसे।

विदूषक (उठकर) इधर होगा, इधर होगा । (खोजने का अभिनय करता है।)

॥ ४ ॥

(प्रवेश करती है परिजनों सहित काशिराज पुत्री और चेटी।)

देवी सखि निपुणिका! तुमने सच कहा कि इस लतागृह में आर्य माणवक के साथ आर्यपुत्र को प्रवेश करते देखा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपुणिका किं अण्णधा भट्टिणी मए कदावि विण्णविदपुव्वा?

किमन्यथा भट्टिनी मया कदापि विज्ञापितपूर्वा? १९.८

देवी तेण हि लदाविडवंतरिदा सुणिस्सं दाव से विस्सद्धमंत्तिदाणि जं तुए कहिदं तं सच्चं ण व त्ति। तेन हि लताविटपान्तरिता श्रोष्यामि तावदस्य विस्रब्धमन्त्रितानि यत् त्वया कथितं तत् सत्यं न वेति। १९.९

निपुणिका जं भट्टिणीए रोअदि। यद् भट्टिन्यै रोचते। १९.१०

देवी *परिक्रम्य पुरस्तादवलोक्य च* हंजे णिउणिए! कं णु क्खु एदं जिण्णचीवरं विअ इदोमुहं दक्खिणमारुदेण आणीअदि। हञ्जे निपुणिका! किं नु खल्वेतज्जीर्णचीवरमिव इतोमुखं दक्षिणमारुतेनानीयते। १९.११

निपुणिका *विभाव्य* भट्टिणि! पडिवत्तणविहाविदक्खरं भुज्जवत्तं क्खु एदं। हंत भट्टिणीए एव्व णेउरकोडीए लग्गं। *गृहीत्वा* णं वाईअदु एदं।

(विभाव्य) भट्टिनि! परिवर्त्तनविभाविताक्षरं भूर्जपत्रं खल्वेतत्। हन्त, भट्टिन्या एव नूपुरकोट्यां लग्नम्। (ग्रहीत्वा) ननु वाच्यतामेतत्। १९.१२

देवी अणुवाएहि दाव एदं। जदि अविरुद्धं तदो सुणिस्सं।

अनुवाचय तावदेतत्। यद्यविरुद्धं ततः श्रोष्यामि। १९.१३

निपुणिका *तथा कृत्वा* भट्टिणि! तं एव्व कोलीणं विअ पडिभादि भट्टारअं उद्दिसिअ उव्वसीए कव्वबंधो त्ति तक्केमि अज्जमाणवअप्पमादेण अम्हाणं हत्थं आगदो त्ति। (तथा कृत्वा) भट्टिनि! तदेव कौलीनमिव प्रतिभाति। भट्टारकमुद्दिश्य उर्वश्याः काव्यबन्ध इति तर्कयामि, आर्यमाणवकप्रमादेन आवयोर्हस्तमागत इति। १९.१४

देवी तेण हि से गहीदत्था होमि। तेन ह्यस्य गृहीतार्था भवामि। १९.१५

निपुणिका *वाचयति।* १९.१६

देवी *श्रुत्वा* एहि इमिणा एव्व उवाअणेण तं अच्छराकामुकं पेक्खामि।

एहि, अनेनैवोपायनेन तमप्सरःकामुकं प्रेक्षे। १९.१७

निपुणिका तथा। तथा। १९.१८

उभे *परिजनसहिते लतागृहे परिक्रामतः।* १९.१९

विदूषकः *विलोक्य* भो वयस्य! किं एदं पवण–वस–गामि पमदवणसमीप–गद–कीडापव्वद–पज्जन्ते दीसदि? भो वयस्य! किमेतत् पवनवशगामि प्रमदवनसमीपगतक्रीडापर्वतपर्यन्ते दृश्यते? १९.२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपुणिका क्या मैंने कभी भी भट्टिणी से अन्यथा कहा?

देवी तो लता की टहनियों में छिपकर सुनें इसका विस्रम्भयुक्त वार्तालाप, जो तूने कहा वह सच है या नहीं ।

निपुणिका जो आपको रुचे।

देवी (घूमकर और आगे देखकर) हंजे! निपुणिके! क्या यह जीर्ण चीवर जैसा इधर ही मलयानिल ला रहा है?

निपुणिका (समझकर) भट्टिणी! उलटने से इसके अक्षर समझ में आए, यह भूर्जपत्र है। हन्त! यह तो भट्टिणी के ही नूपुर की कोटि में आ लगा। (उठाकर) बाँच इसे।

देवी इसे बाँच ले। यदि अनुकूल होगा तो सुनूँगी।

निपुणिका (वैसा ही करती है)। भट्टिणी! उसी अफवाह जैसा लगता है। यह स्वामी (भट्टारक) को संबोधित कर कोई उर्वशी की कविता है ऐसा सोचती हूँ। आर्यमाणवक की असावधानी से हमारे हाथ लग गयी।

देवी तो इसका अर्थ समझूँ।

निपुणिका फिर बाँचती है।

देवी (सुनकर) आ, इसी को उपायन बनाकर दर्शन करें उस अप्सराकामुक के।

निपुणिका जैसी आज्ञा।

दोनों (परिजनों के साथ लतागृह में घूमती हैं।)

विदूषक (देखकर) भो वयस्य! हवा में उड़ता, प्रमदवन के समीप के क्रीड़ापर्वत के पास क्या दिखाई दे रहा है यह?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *उत्थाय* भगवन् वसन्तप्रिय [1]मलयानिल! १९.२१

वासार्थं हर संभृतं सुरभिणा पौष्पं रजो वीरुधां
किं मिथ्या भवतो हृतेन दयितास्नेहस्वहस्तेन मे ।
जानात्येव[2] भवान् विनोदनशतैरेवंविधैर्धारितं
कामार्त्तं जनमञ्जनां प्रति भवानालक्षितप्रार्थनः ।।१९।।

निपुणिका भट्टिणि! पेक्ख पेक्ख एदस्स एव्व अण्णेसणा वट्टदि।
भट्टिनि! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व। एतस्यैवान्वेषणा वर्तते। २०.१

देवी णं पेक्खामि दाव। तुण्हिं चिठ्ठ। ननु पश्यामि तावत्। तूष्णीं तिष्ठ। २०.२

विदूषकः *सविषादम्* हद्धी हद्धी! भोः! मिलाअमाणकेसरच्छबिणा मोरपिञ्छेण विप्पलद्धो म्हि। (सविषादम्) हा धिक्, हा धिक्! भोः! म्लायमानकेसरच्छविना मयूरपिच्छेन विप्रलब्धोऽस्मि। २०.३

राजा सर्व्वथा हतोऽस्मि। २०.४

देवी *सहसोपसृत्य* अज्जउत्त! अलं आवेएण एदं तं भुज्जवत्तं।
आर्यपुत्र! अलमावेगेन। एतत् तद् भूर्जपत्रम्। २०.५

राजा *ससंभ्रमम्* अये देवी। स्वागतं देव्यै। २०.६

विदूषकः *अपवार्य* दुरागतं दाणिं संवुत्तं। दुरागतमिदानीं संवृत्तम्। २०.७

राजा *जनान्तिकम्* वयस्य! किमत्र प्रतिविधेयम्? २०.८

विदूषकः लोत्तेण गहीदस्स कुंभीलअस्स त्थि वा पडिवअणं।
लोत्रेण गृहीतस्य कुंभीलकस्यास्ति वा प्रतिवचनम्। २०.९

राजा नेदं पत्रं मया मृग्यते। तत् खलु मन्त्रपत्रं यदर्थं ममायमारम्भोऽन्वेषणाय।२०.१०

देवी जुज्जइ अत्तणो सोहग्गं पच्छादेदुं। युज्यते आत्मनः सौभाग्यं प्रच्छादयितुम्। २०.११

विदूषकः भोदु। तुवरावेहि से भोअणं जं पित्तोवसमणसमत्थं भोदि।
भवति त्वरय अस्य भोजनं यत् पित्तोपशमनसमर्थं भवति। २०.१२

देवी णिउणिए! सोहणं क्खु बम्हणेण अणुमाणिदो पिअवअस्सो ।[3]
निपुणिके! शोभनं खलु ब्राह्मणेनानुमानितो प्रियवयस्यः। २०.१३

विदूषकः भोदि! णं पेक्ख आवेसिदो पिसाचो वि भोअणेण उज्झइ।
भवति! ननु पश्य आवेशितः पिशाचोऽपि भोजनेन उज्झति। २०.१४

---

१. **मलयानिल** फि.रं.लें.बो.मा.; **दखिणवायो** पं.चा.वेल.काग्र.।
२. **जानीते हि** इति पाठे ज्ञाधातोरकर्मकत्वमनुपपन्नम्, तस्याकर्मकत्वं एव नियतत्वात्।
३. किं अण्णं अण्णं अब्भत्थइअ आवेसिदो वि जो खिज्जइ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (उठकर) भगवन्! वसन्तप्रिय! मलयानिल!

सुगन्ध के लिए वसन्त द्वारा विकसित लताओं के पुष्पों की रज का हरण कर, मेरी प्रिया के स्नेहपूर्वक लिखे, अपने हस्ताक्षर को झूठे ही हरण करने से क्या? आप तो स्वयं जानते हैं इस प्रकार से सैंकड़ों विनोदों से कामार्त्तजन का विनोद होता है। अञ्जना के प्रति आप भी प्रार्थी रह चुके हैं ॥१९॥

निपुणिका भट्टिणि! देखो, देखो इसी की खोज हो रही है।

देवी देखती हूँ, जरा चुप रह।

विदूषक (विषाद के साथ) हा धिक् हा धिक्। भो! यह तो म्लान हुए पत्र सा जो मोरपंख है उसके चक्कर में पड़ गया।

राजा सर्वथा मारा गया मैं।

देवी (एकाएक पहुँचकर) आर्यपुत्र! आविग्न न हों। यह है वह भूर्जपत्र।

राजा (घबराकर) अये देवी! स्वागत देवी का।

विदूषक (अपवार्य) 'दुरागत' हो गया यह इस समय।

राजा (जनान्तिक) वयस्य! इसका क्या करें प्रतीकार?

विदूषक रंगे हाथ पकड़ाए चोर का वाणी से प्रतीकार नहीं हो सकता।

राजा इस पत्र को नहीं खोज रहे हैं हम। वह मन्त्रणा का पत्र है जिसके लिए मेरा यह खोजने का क्रम है।

देवी ठीक ही है अपना सौभाग्य छिपाना।

विदूषक रहने दें। इन्हें शीघ्र ही भोजन कराएँ, जिससे इनका पित्त शान्त हो और ये स्वस्थ हो जाएँ।

देवी निपुणिके! इस बम्हन ने ठीक ही सोचा आर्यपुत्र के बारे में।

विदूषक भवति! देखिए पिशाच भी भोजन पाकर छोड़ देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा मूर्ख! बलादपराधिनं मामापादयसि? २०.१५

देवी णत्थि क्खु भवदो अवराहो। अहं ज्जेव्व अत्थ अवरद्धा जा पडिऊलदंसणा भविअ अग्गदो दे चिट्ठामि इदो अहं गमिस्सं। णिउणिए! येहि गच्छम्ह। *कोपं नाटयित्वा प्रस्थिता।* नास्ति खलु भवतोऽपराधः। अहमेवात्र अपराद्धा या प्रतिकूलदर्शना भूत्वा अग्रतस्ते तिष्ठामि। इतोऽहं गमिष्यामि। निपुणिके! एहि गच्छामः। *कोपं नाटयित्वा प्रस्थिता।* २०.१६

राजा *अनुसृत्य* २०.१७

अपराधी [१]नामाऽहं प्रसीद रम्भोरु! विरम संरम्भात्।
सेव्यो जनश्च कुपितः कथं नु दासो निरपराधः।। २०।।

पादयोः पतति। २१.१

देवी *आत्मगतम्* ण क्खु लहुहिअआ अणुणअं बहु मण्णे किं दु अदक्खिण्ण–किदस्स पच्छादावस्स भाएमि। *राजानमपहाय सपरिवारा निष्क्रान्ता ।*

(आत्मगतम्) मा खलु लघुहृदयाहमनुनयं बहु मन्ये। किन्तु अदाक्षिण्यकृतात् पश्चात्तापाद् बिभेमि। (राजानमपहाय सपरिवारा निष्क्रान्ता) २१.२

विदूषकः पाउसणदी विअ अप्पसण्णा गदा देवी। ता उठ्ठेहि।

प्रावृण्नदीव अप्रसन्ना गता देवी। तदुत्तिष्ठ। २१.३

राजा *उत्थाय* वयस्य! नेदमनुपपन्नम्। पश्य — २१.४

प्रियवचनकृतोऽपि योषितां दयितजनानुनयो रसादृते ।
प्रविशति हृदयं न तद्विदां मणिरिव कृत्रिमरागयोजितः ।। २१ ।।

विदूषकः अणुऊलं जेव्व एत्थभवदो एदं। ण क्खु अक्खिदुःखितस्स पमुहे दीपसिहा सहेदि। अनुकूलमेवात्रभवत एतत्। न खलु अक्षिदुःखितस्य प्रमुखे दीपशिखा सहते।२२.१

राजा मा मैवम्। उर्वशीगतमनसोऽपि मे स एव देव्यां बहुमानः। किन्तु प्रणिपातलङ्घनादहमस्यां धैर्यमवलम्बिष्ये। २२.२

विदूषकः भो! चिट्ठदु दाव भवदो धीरदा[२]। बुभुक्खिदस्स बम्हणस्स जीविदं अवलंबदु भवं। समओ क्खु ण्हाणभोअणं सेविदुं। भो! तिष्ठतु तावद् भवतो धीरता। बुभुक्षितस्य ब्राह्मणस्य जीवितमवलम्बतां भवान्। समयः खलु स्नानभोजनं सेवितुम्। २२.३

---

१ नूनमहं ले., नो नाहं बो.।

२. **विदूषकः — भो! चिट्ठदु दाव देवीकहा; बुभुक्खिदस्स मे जीविअं अवलंबदु भवं। समओ क्खु ह्राणभोअणं सेविदु** ले. ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा मूर्ख! मुझे जबरदस्ती अपराधी सिद्ध कर रहा है।

देवी अपराध आपका नहीं है। अपराध मेरा है कि प्रतिकूलदर्शन होते हुए भी सामने उपस्थित हूँ। मैं ही यहाँ से चली जाती हूँ। निपुणिके! आ, चलें।

(कोप का अभिनय कर चल देती है)

राजा (पीछे चलकर)

अपराधी ही सही मैं। रम्भोरु प्रसन्न हो। क्रोध छोड़ा । सेव्य जन कुपित तो दास निरपराध कैसे? ॥२०॥

(पैरों पर गिरता है)

देवी (स्वगत) मैं इतनी क्षुद्र नहीं हूँ कि अनुनय को बहुत समझूँ। केवल दाक्षिण्य का पालन न होने से भावी पश्चात्ताप से डरती हूँ।

(राजा को छोड़कर सभी परिजनों के साथ निकल जाती है)

विदूषक पावस की नदी सी अप्रसन्न ही चली गई देवी। तो उठो।

राजा (उठकर) वयस्य! यह ठीक ही है । देखो –

प्रियजन यदि मीठी बातें बोलकर करें भी, तो महिलाओं के हृदय में अनुनय बैठता नहीं, यदि उसमें रस न हो। जैसे मणि, जिसमें बनावटी रंग चढ़ाया गया हो ॥२१॥

विदूषक यह आपके अनुकूल ही है। पीडित आँख को दीपशिखा सहती नहीं।

राजा ऐसा नहीं। मेरा मन उर्वशी में है, परन्तु देवी के प्रति मेरा बहुमान वही है। किन्तु, प्रणिपात का लंघन करने से मैं उसके विषय मे कुछ धैर्य (उपेक्षा) से काम लूँगा।

विदूषक आपकी धीरता रहे। बुभुक्षित ब्राह्मण के प्राण बचाओ। समय हो गया अब स्नान, भोजन करने का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *ऊर्ध्वमवलोक्य* गतमर्धं दिवसस्य। अतः खलु २२.४

उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी
निर्भिद्योपरि कर्णिकार–[1]मुकुलान्यालीयते षट्पदः।
तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते
क्रीडावेश्मनि[2] चैष पञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते।। २२।।

।। निष्क्रान्तौ।। २३.१

इति महाकविकालिदासकृतौ विक्रमोर्वशीये त्रोटके प्रणयभङ्गो नाम
द्वितीयोऽङ्कः ।। २।।[3] २३.२

---

१. कुसुमान्यासेवते षट्पदाः ले.।

२. ०वेश्मनिवेशि० ले.।

३. इत्ययं पर्यपूरि श्रीवाण्यलङ्करणालङ्कृतसनातनकविमहामहोपाध्यायाचार्यश्रीरेवाप्रसादद्विवेदिविहित–परिष्कृतौ कालिदाससाहित्ये द्वितीयस्याप्यद्वितीयस्य विक्रमोर्वशीयस्य त्रोटकजातीयस्य नाटकस्य द्वितीयोऽङ्कः।। २३.३ ११.१०.२००१. एक्टननगरे अमरीकासु। अद्य २०५९ वि.मकरसंक्रान्तौ पुनस्तदिदं संगणकायार्पितं स्वयमेवात्र कालिदाससंस्थाने काश्यां महामनःपुर्याम्।
१४. जनवरी, २००३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (ऊपर देखकर) दिन आधा बीत गया। इसलिए –

गर्मी से पीड़ित मयूर वृक्ष के मूल के शिशिर थाले में जा बैठा है, भौरें कर्णिकार की कली फाड़कर उसमें छिप रहे हैं, बतख तपा जल छोड़कर अब तट के पास की नलिनी (कमल का पूरा पौधा) **का आश्रय ले रहे हैं और यह पञ्जरशुक क्रीडावेश्म में क्लान्त होकर पानी माँग रहा है ॥२२॥**

(दोनों निकल जाते हैं।)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति विक्रमोर्वशीय नामक त्रोटक में प्रणयभंग नामक द्वितीय अङ्क पूरा हुआ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीयाऽङ्कारम्भको मिश्रविष्कम्भकः ।। १.१

।।१।।

प्रविशतो भरतशिष्यौ १.२

प्रथमः सखे पेलव! अग्निशरणान्महेन्द्रमन्दिरं गच्छता उपाध्यायेन त्वमासनं ग्राहितः, अहमग्निशरणक्षार्थमवस्थापितः। अतः पृच्छामि गुरोः प्रयोगेण देवपरिषदाराधिता न वेति। १.३

पेलवः सखे गालव! ण आणे कधं आराहिदा भोदि। तस्सिं उण सरस्सई–किदकव्वबंधे लच्छीसअंबरे उव्वसी तेसु तेसु रसंतरेसु उम्मादिदा आसी। किंदु, सखे गालव! न जाने कथम् आराधिता भवति। तस्मिन् पुनः सरस्वतीकृत – काव्यबन्धे लक्ष्मीस्वयंवरे उर्वशी तेषु तेषु रसान्तरेषु उन्मादिता आसीत्। किन्तु, १.४

गालवः सदोषावकाश इव ते वाक्यशेषः। १.५

पेलवः आं, तस्सिं उव्वसीए वअणं पमादक्खलिदं आसी।
आम्, तस्मिन् उर्वश्या वचनं प्रमादस्खलितमासीत्। १.६

गलवः कथमिव। १.७

पेलवः लच्छीभूमिआए वट्टमाणा उव्वसी वारुणीभूमिआए वट्टमाणाए मेणआए पुच्छिदा 'हला! सहि! समागदा एदे तेलोक्कसुपुरिसा एदे सकेसवा लोअवाला। कदमस्सिं दे हिअआहिणिवेसो' त्ति। लक्ष्मीभूमिकायां वर्त्तमाना उर्वशी वारुणीभूमिकायां वर्त्तमानया मेनकया पृष्टा– 'सखि! समागता एते त्रैलोक्यसुपुरुषाः सकेशवा लोकपालाः। कतमस्मिंस्ते हृदयाभिनिवेश' इति। १.८

गालवः ततस्ततः ? १.९

पेलवः तदो पुरुसत्तमे त्ति भणिदव्वे पुरूरवस्सिं त्ति ताए णिग्गदा वाणी।
ततः पुरुषोत्तमे इति भणितव्ये पुरूरवसीति तस्या निर्गता वाणी। १.१०

गालवः भवितव्यानुविधायीनि खलु बुद्धीन्द्रियाणि। न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः? १.११

पेलवः सा खलु सत्ता उवज्झाएण, महिंदेण पुण अणुगहीदा।
सा खलु शप्ता उपाध्यायेन, महेन्द्रेण पुनरनुगृहीता। १.१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीयाङ्क मिश्रविष्कम्भक ।।

।।१।।

(भारत के दो शिष्य प्रवेश करते हैं।)

प्रथम सखे पेलव! अग्निशाला से महेन्द्रभवन जा रहे उपाध्याय ने तुमको तो सम्हला दी थी आसन, मैं यहाँ अग्निशाला की रक्षा में नियुक्त कर दिया गया था। अतः पूछ रहा हूँ गुरुजी के प्रयोग से देव परिषत् का आराधन हुआ या नहीं।

पेलव सखे गालव! पता नहीं कैसे होती है आराधित! पर वहाँ सरस्वती द्वारा लिखित लक्ष्मीस्वयंवर के प्रयोग में उर्वशी उन उन रसों में उन्मादिता थी। किन्तु,

गालव वाक्य पूरा नहीं हुआ, लगता है कोई कमी रह गई।

पेलव हाँ! उसमें उर्वशी के वचन में असावधानी से दोष आ गया।

गालव कैसे?

पेलव उर्वशी बनी थी लक्ष्मी और मेनका वारुणी। वारुणी ने जब लक्ष्मी से पूछा 'सखि! उपस्थित हैं तीनों लोकों के ये उत्तम पुरुष, केशव सहित लोकपाल (इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम) तेरा हृदय किसमें अभिनिविष्ट है'।

गालव तब,

पेलव उसे बोलना था 'पुरुषोत्तम' पर बोल गई 'पुरूरवा'।

गालव ज्ञानेन्द्रियाँ भवितव्य का अनुसरण करती हैं। गुरूजी उस पर कुद्ध तो नहीं हो गए?

पेलव उसे शाप दे दिया गुरूजी ने, परन्तु, इन्द्र ने उस पर अनुग्रह किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गालवः कथमिव? १.१३

पेलवः 'जेण मम उवदेसो तुए लंघिदो तेण ण दे दिव्वं थाणं हुविस्सदि' त्ति उवज्झाअस्स सावो। पुरंदरेण पुण पेक्खणावसाणे लाजाओणदमुहिं उव्वसिं पेक्खिअ एदं भणिदं 'जस्सिं तुमं बद्धभावासि तस्स मे रणसहाअस्स राएसिणो पिअं एत्थ करणिज्जं। ता दाव तुमं जधाकामं पुरूरवसं उवचिट्ठ जाव सो तुइ दिट्ठसंताणो भोदि' त्ति।

येन ममोपदेशस्त्वया लङ्घितः, तेन न ते दिव्यं स्थानं भविष्यति इति उपाध्यायस्य शापः। पुरन्दरेण पुनः प्रेक्षणावसाने लज्जावनतमुखीं उर्वशीं प्रेक्ष्य एवं भणितं – 'यस्मिंस्त्वं बद्धभावासि तस्य मे रणसहायस्य राजर्षेः प्रियमत्र करणीयम्। तत् तावत् त्वं यथाकामं पुरूरवसमुपतिष्ठस्व यावत् स त्वयि दृष्टसन्तानो भवेदि'ति। १.१४

गालवः सदृशं पुरुषाऽऽन्तरवेदिनो महेन्द्रस्य। १.१५

पेलवः *सूर्य्यमवलोक्य* कधापसंगेण अम्हेहिं अबरद्धा अहिसेअवेला क्खु उवज्झाअस्स। ता एहि। से पासवत्तिणो होम्ह। कथप्रसंगेनास्माभिः अपराद्धा अभिषेकवेला खलु उपाध्यायस्य। तदेहि। अस्य पार्श्ववर्तिनौ भवाव। १.१६

गालवः तथा। १.१७

निष्क्रान्तौ[१] १.१८

॥ २ ॥

ततः प्रविशति कञ्चुकी १.१९

कञ्चुकी *विनिःश्वस्य।* १.२०

सर्वः कल्पे वयसि यतते लब्धुमर्थान् कुटुम्बी
पश्चात् पुत्रै[२]–रपहृतभरः कल्पते विश्रमाय।
अस्माकं तु प्रतिदिनमियं [३]साधयन्ती प्रतिष्ठां
सेवा[४] कारापरिणतिरहो स्त्रीषु कष्टोऽधिकारः॥१॥

परिक्रम्य आदिष्टोऽस्मि सनियमया काशिराजपुत्र्या यथा व्रतसंपादनाय मया मानमुत्सृज्य निपुणिकामुखेन पूर्वं याचितो महाराजः। तदेव मद्वचनाद् विज्ञापयेति। यावदहमवसितसन्ध्याकार्यं महाराजं पश्यामि।

---

१. निष्क्रान्तौ। विष्कम्भकः रं.ले.बो.मा. सूच्यत्वं त्वनुपरतमेव।
२. **उपहितभरः** ले.।
३. **सादयन्ती** ले.।
४. **सेवाकाकुः** ले.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गालव कैसे?

पेलव 'तूने मेरा उपदेश तोड़ा तो अब तू दिव्य स्थान में नहीं रहेगी' यह था उपाध्याय का शाप। परन्तु, इन्द्र ने प्रयोग पूरा हो जाने पर उर्वशी को लज्जा से अवनतमुखी देख कर यह कहा 'जिससे तेरा जी रमा है वह है मेरा रणसहायक राजर्षि उसका प्रिय करना ही है। तो तू पुरूरवा के पास जैसी चाहे वैसी रह तबतक, जबतक वह तुझसे सन्तान प्राप्त न कर ले।'

गालव पुरुष के चित्त के ज्ञाता महेन्द्र ने उचित ही किया।

पेलव (सूर्य देखकर) बातचीत में स्नानवेला निकल गई उपाध्याय की। तो चलो, हम उपाध्याय के पास पहुँचे।

गालव ठीक है ।

(निकल जाते हैं)

॥ २ ॥

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी (लम्बी साँस लेकर) —

सभी कुटुम्बी तो समर्थ वय में अर्थ प्राप्त करने का यत्न करते हैं और बाद में पुत्रों के द्वारा भार उठा लेने पर विश्राम करते हैं। हमारी स्थिति यह है कि हम ज्यों ज्यों बुढौती ही ओर बढ़ते हैं हमारी पूछ और बढ़ती जाती है। हमारी सेवा तो कारागार—यातना बन गई। स्त्रियों का अधिकार बड़ा बुरा ॥१॥

(घूमकर) काशीराज पुत्री ने कोई नियम (व्रत) किया है और मुझे आदेश दिया है कि व्रत की पूर्त्ति करने के लिए निपुणिका के मुँह मैंने मान छोड़कर पहले ही याचना की थी महाराज से। वही मेरे शब्दों में उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिक्रम्यावलोक्य च रमणीयः खलु दिवसावसानवृत्तान्तो राजवेश्मनि[1] । २.१

उत्कीर्णा इव वासयष्टिषु निशानिद्रालसा बर्हिणो
धूपैर्जालविनिःसृतैर्वलभयः संदिग्धपारावताः।
आचारप्रयतः सपुष्पवलिषु स्थानेषु चार्चिष्मतीः
सन्ध्यामङ्गलदीपिका विभजते शुद्धान्तवृद्धो जनः।। २।।

नेपथ्याभिमुखं दृष्ट्वा अये इत एव प्रस्थितो देवः। ३.१

परिजनवनिताकरार्पिताभिः परिवृत एष विभाति दीपिकाभिः।
गिरिरिव गतिमानपक्षसादादनुतटपुष्पितकर्णिकारयष्टिः।। ३।।

यावदेनमवलोकनगवाक्षे स्थितः प्रतिपालयामि। *परिक्रम्य स्थितः।* ४.१

।। इति मिश्रविष्कम्भकः[2] ।। ४.२

---

१. **वेश्मनः** ले.

२. सूच्यत्वस्यात्र यावत् अव्यवच्छिन्नत्वादित्र प्रमाणाभावेऽङ्कः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचित कर दे। तो चलूँ मैं सन्ध्याकार्य पूर्ण कर चुके महाराज को देखूँ।

(घूमकर और देखकर) राजभवनों में दिन डूबे का समय बढ़ा ही सुहावना होता है –

मयूरों को रात्रि की नींद सताने लगी और वे अपनी अपनी वासयष्टि पर मूर्त्ति बने से बैठ चुके हैं, जालियों से निकले सुगन्धित धूपों से कबूतर छिप गए हैं, और अन्तःपुर के वृद्धजन अपने अपने आचार में निरत हैं, पुष्पवलियुक्त स्थानों पर सन्ध्याकालीन मङ्गलदीपिकाएँ रख रहे हैं ॥२॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) अये! देव तो इधर ही आ रहे हैं –

इसके चारों ओर हाथ में दीपिकाएँ लिए परिजन वनिताएँ चल रही हैं। ऐसे लग रहे हैं ये जैसे कोई चलता फिरता पर्वत हो जिसके तटों पर खिली हों कर्णिकार ही टहनियाँ ॥३॥

चलूँ इनकी प्रतीक्षा करूँ अवलोकन गवाक्ष में स्थित होकर।

(मिश्रविष्कम्भक समाप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ तृतीयोऽङ्कः ।। ४.३

।। ३ ।।

ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा विदूषकश्च ४.४

राजा *आत्मगतम्* आः! ४.५

कार्यान्तरितोत्कण्ठं दिनं मया नीतमनतिकृच्छ्रेण।
अविनोददीर्घयामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्या।। ४।।

कञ्चुकी *उपसृत्य* जयतु जयतु देवः। देव! देवी विज्ञापयति 'मणिहर्म्यपृष्ठे सुदर्शनश्चन्द्रः। तेन संनिहितेन देवेन प्रतिपालयितुमिच्छामि यावद् रोहिणीसंयोगः' इति। ५.१

राजा आर्य लातव्य! विज्ञाप्यतां देवी यस्ते छन्द इति। ५.२

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रान्तः* ५.३

राजा वयस्य! किं परमार्थत एव देव्या व्रतनिमित्तोऽयमारम्भः स्यात्? ५.४

विदूषकः भो! तक्केमि संजादपच्छादावा तत्तभोदी वदावदेसेण भवदो पणिपातलंघणं परिमज्जिदुकाम त्ति। भोः! तर्कयामि सञ्जातपश्चात्तापा तत्रभवती व्रतापदेशेन भवतः प्रणिपातलङ्घनं परिमार्ष्टुकामेति। ५.५

राजा उपपन्नं भवानाह — ५.६

अवधूतप्रणिपाताः पश्चात् संतप्यमानमनसो हि।
निभृतैर्[1] व्यपत्रपन्ते दयितानुनयैः मनस्विन्यः।। ५।।

तदादेशय मणिहर्म्यपृष्ठमार्गम्। ६.१

विदूषकः इदो इदो भवं। इमिणा गंगातरंगसस्सिरीएण फडिहमणिसोवाणेण आरोहदु भवं पदोसावसररमणिज्जं मणिहम्मिअपिट्ठम्।

इत इतो भवान्। एतेन गङ्गातरङ्गसश्रीकेण[2] स्फटिकमणिसोपानेनारोहतु भवान् प्रदोषावसररमणीयं मणिहर्म्यपृष्ठम्। ६.२

---

१. **रविमावसते** रं. काग्र.; **रुचिमावहते** बो.मा.

२. **तरङ्गशिशिरेण** शास्त्री।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीय अङ्क ।।

।। ३ ।।

(प्रवेश करता है यथोक्त स्थिति में राजा तथा विदूषक)

राजा (स्वगत) आ:! **विभिन्न कार्यों में लगे लगे दिन तो मैंने बिता लिया इसमें अधिक कठिनाई नहीं हुई। किन्तु, रात कैसे बिताऊँ, विनोद के अभाव में इसका प्रत्येक याम लम्बे से लम्बा होता जाता है ।।४।।**

कञ्चुकी (पास में जाकर) जय हो! जय हो! देव की। देव! देवी प्रार्थना कर रही हैं कि मणिहर्म्य के पीछे चन्द्र बड़ा ही सुदर्शन है। तो आपके साथ रोहिणीसंयोग की प्रतीक्षा करना चाहती हूँ।

राजा आर्य लातव्य! कह दो देवी से जैसी आपकी इच्छा।

कञ्चुकी देव की जो आज्ञा। (निकल जाता है।)

राजा वयस्य! क्या देवी वस्तुत: व्रत के लिए यह कर रही हैं।

विदूषक भो:! मैं तो सोचता हूँ देवी को पश्चात्ताप हुआ होगा और वे व्रत के बहाने प्रणिपातलङ्घन को पोंछना चाहती होंगी।

राजा ठीक कहा तुमने –

मनस्विनीजन पहले तो प्रणिपात को झिड़क देती हैं, फिर उन्हें होता है मानसिक अनुताप तो विभिन्न बहानों से दयितजनों का अनुनय करती हैं और लज्जा की ग्लानि से छुटकारा पाती हैं ।।५।।

तो बतलाओ मणिहर्म्यपृष्ठ का मार्ग ।

विदूषक इधर से इधर से आप। यह जो गङ्गा की तरङ्ग सा शोभित स्फटिकमणि सोपान है इससे आप आरोहण करें, प्रदोषावसर में रमणीय मणिहर्म्यपृष्ठ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा आरोहाग्रतः। *सर्वे सोपानारोहणं नाटयन्ति।* ६.३

विदूषकः *निरूप्य* भो! पच्चासण्णेण चंदोदएण होदव्वं जधा तिमिररिच्चिमाणं पुव्वदिसामुहं दीसदि। भोः प्रत्यासन्नेन चन्द्रोदयेन भवितव्यम्, यथा तिमिररिच्यमानं पूर्वदिशामुखं दृश्यते। ६.४

राजा सम्यग् भवान् मन्यते। ६.५

उदयगूढशशाङ्कमरीचिभिस्तमसि दूरतरं प्रतिसारिते।
अलकसंयमनादिव लोचने हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम्।। ६।।

विदूषकः ही ही भोः! एसो क्खु खंडमोडअसरिसो उदिदो राजा दुआईणं।

ही ही भोः! एष खलु खण्डमोदकसदृशः उदितो राजा द्विजातीनाम्। ७.१

राजा *सस्मितं* सर्वत्रौदरिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः। (प्राञ्जलिः प्रणम्य) भगवन् क्षपानाथ! ७.२

रविमावसते[1] सतां क्रियायै सुधया तर्पयते सुरान् पितॄंश्च।
तमसां निशि मूर्छतां निहन्त्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते।। ७।।

उपतिष्ठते। ८.१

विदूषकः भो! बम्हणसंकामिदाक्खरेण दे पिदामहेण अब्भणुण्णादो सि। ता आसणट्ठिदो होहि। जाव अहं वि सुहासीणो होमि।

भोः! ब्राह्मणसंक्रामिताक्षरेण ते पितामहेनाभ्यनुज्ञातोऽसि। तत्, आसनस्थितो भव। यावदहमपि सुखासीनो भवामि। ८.२

राजा *विदूषकवचनं परिगृह्योपविष्टः, परिजनं विलोक्य* अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन? तद् विश्राम्यन्तु भवत्यः। ८.३

परिजनः जं देवो आणवेदि। *निष्क्रान्ताः परिजनाः।* यद् देव आज्ञापयति। ८.४

राजा *चन्द्रमसमवलोक्य विदूषकं प्रति* वयस्य! परं मुहूर्त्तादागमनं देव्याः। तद् विविक्ते कथयिष्यामि स्वामवस्थाम्। ८.५

विदूषकः णं दीसदि एव्व सा। किंदु तारिसं अणुराअं पेक्खिअ सक्कं क्खु आसाबंधेण अत्ताणं धरेदुं। ननु दृश्यत एव सा। किन्तु तादृशमनुरागं प्रेक्ष्य शक्यं खलु आशाबन्धेनात्मानं धारयितुम्। ८.६

राजा एवमेतत्। बलवान् पुनर् मे मनसोऽभितापः। ८.७

नद्या इव प्रवाहो विषमशिलासंकटस्खलितवेगः।
विघ्नितसमागमसुखो मनसिशयः शतगुणीभवति।। ८।।

---

१. रुचिमावहते सतां।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा आगे तू आरोहण कर। (सभी सोपान पर चढ़ने का अभिनय करते हैं।)

विदूषक (देखकर) भो! चन्द्रोदय प्रत्यासन्न होना चाहिए, क्योंकि पूर्वदिशा अन्धकार से खाली होती दिखाई दे रही है।

राजा ठीक समझा आपने – **उदयगूढ चन्द्रमा की किरणों ने तिमिर को दूर तक ढकेल दिया है। अतः पूर्व दिशा का मुख आखों को अधिक आकर्षक लगने लगा है, मानो केश बाँध दिए गए हों ।।६।।**

विदूषक ही ही भो! यह भगवान् क्षपानाथ द्विजपति हैं। उदित होकर लग रहा है जैसे खाँड का लड्डू हो।

राजा (सस्मित) पेटभरू लोगों को सर्वत्र खाने की सामग्री दीख पड़ती है। (हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए) भगवन् क्षपानाथ! – **सत्पुरुषों की धार्मिक क्रियाओं के लिए आप रवि में प्रवेश कर लेते हैं, देवताओं और पितरों को सुधा से करते रहते हैं तृप्त, रात्रि में फैलते अन्धकार को नष्ट करते और शिव के जटाजूट पर रहते। आपको नमः ।।७।।**

(उपस्थान (पूजा) करता है।)

विदूषक भो! ब्राह्मण में संक्रामित अक्षरों से तुम्हारे पितामह ने अनुमति दी है कि आसन पर बैठ जाओ, तो मैं भी सुख से बैठ सकूँ।

राजा (विदूषक का वचन स्वीकार कर बैठ जाता है। परिजन को देखकर) अब तो चाँदनी निकल आई है इसलिए दीपिकाओं की आवश्यकता नहीं है। आपलोग भी विश्राम करें।

परिजन जैसी आज्ञा देव की। (सभी परिजन निकल जाते हैं)

राजा (चन्द्रमा को देखकर विदूषक से) वयस्य! एक मुहूर्त्त के बाद देवी आ जायेगी। अभी एकान्त है, तो अपनी अवस्था बतलाता हूँ तुम्हें।

विदूषक वह (अवस्था) तो दीख ही रही है। किन्तु वैसा अनुराग देखकर आशाबन्ध से सम्भव है स्वयं को धारण करना।

राजा बात तो यही है। किन्तु मेरे मन का ताप बड़ा बलवान् है।

नदी का प्रवाह विषम शिलाओं की रुकावट में और अधिक वेग से बहता है। काम भी समागमसुख में विघ्न आने से सौ गुना हो जाता है।।८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः भो! जधा परिहीअमाणेहि अंगेहिं अहिअं सोहसि तधा अदूरे पिआसमाअमं दे पेक्खामि।

भोः! यथा परिहीयमानैरङ्गैरधिकं शोभसे तथा अदूरे प्रियासमागमं ते प्रेक्षे। ९.१

राजा *निमित्तं सूचयन्* वयस्य! ९.२

वचोभिराशाजननैर् भवानिव गुरुव्यथम्।
अयं मां स्पन्दितैर्बाहुराश्वासयति दक्षिणः।। ९।।

विदूषकः ण क्खु अण्णधा बम्हणस्स वअणं। न खल्वन्यथा ब्राह्मणस्य वचनम्। १०.१

राजा *सप्रत्याशस्तिष्ठति।* १०.२

॥ ४ ॥

ततः प्रविशति आकाशयानेनाभिसारिकावेषा उर्वशी चित्रलेखा च। १०.३

उर्वशी *आत्मानमवलोक्य* हला चित्तलेहे! अवि रोअदि दे अअं मम मोत्ताहरणभूसिदो णीलंसुअपरिग्गहो अहिसारिआवेसो?

हला चित्रलेखे! अपि रोचते ते अयं मम मुक्ताऽऽभरणभूषितः नीलांशुकपरिग्रहः अभिसारिकावेषः? १०.४

चित्रलेखा सहि! णत्थि मे वाआविहवो पसंसिदुं। इदं चिंतेमि अवि णाम अहं पुरूरवा भवेअं त्ति।

सखि! नास्ति मे वाग्विभवः प्रशंसितुम्। इदं तु चिन्तयामि अपि नामाहं पुरूरवा भवेयमिति। १०.५

उर्वशी सहि! मदणो क्खु तुमं आणवेदि। ता सिग्घं णेहि मं तस्स सुहअस्स वसदिं।

सखि! मदनः खलु त्वामाज्ञापयति। तच्छीघ्रं नय मां तस्य सुभगस्य वसतिम्। १०.६

चित्रलेखा *विलोक्य* णं एदं परिवत्तिदं विअ केलाससिहरं पिअदमस्स दे भवणं उवगदे म्ह। नन्वेतत् परिवर्तितमिव कैलासशिखरं प्रियतमस्य ते भवनमुपगते स्वः। १०.७

उर्वशी तेण हि पहावदो जाणीहि दाव, कहिं सो मम हिअअचोरो किं वा अणुचिट्ठदि त्ति। तेन हि प्रभावाज्जानीहि तावत्, क्व स मम हृदयचौरः, किं वानुतिष्ठतीति। १०.८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक भो! कृश होते जा रहे अंगो से तुम और अधिक अच्छे लग रहे हो, इससे लगता है कि तुम्हें प्रियासमागममुख बहुत ही शीघ्र मिलने वाला है।

राजा (शकुन सूचित करते हुए) वयस्य!

आशाजनक वचनों से तुम्हारे समान यह दक्षिण बाहु फड़क कर मुझे आश्वस्त कर रहा है ॥९॥

विदूषक ब्राह्मण का वचन अन्यथा नहीं होता।

राजा (आशा लगाकर बैठता है।)

॥ ४ ॥

(तभी प्रवेश करती हैं आकाशयान से अभिसारिका वेष में उर्वशी और चित्रलेखा।)

उर्वशी (अपने को देखकर) सखि चित्रलेखे! तुझे मेरा यह मोतियों के आभरण से भूषित नीलांशुक अभिसारिकावेष क्या अच्छा नहीं लग रहा?

चित्रलेखा सखि! मेरे पास उचित शब्द नहीं हैं प्रशंसा करने हेतु। यह हो रहा मेरे मन में विचार कि कहीं मैं पुरूरवा होती।

उर्वशी सखि! मदन तुम्हें आज्ञा दे रहा है कि मुझे शीघ्र पहुँचा उस सुभग के भवन।

चित्रलेखा (देखकर) यह रहा तेरे प्रियतम का भवन, लगता है कैलाश शिखर ही इस रूप में बदल गया है। आ पहुँचीं हम यहाँ।

उर्वशी तो प्रभाव से जान तो कि वह मेरा हृदयचोर कहाँ है और क्या कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा *ध्यात्वा विहस्यात्मगतम्* भोदु, कीलिस्सं दाव एदाए। *प्रकाशम्* हला दिट्ठो एसो मणोरधलद्धप्पिआसमाअमसुहं अणुहवन्तो उवहोअक्खम ओआसे चिट्ठदि त्ति[1]। (ध्यात्वा विहस्यात्मगतम्) भवतु, क्रीडिष्यामि तावदेतया। (प्रकाशम्) सखि! दृष्टो मया एष मनोरथलब्धप्रियासमागमसुखमनुभवन् उपभोगक्षमे अवकाशे तिष्ठतीति। १०.९

उर्वशी *विषादं नाटयति। निःश्वस्य* धण्णो सो जणो जो एव्वं भवे।
धन्यः स जनो य एवं भवेत्। १०.१०

चित्रलेखा मुद्धे! का उण चिंता तुए विणा अण्णपिआ–समाअमस्स।
मुग्धे! का पुनश्चिन्ता त्वया विना अन्यप्रियासमागमस्य। १०.११

उर्वशी *सोच्छ्वासं* सहि! अदक्खिणं संदेहदि मे हिअअं ।
सखि! अदक्षिणं संदेग्धि मे हृदयम्। १०.१२

चित्रलेखा *विलोक्य* एसो मणिहम्मप्पासादगदो वअस्समेत्तसहाओ राएसि। ता एहि उवसप्पम्हणं। एष मणिहर्म्यप्रासादपृष्ठगतः वयस्यमात्रसहायो राजर्षिः। तदेहि उपसर्पाव एनम्। १०.१३

उभे अवतरतः १०.१४

राजा वयस्य! रजन्या सह विजृम्भते मदनबाधा। १०.१५

उर्वशी अनिब्भिण्णत्थेण इमिणा वअणेण आकंपिदं मे हिअअं। ता अंतरिदा एव्व सुणाम से सेरालावं जाव णो संसअच्छेदो होदि।
अनिर्भिन्नार्थेनानेन वचनेन आकम्पितं मे हृदयम्। तदन्तर्हिते एव शृणुवः अस्य स्वैरालापं यावदावयोः संशयच्छेदो भवति। १०.१६

चित्रलेखा जं दे रोअदि। *तथा करोति।* यत् ते रोचते। १०.१७

विदूषकः णं इमे अमिअगब्भा सेवीअंदु चंदवादाः। १०.१८
नन्वेते अमृतगर्भाः सेव्यन्तां चन्द्रपादाः।

राजा वयस्य! एवमादिभिरनुपक्रम्योऽयमातङ्कः। पश्य — १०.१९

कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न चन्द्रमरीचयो
न च मलयजं सर्वाङ्गीणं न वा हरिचन्दनम् ।[2]
मनसिजरुजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं

---

१. चिट्ठदि त्ति। **उर्वशी** – *विषादं नाटयति। निःश्वस्य* धण्णो सो जणो जो एव्वं भवे।
चित्रलेखा –मुद्धे मा उण चिंता तुए वि विणा अण्णप्पिआसमाअमस्स। उर्वशी सोच्छ्वासं सहि अदक्खिणं संदेहदि मे हिअअं। चित्रलेखा एसो मणि० रं.काग्र.। मूलं पुनः बो.मा.

२. **मणियष्टयः** इति काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा (ध्यान करके हँसकर आत्मगत) चलूँ इसके साथ खेल करूँ। (प्रकाश) सखि! देख लिया, यह मन ही मन प्रियासमागम सुख भोग रहा उस जगह बैठा है जहाँ उपभोग किया जा सकता है।

उर्वशी (विषाद का अभिनय करती है। लम्बी साँस लेकर) धन्य है वह जो ऐसी हो।

चित्रलेखा मुग्धे! तुझे छोड़ किसी और के ध्यान की बात नहीं उठती ।

उर्वशी (उच्छ्वास के साथ) सखि! मेरा हृदय इस पर अदक्षिण[१] होने का सन्देह कर रहा है ।

चित्रलेखा (देखकर) यह मणिहर्म्यप्रासाद पर वयस्यमात्र के साथ बैठा है राजर्षि। तो चलें पहुँचे इसके पास।

(दोनों उतरती हैं)।

राजा वयस्य! रजनी के साथ मदनबाधा अँगड़ा रही है।

उर्वशी अस्पष्ट अर्थ वाले इस वचन से मेरा हृदय काँप उठा। तो छिपकर ही सुनें इनका स्वैर आलाप जब तक हमारा संशय टूटे।

चित्रलेखा जो तुझे अच्छा लगे? (वैसा ही करती हैं)।

विदूषक ये हैं अमृतगर्भ चन्द्रकिरणें। करो इनका सेवन।

राजा ये सब इस आतङ्क के लिए उपयोगी नहीं हैं। देखो–

मेरी कामव्याधि को दूर न तो कर सकता ताजा पुष्पशयन, न चन्द्ररश्मियाँ, न चन्दन और न सर्वाङ्गीण हरिचन्दन (लेप)। **उसे दूर कर सकती है तो या तो वह दिव्या** (उर्वशी) **या,**

---

१. दक्षिण – केवल अपने प्रति अनुरक्त ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी *उरसि हस्तं दत्त्वा* का वा अवरा? का वा अपरा? १०.२०

राजा **रहसि लघयेदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा।।१०।।**

उर्वशी हिअअ! मं उज्झिअ इदो संकंतेण तुए दाणिं फलं उवलद्धं।

हृदय! मामुज्झित्वा इतः संक्रान्तेन त्वयेदानीं फलमुपलब्धम्। ११.१

विदूषकः आम्। हं वि पत्थयंतो जदा [१]मिट्ठहरिणीमंसभोअणं ण लहे तदा णं संकित्तअंतो आसासेमि अत्ताणं।

आम्, अहमपि प्रार्थयमानो यदा मिष्टहरिणीमांसभोजनं न लभे तदैतत् सङ्कीर्तय–न्नाश्वासयाम्यात्मानम्। ११.२

राजा सखे! एवं मन्ये। ११.३

चित्रलेखा सुणु असंतुट्ठे! सुणु। शृणु, असन्तुष्टे! शृणु। ११.४

विदूषकः कहं विअ? कथमिव? ११.५

राजा ११.६

अयं तस्या रथक्षोभादंसेनांसो निपीडितः।
एकः [२]कृती शरीरेऽस्मिन् शेषमङ्गं भुवो भरः।।११।।

चित्रलेखा सहि! कि दाणिं विलंबीअदि? सखि! किमिदानीं विलम्ब्यते? १२.१

उर्वशी *सहसोपसृत्य* हला! अग्गदो वि मम ठिदाए उदासीणो विअ महाराओ।

हला! अग्रतोऽपि मम स्थिताया उदासीन इव महाराजः। १२.२

चित्रलेखा *सस्मितम्* अइ अदितुवरिदे! अणक्खित्ततिरक्करिणीआसि।

अयि अतित्वरिते! अनाक्षिप्ततिरस्करिणिकासि । १२.३

आकाशे १२.४

इदो इदो भट्टिणी। इत इतो भट्टिनी। १२.५

सर्वे कर्णं ददति। उर्वशी सह सख्या विषण्णा । १२.६

विदूषकः *सस्मितम्* अई भो! उवट्ठिदा देवी। ता [३]वाचंयमो होहि।

अयि भोः! उपस्थिता देवी। तद् वाचंयमो भव। १२.७

---

१. 'जदा सिहरिणीं रसालं वा ण' रं.बो.मा. उपरिदत्ते पाठे द्रष्टव्या काग्र. टिप्पणी।

२. 'इदं०० तथा०० अङ्गेनाङ्ग०० म्। एकं कृती' ति रं. बो. मा. उपरिदत्ते पाठे सामान्यविशेषभावो लभ्यते।

३. **वाचंअमो** काग्र.; **सुमुद्दिअमुहा** बो., **मुद्दिअम्** मा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी (छाती पर हाथ रखकर) दूसरी कौन?

राजा **एकान्त में उससे संबन्धित कथा ।। १०।।**

उर्वशी हृदय! तूने मुझे छोड़कर जो इधर घर किया आज उसका फल पा लिया।

विदूषक ठीक है। मैं भी जब चाहता हुआ मिष्ट हरिणीमांस का भोजन नहीं पाता तब उसका जप करके ही अपने आप को आश्वस्त करता हूँ।

राजा सखे! मैं तो ऐसा मानता हूँ।

चित्रलेखा सुन असंतुष्ट! सुन।

विदूषक क्या?

राजा **रथक्षोभ से यह जो मेरा कंधा उसके कंधे से टकराया इसी एक को भाग्यशाली और सफल मानता हूँ। शेष अंग तो भूमि का भार हैं ।।११।।**

चित्रलेखा सखि! अब क्यों कर रही है विलम्ब?

उर्वशी (सहसा पास जाकर) सखि! आगे ही मैं खड़ी हूँ, पर महाराज उदासीन से लग रहे हैं।

चित्रलेखा (सस्मित) अयि! अतिशीघ्रता में मग्न, तिरस्करिणी तो तूने हटाई ही नहीं।

(आकाश में)

इधर से इधर से भट्टिनी।

(सभी सुनते हैं। उर्वशी सखी के साथ दुःखी होती है।)

विदूषक (सस्मित) अयि भो! देवी आ पहुँची। तो वाणी पर संयम रखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा भवानपि संवृताकारमास्ताम्। १२.८

उर्वशी सहि! किमेत्थ करणिज्जं? सखि! किमत्र करणीयम्? १२.९

चित्रलेखा अलं आवेगेन। अंतरिदा दाणिं वअं। विहिदणिअमवेसा राएसिमहिसी दीसदि। ता ण एसा इह चिरं चिट्ठिस्सदि। अलमावेगेन। अन्तर्हिते इदानीमावाम्। विहितनियमवेषा राजर्षिमहिषी दृश्यते। तन्नैषेह चिरं स्थास्यति। १२.१०

॥ ५॥

ततः प्रविशति औपहारिकहस्तपरिजना देवी चेटी च। १२.११

देवी *परिक्रम्य चन्द्रमसवलोक्य च* हंजे णिउणिए! एसो रोहिणीसंजोएण अहिअं सोहदि भगवं मिअलंछणो।

सखि निपुणिके! एष रोहिणीसंयोगेनाधिकं शोभते भगवान् मृगलाञ्छनः। १२.१२

निपुणिका णं संपज्जदि भट्टिणीसहिदस्स भट्टिणो विसेसरमणिज्जदा[१]।

ननु सम्पद्यते भट्टिनीसहितस्य भर्तुर्विशेषरमणीयता। १२.१३

परिक्रामतः। १२.१४

विदूषकः *दृष्ट्वा* भो! णं जाणामि सोत्थिवाअणं मे देइ त्ति। [२]आदु भवंतमंदरेण वदव्ववदेसेण मुक्करोसा भवदो पणिपादलंघणं पमज्जिदुकाम त्ति अज्ज मे अक्खीणं सुहदंसणा देवी। भोः! ननु जानामि स्वस्तिवाचनं मे ददातीति अथवा व्रतव्यपदेशेन मुक्तरोषा भवतः प्रणिपातलङ्घनं प्रमार्ष्टुकामेति। अद्य मे अक्ष्णोः शुभदर्शना देवी। १२.१५

राजा *सस्मितम्* उभयथापि घटते भवतः। किन्तु यत् पश्चादभिहितं तन्मां प्रतिभाति। यदत्रभवती — १२.१६

सितांशुका मङ्गल—[३]सूत्रभूषणा विचित्र[४]—दूर्वाङ्कुरलाञ्छितालका।
व्रताऽपदेशोज्झित—गर्ववृत्तिना मयि प्रसन्ना वपुषैव लक्ष्यते॥१२॥

देवी *उपगम्य* जेदु जेदु देवो। जयतु जयतु आर्यपुत्रः। १३.१

परिजनः जेदि जेदि[५] देवो। जयतु जयतु भट्टारकः। १३.२

---

१. 'णं संपज्जिस्सदि० रमणिअदा' रं.बो.मा; णं भट्टिणीसहिदो भट्टा विसेसरमणिज्जो काग्र.।

२. **आदु** रं., **अधवा** बो.मा.।

३. सूत्रेति पाठो भोजदेवस्य शृङ्गारप्रकाशे १७.६०a, पृ० १०५६ हार्वर्डओरियण्टलसीरीज। अन्यत्र सर्वत्र मात्रेति पाठः। यावत् कालिदासग्रन्थावल्यामपि।

४. **विचित्र** बो.मा.**पवित्र** रं काग्र.।

५. **जेदु जेदु** काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा तू भी आकार छिपाकर बैठ।

उर्वशी इस स्थिति में क्या किया जाय?

चित्रलेखा घबराने की आवश्यकता नहीं है। हम लोग इस समय छिपी हैं। राजर्षि की महिषी ऐसा लगता है कि किसी व्रत में हैं। यह यहाँ देर तक ठहरेंगी नहीं।

॥ ५॥

(प्रवेश करती है देवी चेटी और उपहार की सामग्री हाथ में लिए परिजन)

देवी (घूमकर और चन्द्रमा को देखकर) सखि निपुणिके! ये भगवान् मृगलांछन रोहिणी संयोग से अधिक शोभित हो रहे हैं।

निपुणिका भट्टिनीसहित भट्टारक भी अधिक अच्छे लगते हैं।

(घूमती हैं)

विदूषक (देखकर) भो! मुझे लगता है कि या तो यह आयोजन इन्होने मुझे स्वस्तिवाचन के लड्डू देने के लिए किया है या रोष हटाकर तुम्हारी अवज्ञा को पोंछने के लिए। आज मेरी आखों को देवी शुभ लग रही है।

राजा (मुसकराकर) दोनों ही बातें संभव हैं, तथापि जो तुमने बाद में कहा है वही मुझे ठीक लगता है, क्योंकि अत्रभवती ने –

अंशुक पँहना है सफेद, भूषण में केवल मंगलसूत्र धारण किए है,
अलकों में पवित्र दूर्वाङ्कर लगा रखे हैं, व्रत के बहाने, गर्व छोड़कर
यह शरीर से ही मुझ पर प्रसन्न दिख रही है॥१२॥

देवी (पास जाकर) जय हो, जय हो आर्यपुत्र!

परिजन जय हो, जय हो मालिक की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः स्वस्ति भोदीए। स्वस्ति भवत्यै। १३.३

राजा स्वागतं देव्यै। *तां हस्ते गृहीत्वोपवेशयति।* १३.४

उर्वशी हला! ठाणे क्खु इअं देईसद्देण उच्चरीअदि। ण हि किं वि परिहीअदि सचीदो ओजस्सिदाए। सखि! स्थाने खलु इयं देवीशब्देनोच्चार्यते। न किमपि परिहीयते शच्या ओजस्वितया। १३.५

चित्रलेखा साहु असुआपरंमुहं[1] मंतिदं तुमए। साधु असूयापराङ्मुखं मन्त्रितं त्वया। १३.६

देवी अज्जउत्तं पुरोकदुअ को वि व्वदविसेसो[2] मए संपदणिज्जो। ता मुहुत्तअं उवरोहो सहीअदु । आर्यपुत्रं पुरस्कृत्य कोऽपि व्रतविशेषो मया संपादनीयः। तन्मुहूर्तमुपरोधः सह्यताम्। १३.७

राजा मा मैवम्[3] । अनुग्रहः खल्वयं नोपरोधः। १३.८

विदूषकः ईरिसो णं सत्थिवाहणवं उवरोहो बहुसो भोदु।
ईदृशो ननु स्वस्तिवाचनवानुपरोधो बहुशो भवतु। १३.९

राजा किंनामधेयमेतद् देव्या व्रतम्? १३.१०

देवी *निपुणिकामुखं प्रेक्षते।* १३.११

निपुणिका भट्टा! पिआणुप्पसादणं णाम। भर्तः! प्रियानुप्रसादनं नाम। १३.१२

राजा *देवीं विलोक्य* यद्येवम् — १३.१३

अनेन कल्याणि! मृणालकोमलं
व्रतेन गात्रं ग्लपयस्यकारणम् ।
प्रसादमाकाङ्क्षति यस्तवोत्सुकः
स किं त्वया दासजनः प्रसाद्यते ॥१३॥

उर्वशी *सवैलक्ष्यस्मितम्* महंतो क्खु एदस्स इमस्सिं बहुमाणो।
महान् खलु अस्य एतस्यां बहुमानः। १४.१

चित्रलेखा अयि मुद्धे! अण्णसंकंतप्पेमाणो णाअरा भारिआए अहिअं दक्खिणा होन्दि। अयि मुग्धे! अन्यसंक्रान्तप्रेमाणो नागरा भार्यायामधिकं दक्षिणा भवन्ति। १४.२

---

१. **साहु असूआपरंमुहं मंतिदं तुमए** काग्र. ।

२. **व्वदविसेसो** रं बो मा काग्र. ।

३. माणवक अनुग्रहः बो.मा.; मा मैवम्। रं. काग्र. ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक कल्याण हो अत्रभवती का।

राजा देवी का स्वागत। (हाथ से पकड़कर उसे बिठाता है)

उर्वशी सखि! इसे देवी शब्द से ठीक ही पुकारा जाता है। इसकी ओजस्विता शची से तनिक भी कम नहीं।

चित्रलेखा साधु, असूया छोड़कर बोली तुम।

देवी आर्यपुत्र को आगे करके मुझे कोई एक व्रत पूरा करना है। तो कुछ देरी के लिए यह कष्ट सहने की कृपा करें।

राजा ऐसा नहीं। मैं तो इसे अनुग्रह मानता हूँ, कष्ट नहीं।

विदूषक ऐसा स्वस्तिवाचन वाला उपरोध बारंबार हो।

राजा किस नाम का है यह व्रत जिसे देवी करने जा रही हैं?

देवी (निपुणिका का मुख देखती है)।

निपुणिका मालिक 'प्रियानुप्रसादन' है इसका नाम।

राजा (देवी को देखकर) ऐसा है तो –

इस व्रत से हे कल्याणि! अपना यह मृणालकोमल शरीर अकारण ही सुखा रही हो। जो उत्सुक होकर तुम्हें प्रसन्न देखना चाहता है उस दास को प्रसन्न करने की आवश्यकता ही क्या? ॥१३॥

उर्वशी (लज्जा और मुसकान के साथ) बहुत ही बड़ा है इसके प्रति इसका आदर।

चित्रलेखा अयि मुग्धे! जो नागर किसी अन्य पर बिके रहते हैं, वे भार्या पर और अधिक अनुकूल बनते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी *सस्मितम्* णं इमस्स व्वदपरिग्गहस्स अअं पहावो जं एत्तिअं मंताविदो अज्जउत्तो। **नन्वेतस्य व्रतपरिग्रहस्यायं प्रभावो यदेतावन्मन्त्रित आर्यपुत्रः।** १४.३

विदूषकः विरमदु भवं। ण जुत्तं [१]बंधुहासितं पच्चाचक्खिदुं।
विरमतु भवान्। न युक्तं बन्धुहासितं प्रत्याख्यातुम्। १४.४

देवी दारिआओ! आणेध ओवहारिअं जाव मणिहम्मिअपिट्ठगदे चंदपादे[२] अच्चेमि। दारिकाः! आनयत औपहारिकं यावन्मणिहर्म्यपृष्ठगतांश्चन्द्रपादानर्चामि। १४.५

परिजनः जं भट्टिणी आणवेदि। एसो गंधकुसुमादि उवहारो।
यद् भट्टिनी आज्ञापयति। एष गन्धकुसुमाद्युपहारः। १४.६

देवी उअणेध। *नाट्येन गन्धपुष्पादिभिश्चन्द्रपादानभ्यर्च्य* हंजे णिउणिए! इमं उवहारमोदएं अज्जमाणवकं[३] लंभावेहि। (नाट्येन गन्धपुष्पादिभिश्चन्द्र–पादानभ्यर्च्य) हञ्जे निपुणिके! एतानौपहारिकमोदकानार्यमाणवकं लम्भय। १४.७

परिजनः जं भट्टिणी आणवेदि।[४] *विदूषकं प्रत्युन्मुखीभूय* अज्जमाणवअ! इदं दाव दे।
यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (विदूषकं प्रत्युन्मुखीभूय) आर्य माणवक! इदं तावत् ते। १४.८

विदूषकः *मोदकशरावं गृहीत्वा।* सोत्थि देवीए। बहुफलो दे उववासो[५] होदु।
स्वस्ति भवत्यै। बहुफलस्तवैष उपवासो भवतु। १४.९

देवी अज्जउत्त! इदो दाव। आर्यपुत्र! इतस्तावत्। १४.१०

राजा अयमस्मि। १४.११

देवी *राजानं पूजयित्वा[६] प्राञ्जलिः प्रणिपत्य* एसाहं देवदामिहुणं रोहिणीमिअलंछणं सक्खीकरिअ अज्जउत्तं अणुप्पसादेमि– 'अज्जप्पहुदि जं इत्थिअं अज्जउत्तो पत्थेदि जा अ अज्जउत्तसमाअमप्पणइणी [७]ताए सह मए पीदिबंधेण वत्तिदव्वं' त्ति। एषाहं देवतामिथुनं रोहिणीमृगलाञ्छनं साक्षीकृत्यार्यपुत्र–मनुप्रसादयामि– 'अद्यप्रभृति यां स्त्रियमार्यपुत्रः प्रार्थयते, या चार्यपुत्रस्य समागमप्रणयिनी तया सह मया प्रीतिबन्धेन वर्तितव्यम्' इति। १४.१२

---

१. **बंधुहासितं** ले.; **सुहासितं** बो.मा.चा.साअ.काग्र. इत्येते सर्वे। असंगतं तु तत्।
२. **चंदपादे** इति सर्वानुमतं किन्तु साअ. पुस्तके वेल. **चन्द्रवादे** इति पठति।
३. **०माणवअं कञ्चुइं अ अच्चअ'** रं.ले.बो.मा.। लम्भयेति प्रयोगे द्र० चाशास्त्रिटिप्पणम्।
४. इयमस्मत्कृता योजना आवश्यकत्वात्।
५. **००वासो होदु। परिजनः अज्ज कंचुइ अदं तुइ। कञ्चुकी गृहीत्वा स्वस्ति देव्यै। देवी'** रं.ले.बो.मा., **'दे वदे होदु'** काग्र.।
६. पूजामभिनीय रं.ले.बो.मा.साअ.काग्र.। पूजैवात्रोचिता द्रव्यैः नाभिनयः।
७. **'ताए अप्पतिब०** 'रं.ले.बो.मा.साअ.काग्र.। प्रतिबन्धोऽत्र देव्येव। सा चानुकूलेति प्रतिहत एव प्रतिबन्धः। आनुकूल्यं च प्रीतिद्योत्यमत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी (सस्मित) इस व्रत को करने का है यह प्रभाव कि आपसे इतनी देर बाद हो सकी।

विदूषक रुकें आप। अपनों की हँसी का प्रत्याख्यान उचित नहीं।

देवी दारिकाओं! लाओ औपहारिक, करूँ मैं पूजा मणिहर्म्यपृष्ठ पर चन्द्रकिरणों की।

परिजन जैसी आज्ञा महारानी जी की। यह रहा गंध, पुष्प आदि का उपहार।

देवी (गन्ध, पुष्प आदि से चन्द्रकिरणों की पूजा कर अभिनय कर) सखि निपुणिका! इन औपहारिक लड्डुओं को आर्य माणवक को भेंट करो।

परिजन जो आज्ञा भट्टिनी की। (विदूषक की ओर मुँह करके) आर्य माणवक! यह तुम्हारा।

विदूषक (मोदक की हाँड़ी लेकर) आपका कल्याण हो। आपका यह उपवास बहुत सारे फल दे।

देवी आर्यपुत्र! इधर आवें।

राजा ये हूँ।

देवी (राजा की पूजा कर हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)
यह 'रोहिणी – मृगलांछन' इस देवीमिथुन की साक्षी मैं आर्यपुत्र को अनुप्रसन्न करती हूँ कि 'आज से लेकर जिस स्त्री को आर्यपुत्र चाहेंगे और जो आर्यपुत्र का समागम चाहेगी उसके साथ मेरी प्रीति होगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी अम्महे! ण आणामि किंपरं से वअणं। मम उण विस्सासविसदं हिअअं संवुत्तं।

अहो न जाने किं परमस्या वचनमिति। मम पुनर्विश्वासविशदं हृदयं संवृत्तम्। १४.१३

चित्रलेखा सहि! महाणुभावाए पतिव्वदाए अव्भणुण्णादो अणंदराओ दे पिअसमागमो भविस्सदि। सखि! महानुभावया पतिव्रतया अभ्यनुज्ञातः अनन्तरायस्ते प्रियसमागमो भविष्यति। १४.१४

विदूषकः[1] भोदि! छिन्नहत्थे मच्छे पलाइदे णिव्विण्णो धीवरो भणदि 'गच्छ धम्मो मे हविस्सदि' त्ति। किं तारिसो दे पिओ तत्तभवं?

छिन्नहस्ते मत्स्ये पलायिते निर्विण्णो धीवरो भणति—गच्छ धर्मो मे भविष्यतीति। *प्रकाशम्* भवति! किं तादृशस्ते प्रियस्तत्रभवान्? १४.१५

देवी मूढ! अहं खलु अत्तणो सुहावसाणेण अज्जउत्तं णिव्वुदसरीरं कादुं इछामि। एत्तिएण चिंतेहि दाव पिओ ण वत्ति।

मूढ! अहं खलु आत्मनः सुखावसानेनार्यपुत्रं निर्वृतशरीरं कर्तुमिच्छामि। एतावता चिन्तय तावत् प्रियो न वेति। १४.१६

राजा १४.१७

[2]दातुं वा प्रभवसि मामन्यस्यै कर्त्तुमेव वा दासम् ।
नाहं पुनस्तथा त्वयि यथा हि मां शङ्कसे भीरु! ॥१४॥

देवी होहि वा मा वा। जधाणिद्दिठं संवादिदं मए पिआणुप्पसाअणं णाम व्वदं। दारिआओ एध गछम्ह। *प्रस्थिता* भव वा, मा वा। यथा—निर्दिष्टं संपादितं मया प्रियानुप्रसादनं नाम व्रतम्। दारिकाः एत गच्छाम। १५.१

राजा प्रिये! न खलु प्रसादितोस्मि यदि संप्रति विहाय गम्यते। १५.२

देवी अज्जउत्त! अलंहितपुव्वो मए णियमो। *सपरिवारा निष्क्रान्ता* ।

आर्यपुत्र! अलङ्घितपूर्वो मया नियमः। (सपरिवारा निष्क्रान्ता) १५.३

---

१. **'विदूषकः** अपवार्य । **छिन्नहत्थो पुरदो वज्झे पलाइदे भणादि गच्छ धम्मो हुविस्सदी त्ति। प्रकाशम् भोदि! किं उदासीणो तत्तभवं'** रं.; **विदू०० हथ्थो००मच्छे पलाइदे णिव्विण्णो धीवरो००भवं'** चा. वेल.; **'विदूषकः०० छिन्नहत्थस्य पुरतो वज्झे पलाइदे००धम्मो मे हुवि०० भवं'** ले.बो.मा.पं.। अत्रोभयत्र अपवार्येति प्रकाशमिति च रङ्गनिर्देशौ त्यक्तव्यावेव। नान्यथोपपद्येत मूढेति प्रत्यायितो नायिकाया आक्रोशः१४.१६ वाक्यव्यङ्ग्यः। प्रियप्रसादनव्रतं च घटस्फोटकल्प आचारः। तत्र व्रतकर्त्र्या सह निषिद्धप्रायैव रतिर्यदर्थमानुकूल्यं व्यज्यते राज्ञा—'संप्रति'—पदेन, नियमोल्लङ्घनभीश्च देव्या १५.३ पद्येन।

२. **'दातुमसहने प्रभवत्य'** रं.ले.बो.मा.; **'दातुं वा प्रभवसि माम'** पं.चा.वेल.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी न जाने इसका और क्या कहना है, परन्तु मेरा हृदय तो विश्वास से विशद हो गया।

चित्रलेखा सखि! इस महानुभावा पतिव्रता ने अनुज्ञा दे दी कि तेरा तेरे प्रिय से समागम अब निर्विघ्न होगा।

विदूषक हाथ से छिटक कर मत्स्य भाग खड़ा हुआ तो हताश धीवर कहता ही है 'जा मुझे धर्म होगा'। (प्रकाश) भगवति! क्या वैसे ही हैं आपके प्रिय अत्रभवान्?

देवी मूढ! मैं तो अपना सुख समाप्त कर आर्यपुत्र को तृप्त देखना चाहती हूँ। इतने मात्र से सोच ले कि तत्रभवान् प्रिय हैं या नहीं।

राजा **हे भीरु! तुम चाहो तो मुझे और किसी को दे दो या खुद अपना दास बनाए रहो। मैं वैसा हूँ नहीं जैसा तुम मुझे सोच रही हो तुम्हारे विषय में ॥१४॥**

देवी होओ या नहीं। जैसा बतलाया वैसा 'प्रियानुप्रसादन' नाम का व्रत मैंने संपन्न कर दिया। दारिकाओं आओ चलें। (चलने लगती हैं।)

राजा प्रिये! मुझे प्रसन्न नहीं किया, यदि अब छोड़कर जा रही हो।

देवी मैंने, हे आर्यपुत्र! अभी तक 'नियम' का कभी उल्लंघन नहीं किया। (परिजनों के साथ निकल गई)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी सहि! पिअकलत्तो राएसि। ण उण हिअअं णिवत्तेदुं सक्कुणोमि।
सखि! प्रियकलत्रो राजर्षिः । न पुनर्हृदयं निवर्तयितुं शक्नोमि। १५.४

चित्रलेखा कधं स्थिरासो णिवत्तीअदि। कथं स्थिराशं निवर्त्यते। १५.५

राजा *आसनमुपसृत्य* वयस्य! [१]ननु खलु दूरं गता देवी। १५.६

विदूषकः भण विस्सब्धं जं सि वत्तुकामो। असज्झो त्ति वेज्जेण आदुरो विअ सेरं मुक्को तत्तभवं भोदीए। भण विस्रब्धं यदसि वक्तुकामः। असाध्य इति वैद्येनातुर इव मुक्तो तत्रभवान् भवत्या। १५.७

राजा अपि नामोर्वशी— १५.८

उर्वशी (आत्मगतम्) अज्ज किदत्था भवे। अद्य कृतार्था भवेत्। १५.९

राजा १५.१०

गूढा नूपुरशब्दमात्रमपि मे कान्ता श्रुतौ पातयेत्
पश्चादेत्य शनैः कराम्बुजवृते कुर्वीत [२]वा लोचने।
हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्य साध्वसवशान्मन्दायमाना बला—
दानीयेत पदात् पदं चतुरया [३]सख्याऽथवोपान्तिकम्।।१५।।

चित्रलेखा[४] हला उव्वसि! इमं दाव से मणोरधं संवादअ।
सखि उर्वशि! इमं तावदस्य मनोरथं सम्पादय । १६.१

उर्वशी *ससाध्वसम्* भोदु, कीलिस्सं दाव । भ तु, क्रीडिष्यामि तावत् ।
तिरस्करिणीमपनीय पृष्ठतो गत्वा राज्ञो नयने संवृणोति। १६.२

चित्रलेखा *तिरस्करिणीमपनीय विदूषकं संज्ञापयति।* १६.३

विदूषकः भो वअस्स! का उण एसा। भो वयस्य! का पुनः एषा। १६.४

राजा *स्पर्शं रूपयित्वा* सखे! [५]नारायणोरुसंभवा सेयं वरोरूः। १६.५

विदूषकः कहं भवं ओगच्छदि? कथं भवानवगच्छति। १६.६

---

१. **'वयस्य न खलु दूरं गता** — पं.वेल.काग्र.। अत्रैव 'नु' अस्माभिरयोजि 'न ननु' इति। **'वयस्य दूरं गता'** ले.बो.मा.।
२. **'मे'** काग्र.।
३. **'सख्या ममोपा०'** सर्वे, मूलं पुनः प्रक्रममनुरुध्यास्माभिरुपाकल्पि।
४. **'उर्वशी०० इस्से'** कलाभवनस्य त्रितयमपि मातृकाणाम् पं.चा. मूलं ले.।
५. **'सखे!** न खलुनारा०' रं.ले.बो.मा.मूलं पं.चा.वेल.काग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी सखि! राजर्षि को पत्नी भी प्रिय है, तथापि इससे मेरा हृदय मैं हटा नहीं पा रही हूँ?

चित्रलेखा तेरी आशापूर्त्ति तय है, लौटाने की बात ही नहीं उठती।

राजा (आसन के पास पहुँचकर) वयस्य देवी अब दूर पहुँच चुकी हैं।

विदूषक निश्चिन्त होकर कहो जो कहना चाहते हो। असाध्य समझकर जैसे वैद्य रोगी को छोड़ देता है वैसे ही देवी ने तुम्हें मुक्त कर दिया अपने आप।

राजा क्या उर्वशी –

उर्वशी (स्वगत) आज कृतार्थ होगी।

राजा **मेरी प्रियतमा छिपकर केवल नूपुर के शब्द ही कानों में डाल दे, पीछे से धीरे धीरे आकर दोनों करकमलों से आँखे मूँद दे, इस हर्म्य पर उतर कर साध्वस** (घबराहट) **के कारण धीरे धीरे चल रही वह चतुर सखी के द्वारा एक डग के बाद दूसरी डग भरती हुई मेरे पास ले आई जाए ॥१५॥**

चित्रलेखा सखि! उर्वशी इसका यह मनोरथ तो तू पहले पूरा कर दे।

उर्वशी (सहमे सहमे) अच्छा तो पहले तो मैं इससे खेल करूँगी।

(तिरस्करिणी हटाकर पीछे से जाकर राजा की दोनों आँखे मूँदती है)

चित्रलेखा (तिरस्करिणी हटाकर विदूषक को इशारा करती है।)

विदूषक भो वयस्य! यह कौन है।

राजा (स्पर्श का अभिनय कर) सखि! नारायण के ऊरु से उत्पन्न यही है उर्वशी।

विदूषक कैसे यह समझ रहे हैं आप!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा किमत्र ज्ञेयम्? १६.७

[1]अङ्गमनङ्गक्लिष्टं सुखयेदन्या न मे करस्पर्शात्।
नोच्छ्वसिति तपनकिरणैश्चन्द्रस्यैवांशुभिः कुमुदम्।।१६।।[2]

उर्वशी *हस्तौ अपनीय उत्तिष्ठति किञ्चिदपसृत्य*
जेदु जेदु महाराओ। जयतु जयतु महाराजः। १७.१

राजा सुन्दरि! स्वागतम्। *एकासन उपवेशयति।* १७.२

चित्रलेखा अवि सुहं वअस्सस्स? अपि सुखं वयस्यस्य? १७.३

राजा *उर्वशीं लक्षयित्वा* नन्वेतदुपपन्नम्। १७.४

उर्वशी हला! देवीए दिण्णो महाराओ। अदो से पणअवदी विअ सरीरसंपक्कं गदम्हि। मा क्खु मं पुरोभाइणिं समत्थेहि। सखि! देव्या दत्तो महाराजः। अतोऽस्य प्रणयवतीव शरीरसम्पर्कं गतास्मि। मा खलु मां पुरोभागिनीं समर्थयस्व। १७.५

विदूषकः कहं इह ज्जेव तुम्हाणं अत्थमिदो सुज्जो? कथमिहैव युवयोरस्तमितः सूर्यः? १७.६

राजा *उर्वशीमवलोकयन्* १७.७

देव्या दत्त इति यदि व्यापारं व्रजसि मे शरीरेऽस्मिन्।
प्रथमं कस्यानुमते चोरितमयि मे त्वया हृदयम्।।१७।।

चित्रलेखा वयस्य! णिरुत्तरा एसा। संपदं मह विण्णावणा सुणीअदु।
वयस्य! निरुत्तरा एषा । साम्प्रतं मम विज्ञापना श्रूयताम् । १८.१

राजा अवहितोऽस्मि। १८.२

चित्रलेखा वसंदाणंदरं उण्हसमए भवअं सुज्जो मए उवअरिदव्वो। ता जहा इअं मे पिअसही सग्गस्स ण उक्कण्ठेदि तहा वअस्सेण कादव्वं।
वसन्तानन्तरमुष्णसमये भगवान् सूर्यो मयोपचरितव्यः। तद् यथेयं मे प्रियसखी स्वर्गाय नोत्कण्ठते तथा वयस्येन कर्त्तव्यम्। १८.३

---

१. उत्तरार्धेऽत्र पाठाः मूलं पं.चा.वेल.काग्र. **'अन्यत् कथमिव पुलकैः कलितं मम गात्रकं करस्पर्शात्'** रं. **कथमन्यथापि ००००००००करस्पर्शात्'** रं.ले.बो.मा.

२. **उर्वशी** अम्हहे! वज्जलेवघडिदं विअ मे हत्थजुअलं। ण समत्था अवणेदुं। *मुकुलिताक्षी चक्षुषोर्हस्तावपनीय ससाध्वसा तिष्ठति।*
राजा *हस्ताभ्यां गृहीत्वोर्वशीं परिवर्त्तयति।*
उर्वशी किञ्चिदुपसृत्य जेदु जेदु महाराओ।
पं.चा.वे.काग्र. १६.१–२ त्यजन्ति, रं.ले.बो.मा.पुनः पठन्ति इति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सखे! इसमें समझना क्या है ? सीधी बात है – **मेरे कामतप्त शरीर को कर स्पर्श से कोई दूसरी सुख नहीं पहुँचा सकती, कुमुद सूर्य की किरणों से नहीं, केवल चन्द्र की ही किरणों से खिलता है ॥१६॥**

उर्वशी (हाथ हटाकर खड़ी होती है और कुछ हटकर)
जय हो, महाराज की जय हो।

राजा सुन्दरि! स्वागत! (अपनी ही आसन पर बिठाता है।)

चित्रलेखा वयस्य! सुखी तो हैं?

राजा (उर्वशी को देखकर) अब प्राप्त हुआ सुख।

उर्वशी सखि! देवी ने दे दिये हैं महाराज। इसलिए मैं इनके शरीर का स्पर्श कर रही हूँ प्रणयवती सी होकर। मुझे क्षुद्र मत समझ लेना।

विदूषक क्या तुम दोनों का सूर्य यहीं डूबा था?

राजा (उर्वशी को देखते हुए) **यदि मेरे शरीर का स्पर्श इस समय इसलिए कर रही हो कि देवी ने दे दिया है तो पहले किसके कहने पर तुमने चुराया था मेरा हृदय ॥१७॥**

चित्रलेखा वयस्य! इसके पास उत्तर नहीं है। अब मेरी प्रार्थना सुनी जाए।

राजा सावधान हूँ।

चित्रलेखा वसन्त बीत जाने पर ग्रीष्म में भगवान् सूर्य की सेवा का दायित्व मुझ पर है। तो यह हमारी प्रियसखी स्वर्ग के लिए उत्कण्ठित न हो ऐसा कुछ कीजिएगा। आप इसके अब वयस्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः किं वा सग्गे सुमिरिदव्वं? ण वा तत्थ खादीअदि ण वा पीअदि। केवलं अणिमिसेहिं णअणेहिं मीणा विडम्बीअंदि। किं वा स्वर्गे स्मर्तव्यम्? न वा तत्र खाद्यते, न वा पीयते। केवलमनिमिषैर्नयनैर्मीना विडम्ब्यन्ते। १८.४

राजा भद्रे! १८.५

अनिर्देश्यसुखः स्वर्गः कस्तं विस्मारयिष्यति ।
अनन्यनारीसामान्यो दासस्त्वस्याः पुरूरवाः ॥१८॥

चित्रलेखा अणुग्हीद म्हि। हला उव्वसि! अकातरा भविअ विसज्जेहि मं।
अनुगृहीतास्मि। सखि उर्वशी! अकातरा भूत्वा विसर्जय माम्। १९.१

उर्वशी *परिष्वज्य सकरुणं* सहि! मा क्खु मा विसुमरेहि।
सखि! मा खलु मां विस्मर। १९.२

चित्रलेखा *सस्मितम्* वअस्सेण संगदा तुमं एव्व एदं मए जाचिदव्वा। *राजानं प्रणम्य निष्क्रान्ता।* वयस्येन सङ्गता त्वमेवैतन्मया याचितव्या। १९.३

विदूषकः दिट्ठिआ मणोरधसंपदीए वड्ढदि भवं।
दिष्ट्या मनोरथसम्पत्त्या वर्धते भवान्। १९.४

राजा वयस्य! इयं तावद्[1] वृद्धिर्मम। पश्य– १९.५

सामन्तमौलिमणिरञ्जितपादपीठ–
मेकातपत्रमवनेर्न तथा प्रभुत्वम् ।
अस्याः सखे! चरणयोरहमद्य कान्त–
माज्ञाकरत्वमधिगम्य यथा कृतार्थः ॥१९॥

उर्वशी णत्थि मे वाआविहवो अदो पिअदरं मंतिदुं।
नास्ति मे वाग्विभवः अतः प्रियतरं मन्त्रयितुम्। २०.१

राजा *उर्वशीं हस्तेनावलम्ब्य* अहा, विरुद्धसंवर्धन ईप्सितलाभो नाम। यतः– २०.२

पादास्त एव शशिनः सुखयन्ति गात्रं
बाणास्त एव मदनस्य [2]मनोनुकूलाः ।
संरम्भरूक्षमिव सुन्दरि! यद् यदासीत्
त्वत्संगमेन मम तत् तदिवानुनीतम् ॥ २०॥

उर्वशी अवरद्धम्हि चिरकारिआ अज्जउत्तस्स। अपराद्धास्मि चिरकारिका आर्यपुत्रस्य। २१.१

१. **'इमां तावन्मनोरथसिद्धिं पश्य'** रं.ले.बो.मा.; **मूलं** पं.चा.वे.काग्र.।
२. **'ममा'**० पं.चा.वे.मूलमन्ये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक अरे स्वर्ग में स्मरण करने की बात ही क्या है? न तो वहाँ खाया जाता न पिया जाता, केवल अपलक आँखों से मीनों का सा जीवन बिताया जाता है।

राजा भद्रे!

स्वर्ग का सुख असीम है। उसे कौन भुला सकता है। हाँ पर पुरूरवा इसका और इसी का रहेगा दास ॥१८॥

चित्रलेखा अनुगृहीत हूँ। सखि उर्वशि! अकातर होकर दे मुझे विदा।

उर्वशी (चित्रलेखा का आलिंगन कर करुण स्वर में) सखि! मुझे भूल मत जाना।

चित्रलेखा (मुसकुराती हुई) वयस्य के साथ मिली तुझ से ही है मेरी यह प्रार्थना।

(राजा को प्रणाम कर निकल जाती है)

विदूषक बधाई वयस्य को मनोरथ पूर्त्ति के लिए।

राजा वयस्य! इसको मानता हूँ मैं अपनी वृद्धि। देखो–

सखे! सामन्त मौलिमणि से जिसका पादपीठ रंजित रहता है वह पूरी पृथिवी का एकछत्र प्रभुत्व पाकर मैं उतना कृतार्थ नहीं, जितना इस सुन्दरी के चरणों का कमनीय दासत्व पाकर कृतार्थ हूँ ॥१९॥

उर्वशी मेरे पास इससे अधिक प्रिय शब्द नहीं।

राजा (उर्वशी को हाथ से पकड़कर) अहा! ईप्सितलाभ कैसा विरुद्ध अनुभव बढ़ाने वाला है। क्योंकि –

वे ही चन्द्ररश्मियाँ शरीर को सुख पहुँचा रही हैं, काम के वे ही बाण मन के अनुकूल हो गए हैं, सुन्दरि! जो जो मुझे खाने को दौड़ते थे, तुम्हारे समागम से वे ही सब अब मेरे लिए अनुनीत हो गए हैं ॥२०॥

उर्वशी मैंने आर्यपुत्र के लिए विलम्ब कर अपराध किया है।

---

१ काग्र. ३.१९.४ पृ. ४८३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सुन्दरि! मा मैवम् — २१.२

यदेवोपनतं [1]दुःखात् सुखं तद् रसवत्तरम् ।
निर्वाणाय तरोश्छाया तप्तस्य हि विशेषतः ।। २१ ।।

विदूषकः भो सेविता पदोसरमणिज्जा चंदपादाः। समओ क्खु दे वासघर–णिज्जावेसस्स।

भोः सेविताः प्रदोषरमणीयाश्चन्द्रपादाः। समयः खलु ते वासगृहनिद्रावेशस्य। २२.१

राजा तेन हि सख्यास्ते मार्गमादेशय। २२.२

विदूषकः इदो इदो भवदी। इत इतो भवती। २२.३

सर्वे *परिक्रामन्ति।* २२.४

राजा सुन्दरि! इयमिदानीं मेऽभ्यर्थना। २२.५

उर्वशी कीरिसी सा? कीदृशी सा। २२.६

राजा २२.७

अनुपरतमनोरथस्य पूर्वं
शतगुणितेव गता मम त्रियामा ।
यदि तु तव समागमे तथैव
प्रसरति सुभ्रु! ततः कृती भवेयम् ।। २२।।

निष्क्रान्ताः सर्वे। २३.१

इति महाकविकालिदासकृतौ विक्रमोर्वशीये त्रोटके नायिकानायकसमागमो नाम तृतीयोऽङ्कः।।३।।[2]

---

१. दुःखं ले.मा. ।

२. एक्टने बोस्टनक्षेत्रे सीमासर्वज्ञयोर्गृहे । लिखितो विक्रमोर्वश्याः संभोगाङ्कस्तृतीयकः ।।
मया रेवाप्रसादेन काश्यपेन द्विवेदिना । यदृच्छयैव लेखोऽयमलेखि विदुषां मुदे।।
१४.१०.२००१ सोमवारः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सुन्दरि! ऐसा नहीं –

जो दुःख के बाद मिले वह सुख अधिक मीठा होता हैं। तरु की छाया

(सूर्यातप से) **तप्त के लिए अधिक शान्तिकर होती है ।। २१ ।।**

विदूषक भो! चन्द्रमा की प्रदोष (रात्रि) में रमणीय चाँदनी का सेवन किया गया, अब समय है वासगृह में नींद लेने के लिए प्रवेश करने का।

राजा तो अपनी सखी को मार्ग दिखलाओ।

विदूषक इधर से इधर से।

सभी (घूमते हैं।)

राजा सुन्दरि! मेरी अब यह इच्छा है –

उर्वशी कैसी?

राजा **हे सुभ्रु! मनोरथपूर्त्ति के पहले मेरी जो रातें सौगुनी सी बीती हैं यदि तुम्हारे समागम की बेला में भी वे उसी प्रकार बढ़ जातीं तो होता मैं तृप्त ।। २२ ।।**

(सभी निकल गए।)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति विक्रमोवर्शीय नामक त्रोटक में 'नायिकानायकसमागम' नामक तृतीय अङ्क पूरा हुआ ।। ३ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ [१]चतुर्थाऽङ्कारम्भकः प्रवेशकः।। १.१

नेपथ्ये चित्रलेखासहजन्ययोः प्रावेशिकी आक्षिप्तिका गीतिः १.२

प्रक्षेपः [२] **पियसहिविओअविमणा सहीं हंसी वाउला समुल्लवई ।**
सूरकर–प्फंस–विअसिअ–तामरसे सरवरुच्छङ्गे ।।१।।

(प्रियसखी–वियोगविमनाः सखीं हंसी व्याकुला समुल्लपति।
सूर्यकरस्पर्शविकसिततामरसे सरोवरोत्सङ्गे।।)

।।१।।

ततः प्रविशति विमनस्का चित्रलेखा सहजन्या च २.१

प्रक्षेपः *चित्रलेखा प्रवेशानन्तरं द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य गायति — २.२*

सहअरिदुःखालिद्धअं सरवरअंमि सिणिद्धअं ।
वाहोवग्गिअणअणअं तम्मइ हंसीजुअलअं ।।२।।

(सहचरी–दुःखालीढं सरोवरे स्निग्धम्।
बाष्पावलिगत–नयनं ताम्यति हंसीयुगलकम्।।)

सहजन्या *चित्रलेखां विलोक्य सखेदम्* सहि चित्तलेहे! मिलाअमाण–सतवत्त–कसणा दे मुहच्छाआ हिअअस्स असुत्थिदं सूएदि। ता कहेहि मे अणिव्विदिकारणं जेण दे समदुक्खा होमि। (चित्रलेखां विलोक्य सखेदम्) सखि चित्रलेखे! म्लायमान–शतपत्रकृष्णा ते मुखच्छाया हृदयस्य असुस्थतां सूचयति। तत् कथय अनिर्वृतिकारणम्। ते समदुःखा भवामि। ३.१

चित्रलेखा *सकरुणं* सहि! अच्छरा–वार–पज्जाएण भअवदो सुज्जस्स वट्टाणे वट्टंदीए पिअसहीए विणा वसंतसमओ आअदो त्ति बलीअं खु उक्कण्ठिद म्हि। सखि! अप्सरोवारपर्यायेणेह भगवतः सूर्यस्य उपस्थाने वर्त्तमाना प्रियसख्या विना वसन्तसमय आगत इति बलीयः खलु उत्कण्ठितास्मि। ३.२

---

१ **चतुर्थोऽङ्क** रं.ले.मा.चा.वे.; **'तत'** इत्यस्य स्थाने **'अथ'** इत्यस्माभिरयोजि।

२ नाट्यस्य प्रयोगे चित्रत्वमाधातुं नृत्यं गीतं च यद् अभ्यर्हितं तदर्थमत्र ध्रुवाः पश्चादाहिताः। तत्र मूलं नाट्यशास्त्रस्य ३२अध्यायः। तत्रापि हंसादिकं प्राकृतगीतयश्च सुलभाः। न चायं योगः सार्वत्रिकः, केषुचिदेव हस्तलेखेष्वस्य लाभात्, केषुचिच्चासां गाथानां प्रतीकमात्रस्यैवोपयोगात्। अथ संस्कृतश्लोकेन गतार्थत्वमप्यासामुपलभामहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्थाङ्क प्रवेशक।।

(नेपथ्य में चित्रलेखा और सहजन्या के प्रवेश की (ध्रुवा) आक्षिप्तिका)

प्रक्षेप **सूर्य की किरणों के स्पर्श से खिले कमल वाले सरोवर के उत्संग में प्रियसखी के वियोग से अनमनी व्याकुल हंसी सखी को पुकार रही है ।।१।।**

।।१।।

(प्रवेश करती हैं अनमनी चित्रलेखा और सहजन्या)

प्रक्षेप (चित्रलेखा प्रवेशानन्तर द्विपदी से दिशाएँ देखकर गाती है) —

सरोवर में दो स्नेहिल हंसियाँ सहचरी के दुःख में डूबी हैं। उनके नेत्रों से आँसू फूट फूट पड़ रहे हैं ।।२।।

सहजन्या (चित्रलेखा को देखकर खेद के साथ) चित्रलेखे! म्लान कमल सी कृष्णवर्ण की मेरी मुखछवि हृदय की अस्वस्थता सूचित कर रही है। तो बतला मुझे तेरे परिताप का कारण, जिससे मैं तेरा दुःख बँटा सकूँ।

चित्रलेखा सखि! भगवान् सूर्य के उपस्थान में अप्सराओं को नियुक्त किया गया है। उस क्रम में जब मेरी बारी आई तो मैं तो यहीं उपस्थित हूँ। वसन्त भी आ गया । मुझे प्रियसखी उर्वशी की बहुत याद आ रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजन्या सहि! जाणामि वो अण्णोण्णगदं पेम्मं। तदो तदो?

सखि! जानामि युवयोरन्योन्यगतं प्रेम। ततस्ततः? ३.३

चित्रलेखा तदो इमेसुं दिअसेसुं को णु क्खु वुत्तंतो वट्टदि त्ति पणिधाणट्ठिदाए मए अच्चाहदं उवलद्धं। ततः एतेषु दिवसेषु को नु खलु वृत्तान्तः? इति प्रणिधानस्थितया मया अत्याहितमुपलब्धम्। ३.४

सहजन्या *सावेगम्* सहि कीरिसं तं? सखि कीदृशं तत्? ३.५

चित्रलेखा *सकरुणम्* उव्वसी किल तं [1]लच्छीसणाहं राजेसिं अमच्चेसु णिवेसिदकज्ज–धुरं गेण्हिअ केलाससिहरुद्देसं गंधमादणं वणं विहरिदुं गदा। उर्वशी किल तं लक्ष्मीसहायं राजर्षिममात्येषु निवेशितकार्यधुरं गृहीत्वा कैलासशिखरोद्देशं गन्धमादनं वनं विहर्तुं गता। ३.६

सहजन्या *सश्लाघम्* सहि सो संभोओ जो तारिसेसु प्पदेसेसु। तदो तदो?

सखि! स नाम संभोगो यस्तादृशेषु प्रदेशेषु। ततस्ततः? ३.७

चित्रलेखा तदो तहिं क्खु मंदाइणीतीरे सिकतापव्वतेहिं कीलमाणा उदअवदी णाम विज्जाहरदारिआ तेण राएसिणा चिरं णिज्झाविदा त्ति कुविदा मे पिअसही उव्वसी। ततः तत्र खलु मन्दाकिन्याः पुलिनेषु सिकतापर्वतैः क्रीडन्ती उदयवती नाम विद्याधरदारिका तेन राजर्षिणा चिरं निध्यातेति कुपिता मे प्रियसखी उर्वशी। ३.८

सहजन्या होदव्वं। दूरारूढो क्खु पणओ असहणो। तदो तदो?

भवितव्यम्। दूरारूढः खलु प्रणयोऽसहनः। ततस्ततः? ३.९

चित्रलेखा तदो सा भत्तुणो अणुणअं अप्पडिवज्जमाणा गुरुसावसंमूढहिअआ विसुमरिददेवताणिअमा इत्थिआजणपरिहरणिज्जं कुमारवणं पविट्ठा। पवेसाणंतरं अ काणणोवंतवत्तिलदाभावेण परिणदं से रूवं। ततः सा भर्तुः अनुनयमप्रतिपद्यमाना गुरुशापसंमूढहृदया विस्मृतदेवतानियमा स्त्रीजनपरिहरणीयं कुमारवनं प्रविष्टा। प्रवेशानन्तरं च काननोपान्तवर्तिलताभावेन परिणतमस्या रूपम्।३.१०

सहजन्या *सशोकम्* सव्वधा णत्थि विहिणो अलंघणिज्जं णाम जेण तारिसस्स अणुराअस्स अअं एक्कवदे अण्णारिसो एव्व परिणामो संवुत्तो। अध किमवत्थो सो राएसी? सर्वथा नास्ति विधेरलङ्घनीयं नाम, येन तादृशस्य अनुरागस्यायमेकपदे अन्यादृशः एव परिणामः संवृत्तः। अथ किमवस्थः स राजर्षिः? ३.११

---

१. **लच्छीस** रं ले बो मा; **रतिस** पं चा काग्र.। रतिश्चात्र नोपयुक्ता तस्याः कामपत्नीत्वेन प्रसिद्धेः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजन्या सखि! जानती हूँ तुम दोनों की अन्योन्य प्रीति, तब।

चित्रलेखा इन दिनों उसका क्या हाल है यह जानने के लिए मैंने प्रणिधान किया तो मुझे अतीव दुःखद घटना दिखाई दी।

सहजन्या (आवेग के साथ) वह कैसी?

चित्रलेखा (करुणा व्यक्त करती हुई) उर्वशी ने उस राजा पुरूरवा को साथ लिया और गन्धमादनवन में विहार के लिए चली गई, राज्य का भार अमात्यों पर छोड़ दिया।

सहजन्या (श्लाघा के साथ) अरे संभोग तो वह जो वैसे प्रदेशों में किया जाए। फिर क्या हुआ?

चित्रलेखा वहाँ है मन्दाकिनी। उसकी बालू में सिकतापर्वतकेली कर रही थी उदयवती नामक विद्याधरदारिका। उस राजर्षि ने उसे भर आँख देखा तो उर्वशी रूठ गई।

सहजन्या हो सकता है। दूर तक चढ़ा प्रेम सहनशील नहीं होता है। फिर,

चित्रलेखा तब भर्त्ता उसे मनाने लगा और वह रूठती ही गई। गुरु (भरत) के शाप से उसके हृदय में मोह की मात्रा बढ़ी ही थी, उसे देवताओं के नियम का स्मरण नहीं रहा और स्त्रियों के लिए प्रतिषिद्ध कुमारवन में चली गई। प्रवेश करते की बन गई वह लता।

सहजन्या (शोकसहित) सर्वथा विधाता के लिए कोई भी ऐसा नहीं जिसे वह तरसाए न। देखो तो उस प्रकार के अनुराग का चुटकी बजाते ही ऐसा विपरीत परिणाम हुआ। तो, राजर्षि की स्थिति क्या है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा सो वि तस्सिं एव्व काणणे पिअदमं विचिण्णंतो अहोरत्ते अदिवाहेदि। *नभोऽवलोक्य* इमिणा उण णिव्वुदाणं वि उक्कंठाकारिणा मेहोअएण अप्पडीआरो भविस्सदि त्ति तक्केमि।

सोऽपि तस्मिन्नेव कानने प्रियतमां विचिन्वन् अहोरात्रानतिवाहयति। (नभोऽवलोक्य) एतेन पुनर्निर्वृतानामप्युत्कण्ठाकारिणा मेघोदयेनाप्रतीकारो भविष्यति इति तर्कयामि। ३.१२

नेपथ्ये जम्भलिका गीतिः ३.१३

सहअरिदुक्खालिद्धअं सरवरअंमि सिणिद्धअं ।
अविरलबाहजलोल्लअं तम्मइ हंसीजुअलअं ।। ३।।

(सहचरीदुःखालीढं सरोवरे स्निग्धम्।
अविरलवाष्पजलार्द्रं ताम्यति हंसीयुगलम्।।)

सहजन्या सहि! अत्थि को वि समाअमोवाओ?

सखि! अस्ति कोऽपि समागमोपायः? ४.१

चित्रलेखा गौरीचरणराअसंभवं संगममणिं वज्जिअ कुदो से समाअमो?

गौरीचरणरागसंभवं संगममणिं वर्जित्वा कुतोऽस्य समागमः? ४.२

सहजन्या सहि! ण क्खु तारिसा आकिदिविसेसा चिरं दुःखभाइणो होन्ति। ता अवस्सं को वि अणुग्गहणिमित्तं भूओवि समाअमोपाओ भविस्सदि त्ति तक्केमि। *प्राचीं दिशमवलोक्य* ता एहि उदउम्मुहस्स भअवदो सुज्जस्स उवट्ठाणं करेम्ह। सखि! न खलु तादृशा आकृतिविशेषाश्चिरं दुःखभागिनो भवन्ति, तदवश्यं किमप्यनुग्रहनिमित्तं भूयोऽपि समागमोपायः भविष्यति। (प्राचीं दिशमवलोक्य) तदेहि, उदयोन्मुखस्य भगवतः सूर्यस्योपस्थानं कुर्वः। ४.३

नेपथ्ये खण्डधारागीतिः ४.४

चिंतादुम्मिअमाणसिआ सहअरिदंसणलालसिआ ।
विअसिअकमलमणोहरए विहरइ हंसी सरवरए ।। ४।।

(चिन्तादूनमानसिका सहचरीदर्शनलालसिका।
विकसितकमलमनोहरे विहरति हंसी सरोवरे।।)

।। निष्क्रान्ते ।। ५.१

।। इति प्रवेशकः। ५.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा वह भी उसी वन में प्रियतमा को खोजता दिन रात बिता रहा है। (आकाश देखकर) ऊपर से तृप्त जनों में भूँख सी जगा देने वाले इस मेघोदय से तो वह असाध्य हो जाएगा ऐसा सोचती हूँ।

(नेपथ्य में जम्भलिका गीति)

सहचरी के दुःख में डूबी दो हंसियाँ सरोवर में आँसू बहा बहाकर व्यथित हो रही हैं।। ३।।

सहजन्या सखि! है कोई समागमोपाय!

चित्रलेखा गौरी–चरण–राग से उत्पन्न संगममणि को छोड़कर कहाँ संभव है इनका समागम?

सहजन्या ये विशिष्ट चेहरे चिरकाल तक दुःखभागी नहीं बनते, तो अवश्य ही कोई न कोई अनुग्रह करने वाला समागमकारी मार्ग होगा, ऐसा मेरा तर्क है। (प्राची दिशा को देखकर) तो आ, उदयोन्मुख भगवान् सूर्य का उपस्थान करें।

(नेपथ्य में खण्डधारागीति)

हंसी विकसित कमल से मनोहर सरोवर में विचरण कर रही है। उसका मानस चिन्ता से दुःखी है, सहचरी के दर्शन की है उसमें लालसा ।। ४ ।।

(निकल जाती हैं)

।। प्रवेशक समाप्त ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ चतुर्थोऽङ्कः।। ५.३

नेपथ्ये पुरूरवसः प्रावेशिकी आक्षिप्तिका ५.४

गहणं गइंदणाधो पिअविरहुम्माअप्पअडिअविआरो ।
विसइ तरुकुसुमकिसलअभूसिअणिअदेहप्पब्भारो ।। ५।।

(गहनं गजेन्द्रनाथः प्रियविरहोन्मादप्रकटितविकारः।
विशति तरुकुसुमकिसलयभूषितनिजदेहप्राग्भारः।।)

।। २।।

ततः प्रविशत्याकाशबद्धलक्ष्यः सोन्मादो राजा ६.१

राजा *सक्रोधम्* आः दुरात्मान् रक्षः! तिष्ठ तिष्ठ। क्व मे प्रियतमामादाय गच्छसि? *विलोक्य* कथं शैलशिखराद् गगनमुत्प्लुत्य बाणैर् मामभिवर्षसि? ६.२

नेपथ्ये ६.३

हिअआहिअपिअदुक्खओ सरवरए धुदपक्खओ ।
वाहोव्वग्गिअणअणओ तम्मइ हंसजुवाणओ ।। ६।।

(हृदयाहितप्रियदुःखको सरोवरे धुतपक्षकः ।
वाष्पोद्वल्गितनयनको ताम्यति हंसयुवा ।।)

लोष्टं गृहीत्वा धावन् द्विपदिकया विभाव्य सकरुणं कथम्? ७.१

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम् ।
अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत् प्रिया न ममोर्वशी ।। ७।।

मूर्च्छितः पतति। उत्थाय निःश्वस्य द्विपदिकया। ८.१

मइँ जाणिउँ मिअलोअणी णिसअरु कोइ हरेइ ।
जाव णु णव–तड–सामलि धाराहरु वरिसेइ ।। ८।।

(मया ज्ञातं मृगलोचनां निशाचरः कोऽपि हरति।
यावन्नु नवतडिच्छ्यामलो धाराधरो वर्षति।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ चतुर्थ अङ्क ।।

(नेपथ्य में पुरूरवा की प्रावेशिकी आक्षिप्तिका)

गजराज गहन में प्रविष्ट हो रहा है। यह प्रियाविरह से उन्मत्त है। इसका विकार प्रकटित है। वृक्षों के पुष्प और किसलयों से इसका भारी–भरकम देह भूषित है ।।५।।

।।२।।

(आकाश को लक्ष्य बनाए उन्मत्त राजा पुरूरवा का प्रवेश)

राजा (क्रोध के साथ) आ दुरात्मन् राक्षस! रुक रुक। कहाँ मेरी प्रियतमा को लेकर जा रहा है। (देख कर) अच्छा, यह तो शैलशिखर से आकाश में उड़कर मेरे ऊपर बाण बरसा रहा है।

(नेपथ्य में)

हृदय में प्रिया का दुःख लिए, पंख हिलाता हुआ और आँसू की धार आँखों से बहाता हुआ हंसयुवा तालाब में व्यथा भोग रहा है ।। ६।।

(ढेला उठाकर दौड़ते दौड़ते द्विपदिका द्वारा समझ कर करुणा के साथ)

क्यों?

यह नवजलधर उमड़ा हुआ है, दृप्त निशाचर नहीं, यह लम्बा खिंचा इन्द्रधनुष है, उसका धनुष नहीं, यह तेज बरसता धारासार है, उसकी बाणपरम्परा नहीं, कसौटी पर सुवर्ण रेखा सी यह बिजली है, मेरी प्रिया उर्वशी नहीं ।। ७।।

(मूर्छित होकर गिरता है। उठता है, लम्बी साँस लेता है और द्विपदिका

(दो डग भरने के साथ)

मैंने तो जाना था कि मृगलोचनी को कोई निशिचर उठाकर लिए जा रहा है, पर यह तो नई बिजली चमकाता काला धाराधर बरस रहा है ।। ८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचिन्त्य सकरुणम् क्व नु खलु सा रम्भोरुर्गता स्यात्? ९.१

तिष्ठेत् कोपवशात् प्रभावपिहिता दीर्घं न सा कुप्यति
स्वर्गायोत्पतिता भवेन् मयि पुनर्भावार्द्रमस्या मनः ।

सरोषम् ९.२

तां हर्त्तुं विबुधद्विषोऽपि न च मे शक्ताः पुरोवर्तिनीं
सा चात्यन्तमगोचरं नयनयोर्यातेति कोऽयं विधिः ॥ ९॥

द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य सनिःश्वासम्

अये परावृत्तभागधेयानां दुःखं दुःखानुबन्धि? कुतः १०.१

अयमेकपदे तया वियोगः प्रियया चोपनतः सुदुःसहो मे ।
नववारिधरोदयादहोभिर् भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः?॥१०॥

अनन्तरे चर्चरी नेपथ्ये ११.१

जलहर संहर एहु कोप मइँ आढत्तओ
अविरल–हाराऽऽसार–[1] क्कंत–दिसामुहओ ।
ए मइँ पुहविं भमंते जइ पिअँ पेक्खिहिमि
तव्वे जं जु करीहिसि तं तु सहीहिमि ॥११॥

(जलधर संहरैतं कोपं मयाऽऽज्ञप्तः अविरल–धारासार–कान्तदिशामुखकः।)

ए अहं पृथ्वीं भ्रमन् यदि प्रियां प्रेक्षे तदा यद् यत् करिष्यसि तत् तत् सहिष्ये।।)

विचिन्त्य मुधैव खलु मया मनसः परितापवृद्धिरुपेक्ष्यते। यथा मुनयोऽपि व्याहरन्ति ***'राजा कालस्य कारणमि'***–ति। तत् किमहं जलदसमयं न प्रत्यादिशामि? १२.१

नेपथ्ये चर्चरी १२.२

गंधुम्माइअ–महुअर–गीएहिं वज्जंतेहिं परहुअ–तूरेहिं ।
पसरिअ–पवणु–व्वेलिअ–पल्लव–णिअरु
सुललिद–विविह–प्पआरहिँ णच्चइ कप्पअरू ॥१२॥

(गन्धोन्मादितमधुकरगीतैः, वाद्यमानैः परभृततूर्यैः।
प्रसृतपवनोद्वेल्लितपल्लवनिकरः
सुललितविविधप्रकारं नृत्यति कल्पतरुः।।)

तेना[2] नर्त्तित्वा

---

१. **धाराकंतदि** ले., **सारदिसामुहकंतओ** र.बो.मा.पं.बे.काग्र.।

२. **तेना** इति नृत्यनिर्देशः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सोचकर दीनतापूर्वक) कहाँ चली गई होगी केले के खम्भे सी ऊरु वाली वह? **कोप से प्रभावपिहित होकर कहीं छिपी हो ऐसा नहीं, वह दीर्घकाल तक कोप नहीं करती, यह भी संभव नहीं कि स्वर्ग के लिए उड़ गई हो, मन उसका मुझमें भावार्द्र है,**

(रोष करते हुए)

उसे राक्षस भी हर नहीं सकते, मेरे सामने जो वह थी, परन्तु वह नयनों से एकदम ओझल हो गई। यह क्या है ॥ ९॥

(दो डग भरकर दिशाओं में दृष्टि फिराकर लम्बी साँस लेता हुआ)

भाग्य उलट जाने पर दुःख के पीछे दुःख दौड़ते आते हैं।

देखो न इधर तो उस प्रिया से मेरा एकाएक हुआ सुदुःसह विछोह, और इधर नवीन मेघों के उदय से दिन हो गए निरातप अतएव रम्य॥ १०॥

(अनन्तर चर्चरी नेपथ्य में)

हे जलधर! कोप छोड़ो, तुम्हारा क्रोध समझ में आ रहा है अविरल धारासार (घनघोर वर्षा) **से, जिनसे दिशामुख कमनीय हो गए हैं। मैं भूमि पर घूमते घूमते यदि प्रिया को पा गया, तब जो जो करेगा वह सब सह लूँगा ॥ ११॥**

(सोचकर) झूठे ही मैं मन के परिताप को बढ़ने दे रहा हूँ। मुनिजन भी कहते हैं 'राजा है कारण काल का'। तो मैं इस वर्षाकाल को रोक क्यों नहीं रहा।

(नेपथ्य में चर्चरी)

यह कल्पतरु सुललित और विविध प्रकार के नृत्य कर रहा है, इसमें चलती हवा से घूमे हुए हैं पल्लव (हस्ताभिनय है), **गन्ध से उन्मादित भौंरो का गुंजार गीत बन रहा है और बज रहे हैं कोयल की कूक के नगाड़े ॥१२॥**

(तेना नृत्य करता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा न प्रत्यादिशामि जलदसमयं यत् प्रावषेण्यैरेव लिङ्गैर्मम राजोपचारः क्रियते संप्रति। *विहस्य* कथमिति? १३.१

विद्युल्लेखाकनकरुचिरं श्रीवितानं ममाभ्रं
व्याधूयन्ते निचुलतरुभिर्मञ्जरीचामराणि।
घर्म्मच्छेदात् पटुतरगिरो वन्दिनो नीलकण्ठाः
[1]धारोद्गारोपनयनपरा [2]नैगमाः [3]सानुमन्तः॥१३॥

पुनश्चर्चरी **'गंधुम्माइअ'** (४.१२) *नृत्यम्*

भवतु। किं परिच्छदश्लाघया। यावदस्मिन् कानने प्रियां प्रणष्टामन्वेषयामि। १४.१

पुनश्चर्चरी। [4]*पाठस्यान्ते भिन्नकः (नृत्यम्)* १४.२

दइआरहिओ अहिअं दुहिदो विरहाणुगओ परिमंथरओ।
गिरिकाणणए कुसुमुज्जलए गअजूहवई बहुझीणगई ॥१४॥

(दयितारहितोऽधिकं दुःखितो विरहानुगतः परिमन्थरः।
गिरिकानने कुसुमोज्ज्वले गजयूथपतिर्बहुक्षीणगतिः॥)

अनन्तरे द्विपदिकया परिक्रम्यावलोक्य च सहर्षम् हन्त हन्त। व्यवसितस्य मे संदीपनमिव संवृत्तम् । कुतः १५.१

आरक्तराजिभिरियं कुसुमैर्नवकन्दली सलिलगर्भैः।
कोपादन्तर्बाष्पे स्मरयति मां लोचने तस्याः॥१५॥

इतो गतेति कथं नु तत्रभवती मया सूचयितव्या। यतः — १६.१

पद्भ्यां स्पृशेद् वसुमतीं यदि सा सुगात्री
मेघाभिवृष्टसिकतासु वनस्थलीषु ।
पश्चान्नता गुरुनितम्बतया ततोऽस्याः
दृश्येत चारुपदपङ्क्तिरलक्तकाङ्का ॥१६॥

परिक्रम्यावलोक्य च सहर्षम् उपलब्धमुपलक्षणं येन तस्याः कोपनाया मार्गोऽनुमीयते। १७.१

---

१. धारासारा इति सर्वे। धारोद्गारा इति तु वयम्।
२. नैगमा वैदिकाः अभिषेकजलानि पातयितुमधिकृताः। तथाहि रघुवंशे १७.१६–१७,१९,५६
३. **०श्चाम्बुवाहाः** इत्यपरे। रघुवंशे १३.४७
४. पाठो नाम 'वाक्य' — पदवाच्यो नृत्यविकल्पः। तथा च मालविकाग्निमित्रे २.४.८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा नहीं रोकूँगा, इस वर्षाकाल को, क्योंकि, यहाँ वर्षा के ही चिह्न मेरे लिए राजकीय सामग्री बने हुए हैं। (हँसकर) कैसे? –

(तो ऐसे) **सुनहली पच्चीकारी से रुचिर श्रीवितान का काम कर रहे हैं विद्युल्लेखा से युक्त ये मेघ, चँवर डुला रहे हैं निचुल तरु अपनी मञ्जरिओं के, ये नीलकण्ठ (मयूर) बने हुए हैं बन्दी जिनकी बोली ग्रीष्मान्त में और पटु हो गई है, और मेरा अभिषेक करने वाले नैगम** (वैदिक) **हैं ये पर्वत जो धारासार उड़ेल रहे हैं ॥ १३॥**

(पुनः चर्चरी) **गन्धुम्मादई** (४.१२) (नृत्य)

रहने भी दिया जाए अपने परिच्छद की प्रशंसा से क्या। चलूँ इसी कानन में प्रिया अलक्षित हुई हैं, इसी में उसे खोजूँ।

(फिर चर्चरी पाठ के अन्त में भिन्नक नृत्य)

प्रिया से रहित होने से अधिक दुःखित, विरह में पड़ा हुआ अतएव परिमन्थर, कुसुमों से भरे गिरिकानन में यह गजयूथपति इस प्रकार क्षीणगति है ॥ १४॥

(अनन्तर दो डग भर कर घूमता और देखकर प्रसन्नतापूर्वक) हन्त हन्त। व्यसन में पड़े मेरे लिए यह और संदीपक बन गई। देखो न–

यह नवकन्दली पानी लिए लाल लाल पुष्पराजियों से याद दिला रही है कोप से आँसू लिए उस प्रिया के रक्त नेत्रों का ॥ १५॥

'वह यहाँ से गई है' यह कैसे बतलाया जाए उसके बारे में। क्योंकि–

वह सुगात्री यदि भूमि का स्पर्श करती तो उसकी उस पर उछली अलक्तकांकित पदपंक्ति नितम्ब के भार से पिछले भाग में दिखाई देती गहरी, क्योंकि वनस्थली की बालू पर पानी बरस चुका है ॥ १६॥

(घूमकर और देखकर खुशी लिए) मिल गई निसानी जिससे उस कोपना के मार्ग का अनुमान किया जा सकता है –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृतोष्ठरागैर्नयनोदबिन्दुभिर्निमग्ननाभेर्निपतद्भिरङ्कितम् ।
च्युतं रुषा भिन्नगतेरसंशयं शुकोदरश्याममिव स्तनांशुकम्॥१७॥

भवतु। आदास्ये तावत्। *परिक्रम्य विभाव्य च सास्रम्* कथं सेन्द्रगोपं नवशाद्वलमिदम्? कुतो नु खलु निर्जने वने प्रियाप्रवृत्तिरवगमयितव्या? *शिखिनं दृष्ट्वा* अये! अयमासारोच्छ्वसितशैलतटस्थलीपाषाणमारूढः । १८.१

आलोकयति पयोदान् प्रबलपुरोवातनर्त्तितशिखण्डः।
केकागर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ॥१८॥

भवतु। तावदेनं पृच्छामि। १९.१

नेपथ्ये खण्डकः १९.२

संपत्तविसूरणओ तुरिअं परवारणओ ।
पिअअमदंसणलालसओ गअवरु विम्हिअमाणसओ ॥१९॥

(सम्प्राप्तविसूरणः त्वरितं परवारणः।
प्रियतमदर्शनलालसो गजवरो विस्मितमानसः॥)

तेना खण्डकान्तरं चर्चरी २०.१

वरहिण! पइ अब्भत्थेमि आचक्खुहि मे ता
एत्थ अरण्णे भमंते जइ पइ दिट्ठी सा महु कंता ।
णिसमइ मिअंकसरिसवअणा गअणे हंसगई
ए चिण्हे जाणीहिसि आअक्खिउ तुज्झ मई ॥२०॥

(बर्हिन्! त्वामित्यभ्यर्थये आचक्ष्व मे तत्
अत्र अरण्ये भ्रमता यदि त्वया दृष्टा सा मम कान्ता।
निशामय मृगाङ्कसदृशवदना गमने हंसगतिः
अनेन चिह्नेन ज्ञास्यस्याख्यातं तव मया॥)

चर्चरिकयोपविश्याञ्जलिं बद्ध्वा २१.१

नीलकण्ठ! [1]ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन् वनिता त्वया ।
दीर्घापाङ्गा सितापाङ्ग! दृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत् ॥२१॥

विचिन्त्य कथमदत्वैव प्रतिवचनं नर्त्तितुं प्रवृत्तः। *पुनश्चर्चरी* तत् किं नु खलु प्रहर्षकारणमस्य भवेत्? *विचिन्त्य* आं ज्ञातम् २२.१

---

१. **धृतोत्कण्ठा** काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुस्से में तेजी से चली उस गंभीरनाभि वाली सुन्दरी का शुकोदरश्याम स्तनांशुक गिरा पड़ा है जिस पर ओठों का राग लिए आँसू की टपकी बूँदों के चिह्न बने हुए हैं ॥१७॥

चलूँ उठाऊँ इसे। (घूमकर और समझ कर आँसू भरे हुए) क्यों! यह इन्द्रगोप (वीरबहूटी) से चिह्नित नयी घाँस है? यह स्थान निर्जन वन है। इसमें प्रिया की खबर किससे ली जाए? (मयूर को देखकर) अये! यह है मयूर। यह है आरूढ शैल तटस्थली के पाषाण पर, जो स्थली आसार (घनी वर्षा) से खिल उठी है –

देख रहा है मेघों को, सामने की प्रबल हवा से इसका शिखण्ड हिल रहा है और यह कण्ठ को दूर तक उठाकर केका ध्वनि कर रहा है ॥१८॥

चलूँ इससे पूछूँ तो। (नेपथ्य में खण्डक)

दुर्गति में पड़ा यह गजराज जल्दी कर रहा है – प्रियतमा के दर्शन की लालसा और विस्मय को मन में सँजोए ॥१९॥

(तेना खण्डकानन्तर चर्चरी)

हे बर्हिन्! तुझसे प्रार्थना है, बतला मुझे वह इस वन में घूमती कहीं दिखाई दी हो मेरी कान्ता। इसके लक्षण सुन, उसका चेहरा है चन्द्र जैसा, गति है हंस जैसी। इन चिह्नों से जान सकोगे? बतला दिए तुझे मैंने ॥२०॥

(चर्चरिका के साथ बैठकर और अंजलि बाँधकर)

हे नीलकण्ठ! इस वन में मेरी उत्कण्ठित प्रिया तूने कहीं घूमती फिरती देखी हो। तू सितापाङ्ग है तो वह भी दीर्घापाङ्गी है, और वह दृष्टिक्षमा भी है ॥२१॥

(सोचकर) अरे ऐसा क्यों कि यह उत्तर दिए बिना ही नाचने में लग गया।

(फिर चर्चरी)

इसके प्रहर्ष का कारण क्या हो सकता है? (सोचकर) आ गया समझ में–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृदुपवनविभिन्नो मत्प्रियाया[१] विनाशाद्
घनरुचिरकलापो निःसपत्नोऽस्य[२] जातः।
रतिविगलितबन्धे केशपाशे[३] सुकेश्याः
सति कुसुमसनाथे कं[४] हरेदेष [५]बर्हीं ॥ २२॥

भवतु। परव्यसननिवृत्तं न खलु एनं पृच्छामि। *द्विपदिकया परिक्रम्यावलोक्य च* २३.१ अये! इयमातपान्तसंधुक्षितमदा जम्बूविटपमध्यास्ते परभृता। विहगेषु पण्डितैषा जातिः। यावदेनां पृच्छामि। २३.२

नेपथ्ये खुरकः २३.३

विज्जज्झरकाणणलीणओ दुक्खविणिग्गअवाहुप्पीडओ ।
दूरोस्सारिअ–हिअआणंदओ अंबरमाणेण[६] भमइ गइंदओ ॥ २३ ॥

(विद्याधरकाननलीनो दुःखविनिर्गतबाष्पोत्पीडः।
दूरोत्सारितहृदयानन्दोऽम्बरमानेन भ्रमति गजेन्द्रः॥)

[७]*खुरकान्ते चर्चरी* हेले हेले २४.१

परहुअ! महुरपलाविणि! कंती णंदणवणसच्छंदभमंती ।
जइ पइ पिअअम सा महु दिट्ठा[८] ता आअक्खहि महु परपुट्ठा ॥ २४ ॥

(परभृते! मधुरप्रलापिनि कान्ते नन्दनवने स्वच्छन्दं भ्रमन्ती।
यदि त्वया प्रियतमा सा मम दृष्टा तर्ह्याचक्ष्व मे परपुष्टे॥)

एतदेव नर्त्तित्वा [९]*वलन्तिकयोपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा* भवति! २५.१

त्वां कामिनो मदनदूतिमुदाहरन्ति मानावभङ्गनिपुणं त्वममोघमस्त्रम् ।
तामानय प्रियतमां मम वा समीपं मां वा नयाशु मृदु/कलभाषिणि! यत्र कान्ता॥ २५॥

---

१. 'मत्प्रियाया विना' 'बो.पं.वे.काग्र., 'मत्प्रियाविप्रणा' चा.; 'यत् प्रियायाः प्रणा' ले.मा.।
२. अस्ये त्येव रं.ले.बो.पं.चा.वे.काग्र., अद्ये ति काव्यप्रकाशाद्युद्धरणेषु।
३. 'पाशे' ले.बो.काग्र. 'हस्ते' रं.पं.चा.वे.।
४. 'किं करोत्वेष बर्हीं' रं.पं.चा.वे., 'कं हरेदेष बर्हः 'ले.मा.।
५. बर्ह इति अमरमेदिन्यौ वाङ्मर्याणवश्च। वर्ह इति शब्दकल्पद्रुमः।
६. माणेण ले.मा. माणे बो.पं.वे.काग्र.।
७. खुरको नृत्यविशेषः रं.ले.।
८. दिट्ठी पुट्ठी इत्यपि पाठे।
९. वलन्तिका रागोपाङ्गविशेषः रं.ले.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी प्रिया के न रहने से इसका थोड़ी सी भी हवा में तितर–बितर हो जाने वाला यह अतीव रुचिर कलाप अब अपने जैसा अकेला ही रह गया। यदि उस सुकेशी का रति में छूटा कुसुम लगा केशपाश होता तो किसको लुभा पाता अपना बर्ह लिए यह वही मयूर ।। २२।।

छोड़ूँ। दूसरे की पीड़ा से विमुख है यह। इससे नहीं पूछूँगा। (दो डग चलकर और देखकर)– ओहो जामुन की टहनी पर बैठी है यह कोयल। ग्रीष्म समाप्त हो जाने से इसका नशा और चढ़ गया है। पखेरुओं में यह पण्डित जाति की है। चलूँ इससे पूछूँ। (नेपथ्य में खुरक)

गजराज आकाश में घूम रहा है विद्याधरवन में लीन, दुःख के कारण आँसुओं के उद्गार निकालता, दूर भगाए हृदयानन्द को ।। २३।।

(खुरक के अन्त में चर्चरी।) प्रक्षेप: हेले हेले

हे परभृत! हे मधुर आलाप वाले, हे कान्त, नन्दनवन में स्वच्छंद भ्रमण करती यदि तूने मेरी वह प्रियतमा देखी हो तो, हे परपुष्टे! बतला मुझे ।। २४।।

(इसी को नाचकर वलन्तिका से पास जाकर घुटनों के बल बैठकर)

भवति! **कामीजन तुझे मदनदूती कहते हैं, तू मानभङ्ग में निपुण अमोघ अस्त्र है। या तो उस प्रियतमा को मेरे पास ला दे या मुझे ले चल, हे मिठबोली! जहाँ हो कान्ता ।। २५।।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामकेन[1] *किञ्चिद् वलित्वा आकाशे* किमाह भवती? 'कथं त्वामेवमनुरक्तं विहाय गतेति' *अग्रतोऽवलोक्य* शृणोतु भवति! २६.१

कुपिता, न तु कोपकारणं सकृदप्यात्मगतं स्मराम्यहम् ।
प्रभुता रमणेषु योषितां न हि भावस्खलितान्यपेक्षते ।। २६।।

ससंभ्रममुपविश्य अनन्तरं च जानुभ्यां स्थित्वा **कुपितेति** *पुनः पठित्वा विलोक्य* कथं कथाविच्छेदकारिणी स्वकार्ये एव व्यासक्ता।अथवा[2] २७.१

महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः
प्रणयमगणयित्वा यन्ममापद्गतस्य ।
अधरमिव मदान्धा पातुमेषा प्रवृत्ता
फलमभिनवपाकं राजजम्बूद्रुमस्य ।। २७।।

एवङ्गतेऽपि प्रियेव मे 'मज्जुस्वने'–ति न कोपोऽस्याम्। सुखमास्तां भवती। इतो वयं साधयामस्तावत्। *उत्थाय द्विपदिकया परिक्रम्यावलोक्य च* अये दक्षिणेन वनधारां प्रियाचरणनिक्षेपशंसी नूपुरशब्दः। यावदेनमनुगच्छामि। *परिक्रम्य*

ककुभेन[3] *षडुपभङ्गाः* २८.१

(१) पिअअम–विरह–किलामिअ–वअणओ
(२) अविरल–वाह–जलाउल–णअणओ
(३) दुःसह–दुःख–विसंठुल–गमणओ
(४) पसरिअ–उरुताव–दीविअ–अंगओ
(५) अहिअं दुम्मिअ–माणसओ[4]
(६) काणणे भमइ[5] **गइंदओ ।। २८।।**

(प्रियतमाविरहक्लान्तवदनकः अविरलबाष्पजलाकुलनयनकः।
दुःसहदुःखविसंष्ठुलगमनकः प्रसृतगुरु–ताप–दीप्ताङ्गकः।
अधिकं दूनमानसकः कानने भ्रमति गजेन्द्रकः।।)

अनन्तरे द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य २९.१

---

१. वामको वामपार्श्वस्थितवस्त्ववलोकनः संस्थानविशेषः रं.ले।
२. **'अथवा सुष्ठु खल्विदमुच्यते महदपि०'** ले.।
३. **ककुभो रागविशेषः** रं.ले. **षडुभङ्गाः** षट्त्वावच्छिन्ना अवच्छेदाः।
४. **दरिअं गओ** इति लेञ्जसंस्करणे।
५. **परिब्भमइ** रं.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वामक के साथ कुछ घूमकर आकाश में) क्या कहा तुमने? इस प्रकार अनुरक्त तुमको क्यों छोड़कर चली गई वह?

(आगे देखकर) भवति! सुनें–

हाँ वह कुपित तो थी। परन्तु, कोप का एक भी कोई कारण मुझे नहीं याद पड़ रहा। बात यह है कि नारियों की पुरुषों पर प्रभुता रहती ही है, वे भावगत स्खलन देखकर ही कुपित हों ऐसा नहीं, वे यूँ भी कुपित हो सकती हैं ॥ २६॥

(हड़बड़ी में बैठकर फिर घुटनों के बल होकर 'कुपिता' (२६) पढ़कर देखता है उठकर) यह देखो कैसे कथाविच्छेद कर अपने ही कार्य में लग गई। अथवा –

'दूसरे का बड़ा दुःख भी शीतल होता है' यह ठीक ही कहा जाता है, इसीलिए तो इसने आपत्ति में पड़े मेरी याचना को अनसुनी कर रायजामुन के तुरन्त पके फल का, उसके अधर के समान पान करना शुरू कर दिया ॥ २७॥

ऐसा करने पर भी इस पर कोप नहीं करूँगा मैं 'मेरी प्रिया के समान है यह मञ्जुस्वना' इसलिए। सुख से बैठो तुम। हम जाते हैं यहाँ से। खैर। (उठकर दो डग घूमकर और देखकर) अये! वनधारा के दाहिने प्रिया के चरणनिक्षेप का सूचक नूपुर शब्द। चलूँ इसकी ओर। (घूमकर)

(ककुभ के साथ छः उपभंग) –

१. प्रियतमा विरहक्लान्त–वदन,
२. अविरलबाष्पजल–से आकुलनयन,
३. दुस्सह दुःख से अटपटे पैर रखता,
४. फैलती भारी तपन से दीप्त अङ्गों वाला,
५. अधिक म्लान मन का,
६. कानन में घूम रहा है गजेन्द्र ॥ २८॥

(अनन्तर दो डग रखकर दिशाओं को देखकर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिअकरिणीविच्छेइअओ गुरुसोआणलदीविअओ ।
बाहजलाउललोअणओ करिवर भमइ समाउलओ ।।२९।।

(प्रियकरिणीविच्छेदितकः गुरुशोकानलदीप्तकः।
बाष्प–जलाकुल–लोचनकः करिवरो भ्रमति समाकुलः।।)

सकरुणम् हा धिक् कष्टम् – ३०.१

मेघश्यामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसा ।
कूजितं राजहंसेन नेदं नूपुरशिञ्जितम् ।। ३०।।

इति पठित्वा उत्थाय च भवतु। यावदेते मानसोत्सुकाः पतत्रिणः सरसोऽस्मान्नोत्पतन्ति तावदेतेभ्यः प्रियाप्रवृत्तिरवगमयितव्या।

वलन्तिकया उपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा भो भो जलविहङ्गमराज! ३१.१

पश्चात् सरः प्रतिगमिष्यसि मानसं त्वं
पाथेयमुत्सृज बिसं ग्रहणाय भूयः ।
मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या
स्वार्थात् सतां प्रियतरा [1]प्रणयिक्रियैव ।। ३१।।

पथोन्मुखो विलोकयति। मानसोत्सुकेन मया न लक्षितेत्येवं वचनमाह।

उपविश्य चर्चरी ३२.१

रे रे हंसा किं गोइज्जइ गय्यनुसारे मइं लक्खिज्जइ ।
कइ पइ सिक्खिउ ए गइलालस सा पइ दिट्ठी जघणभरालस ।। ३२।।

(रे! रे! हंस किं गोपाय्यते गत्यनुसारेण मया लक्ष्यते।
केन तव शिक्षिता एषा गतिः लालसा सा त्वया दृष्टा जघनभरालसा।।)

यदि हंस! गता न ते नतभ्रूः सरसो रोधसि दृक्पथं प्रिया मे ।
मदखेलपदं कथं नु तस्याः सकलं चोर गतं त्वया गृहीतम् ।। ३३ ।।

नर्त्तित्वोत्थायाञ्जलिं बद्ध्वा ३४.१

---

१. 'प्रणयिक्रियैव।। ३१।। (पथोन्मुखो विलोकयति) मानसोत्सुकेन मया न लक्षितेत्येवं वचनमाह' रं; 'प्रणयिक्रियैव।। ३१।। तिर्यगवलोक्य अये यथोन्मुखमालोकयति तथा व्यक्तं सोत्सुकमानसा मया दृष्टे०' ले.मा., व्यक्तं प्रवासोत्सुक०० मया न दृष्टे० बो.; 'यैव।।३१।। यथोन्मुखो विलोकयति मानसोत्सुकेन मया न लक्षितेत्येवं वचनमाह' पं.चा.वे.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियकरिणी से विच्छेदित, गुरु शोकानल से दीपित, बाष्पजल से आकुल नेत्र वाला करिवर घूम रहा है समाकुल हुआ ॥ २९॥

(करुणा के साथ) बड़े दुःख की बात है –

मेघ से दिशाओं को काली देख मानस के लिए उत्सुक चित्त राजहंसों का कूजन है यह, नूपुरशब्द नहीं ॥ ३०॥

(यह पढ़कर और उठकर) भवतु! मानस के उत्सुक ये पक्षी उड़ न जाएँ तभी तक इनसे प्रिया की खबर पूछ लूँ।

(वलन्तिका से पास जाकर घुटने टेककर) भो भो जलविहंगमराज!

मानस सर के लिए तुम बाद में प्रस्थान करना, बिस का जो पाथेय चोंच में दबा रखा है उसे छोड़ दे, फिर ग्रहण कर लेना, पहले मेरा उद्धार कर प्रिया की सुध देकर। सत्पुरुषों के लिए याचक का काम करना अपने काम से अधिक प्रिय होता है ॥ ३१॥

(मार्ग की ओर ही देखता है) – 'मेरा मन मानस के लिए उत्सुक था, मैंने उसे नहीं देखा' – ऐसा कह रहा है यह।

(बैठकर चर्चरी)

रे रे हंस! क्यों छिपा रहे हो? गति में उसका अनुसरण मुझे बतलाता है। तूने यदि जघन के भार से अलसगति उसको नहीं देखा तो किसने तुझे शिक्षा दी इस अलसगति की ॥ ३२॥

हे हंस! यदि तालाब के तट पर तुझे मेरी प्रिया दिखाई न दी तो उसकी मदमाती क्रीडापूर्ण गति, हे चोर! पूरी की पूरी कैसे चुरा ली तूने ॥ ३३॥

(नाचकर उठता और अञ्जलि बाँधकर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस! प्रयच्छ मे कान्तां गतिस्त्वस्यास्त्वया हृता ।
विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ।। ३४।।

द्विपदिकया निरूप्य विहस्य

एष चोरानुशासी राजेत्यतिभयादुत्पतितः। यावदन्यमवकाशमवगाहिष्ये।

द्विपदिकया परिक्रम्यावलोक्य च

अये! प्रियासहायश्चक्रवाकस्तिष्ठति। यावदेनं गच्छामि।

अनन्तरे [1]कुटिलिकानाट्यम् ३५.१

मम्मर–रणिअ–मणोहरए

[2]मन्द/मल्ल–घटीनाट्यम् ३५.२

कुसुमिअतरुवरपल्लवए

[3]चर्चरी ३५.३

दइआविरहुम्माइअओ काणणे भमइ गइंदओ।। ३५।।

(मर्मररणितमनोहरके कुसुमिततरुवरपल्लवके ।
दयिताविरहोन्मादितः कानने भ्रमति गजेन्द्रकः।।)

[4]द्विलयान्ते चर्चरी ३६.१

गोराअणाकुङ्कुमवण्णा चक्क भणतु मां ।
महइ सर कीलंती घणिआ ण दिट्ठि पइं ।। ३६।।

(गोरोचनाकुङ्कुमवर्ण! चक्र! भणतु माम्
म–मधु/सरसि क्रीडन्ती गृहिणी न दृष्टा त्वया।।)

चर्चरिकयोपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा ३७.१

रथाङ्गनामन्! संत्यक्तो रथाङ्गश्रोणिबिम्बया ।
अयं त्वां पृच्छति रथी मनोरथशतैर्वृतः ।। ३७ ।।

अयं 'क' 'क' इत्याह। न खलु विदितोऽहमस्य? ३८.१

सूर्याचन्द्रमसौ यस्य मातामहपितामहौ ।
स्वयं वृतः पतिर्द्वाभ्यामुर्वश्या च भुवा च यः ।। ३८।।

---

१. नाट्यभेदाविमाविति रं. ले.
२. नाट्यभेदाविमाविति रं. ले.।
३. गीतिभेद एष इति रं.।
४. लयो नृत्यगीतवाद्यानां साम्यमिति रं.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस! दे दे मेरी प्रिया को, गति तो उसकी तेरे पास है। एक अंश भी दिख जाए तो समूची देय वस्तु का अभियोग लग जाता है ।। ३४।।

(दो डग भर कर देख और हँस कर) ओहो, यह तो उड़ गया यह सोचकर कि 'यह राजा है चोरों को दण्ड देता है।' चलो हटो यहाँ से। कहीं दूसरी जगह चलूँ। (दो डग चलकर, घूमकर और देखकर)

अये! प्रिया के साथ यह चक्रवाक बैठा है। चलूँ इसके पास चलूँ।

(अनन्तर कुटिलिकानाट्य) –

मर्मरध्वनि से मनोहर

(मन्द/मल्ल घटी नाट्य) –

कुसुमित तरुवर के पल्लव पर

(चर्चरी) –

प्रियाविरहोन्मादित कानन में घूम रहा है गजेन्द्र ।। ३५।।

(द्विलयान्तर चर्चरी) –

गोरोचना के समान कुङ्कुम वर्ण वाले हे चक्रवाक! बोल, बता मुझे मेरे साथ मधुसर में खेलती मेरी घरवाली दिखाई तो नहीं पड़ी ?।। ३६।।

(चर्चरिका से पास पहुँचकर घुटने के बल बैठकर)

हे रथाङ्गनामन्! रथाङ्ग जैसी श्रोणी सी उस सुन्दरी से बिछुड़ा मनोरथशतों से भरा यह रथी तुमसे पूछ रहा है –।। ३७।।

यह कए, कए ऐसा बोल रहा है। इसे मैं विदित नहीं हूँ। सुन–

सूर्य और चन्द्र हैं जिसके मातामह और पितामह और दो का स्वयंवृत पति हूँ – उर्वशी का और पृथिवी का ।। ३८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथं तूष्णीमेवास्ते? भवतु। उपालभे तावदेनम्। *जानुभ्यां स्थित्वा* तद् युक्तं तावदात्मानुमानेन वर्त्तितुम्। कुतः – ३९.१

सरसि नलिनीपत्रेणापि [१]त्वमावृतविग्रहां
ननु सहचरीं दूरे मत्वा विरौषि समुत्सुकः ।
इति च भवतो जायास्नेहात् पृथक्स्थितिभीरुता[२]
मयि च विधुरे भावः [३]कान्ताप्रवृत्तिपराङ्मुखः।। ३९ ।।

उपविश्य सर्वथा मदीयानां भाग्यविपर्य्ययाणामयं प्रभावः।
यावदन्यमवकाशमवगाहिष्ये[४] *पदान्तरे स्थित्वा* भवतु न तावत् गच्छामि।
द्विपदिकया परिक्रम्यावलोक्य च अये – ४०.१

इदं रुणद्धि मां पद्ममन्तः–क्वणितषट्पदम् ।
मया दष्टाधरं तस्याः ससीत्कारमिवाननम् ।। ४० ।।

भवतु, इतो गतस्य मेऽनुशयो मा भूदित्यस्मिन्नपि कमलसेविनि मधुकरे प्रणयं करिष्ये। *अस्यान्तरे नेपथ्ये अर्द्धचतुरस्रकः*[५] ४१.१

एक्कक्कमवड्ढिअपेम्मरसे गुरुअरे ।
सरे हंसजुआणओ कीलइ कामरसे ।। ४१ ।।

(एकक्रमवर्धितगुरुतरप्रेमरसेन गुरुतरेण।
सरसि हंसयुवा क्रीडति कामरसेन।।)

[६]*चतुरस्रकेणोपसृत्य* ४२.१

मधुकर! मदिराक्ष्याः शंस तस्याः प्रवृत्तिं *विभाव्य*
वरतनुरथवाऽसौ नैव दृष्टा त्वया मे ।
यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वासगन्धं
तव रतिरभविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन् ।। ४२ ।।

---

१. **त्वया** ले.।
२. भीरुतान् इति भीरुता इत्यस्य कृतेऽपमुद्रणा लेञ्जे।
३. **कान्ता** पं.चा.वे.काग्र., **कोऽयं** रं.ले.बो.मा.।
४. **'हिष्ये। पदान्तरे स्थित्वा। भवतु। न तावद् गच्छामि'। द्विप'** पं.चा.वे. **'हिष्य। द्विपदिकया परिक्रम्यावलोक्य च। अये इदं'** रं.ले.बो.काग्र.।
५. नन्द्यावर्तापरनामा संस्थानविशेषः। स एव वारद्वयं कृतत्वादर्धद्विचतुरस्र इति रं.।
६. चतुरस्रकं संस्थानविशेष इति रं.ले.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह चुप्पी साधे क्यों बैठा है? चलूँ दूँ इसे उलाहना। (घुटनों पर बैठ) तो ठीक ही है अपने अनुसार व्यवहार करना। क्योंकि –

तालाब में सहचरी यदि नलिनी पत्र से भी छिपा लेती है अपने शरीर को तो, हे चक्रवाक! तू उसे दूर समझकर चिल्लाहट मँचा देता है, इतना उत्सुक हो जाता है। यह तो है तेरी प्रियाविरह, भीरुता और मैं जब इस दुःख में पड़ा तो मुझे अपनी कान्ता की खबर/सूचना देने की भी तुझे इच्छा नहीं? ॥३९॥

(बैठकर) सर्वथा यह प्रभाव है मेरे भाग्य के फेर का। चलूँ अन्य किसी स्थान पर खोजूँ। (एक डग भरकर) अथवा, नहीं जाऊँगा।

(द्विपदिका से (दो डग भर) घूमकर और देखकर) अये! –

यह कमलपुष्प, जिसके भीतर भौंरा गूँज रहा है, मुझे खींच रहा है – यह तो मेरी प्रिया के चेहरे सा ही है जिससे अधर काट लेने पर सीत्कार निकलता है॥४०॥

जो हो। यहाँ से बिना पूछे चले जाने पर पश्चात्ताप न हो इसलिए इस भ्रमर से ही प्रणय (याचना) करूँ। (इसी बीच नेपथ्य में अर्धचतुरस्रक)।

एक ही गति से प्रेम बढ़ाए हुए विशाल सरोवर में कामविवश युवा हंस की जोड़ी क्रीड़ा कर रही है ॥४१॥

(चतुरस्रक से पास जाकर) –

मधुकर! उस मदिराक्षी की खबर दे, (ध्यान कर) **अथवा वह सुन्दरी तूने देखी नहीं है। यदि तुझे उसके मुख की सुगन्ध मिल जाती तो तेरी इस कमल में कैसे होती प्रवृत्ति ॥४२॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधयामस्तावत्। *द्विपदिकया परिक्रम्यावलोक्य च* अये! एष नीपस्कन्धनिषण्णहस्तः करिणीसहायो नागराजस्तिष्ठति। अस्मात् प्रियोदन्तमुपलप्स्ये। यावदेनमुपसर्पामि।

नेपथ्ये [१]*कुटिलिकानाट्यम्* ४३.१

करिणिविरहसंदाविअओ

[२]*मन्द/मल्लघटीनाट्यम्* ४३.२

काणणे गंधुद्धअमहुअरु ॥ ४३ ॥

(करिणीविरहसंतापितकः कानने गन्धोद्धतमधुकरः॥)

विलोक्य अथवा न त्वरा कार्या। न तावदयमुपसर्पणकालः। ४४.१

अयमचिरोद्गतपल्लवमुपनीतं प्रियकरेणुहस्तेन ।
अभिलषतु तावदासवसुरभिरसं सल्लकीभङ्गम् ॥ ४४ ॥

क्षणमात्रं स्थित्वा [३]*स्थानकेनावलोक्य* अये, कृताह्निकः संवृत्तः। भवतु समीपमस्य गत्वा पृच्छामि। *चर्चरी* ४५.१

हउ पइ पुच्छिमि अक्खहि गअवरु ललिअपहारे णासिअतरुवरु ।
दूरविणिज्जिअ–ससहरुकंती दिट्ठि पिआ पई छम्मुह जंती ॥ ४५॥

(अहं त्वां पृच्छामि आचक्ष्व गजवर! ललितप्रहारेण नाशिततरुवर!।
दूर–विनिर्जित–शशधर–कान्तिः दृष्टा प्रिया त्वया सम्मुखं यान्ती॥)

पदद्वयं पुरत उपसृत्य ४६.१

मदकल! युवतिशशिकला गजयूथप! यूथिकाशबलकेशी ।
स्थिरयौवना स्थिता ते दूरालोके सुखालोका ॥ ४६ ॥

बृंहितमिव समाकर्ण्य सहर्षम् अहह! अनेन भवतः स्निग्धमन्द्रेण बृंहितेन[४] साधर्म्याच्च त्वयि मे भूयसी प्रीतिः – ४७.१

---

१. कुलिका इत्यपि पाठ। नाट्यविशेष इति रं.।

२. **मन्दघटी** ले.। नाट्यविशेष इति तस्यार्थः रं.। द्र० ३६.१

३. स्थानकम् आलापविशेष इति रं.।

४. **'गर्जितेन प्रियोपलम्भशंसिना समाश्वासितोऽस्मि। साध०** रं.ले.बो.मा.चा.वे.काग्र.।
बृंहितेन साधर्म्याच्च इति वयम्। साधर्म्यस्यैवाग्रे प्रतिपादितत्वात्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलूँ यहाँ से। (द्विपदिका द्वारा घूमकर और देखकर) – अये! यह खड़ा है गजेन्द्र। इसके साथ है करिणी और सूँढ रखे है यह कदम्ब की डाल पर। इससे प्राप्त करूँ प्रिया का उदन्त (समाचार)। चलूँ इसके पास।

(नेपथ्य में (कुटिलिकानाट्य) (मन्दघटी नाट्य)

करिणी विरह से संतप्त कानन में गन्ध से उद्धत है मधुकर ॥४३॥

(देखकर) अथवा जल्दी नहीं करनी चाहिए। यह इसके पास पहुँचने का अवसर नहीं।

यह आसव सुरभिरस वाले सल्लकी के (ताजे निकले पत्ते वाले) **खंड का रस ले ले, जो इसकी प्रिया ने इसे प्रेम से उपहृत किया है अपने हाथों से ॥४४॥**

(क्षणभर रुककर और स्थानक के द्वारा देखकर) अये, इसने आह्निक कर लिया। अब चलूँ इसके पास और पूछूँ। (चर्चरी)

हे गजवर! मैं तुझसे पूछ रहा हूँ, बतला। तूने ललित प्रहार से उखाड़ रखे हैं बड़े–बड़े वृक्ष। चन्द्र की कान्ति को बहुत दूर तक जीत चुकी मेरी प्रिया सामने से जाती हुई तूने देखी है? ॥४५॥

(दो पैर आगे सरक कर)

हे मदकल! वह युवतियों में शशिकला है, गजयूथप! वह जूडे में यूथिका लगाए रहती है, दूर से देखने पर भी अच्छी लगने वाली वह स्थिरयौवना, कहीं दिखी क्या तुझे? ॥४६॥

(चिंघाड़ सी सुनकर खुशी के साथ) अहह तेरे इस स्निग्ध और मन्द्र चिंघाड़ने से और मेरे साथ साधर्म्य से तुझ पर मेरी बहुत बड़ी प्रीति है–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामाहुः पृथिवीभृतामधिपतिं नागाधिराजो भवा–
नव्युच्छिन्नपृथुप्रवृत्ति भवतो दानं ममाप्यर्थिषु ।
स्त्रीरत्नेषु ममोर्वशी प्रियतमा यूथे तवेयं वशा
सर्व्व मामनु ते, प्रियाविरहजां त्वं तु व्यथां माऽनुभूः ।।४७।।

सुखमास्तां भवान्। साधयामस्तावत्। *द्विपदिकया परिक्रम्य पार्श्वतो दृष्टिं दत्वा* अये! अयमसौ सुरभिकन्दरो नाम विशेषरमणीयः सानुमानालोक्यते। प्रियश्चायमप्सरसाम्। अपि नाम सुतनुरस्योपत्यकायामुपलभ्येत? *परिक्रम्यावलोक्य च।* कथमन्धकारः? भवतु। विद्युत्प्रकाशेनावलोकयामि। हन्त, मदीयैर्दुरितपरिणामैर्मेघोऽपि शतह्रदाशून्यः संवृत्तः। तथापि शिलोच्चयमेनम–पृष्ट्वा न निवर्त्तिष्ये। ४८.१

नेपथ्ये खण्डकः[1] ४८.२

पसरिअखरखुर–दारिअमेइणि वणगहणे अविचल्लु ।
परिसप्पइ पेच्छह लीणो णिअकज्जुस्सुअ कोल्लु ।।४८।।

(प्रसृतखर–खुर–दारितमेदिनिर्वनगहनेऽविचलम् ।
परिसर्पति पश्यत लीनो निजकार्योत्सुकः कोलः ।।)

अपि वनान्तरमल्पकुचान्तरा श्रयति पर्व्वतपर्व्वसु संनता ।
इदमनङ्गपरिग्रहमङ्गना पृथुनितम्ब! नितम्बवती तव ।।४९।।

कथं तूष्णीमेवास्ते। शङ्के विप्रकर्षान्न शृणोति। भवतु समीपमस्य गत्वा पुनरेनं पृच्छामि। *नेपथ्ये चर्चरी* ५०.१

फलिहसिलाअलणिम्मलणिज्झरु बहुविहकुसुमें विरइअसेहरु।
किण्णरमहुरुग्गीअमणोहरु देक्खावहि महु पिअअम महिअरु।।५०।।

(स्फटिकशिलातलनिर्मलनिर्झर! बहुविधकुसुमैर्विरचितशेखर!
किन्नरमधुरोद्गीतमनोहर! दर्शय मम प्रियतमां महीधर ।।)

चर्चरिकयाऽनयोपसृत्याञ्जलिं बद्ध्वा ५१.१

---

१. 'पश्यता मया रतिरुपलभ्यते कुतः' रं.ले.बो.मा.वे., 'पश्यतो मे रमते मनः' पं. चा. काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे कहते हैं राजाओं का राजा (सम्राट्), **तुम हो गजों के राजा, तेरा दान** (मद जल) **निरन्तर और मोटी धारा में बहता है और मैं भी याचकों के लिए ऐसा ही हूँ** (दान देने में), **स्त्रीरत्नों में मेरी प्रियतमा है उर्वशी और तेरी यह हथिनी। इस प्रकार तेरा सब मुझ जैसा ही है। परन्तु तुमको कभी भी न सहनी पड़े प्रियाविरह की व्यथा ॥४७॥**

सुखी रहो तुम। हम जाते हैं। (द्विपदिका से घूमकर और बगल में दृष्टि डालकर) अये! यह सुरभिकन्दर नामक विशेष रमणीय पर्वत दिखाई दे रहा है। यह अप्सराओं को प्रिय भी है। संभव है वह सुतनु इसकी तराई में दिखाई दे जाए? (घूमकर और देखकर)। अरे यहाँ तो अँधेरा ही अँधेरा है? कोई बात नहीं। बिजली के प्रकाश से उसे देखूँ। हन्त, मेरे पापों के फलस्वरूप मेघ भी बिजली की चमक से शून्य हो गया। तब भी इस पर्वत से पूछे बिना नहीं लौटूँगा।

(नेपथ्य में खण्डक)

फैले तीक्ष्ण खुरों से मेदिनी को फाड़कर गहन वन में लीन अपने कार्य के प्रति उत्सुक यह अविचल सुअर आगे ही बढ़ रहा है, देखो तो ॥४८॥

हे पृथुनितम्ब पर्वत! क्या तुम्हारे इस वन में वह नितम्बवती कहीं आ टिकी है। उसकी पहँचान है 'उसके अन्योन्य से चिपके स्तन, उनके बीच का अन्तर अल्प है, उन्हीं के भार से झुकी हुई, अंग अंग में अनिन्द्य सुन्दरी (अङ्गना) ॥४९॥

क्यों! यह चुप ही खड़ा है। कदाचित् दूरी के कारण इसे सुनाई नहीं दे रहा है। कोई बात नहीं पास जाकर इससे फिर पूछूँ। (नेपथ्य में चर्चरी)

हे महीधर! तुम बड़े अच्छे हो। स्फटिक शिलातलों से फूट रहे हैं तुझमें निर्मल निर्झर, अनेक प्रकार के पुष्पों से बना रखा है तुमने शेखर, किन्नर की मीठी वाणी के गीत भी तुझसे सुनाई दे रहे हैं, मेरी प्रियतमा को दिखा दो ॥५०॥

(इस चर्चरी के साथ पास जाकर और अंजलि बाँधकर) —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वक्षितिभृतां नाथ! दृष्टा सर्व्वाङ्गसुन्दरी ।
रामा रम्ये वनान्तेऽस्मिन् मया विरहिता त्वया ।। ५१ ।।

नेपथ्ये तदेवाकर्ण्य सहर्षम्। ५२.१

कथं यथाक्रमं दृष्टेत्याह। तर्हि क्व मे प्रियतमा? ५२.२

पुनरेव तदेव शृणोति विभाव्य च ५२.३

हा धिक्! ममैवायं कन्दरामुखविसर्पी प्रतिशब्दः। ५२.४

मूर्च्छितः पतति। उत्थाय च सविषादम् अहह! श्रान्तोऽस्मि।

अस्यास्तावद् गिरिनद्यास्तीरे स्थितस्तरङ्गवातमासेविष्ये। ५२.५

द्विपदिकया परिक्रम्याऽवलोक्य च ५२.६

इमां नवाम्बुकलुषामपि स्रोतोवहां पश्यतो मे रमते मनः? कुतः— ५२.७

तरङ्गभ्रूभङ्गा क्षुभितविहगश्रेणिरशना
विकर्षन्ती फेनं वसनमिव संरम्भशिथिलम् ।
यथाऽऽ[1]विद्धं याति स्खलितमभिसंधाय बहुशो
नदीभावेनेयं ध्रुवमसहना सा परिणता ।। ५२ ।।

भवतु, प्रसादयामि तावदेनाम्। *अञ्जलिं बद्ध्वा नेपथ्ये कुटिलिका* ५३.१

पसीअ पिअअम सुंदरि ए णए खुहिआकरुणविहंगम ए णए।
सुरसरितीरसमुस्सुअ ए णए अलिउलरअझंकारिअ ए णए ।। ५३ ।।

(प्रसीद प्रियतमे! सुन्दरि! ए नदि! क्षुभिताकरुणविहङ्गमे! ए नदि!।
सुरसरितीरसमुत्सुके! ए नदि! अलिकुलझाङ्कारिते! ए नदि! ।।)

तेना। कुटिलिकान्तरे चर्चरी ५४.१

पुव्वदिसापवणाहअ—कल्लोलुग्गअ—बाहओ
मेहंगे णच्चइ सललिअं जलणिहि—णाहओ।
हंस—रहंगम[2]—संख—कुङ्कुम—कराभरणु
हरि[3]—मअराउल—कसण—कमल—कआवरणु।
वेला—सलिलुल्वेल्लिअ—हत्थ—दिण्ण—तालु
ओत्थइ दसदिस रुधेविणु णवमेहआलु।। ५४।।

---

१. **'जिह्मं'** ले.मा., **'विद्धं'** रं.बो.पं.चा.वे.काग्र.। आविद्धमुद्धतमिति यावत्।

२. रहंगमो रथाङ्गः चक्रवाकः। सोऽपि पिङ्गवर्ण एव। **'विहङ्गम'** वे. काग्र.; **कुंकुमसंख** वे.।

३. हरिः सुवर्णवर्णः। तथा च रघुवंशे 'शतैस्तमक्ष्णामनिमेषवृत्तिभिर्हरिं विदित्वा हरिभिश्च वाजिभिः' इति ३.४३ पद्ये। शाकुन्तले च 'अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भिर्हरिभिरि'ति। करीति पाठे करी जलहस्ती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम तो ठहरे सभी पर्वतों के नाथ। कहीं भी दिखाई दी मुझसे विछुड़ी मेरी सर्वाङ्गसुन्दरी रामा इस वनप्रदेश में? ।।५१।।

(नेपथ्य में यही प्रतिध्वनि सुनकर खुशी के साथ) —

देखो तो, इसने यथाक्रम मेरी ही वाणी दुहरा दी और अन्त में कह दिया 'दृष्टा'। तो कहाँ है मेरी प्रियतमा?

(फिर से वही सुनकर, समझकर) हा धिक्! यह तो मेरा ही शब्द है कन्दरामुख से प्रतिध्वनित हो रहा।

(मूर्छित होकर गिरता है। उठकर विषाद के साथ) अहह, थक गया हूँ। इस गिरिनदी के तट पर बैठकर इसकी लहरों से शीतल हवा लूँ।

(द्विपदिका से घूमकर और देखकर।) यह नदी नए जल से मटमैला पानी लिए है, परन्तु इसे देखने से मेरा मन रम रहा है।

मेरी वही असहना उर्वशी निश्चित ही नदी बन गई है। इसमें तरङ्ग हैं भ्रूभङ्ग, डरे पक्षियों की पंक्ति है (बजती) **रशना** (करधनी), **फेन को खींच रही है यह गुस्से में गिरे वस्त्र के समान। इसकी गति भी आविद्ध** (उद्धत) **है, फिसल फिसल कर आगे बढ़ती ।।५२।।**

चलूँ मनाऊँ इसे। (अञ्जलि बाँधकर) (नेपथ्य में कुटिलिका)

क्षुभित अकरुण विहंगम वाली, गंगा के तट को पाने की इच्छुक, भ्रमरसमूह की गूँज से झंकृत, हे प्रियतमे! सुन्दरि ए नदि! प्रसन्न हो।।५३।।

(तेंना। कुटिलिका के बीच चर्चरी)

मेघाङ्गों से सुललित नृत्य कर रहा है जलनिधिनाथ जिसमें उसकी उठी भुजाएँ बन रही हैं पूर्व दिशा के पवन से आहत ऊँची उठी तरंगें। हंस और चक्रवाक से किए शङ्ख और कुङ्कुम के आभरण, हरि और मगर के कृष्ण कमल से ढँका हुआ, वेला पर उद्वेल्लित तरङ्ग रूपी हाथ से थपोड़ी बजाकर, दशों दिशाओं में फैलकर ढँक रहा है नव मेघकाल ।।५४।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पूर्वदिशा—पवनाहत—कल्लोलोद्गतबाहुः
मेघाङ्गैर्नृत्यति सुललितं जलनिधिनाथः।
हंस—रथाङ्ग—शङ्ख—कुङ्कुम—कृताभरणः
हरि—मकराकुल—कृष्णकमल—कृतावरणः।
वेला—सलिलोद्वेल्लित—हस्त—दत्त—तालोऽ—
वस्तृणाति दश दिशो रुद्ध्वा नवमेघकालः ।।५४।।)

चर्चरिकयाऽनयोपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा ५५.१

त्वयि निबद्धरतौ[१] प्रियवादिनि [२]प्रणयभङ्ग—पराङ्मुख—चेतसि[३] ।
कमपराधलवं मयि[४] पश्यसि त्यजसि मानिनि! दासजनं यतः।। ५५।।

विचिन्त्य कथं तूष्णीमास्ते। ५६.१

अथवा परमार्थसरिदेषा, नोर्वशी। न खलूर्वशी पुरूरवसमपहाय समुद्राभिसारिणी भवेत्। भवतु। अनिर्वेदप्राप्याणि श्रेयांसि। यावत् तमेव प्रदेशं गच्छामि यत्र मे नयनयोः सा सुनयना तिरोहिता। *परिक्रम्यावलोक्य च* इमं तावत् प्रियाप्रवृत्तये सारङ्गमासीनमभ्यर्थये। ५६.२

नेपथ्ये [५]*गलितकः* ५६.३

अभिनव—कुसुम—स्तबकित—तरुवरस्य परिसरे
मदकल—कोकिल—कूजित—रव—झङ्कार—मनोहरे ।
नन्दनविपिने निजकरिणी—विरहाऽनलसंतप्तो
विचरति, गजाधिपतिरैरावतनामा ।।५६ ।।

---

१. अत्र लेज्जपाठ एवादरणीयः। स एवात्रादृतः।

२—४. **'रतेः, वादिनः, तसः, मम'** रं.बो.पं.चा.वे;**'रतौ, दिनि, तसि, मयि'** ले.मा.काग्र.। प्रणयपदमत्र निध्येयम्। याचना ह्यत्रास्यार्थः यथा मेघदूते 'धूमज्योति' ०इति पद्यस्य चतुर्थे पादे 'कामार्ता हि प्रणयकृपणा' इति। 'प्रकृतिकृपणा' इति तु लेखकस्य प्रमादः, पूर्वपद्यगतस्य 'जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषमि'—ति पदस्योद्बोधाद्। तृतीयपादगतस्य ययाच इति याचनार्थस्य प्रणयमात्रेणैव तु समर्थयितुं शक्यत्वम्। तथा चामरसिंहः 'प्रणयास्त्वमी विस्रंभयाच्चाप्रेमाणः' इति।

५. 'गलितको नाट्यविशेष इति' रं.ले.। आर्यामिमां पादटिप्पणे निक्षिप्य वेलण्करोऽनुष्टुभमिमां मूले पठति — अस्यान्तिकमायान्तीं शिशुना स्तनपायिना।
अनन्यदृष्टिस्तामेव मृगीं रुद्धां निरीक्षते ।।
आर्यायामेव मूलत्वं पश्यन्ति रं.ले.बो.मा.पं.चा.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इस चर्चरी के पास पहुँचकर घुटने टेककर)—

केवल तुझमें ही बँधी रति वाले, मीठा संभाषण करते कभी भी किसी भी प्रार्थना को तोड़ने से पराङ्मुख चित्त वाले, मुझ में कौन सा अपराधलव देख रहा है कि हे मानिनि! दासजन को छोड़ रही है तू ॥५५॥

(सोचकर) क्यों है चुप?

यह सचमुच की नदी है, उर्वशी नहीं है। उर्वशी पुरूरवा को छोड़कर समुद्र के लिए अभिसार नहीं कर सकती। जो हो। श्रेय अनिर्वेद प्राप्य हुआ करते हैं। चलूँ उसी स्थान पर चलूँ जहाँ तिरोहित हुई है मेरे नयनों से वह सुनयना। (घूमकर और देखकर) यह बैठा है सारङ्ग इससे लूँ प्रिया की खबर।

(नेपथ्य में गलितक)

अभिनव नए पुष्पगुच्छों से लदे वृक्ष के पास, मदकल कोकिल की कूक से मनोहर नन्दनवन में यह ऐरावत नामक जो गजराज है यह अपनी करिणी के विरहानल से संतप्त होकर घूम रहा है॥५६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानुभ्यां स्थित्वा ५७.१

कृष्णशारच्छविर्योऽसौ दृश्यते काननश्रिया।
नवसस्पावलोकाय[1] कटाक्ष इव पातितः॥ ५७ ॥

विलोक्य किं नु खलु मामवधीरयन्निव अन्यतोमुखः संवृत्तः। *दृष्ट्वा* ५८.१

अस्यान्तिकमायान्ती शिशुना स्तनपायिना मृगी रुद्धा ।
तामयमनन्यदृष्टिर् भुग्नग्रीवो विलोकयति ॥ ५८ ॥[2]

नेपथ्ये चर्चरी ५९.१

सुरसुन्दरी जघनरालस पीणुत्तुङ्गघणत्थणी
त्थिरजोव्वणा तणुसरीरि हंसगई ।
गअणुज्जलकाणणे मिअलोअणि भमंते दिट्ठु
पइँ तह विरहसमुद्दंतरे उत्तारहि महु ॥ ५९ ॥

(सुरसुन्दरी जघनभरालसा पीनोतुङ्गघनस्तनी
स्थिरयौवना तनुशरीरा हंसगतिः।
गगनोज्ज्वलकानने मृगलोचना भ्रमन्ती दृष्टा
त्वया तर्हि विरहसमुद्रान्तरादुत्तारय माम्॥)

उपसृत्याञ्जलिं बद्ध्वा हंहो हरिणपते! ६०.१

अपि दृष्टवानसि मम प्रियां वने कथयामि ते तदुपलक्षणं शृणु ।
पृथुलोचना सहचरी यथैव ते सुभगा तवेव खलु सापि वीक्ष्यते ॥ ६० ॥

विलोक्य कथमनादृत्य मद्वचनं कलत्राभिमुखं स्थितः। सर्व्वथा 'परिभवास्पदं विधिविपर्ययः'। यावदन्यमवकाशमवगाहिष्ये।

परिक्रम्यावलोक्य च हन्त दृष्टमुपलक्षणं तस्याः —६१.१

रक्तकदम्बः सोऽयं प्रियया घर्म्मान्तशंसि [3]यस्यैकम् ।
कुसुममसमग्रकेसरविषममपि कृतं शिखाभरणम् ॥ ६१ ॥

---

१. वनशोभा पं.चा.वे., मेघकाला चारुदेवशास्त्रिदत्तायां पादटिप्पन्याम्। नवशस्पा रं.ले.बो.मा.काग्र.।

२. अस्या/अयमन्तिकमायान्ती शिशुना स्तनपायिना ।
अनन्यदृष्टिस्तामेव मृगीं रुद्धां निरीक्षते ॥

३. यस्येदम् रं ले बो मा वेल; 'यस्यैकम्' पं.चा.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घुटनों के बल बैठकर)

यह हरिण चितकबरा है लगता है वनश्री ने नई दूर्वा को देखने के लिए कटाक्ष जैसा फेंका है ॥५७॥

(देखकर) क्यों यह मेरी अवज्ञा सी कर दूसरी ओर मुँह करके बैठ गया।

(देखकर) – **इसके पास आ रही मृगी को यह ग्रीवा टेढ़ी कर देख रहा है। इसकी दृष्टि अन्यत्र नहीं है। मृगी को देखो यह स्तनपायी शिशु रोक रहा है ॥५८॥**

(नेपथ्य में चर्चरी)

सुरसुन्दरी जघनभर से अलसाई पीन उत्तुंग घन स्तनवाली स्थिरयौवना क्षीण शरीर वाली हंसगति गमन से उज्ज्वल कानन में घूमती कहीं तूने उस मृगलोचना को देखा हो? मेरा इस विरहसमुद्र से उद्धार कर दे ॥५९॥

(पास पहुँचकर अंजलि बाँधकर)

हंहो हरिणपते!

क्या देखी है तूने मेरी प्रिया वन में? मैं उसकी पहँचान बतलाता हूँ, सुन, बड़ी बड़ी आँखों की है वह जैसी तेरी यह सहचरी। वह सुभगा भी तेरी सुभगा सी ही दिखाई देती है ॥६०॥

(देखकर) क्यों! यह मेरा वचन ठुकरा कर अपनी प्यारी की ही ओर झुक गया। सर्वथा, भाग्य का पलटाव परिभव का ही होता है स्थान। चलूँ दूसरे किसी स्थान में देखूँ।

(घूमकर और देखकर) हन्त मिल गयी उसकी पहँचान।

यह ठहरा वह रक्तकदम्ब जिसका [१] ग्रीष्मान्तसूचक एक पुष्प, जिसमें सभी रेशे उभरे नहीं थे इसलिए जो ऊबड़खाबड़ था, अपना शिखाभरण बनाया था॥६१॥

---

१. ग्रीष्मान्त प्रतीक है विरहान्त का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवतु, सुखमास्तां भवान्। *परिक्रम्यावलोक्य च*[१]

किं नु खलु एतच्छिलाभेदगतं नितान्तरक्तमवलोक्यते? ६२.१

प्रभालेपी नायं हरिहतगजस्यामिषलवः
स्फुलिङ्गो वा नाग्नेर्गहनमभिवृष्टं यत इदम् ।

विभाव्य ६२.२

अये रक्ताशोकप्रसवसमरागो मणिरयं
यमुद्धर्तुं पूषा व्यवसित इवालम्बितकरः ॥ ६२ ॥

अहो अयं हरति मे मनः। भवतु। उपाददामि तावदेनम्।

ग्रहणं नाटयति। नेपथ्ये ६३.१

पणइणि–बद्धासाइअओ बाहाउलणिअणअणओ ।
गइवइ गहणे दुहिअओ भमइ किलामिअवअणओ ॥ ६३ ॥

(प्रणयिनीबद्धाशो बाष्पाकुलनिजनयनः ।
गजपतिर्गहने दुःखितः भ्रमति क्लामितवचनः/वदनः॥)

ग्रहणं नाटयति द्विपदिकयोपसृत्य गृहीत्वात्मगतम्। अथवा ६४.१

मन्दारपुष्पैरधिवासितायां यस्याः शिखायामयमर्पणीयः ।
सैव प्रिया संप्रति दुर्लभा मे किमेनमस्त्रोपहतं करोमि ॥ ६४॥

उत्सृजति। आकाशे वत्स! गृह्यतां गृह्यताम्। ६५.१

सङ्गमनीयो मणिरिह शैलसुताचरणरागयोनिरयम् ।
आवहति धार्यमाणः संगममचिरात् प्रियजनेन ॥ ६५ ॥

राजा *कर्णं दत्वा।* को नु खलु मामेवमनुशास्ति? *अवलोक्य।* अये! अनुकम्पते मां कश्चिन्मृगचारी मुनिर्भगवान्। भगवन्! अनुगृहीतोऽस्म्यहमुपदेशाद् भवतः। *मणिमादाय* हंहो सङ्गमनीय! ६६.१

---

१. अत्र दृश्यतामस्माकं कालिदासग्रन्थावली–२, ५०५ पृष्ठे पादटिप्पणी। अत्र पद्यान्तरम् –

रक्ताशोक कृशोदरी क्व नु गता त्यक्त्वानुरक्तं जनं
नो दृष्टेति वृथैव चालयसि किं वातावधूतं शिरः ।
उत्कण्ठाषटमानषट्पदषटासंघट्टदष्टच्छद–
स्तत्पादाहतिमन्तरेण भवतः पुष्पोद्गमोऽयं कुतः ॥ ३४॥

इति कालिदासग्रन्थावल्यां गृहीतमपि पद्यमत्र, त्यजामः, मोरा इति वक्ष्यमाणे संग्रहेऽस्यासंग्रहात्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक है, सुख से बैठे रहो तुम। (घूमकर और देखकर)

चट्टानों की सन्धि में यह क्या दिखाई दे रहा है अत्यधिक लाल लाल? **इससे निकल रही हैं किरणें, तो यह सिंह के द्वारा मारे गए गज के मांस का टुकड़ा तो हो नहीं सकता, यह अग्नि का स्फुलिङ्ग भी नहीं हो सकता, क्योंकि इसपर काफी, वर्षा हुई है।**

(ठीक से देखकर)

ओहो! यह रक्ताशोक के पुष्प जैसा लालमणि है, जिसे उठाने हेतु सूर्य किरणों के हाथ पसारे सा है ॥६२॥

अहो यह मेरा मन आकृष्ट कर रहा है। चलूँ उठा लूँ मैं इसे।

(उठाने का अभिनय करता है) (नेपथ्य में)

प्रणयिनी में आस लगाए, आँसुओं से आँखे डबडबाए, गजपति गहन वन में दुःखित हो रहा है घूम, इसका वचन/वदन क्लान्त है ॥६३॥

(द्विपदिका से पास जा उठाने का अभिनय करता है। उठाकर आत्मगत)

अथवा — **जिसकी मन्दारपुष्पों से अधिवासित शिखा में इसे लगाना चाहिए था वही प्रिया इस समय मेरे लिए दुर्लभ है, तो इसे आँसुओं से क्यों करूँ दूषित ॥६४॥**

(छोड़ने लगता है) (आकाशवाणी) वत्स! उठा ले उठा ले।

यह है यहाँ संगमनीय मणि, यह पार्वती जी के चरणराग से उत्पन्न है। इसे जो धारण करता है उसका उसके प्रिय से संगम हो जाता है। देर नहीं लगती ॥६५॥

राजा (सुनकर) कौन कर रहा है मेरा इस प्रकार अनुशासन? (देखकर) अये! कोई मृगचारी मुनि मेरे ऊपर अनुकम्पा कर रहा है। भगवन्! अनुगृहीत हूँ आपके इस उपदेश से मैं।

(मणि को उठाकर) हंहो, संगमनीय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तया वियुक्तस्य निमग्नमध्यया भविष्यसि त्वं यदि सङ्गमाय मे ।
ततः करिष्यामि भवन्तमात्मनः शिखामणिं बालमिवेन्दुमीश्वरः ।। ६६ ।।

परिक्रम्यावलोक्य च अये किं नु खलु कुसुमरहितामपि लतामिमां पश्यतो मे मनो रमते? अथवा स्थाने मनो रमते। इयं हि – ६७.१

तन्वी मेघजलार्द्रपल्लवतया धौताधरेवाश्रुभिः
शून्येवाभरणैः स्वकालविरहाद् विश्रान्तपुष्पोद्गमा ।
चिन्तामौनमिवास्थिता मधुलिहां शब्दैर्विना लक्ष्यते
चण्डी मामवधूय पादपतितं जातानुतापेव सा ।। ६७।।

यावदस्यां प्रियानुकारिण्यां परिष्वङ्गप्रणयी भवामि।

नेपथ्ये चर्चरी ६८.१

लए! पेक्ख विणु हिअएँ भमामि, जइ विहिजोए पुणु तहि पाविमि ।
ता रण्णे विणु करमि णिभंती, पुणु णहि मेल्लुइँ ताह कअन्ती ।। ६८।।

(लते प्रेक्षस्व विना हृदयेन भ्रमामि, यदि विधियोगेन पुनस्तां प्राप्नोमि।
तदारण्ये न विना करोमि निर्भ्रान्तिं, पुनर्न प्रवेशयामि तां कृतान्तम्।।)

।। ३ ।।

उपसृत्य लतामालिङ्गति। ततः प्रविशति तत्स्थानमाक्रम्यैव उर्वशी ६९.१

राजा *निमीलिताक्ष एव स्पर्शं रूपयित्वा* अये! उर्वशीगात्रसंस्पर्शादिव निर्वृतं मे शरीरम्। तथापि नास्ति विश्वासः। कुतः – ६९ .२

समर्थये यत् प्रथमं प्रियां प्रति क्षणेन तन्मे परिवर्त्ततेऽन्यथा ।
अतो विनिद्रे सहसा विलोचने करोमि न स्पर्शविभावितप्रियः ।। ६९।।

शनैश्चक्षुषी उन्मील्य कथं सत्यमेव प्रियतमा? *मूर्च्छितः पतति।* ७०.१

उर्वशी *बाष्पं विसृज्य* [1]समस्ससदु समस्ससदु महाराओ।
समाश्वसितु समाश्वसितु महाराजः। ७०.२

राजा *संज्ञां लब्ध्वा* प्रिये! अद्य जीवितम्। ७०.३

त्वद्वियोगोद्भवे तन्वि! मया तमसि मज्जता ।
दिष्ट्या प्रत्युपलब्धासि चेतनेव गतासुना ।। ७०।।

---

१. जेदु जेदु पं.चा., समस्ससदु समस्ससदु रं.ले.बो.मा.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहरे मध्य की उस सुन्दरी से वियुक्त मुझे उससे मिला देगा तो मैं तुझे अपनी शिखामणि बनाऊँगा बालचन्द्र को जैसे भगवान् शंकर बनाते हैं ॥६६॥

(घूमकर और देखकर) अये! यह लता कुसुमरहित होते हुए भी दिखाई देते ही मेरा मन रमा रही है। अथवा, मन ठीक ही रम रहा है। यह तो –

पैरों पर गिरे मुझे छोड़कर हटी वही (उर्वशी) **चण्डी लग रही है मुझे। तन्वी तो है ही यह, इसके पत्ते मेघजल से भीगे हैं सो लगता है यह आँसुओं से धौताधरा है, फूलने का समय निकल जाने से पुष्परहित यह, लग रही है आभरणों को छोड़ी हुई, भौरों के शब्द नहीं हैं इस पर इसलिए यह चिन्तामौन धारण किए है। अब इसे अनुताप सा हो रहा है ॥६७॥**

चलूँ प्रिया जैसी लग रही इसका आलिङ्गन करूँ।

(नेपथ्य में चर्चरी)

लते! देख बिना हृदय के घूम रहा हूँ मैं। विधियोग से यदि पुनः उसे पा जाऊँ । तो जंगल में उसके बिना नहीं घूँमूँगा। उसे पुनः दुर्दैव को नहीं छूने दूँगा ॥६८॥

॥ ३ ॥

(पास पहुँचकर लता का आलिंगन करता है। उसी स्थान पर प्रकट होती है उर्वशी)

राजा (आँखे बन्द किए ही स्पर्श का अभिनय कर) अये! मेरा शरीर तो वेदनामुक्त हो रहा है, जैसे उर्वशी के स्पर्श से। तब भी विश्वास नहीं, क्योंकि–

प्रिया के विषय में जो मैं पहले सोचता हूँ वह क्षणभर में बदल जाता है, अतः आँखे सहसा नहीं खोलूँगा, कम से कम स्पर्श से तो प्रिया पा रहा हूँ ॥६९॥

(धीरे धीरे आँखे खोलता है) ओहो, यह तो वास्तविक प्रिया है? (मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है)।

उर्वशी (आँसू बहाकर) सम्हलें, सम्हलें महाराज।

राजा (होश में आकर) प्रिये! अब मैं जीवित हुआ।

तेरे वियोग से उत्पन्न अन्धकार में डूब रहे मैंने, भाग्य से, हे तन्वि! प्रत्युपलब्ध कर लिया तुझे, निष्प्राण व्यक्ति में चेतना की नाँई ॥७०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी प्रसीददु महाराओ जं मए कोववसं गदाए एदं अवत्थंदरं पाविदो महाराओ। प्रसीदतु महाराजो यन्मया कोपवशं गतया एतदवस्थान्तरं प्रापितो महाराजः। ७१.१

राजा कल्याणि! न तावदहं प्रसादयितव्यः। त्वद्दर्शनेन प्रसन्नो मे सबाह्यान्तःकरणोऽन्तरात्मा। तत् कथय कथमियन्तं कालमवस्थिता मया विना भवती। ७१.२

चर्चरी ७१.३

मोरा परहुअ हंसु रहंगउ अलि गउ पव्वउ सरिउ कुरंगउ ।
तुज्झह करणे रण्ण भमंते को णहु पुच्छिइउ मई रोअंदे ।। ७१ ।।

(मयूरः परभृता हंसो रथाङ्गः अलिर्गजः पर्वतः सरित्कुरङ्गमः ।
तव कारणेनारण्ये भ्रमता को न खलु पृष्टो मया रुदता।।)

उर्वशी एव्वं अंतःक्करणपच्चक्खीकिदवुत्तंतो महाराओ।
एवमन्तःकरणप्रत्यक्षीकृतवृत्तान्तो महाराजः। ७२.१

राजा प्रिये! अन्तःकरणमिति नावगच्छामि? ७२.२

उर्वशी सुणादु महाराओ। पुरा भअवदा कुमारेण सासिदं कुमारव्वदं गेण्हिअ अकलुसो णाम गंधमादणकच्छोऽज्झासिदो। किदा अ थिदी।
शृणोतु महाराजः। पुरा भगवता कुमारेण शाश्वतं कुमारव्रतं गृहीत्वा अकलुषो नाम गन्धमादनकच्छोऽध्यासितः। कृता च स्थितिः। ७२.३

राजा कीदृशी। ७२.४

उर्वशी जा किल इत्थिआ इमं पदेसं पविसदि सा लदाभावेण परिणमिस्सदि। त्ति किदो अं अअं सावांतो गोरीचरणराअसंभवं मणिं विणा तदो ण मुच्चिस्सदि' त्ति। तदो अहं गुरुसावसंमूढहिअआ देवदासमअं विसुमरिउ अगहिदाणुणआ इत्थिआजणपरिहरणिज्जं कुमारवणं पविट्ठा। पवेसाणन्दरं एव्व अ काणणोवंतवत्तिवासंदीलदाभाएण परिणदं मे रूवं।
या किल स्त्री इमं प्रदेशं प्रविशति सा लताभावेन परिणंस्यतीति। कृतश्चायं शापान्तः गौरिचरणरागसम्भवं मणिं विना ततो न मोक्ष्यत इति। ततोऽहं गुरुशापसंमूढहृदया देवतासमयं विस्मृत्य अगृहीतानुनया स्त्रीजनपरिहरणीयं कुमारवनं प्रविष्टा। प्रवेशानन्तरमेव च काननोपान्तवर्तिवासन्तीलताभावेन परिणतं मे रूपम्। ७२.५

राजा प्रिये! सर्व्वमुपपन्नम्। ७२.६

रतिखेदसुप्तमपि मां शयने या मन्यसे प्रवासगतम्।
सा त्वं कथं सहेथाः प्रिये! मदीयं चिरवियोगम्।। ७२।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी महाराज! प्रसन्न हों जो मैंने कोपवश आपको इस दशा में पहुँचा दिया।

राजा कल्याणि! मुझे प्रसन्न करने की आवश्यकता नहीं है। तेरे दर्शन से ही मेरा भीतरी और बाहरी अन्तःकरणों के साथ प्रसन्न हो गया अन्तरात्मा। यह बतला कि इतने समय तक मेरे बिना तू कैसे रही।

(चर्चरी)

मोर, कोयल, हंस, चक्रवाक, भौंरा, गज, पर्वत, सरित, हिरन'—तेरे लिए जंगल में घूमते घूमते किस किस से नहीं पूछा ।।७१।।

उर्वशी महाराज! मैं आपका पूरा वृत्तान्त अन्तःकरण से प्रत्यक्ष देख रही थी।

राजा प्रिये! अन्तःकरण का अर्थ समझ नहीं पाया।

उर्वशी सुनिए महाराज! भगवान् कार्त्तिकेय के द्वारा शाश्वत कुमारव्रत ग्रहण कर अकलुष नामक गन्धमादनकच्छ पर रहना शुरू किया गया। और नियम बना दिया —

राजा कैसा?

उर्वशी जो भी स्त्री इस स्थान में प्रवेश करेगी वह लता बन जाएगी। इस शाप का अन्त भी निश्चित कर दिया 'गौरी चरणराग से निर्मित मणि के बिना उससे मुक्त नहीं होगी।' तो मैं गुरु(भरत) के शाप से अचेत होकर देवशक्ति को भुला बैठी और आपके अनुनय का उल्लंघन कर मैं स्त्रियों के द्वारा परिहरणीय कुमारवन में प्रवेश कर गई। प्रवेश होते ही काननोपान्त में वासन्ती लता बन गया मेरा शरीर।

राजा प्रिये! सब समझ में आ गया।

अरे रतिखेद से शयन पर ही सोए मुझे जो प्रवास में गया मानती थी, वही प्रिये! तुम कैसे सह सकती हो मेरा चिरवियोग।।७२ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं तद् यथाकथितं त्वत्सङ्गमनिमित्तं पुनरुपलब्धम्। एतत्प्रभावादासादिता त्वमस्माभिः। *मणिं दर्शयति* ७३.१

उर्वशी अंमो संगमणीओ अअं मणी। अदो क्खु महाराएण आलिङ्गिदमेत्त जेव्व पकिदित्थम्हि संवुत्ता। अहो! सङ्गमनीयोऽयं मणिः। अतः खलु महाराजेनालिङ्गितमात्रैव प्रकृतिस्थास्मि संवृत्ता। ७३.२

राजा *मणिं ललाटे निवेश्य* ७३.३

स्फुरता विच्छुरितमिदं रागेण मणेर्ललाटनिहितस्य ।
श्रियमुद्वहति मुखं ते बालातपरक्तकमलस्य ।। ७३।।

उर्वशी प्रियंवद! महंतो क्खु कालो तुए पइट्ठाणदो णिग्गदस्स। कदाइँ असूइस्संदि मं पकिदीओ। ता एहि णिवुत्तम्ह। प्रियम्वद! महान् खलु कालस्तव प्रतिष्ठानान्निर्गतस्य। कदाचिदसूयिष्यन्ति मह्यं प्रकृतयः। तदेहि निवर्तावहे। ७४.१

राजा यदाह भवती। *उत्तिष्ठतः* ७४.२

उर्वशी अध कधं महाराओ गंतुं इच्छति? अथ कथं महाराजो गन्तुं इच्छति? ७४.३

राजा ७४.४

अचिरप्रभाविलसितैः पताकिना सुरकार्मुकाभिनवचित्रशोभिना ।
गमितेन खेलगमने! विमानतां नय मां नवेन वसतिं पयोमुचा ।। ७४।।

निष्क्रान्तौ ७५.१

खण्डधारया नेपथ्ये चर्चरी ७५.२

पाविअ–सहअरि–संगअओ पुलअ–प्पसाहिअ–अंगअओ ।
सेच्छापत्त–विमाणओ विहरइ हंस–जुवाणओ ।। ७५।।

(प्राप्तसहचरीसङ्गमः पुलकप्रसाधिताङ्गः ।
स्वेच्छाप्राप्तविमानो विहरति हंसयुवा।।)

इति महाकविकालिदासकृतौ विक्रमोर्वशीये त्रोटके गन्धमादनविप्रलम्भो नाम चतुर्थोऽङ्कः ।। ४।।[१] ७६.१

---

१. इत्थमयं पर्यपूरि विक्रमोर्वशीयतुरीयाङ्कपरिष्कारो महामहोपाध्यायसनातनकविरेवाप्रसादकृतोऽद्य १८.१०.२००१ दिवसे अमेरिकायाम् एक्टनग्रामे।।
सोऽयं रेवाप्रसादेन परिश्रम्य प्रसाधितः जयत्वङ्कस्तुरीयोऽस्य त्रोटकस्याद्भुताद्भुतः ।
एक्टने वसता सीमासर्वज्ञावसथे सुखं सनातनेन संशोध्य स्वहस्तोऽयं विनिर्मितः ।।
अद्य संगणकयन्त्रसाधिता त्रोटकस्य ननु तस्य या तनुः।
तामिमां द्रुपदजास्मृतौ हहा कल्पयामि सलिलेन नेत्रयोः।।
सा गता दिवमिमं विहाय मामत्र हन्त वसुधातलेऽधुना।
शून्यशून्यवपुषि प्रमीलया सन्निकृष्टतमयाभ्युपस्थितम्।। २८जनवरी,२००३ वाराणसी
।। ॐ तत् सत् ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है वह, जैसा तुमने कहा, तुम्हारे संगम में निमित्त प्राप्त हुई मणि। इसके प्रभाव से तुम्हें मैं पुनः प्राप्त कर सका हूँ। (मणि दिखलाता है)

उर्वशी यह है वह, संगमनीय मणि। इसलिए महाराज के आलिंगन करते ही मैं अपने रूप में आ गई।

राजा (मणि को ललाट में लगा कर)

प्रिये! ललाट में निहित इस स्फुरित हो रही मणि से तुम्हारा मुख अरुणोदय के लाल आतप से युक्त कमल की शोभा से युक्त लग रहा है ॥७३॥

उर्वशी प्रियंवद! मेरे साथ प्रतिष्ठान से चले बहुत समय बीत गया। कदाचित् प्रकृति/अमात्यजन मुझसे असूया कर रहे होंगे। तो आइए लौटें।

राजा जो कहा तुमने। (दोनों खड़े होते हैं)

उर्वशी अच्छा महाराज कैसे चलना चाहेंगे?

राजा **हे खेलगमने! बिजली की चमक से पताकायुक्त इन्द्रधनुष के नवीन चित्रों से सुशोभित, नए मेघ को वायुयान बनाकर ले चल मुझे अपने निवास ॥७४॥**

(दोनों निकल जाते हैं)

(खण्डधारा के साथ नेपथ्य में चर्चरी)

सहचरी का संगम प्राप्त कर चुका, रोमाञ्च से अलंकृत शरीर वाला, स्वेच्छा से प्राप्त विमान से विहार कर रहा है हंस युवा ॥७५॥

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति विक्रमोर्वशीय नामक त्रोटक में 'गन्धमादनविप्रलम्भ' नामक चतुर्थ अंक पूरा हुआ ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चमाङ्कारम्भकः प्रवेशकः[१] ।। १.१

।। १ ।।

अथ प्रविशति हृष्टो विदूषकः १.२

विदूषकः ही ही भो! दिट्ठिया चिरस्स कालस्स उव्वसीसहाओ णंदणवणप्पमुहेसु देवारण्णेसु विहरिअ पडिणिउत्तो पिअवअस्सो। पविसिअ णअरं दाणिं ससक्कारोवआरेहिं पकिदीहिं अणुरज्जंतो रज्जं करेदि। असंताणत्तणं वज्जिअ ण किं पि से सोअणीअं। अज्ज तिधिविसेसो त्ति भअवदीणं गंगाजमुणाणं संगमे देवीहिं सह किदाहिसेओ संपदं उवआरिअं पविट्ठो। ता जाव तत्तभोदो अलंकरिअमाणस्स अणुलेवणमले अग्गभागी होमि।

परिक्रामति। ही ही भोः दिष्ट्या चिरस्य कालस्योर्वशीसहायो नन्दनवनप्रमुखेषु देवारण्येषु विहृत्य प्रतिनिवृत्तः प्रियवयस्यः प्रविश्य नगरमिदानीं ससत्कारोपचाराभिः प्रकृतिभिरनुरज्यमानो राज्यं करोति। असन्तानत्वं वर्जयित्वा न किमप्यस्य शोचनीयम्। अद्य तिथिविशेष इति भगवत्योर्गङ्गायमुनयोः सङ्गमे देवीभिः सह कृताभिषेकः साम्प्रतमुपकार्यां प्रविष्टः। तद् यावत् तत्रभवतोऽलंक्रियमाणस्यानुलेपमाल्येऽग्रभागी भवामि। (परिक्रामति) १.३

नेपथ्ये १.४

हद्धी हद्धी। दुऊलुत्तरछदे तालवेंटाधारे णिक्खिविअ णीअमाणो अच्छरा–विलासवदीए मोलिरअणो मणी आमिससंकिणा गिद्धेण आक्खित्तो।

हा धिक्! हा धिक्! दूकूलोत्तरच्छदे तालवृन्ताधारे निक्षिप्य नीयमानो अप्सरोविलासवत्या मौलिरत्नं मणिरामिषशङ्किना गृध्रेणाक्षिप्तः। १.५

विदूषकः *कर्णं दत्वा* अच्चाहिदं अच्चाहिदं। परं बहुमदो क्खु सो वअस्सस्स संगमणीओ णाम चूडामणी। अदो क्खु असमत्तणेवच्छो एव्व तत्रभवं आसणादो उट्ठिअ इदो आअच्छदि। जाव णं उपसप्पामि।

अत्याहितमत्याहितम्। परमबहुमतः खलु स वयस्यस्य सङ्गमनीयो नाम चूडामणिः। अतः खल्वसमाप्त–नेपथ्य एव तत्रभवानासनादुत्थाय इत आगच्छति। यावदेनमुपसर्पामि। १.६

।। प्रवेशकः।। १.७

---

१ रं.बो.पं. अङ्कस्यारम्भेऽङ्कादिशीर्षकं न ददति। **'अथ पञ्चमोऽङ्कः'** इति ले.मा.चा.वेल। उपरि या योजना सास्माभिरुपकल्पिता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चमाङ्क प्रवेशक ।।

।। १ ।।

(प्रवेश करता है प्रसन्न विदूषक)

विदूषक ही ही भो:! सौभाग्य से प्रियवयस्य लम्बी अवधि के बाद उर्वशी के साथ नन्दनवन आदि देवारण्यों में विहार करके लौटे हैं। नगर में प्रवेश किया तो पकृति ने सत्कार और उपचारों से उनका अनुरञ्जन किया। वे अब प्रेम से राज्य कर रहे हैं। केवल एक कमी का खेद है, वह है सन्तान की। आज एक विशिष्ट तिथि है इसलिए भगवती गंगा और यमुना के संगम में देवियों के साथ स्नान कर इस समय उपकार्या (टैण्ट) में गए हैं। तो अलंकृत किए जा रहे महाराजा साहब के अनुलेपन माल्य में मैं अग्रभागी बनूँ। (घूमता है)।

(नेपथ्य में)

हा धिक्, हा धिक्! दुकूल के दुपट्टे में तालवृन्त पर निक्षिप्त करके ले जाया जा रहा अप्सरा विलासवती का मौलिरत्न मांस समझ कर गिद्ध ने उठा लिया।

विदूषक (सुनकर) बहुत बुरा हुआ, बहुत ही बुरा हुआ। वह प्रियवयस्य की बहुत ही अधिक प्यारी चूडामणि थी। इसलिए नेपथ्य पूरा किए बिना ही तत्रभवान् आसन से उठकर इधर ही आ रहे हैं। चलूँ इनके पास पहुँचूँ।।

।। प्रवेशक समाप्त।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ पञ्चमोऽङ्कः ।। १.८

।।२।।

ततः प्रविशति राजा सूतश्च, कञ्चुकिवेधकौ परिजनश्च १.९

राजा वेधक वेधक! १.१०

आत्मनो वधमाहर्त्ता क्वासौ विहगतस्करः ।
येन तत्प्रथमं चौर्यं गोप्तुरेव गृहे कृतम् ।।१।।

किरातः एसो एसो क्खु मुहकोडिलग्गहेमसुत्तेण मणिणा आलिहंतो विअ आआसं परिब्भमदि। एष एष खलु मुखकोटिलग्नहेमसूत्रेण मणिना आलिखन्निव आकाशं परिभ्रमति। २.१

राजा पश्याम्येनम्। २.२

असौ मुखालम्बितहेमसूत्रं बिभ्रन्मणिं मण्डलचारशीघ्रः ।
अलातचक्रप्रतिमं विहङ्गस्तद्रागलेखावलयं तनोति ।। २ ।।

किन्नु खल्वत्र कर्त्तव्यम्? ३.१

विदूषकः *उपेत्य* भो! अलं एत्थ घिणाए। एस अवराही सासणिज्जो।
भोः! अलमत्र घृणया। एषोऽपराधी शासनीयः। ३.२

राजा सम्यगाह भवान्। धनुर्धनुस्तावत्। ३.३

यवनी एसा आणइस्सं। *निष्क्रान्ता* । एषा आनेष्यामि। (निष्क्रान्ता)। ३.४

राजा वयस्य! न दृश्यते स विहगाधमः। क्व नु खलु गतः? ३.५

विदूषकः भो इदो दक्षिणंतेण स सउणिहदासो। भो! इतो दक्षिणान्तेन स शकुनिहताशः। ३.६

राजा *परिवृत्यावलोक्य च* दृष्ट इदानीम्— ३.७

प्रभापल्लवितेनासौ करोति मणिना खगः।
अशोकस्तबकेनेव दिङ्मुखस्यावतंसकम्।। ३ ।।

यवनी *प्रविश्य चापहस्ता* भट्टा! एदं हत्थावावसहिदं सरासणं।
भर्तः! एतद् हस्तावापसहितं शरासनम्। ४.१

राजा किमिदानीं शरासनेन बाणपथमतीतः स क्रव्यभोजनः। तथाहि — ४.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चम अङ्क ।।

।। २।।

(प्रवेश करते हैं राजा, सूत, कञ्चुकी, वेधक और परिजन)

राजा — वेधक वेधक!

अपने वध का आहरण करने वाला वह विहग दस्यु कहाँ है, जिसने सबसे बड़ी वह चोरी/लूट रक्षक के ही घर में की।। १।।

किरात — यह है, यह है। यह मणि का हेमसूत्र मुखाग्र में पकड़े हुए आकाश को चित्रित करता हुआ सा घूम रहा है।

राजा — देख रहा हूँ इसे।

यह मणि का हेमसूत्र चोंच में दबाए हुए तेजी के साथ गोल चक्कर काट रहा है। मणि की रागलेखा का बन गया है घेरा, जो लग रहा है अलातचक्र जैसा ।। २।।

इस स्थिति में क्या किया जाए?

विदूषक — (पास पहुँचकर) इस पर दया मत कीजिए! यह अपराधी है। इसको दण्ड मिलना चाहिए।

राजा — आपने ठीक कहा। तो धनुष, धनुष।

यवनी — यह लाई (निकल जाती है)।

राजा — वयस्य! वह विहगाधम दिखाई नहीं पड़ रहा है। कहाँ निकल गया होगा?

विदूषक — इधर दक्षिण में है वह अभागा पक्षी।

राजा — (घूमकर और देखकर) देख लिया इसे।

यह पक्षी दिशा के मुख को प्रभापल्लवित मणि से अशोकस्तबक का अवतंस (कर्णाभूषण) **सा पहना रहा है ।। ३।।**

यवनी — (हाथ में चाप लिए प्रवेश करती है।) स्वामिन्! यह है हस्तावाप सहित धनुष।

राजा — अब धनुष से क्या। बाण पथ से परे हो गया अब वह मांसभोजी। क्योंकि –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभाति मणिविशेषो दूरमिदानीं पतत्रिणा नीतः ।
नक्तमिव लोहिताङ्गः परुषघनच्छेदसंपृक्तः ॥ ४ ॥

कञ्चुकिनं विलोक्य आर्य लातव्य! ५.१

कञ्चुकी आज्ञापयतु देवः ५.२

राजा मद्वचनादुच्यन्तां नागरकाः सायं निवासवृक्षाश्रयी विचीयतां स विहग–दस्युरिति। ५.३

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रान्तः* ५.४

विदूषकः भो! उअविसदु भवं संपदं। कहिं गदो सो रअणकुभीलओ भवदो सासणादो मुंचिस्सदि। भोः! उपविशतु भवान् साम्प्रतं । क्व गतः स रत्नकुम्भीलको भवतः शासनान्मोक्ष्यते। ५.५

राजा *विदूषकेण सहोपविश्य* वयस्य वयस्य! ५.६

रत्नमिति[1] न मे तस्मिन् मणौ [2]प्रयासो विहङ्गमाक्षिप्ते।
प्रियया तेनास्मि सखे! सङ्गमनीयेन सङ्गमितः ॥ ५ ॥

॥ ३ ॥

ततः प्रविशति सशरं मणिमादाय कञ्चुकी ६.१

कञ्चुकी जयतु[3] जयतु देवः। *शरं[4] दर्शयन्* ६.२

अनेन निर्भिन्नतनुः स वध्यो रोषेण ते मार्गणतां गतेन।
[5]प्राप्यापराधोचितमन्तमभ्रात् समौलिरत्नः पतितः पतत्री॥ ६ ॥

सर्वे विस्मयं रूपयन्ति। ७.१

कञ्चुकी अद्भिः प्रक्षालितोऽयं मणिः कस्मै प्रदीयताम्? ७.२

राजा वेधक! गच्छ, अग्निशुद्धमेनं कृत्वा पेटकं प्रवेशय। ७.३

वेधकः जं भट्टा आणवेदि! *मणिमादाय निष्क्रान्तः।* यद् भर्ता आज्ञापयति । / ७.४

---

१. **स्मार इव** ले.मा., **रत्नमिति** रं.बो.चा.वे.काग्र.।
२. **प्रियत्वं** पं चा.वे.काग्र. , **प्रयासः** रं.ले.मा.। **प्रयत्नमिति** बो.। **प्रयत्न** इति तु युज्यते वक्तुम्।
३. **जयति जयति** रं.ले.बो.मा., **जयतु जयतु** पं.चा.वे.काग्र.
४. रङ्गनिर्देश एषोऽस्माभिरयोजि।
५. **प्राप्ता** रं.बो.मा., **प्राप्या** पं.चा.वे.काग्र. **मार्ष्टापराधः** सहसा ले.; **०मन्तमभ्रादिति** वयम्। **०मन्तरिक्षादिति** त्वन्ये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पक्षी इस मणि को दूर ले गया। वहाँ यह ऐसा लग रहा है जैसे रात को घने मेघों से घिरा मङ्गल ग्रह लगता है ॥४॥

(कञ्चुकी को देखकर) आर्य लातव्य!

कञ्चुकी आज्ञा दीजिए देव!

राजा मेरे शब्दों में सभी नगरवासियों से कह दो– सायंकाल जब वह पक्षी अपने निवास वृक्ष पर बैठे तो देख लिया जाय, जिससे खोजा जा सके वह दस्यु पक्षी।

कञ्चुकी जैसी आज्ञा महाराज की। (निकल जाता है)

विदूषक भो! अब आप बैठ जाएँ। कहाँ जाकर वह दस्युपक्षी आपके शासन से बच सकेगा।

राजा (विदूषक के साथ बैठकर) वयस्य!

विहङ्गमाक्षिप्त वह मणि मुझे इसलिए प्रिय नहीं है कि वह रत्न है। वह संगमनीय मणि है। उसी ने मुझे प्रिया से मिलाया है ॥५॥

॥ ३ ॥

(प्रवेश करता है शरसहित मणि को लेकर कञ्चुकी)

कञ्चुकी देव की जय हो, जय हो देव की। (बाण दिखलाता हुआ)।

इसी बाण से विंध कर वह पक्षी मणि के साथ आकाश से भूमि पर गिरा। आपका रोष ही बन गया था यह बाण। वह पक्षी वध्य था भी, उसे अपराधोचित दण्ड मिला ॥६॥

(सभी विस्मय का अभिनय करते हैं।)

कञ्चुकी यह मणि जल से धो दिया गया है। किसे दिया जाय यह?

राजा वेधक! जा, इसे अग्निशुद्ध कर पेटी में रख दे।

वेधक जो आज्ञा स्वामी की। (मणि को लेकर चला गया)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा आर्य लातव्य! जानाति भवान् कस्यायं बाण इति? ७.५

कञ्चुकी नामाङ्कितोऽयं दृश्यते। न तु मे वर्णविभावनसहा दृष्टिः। ७.६

राजा तेन हि उपनय शरम्। यावदहं निरूपयामि। ७.७

कञ्चुकी *तथा करोति*। ७.८

राजा *नामाक्षराण्यनुवाच्य विचारयति* । ७.९

कञ्चुकी यावदहं नियोगमशून्यं करोमि। *निष्क्रान्तः।* ७.१०

विदूषकः किं भवं विआरेदि? किं भवान् विचारयति? ७.११

राजा शृणु तावत् प्रहर्त्तुर्नामाक्षराणि। ७.१२

विदूषकः अवहिदो म्हि। अवहितोऽस्मि । ७.१३

राजा श्रूयताम्। *वाचयति* ७.१४

उर्वशीसम्भवस्यायम् [१]ऐलसूनोर्धनुष्मतः।
कुमारस्यायुषो बाणः संहर्त्ता द्विषदायुषाम्।। ७ ।।

विदूषकः *सपरितोषम्* दिट्ठिआ संताणेण वड्ढइ भवं। दिष्ट्या सन्तानेन वर्धते भवान्। ८.१

राजा सखे! कथमेतत्। अन्यत्र नैमिषीय[२]—सत्त्रादवियुक्तोऽहमुर्वश्या। न च मया गर्भव्यक्तिरालक्षिता, कुत एव प्रसूतिः। किन्तु — *स्मृतिं रूपयित्वा* ८.२

आविलपयोधराग्रं लवलीदलपाण्डुराऽऽननच्छायम् ।
तानि दिनानि वपुरभूत् केवलमलसेक्षणं तस्याः ।। ८ ।।

विदूषकः मा भवं सव्वं मानुसीधम्मं दिव्वासु संभावेदु। पहावगूढानि ताणँ चरिदाइ। मा भवान् सर्वं मानुषीधर्मं दिव्यासु संभावयतु। प्रभावगूढानि तासां चरितानि। ९.१

राजा अस्तु तावदेवं यथा भवानाह। पुत्रसंवरणे किमिव कारणं तत्रभवत्याः? ९.२

विदूषकः मा बुड्ढिं मं राआ परिहरिस्सदित्ति। मा वृद्धां मां राजा परिहरिष्यतीति। ९.३

राजा कृतं परिहासेन। चिन्त्यताम्। ९.४

विदूषकः को देवदारहस्साई तक्कइस्सदि? को देवतारहस्यानि तर्कयिष्यति? ९.५

---

१. ऐलस्य पुरूरवसः।

२. निमिषेण पक्ष्मपातेन रहिता अनिमिषी देवी अप्सरोरूपा। **'नैमिषेयसत्त्राद् अभियु'** ले.पं.मा., **०अवियु** बो.चा.वे., **अनिमिषया वियु** रं. **अन्यत्र नैमिषसत्त्रात्** इति पाठान्तरमत्रेति रङ्गनाथः। **अनिमिषीयक्रतुसंद** बो। द्रष्टव्यात्र कालिदासग्रन्थावलीगता पादटिप्पणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा आर्य लातव्य! क्या आप जानते हैं कि किसका है यह बाण?

कञ्चुकी इसमें शायद खुदा हुआ है नाम। पर मेरी दृष्टि वर्ण बाँच नहीं पाती।

राजा तो दो मुझे शर मैं बाँचता हूँ।

कञ्चुकी (वैसा ही करता है।)

राजा (नामाक्षर बाँच कर विचार करने लगता है।)

कञ्चुकी मैं अपना कार्य करूँ। (निकल जाता है)।

विदूषक क्या कर रहे हैं आप विचार?

राजा सुनो प्रहर्त्ता के नामाक्षर।

विदूषक सावधान हूँ।

राजा सुना जाए। (बाँचता है) – **यह बाण कुमार आयु का है जिसकी माता है उर्वशी और पिता ऐल** (पुरूरवा)। **कुमार धनुष्मान् है उसका यह बाण शत्रुओं की आयु का संहार करता है ॥७॥**

विदूषक (परितोष के साथ) बधाई आपको सन्तान प्राप्ति के लिए।

राजा सखे! किन्तु यह संभव कैसे? मैं तो केवल नैमिषीय सत्र में उर्वशी से अलग रहा हूँ। कभी भी उर्वशी में मुझे गर्भ का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया, प्रसूति कैसे? किन्तु (स्मृति का अभिनय कर)

उन कुछ दिनों उस उर्वशी के स्तनाग्र का श्यामवर्ण गहराया दिखाई दिया था, मुख की कान्ति लवली दल सी अधिक सफेद, और आँखें अलसाई दिखाई देती थीं, उसके शरीर पर ॥८॥

विदूषक आप उस दिव्या नारी में मानुषी नारी के सभी लक्षण न खोजें। दिव्यों के चरित उनके प्रभाव से गूढ रहते हैं।

राजा ठीक है, जो तुमने कहा। परन्तु पुत्र को छिपाने में उसका क्या कारण हो सकता है।

विदूषक ऐसा न हो कि मुझे बुढ़िया मानकर राजा छोड़ दें।

राजा परिहास छोड़ो। सोचो।

विदूषक देवताओं के रहस्यों को कौन आँक सकेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रविश्य कञ्चुकी ९.६

कञ्चुकी जयतु जयतु देवः। देव! च्यवनाश्रमात् कुमारं गृहीत्वा संप्राप्ता तापसी देवं द्रष्टुमिच्छति। ९.७

राजा उभयमप्यविलम्बितं प्रवेशय। ९.८

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। ९.९

निर्गत्य चापहस्तेन कुमारेण तापस्या च सह प्रविष्टः ९.१०

॥ ४ ॥

कञ्चुकी इत इतो भगवती। ९.११

सर्वे परिक्रामन्ति। ९.१२

विदूषकः *विलोक्य* किं णु क्खु सो एसो खत्तिकुमारओ जस्स णामंकिदो गिद्धलक्खवेही अद्धणाराओ। तथा बहुदरं भवदो अणुकरोदि।

किं नु खलु स एष क्षत्रियकुमारकः, यस्य नामाङ्कितो गृध्रलक्ष्यवेधी अर्धनाराचः। तथा बहुतरं भवतोऽनुकरोति। ९.१३

राजा स्यादेवम्? अतः खलु – ९.१४

बाष्पायते निपतिता मम दृष्टिरस्मिन्
वात्सल्यबन्धि हृदयं मनसः प्रसादः।
सञ्जात–वेपथुभि–रुज्झित–धैर्य–वृत्ति–
रिच्छामि चैनमदयं परिरब्धुमङ्गैः॥ ९ ॥

कञ्चुकी भगवति! एवं स्थीयताम्। १०.१

तापसीकुमारौ स्थितौ १०.२

राजा भगवति! अभिवादये। १०.३

तापसी महाभाग! सोमवंसवित्थारइत्तओ होहि। *आत्मगतम्* अम्हो अणाचक्खिदो वि विण्णादो जेव्व इमस्स राएसिणो आउसो अ संबंधो। *प्रकाशम्* जाद पणम दे गुरुम्। महाभाग! सोमवंशविस्तारयिता भव। (आत्मगतम्) अहो अनाख्यातोऽपि विज्ञात एवास्य राजर्षेरायुषश्च औरसः सम्बन्धः। (प्रकाशम्) जात! प्रणम ते गुरुम्। १०.४

कुमारः *चापगर्भमञ्जलिं करोति।* १०.५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कञ्चुकी प्रवेश कर)

कञ्चुकी जय हो, जय हो देव की। देव! च्यवनमहर्षि के आश्रम से कुमार को लेकर एक तापसी आई है। आपके दर्शन चाहती है।

राजा दोनों को तुरन्त भेजो।

कञ्चुकी जो आज्ञा देव की।

(निकल जाता है हाथ में चाप लिए कुमार और तापसी के साथ पुनः प्रवेश कर)

॥४॥

कञ्चुकी इधर से इधर से भगवती।

(सब घूमते हैं।)

विदूषक (देखकर) क्या यह कोई क्षत्रिय कुमार है जिसका नाम गिद्धलक्ष्यवेधी अर्धनाराच (अर्धचन्द्राकार बाण) पर अंकित है। तुमसे बहुत अधिक मिलता है यह।

राजा हो सकता है ऐसा ही हो। इसलिए—

इसके दिखते ही मेरी दृष्टि में आँसू आ रहे हैं, हृदय में वात्सल्य उमड़ रहा है, मन में प्रसन्नता जाग रही है। अङ्गों में कम्पन हो रहा है मेरे और अधीर हो रहा हूँ इसको कस के छाती से चिपकाने के लिए॥ ९॥

कञ्चुकी यहीं रुकी रहें भगवती।

(तापसी और कुमार वहीं रुके रहते हैं)

राजा भगवति! प्रणाम।

तापसी महाभाग! सोमवंश के विस्तारयिता बनें। (स्वगत) ओहो, बिना कहे स्पष्ट हो रहा है इस राजर्षि का और इस कुमार का औरस सम्बन्ध। (प्रकाश) जात! प्रणाम करो अपने पिता को।

कुमार (चाप पकड़े पकड़े अञ्जलि बाँधता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा वत्स! आयुष्मान् भव। १०.६

कुमारः *आत्मगतम्* १०.७

यदि हार्दमिदं श्रुत्वा पिता ममायं सुतोऽहमस्येति।
उत्सङ्गवर्धितानां गुरुषु भवेत् कीदृशः स्नेहः॥१०॥

राजा भगवति! किमागमनप्रयोजनम्? ११.१

तापसी सुणादु महाराओ – 'एषो दीहाऊ आऊ जादमेत्तो अव्व उव्वसीए किं वि णिमित्तं अवेक्खिअ मम हत्थे णासीकिदो। जं खत्तिकुमारअस्स जादकम्मादिविहाणं तं से भअवदा चवणेण असेसं अणुचिट्ठिदं गहीदविज्जो धनुव्वेदे अहिविणीदो'।

शृणोतु महाराजः – 'एष दीर्घायुः आयुः जातमात्र एव उर्वश्या किमपि निमित्तमवेक्ष्य मम हस्ते न्यासीकृतः। यत् क्षत्रियकुमारस्य जातकर्मादिविधानं तदस्य भगवता च्यवनेनाशेषमनुष्ठितम्। गृहीतविद्यः धनुर्वेदे चाभिविनीतः।' ११.२

राजा सनाथः खलु संवृत्तः। ११.३

तापसी अज्ज! पुप्फसमिधकुसणिमित्तं इसिकुमारएहिं सह गदेण इमिणा अस्समविरुद्दं आअरिदं।

आर्य! पुष्पसमित्कुशनिमित्तं ऋषिकुमारकैः सह गतेनानेनाश्रमविरुद्धमाचरितम्। ११.४

विदूषकः *सावेगम्* किं विअ? किमिव? ११.५

तापसी गहीदामिसो किल गिद्धो पादवसिहरे णिलीअमाणो अणेण लक्खीकिदो बाणस्स। गृहीतामिषः किल गृधः पादपशिखरे निलीयमानः अनेन लक्ष्यीकृतो बाणस्य। ११.६

विदूषकः *राजानमवलोकयति*। ११.७

राजा ततस्ततः। ११.८

तापसी तदो उवलद्धवुत्तंतेण भअवदा चवणेन अहं समादिट्ठा णिज्जादेहि एदं हत्थण्णासं त्ति। ता इच्छामि उव्वसीं पेक्खिदुं। तत उपलब्धवृत्तान्तेन भगवता च्यवनेनाहं समादिष्टा– निर्यातय एनं हस्तन्यासमिति। तदिच्छामि उर्वशीं प्रेक्षितुम्। ११.९

राजा तेन ह्यासनमनुगृह्णातु भवती। ११.१०

तापसी *परिजनोपनीत आसन उपविशति*। ११.११

राजा आर्य लातव्य! आहूयतामुर्वशी। ११.१२

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रान्तः।* ११.१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा वत्स! आयुष्मन् होओ।

कुमार (स्वगत)

यदि इतना अधिक हृदय का आकर्षण केवल सुनकर कि ये मेरे पिता हैं और मैं इनका पुत्र हूँ, तो गोद में पले शिशुओं का पिता पर कैसा स्नेह होता होगा ॥ १०॥

राजा भगवति! आगमन का प्रयोजन क्या है?

तापसी सुनें महाराज! यह दीर्घायु आयु पैदा होते ही उर्वशी ने किसी भी कारण मेरे हाथ में धरोहर बना दिया था। क्षत्रियकुमार का जातकर्म आदिका जो विधान है वह सब इसका स्वयं महर्षि च्यवन ने कर दिया। विद्याग्रहण भी कर लिया है इसने। धनुर्वेद में इसकी विशेषज्ञता है।

राजा सनाथ हो गया है यह।

तापसी आर्य! यह पुष्प, समिधा और कुश के लिए ऋषिकुमारों के साथ गए इसने आश्रम के विरुद्ध आचरण किया।

विदूषक (उद्वेग के साथ) क्या?

तापसी एक गिद्ध मांसपिण्ड लिए वृक्ष पर छिपने जा रहा था उसे अपने बाण का लक्ष्य बना दिया।

विदूषक (राजा को देखता है।)

राजा तब,

तापसी जब यह खबर च्यवन महर्षि को लगी तो उन्होंने मुझे आज्ञा दी 'लौटा दो तेरे हाथ में रखी इस धरोहर को।' तो चाहती हूँ उर्वशी से मिलना।

राजा तो आप आसन ग्रहण करें ।

तापसी (परिजन के द्वारा लाई आसन पर बैठ जाती हैं।)

राजा आर्य लातव्य! बुला लाओ उर्वशी को।

कञ्चुकी जो आज्ञा महाराज की। (निकल जाता है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *कुमारमवलोक्य* एहि एहि वत्स! ११.१४

सर्व्वाङ्गीणः स्पर्शः सुतस्य किल तेन मामुपगतेन।
आह्लादयस्व तावच्चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव।।११ ।।

तापसी जाद! आणंदेहि पिदरं। जात! आनन्दय पितरम्। १२.१

कुमारः *राजानमुपगम्य पादग्रहणं करोति।* १२.२

राजा *कुमारमालिङ्ग्य पादपीठे चोपवेश्य* वत्स! इतस्तव पितुः प्रियसखं ब्राह्मणमशङ्कितो वन्दस्व। १२.३

विदूषकः किं ति संकिस्सदि? णं अस्समवासपरिचिदो जेव्व साहामिओ।
किमिति शङ्किष्यते? नन्वाश्रमवासपरिचित एव शाखामृगः। १२.४

कुमारः *सस्मितम्।* तात वन्दे। १२.५

विदूषकः सोत्थि भवदो। बड्ढदु भवं। स्वस्ति भवते। वर्धतां भवान्। १२.६

।।५।।

ततः प्रविशत्युर्वशी कञ्चुकी च १२.७

कञ्चुकी इत इतो देवी। १२.८

उर्वशी *कुमारमवलोक्य* को णु क्खु एसो सबाणासणो पादपीठे सअं महाराएण संजमीअमाणसिंहडओ चिट्ठदि? *तापसीं दृष्ट्वा* अम्मो सच्चवदीसूइदो अअं मे पुत्तओ आऊ। महंतो क्खु संवुत्तो। *सहर्षं परिक्रामति* ।
(कुमारमवलोक्य) को नु खल्वेष सबाणासनः पादपीठे स्वयं महाराजेन संयम्यमान–शिखण्डकस्तिष्ठति? (तापसीं दृष्ट्वा) अहो! सत्यवतीसूचितः अयं मे पुत्रक आयुः। महान् खलु संवृत्तः। (सहर्षं परिक्रामति) १२.९

राजा *उर्वशीं दृष्ट्वा* वत्स! १२.१०

इयं ते जननी प्राप्ता त्वदालोकनतत्परा।
स्नेहप्रस्रवनिर्भिन्नमुद्वहन्ती स्तनांशुकम्।।१२ ।।

तापसी जाद! एहि पच्चुग्गच्छ मादरं। *कुमारेण सह उर्वशीमुपसर्पति।*
जात एहि। प्रत्युद्गच्छ मातरम्। १३.१

उर्वशी *तापसीं प्रति* अंब! पादवंदणं करेमि। अम्ब! पादवन्दनं करोमि। १३.२

तापसी वच्छे! भत्तुणो बहुमदा होहि। वत्से! भर्तुर्बहुमता भव। १३.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (कुमार को देखकर) आओ आओ वत्स!

पुत्र का सर्वाङ्गीण स्पर्श आज मुझे प्राप्त हुआ है, इससे कर दे मुझे आह्लादित, चन्द्रकान्तमणि को चन्द्रकिरण की भाँति ॥ ११॥

तापसी जात! पिता हैं ये तेरे। इन्हें दे आनन्द।

कुमार (पिता के पास जाकर चरण छूता है।)

राजा (कुमार का आलिङ्गन कर और पादपीठ पर बैठाकर) वत्स! ये हैं तेरे पिता के प्रियमित्र। ये हैं ब्राह्मण। इनको बिना डरे प्रणाम कर।

विदूषक डरेगा क्यों? आश्रम में शाखामृग (वानर) देखा ही होगा इन्होंने।

कुमार (सस्मित) तात! प्रणाम।

विदूषक तुम्हारा कल्याण हो। बड़े हो जाओ।

॥५॥

(उर्वशी का प्रवेश, साथ में कञ्चुकी भी।)

कञ्चुकी इधर से इधर से देवी।

उर्वशी (कुमार को देखकर) कौन है यह जो धनुष लिए पादपीठ पर बैठा है और स्वयं महाराज इसके बिखरे बाल सँवार रहे हैं। (तापसी को देखकर) अहो! यह है मेरा पुत्र आयु, सत्यवती ने इसी की सूचना दी थी। अरे बड़ा हो गया यह। (प्रसन्न होकर घूमती है)

राजा (उर्वशी को देखकर) वत्स!

यह आई तेरी जन्मदात्री माता। यह तुझे देखने के लिए तत्पर है। इसके आँचलो से दूध की धारा निकल पड़ी है स्नेह के कारण और इसकी ओढ़नी भींग गई है ॥१२॥

तापसी जात। आ माँ की अगवानी कर। (कुमार के साथ उर्वशी के पास पहुँचती है)।

उर्वशी (तापसी के प्रति) अम्ब! चरण छूती हूँ।

तापसी वत्से! पति की प्यारी हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारः (उर्वशीं प्रति) अम्ब! अभिवादये। १३.४

उर्वशी *कुमारमुन्नमितमुखं परिष्वज्य* वच्छ! पिदरं आराधइत्तओ होहि। *राजानमुपेत्य* जेदु जेदु महाराओ। वत्स पितरमाराधयिता भव। (राजानमुपेत्य) जयतु जयतु महाराजः। १३.५

राजा स्वागतं पुत्रवत्यै। इत आस्यताम्। *अर्धासनं ददाति।* १३.६

उर्वशी *उपविशति।* १३.७

सर्वे यथोचितमुपविशन्ति। १३.८

तापसी वच्छे! एसो गहीदविज्जो आऊ संपदं कवअहरो संवुत्तो। ता एदस्स दे भत्तुणो समक्खं णिज्जादिदो हत्थणिक्खेवो। ता विसज्जिदं अत्ताणं इच्छामि। उवरुच्झइ मह अस्समधम्मो।

वत्से! एष गृहीतविद्यः आयुः साम्प्रतं कवचहरः संवृत्तः। तत् एतस्य ते भर्तुः समक्षं निर्यातितो हस्तनिक्षेपः। तद् विसर्जितमात्मानमिच्छामि। उपरुध्यते ममाश्रमधर्मः। १३.९

उर्वशी चिरस्स अज्जं देक्खिअ अहिअदरं अवितिण्हम्हि। ण सक्कुणोमि विसज्जिदुं। अण्णय्यं उण उवरोहिदुं। ता गच्छदु अज्जा पुणो दंसणाअ।

चिरस्यार्यां दृष्ट्वा अधिकतरमवितृष्णास्मि। न शक्नोमि विस्रष्टुम्। अन्याय्यं पुनरुपरोद्धुम्। तद् गच्छत्वार्या पुनर्दर्शनाय। १३.१०

राजा अम्ब! भगवते च्यवनाय मां प्रणिपातय। १३.११

तापसी एवं भोदु। एवं भवतु। १३.१२

कुमारः आर्ये! सत्यं यदि निवर्त्तसे मामप्याश्रमं नेतुमर्हसि। १३.१३

राजा अयि वत्स! उषितं त्वया पूर्वस्मिन्नाश्रमे। द्वितीयमध्यासितुं तव समयः। १३.१४

तापसी जाद! गुरुणो वअणं अणुचिट्ठ। जात! गुरोर्वचनमनुतिष्ठ। १३.१५

कुमारः तेन हि — १३.१६

यः सुप्तवान् मदङ्के शिखण्डकण्डूयनोपलब्धसुखः।
तं मे जातकलापं प्रेषय मणिकण्ठकं शिखिनम्॥१३॥

तापसी *विहस्य* एव्वं करेमि। एवं करोमि। १४.१

उर्वशी भअवदि! पादवंदणं करेमि। भगवति! पादवन्दनं करोमि। १४.२

राजा भगवति! प्रणमामि। १४.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार (उर्वशी के प्रति) मैया प्रणाम।

उर्वशी (मुख उठाए कुमार का आलिंगन कर) वत्स! पिता की आराधना करने वाला बन। (राजा के पास जाकर) जय हो, जय हो महाराज की।

राजा स्वागत पुत्रवती का। इधर बैठा जाए। (आधी आसन देता है)।

उर्वशी (बैठती है।)

(सभी यथोचित बैठ जाते हैं)

तापसी वत्से! यह आयु विद्याग्रहण कर चुका है। अब यह कवच धारण करने योग्य हो गया है। यह जो मेरे हाथ में तुमने धरोहर बनाया था इसे तेरे पति के समक्ष आज लौटा चुकी हूँ। चाहती हूँ कि मुझे छुट्टी मिल जाए। मेरा आश्रम धर्म रुक रहा है।

उर्वशी चिरकाल के बाद आज दर्शन मिले तो जी भरा नहीं। विदाई देना मुझसे संभव नहीं हो पा रहा है। उधर रोकना भी ठीक नहीं, तो जावें अत्रभवती पुनः दर्शन देने हेतु।

राजा अम्ब! भगवान् च्यवन से प्रणाम निवेदन करना।

तापसी ऐसा ही होगा ।

कुमार आर्ये! सचमुच लौट रही है तो मुझे भी आश्रम ले चल।

राजा अयि वत्स! तू रह लिया प्रथम आश्रम में। अब समय है द्वितीय आश्रम में प्रवेश का।

तापसी जात! गुरु के वचन का पालन कर।

कुमार तो फिर–

कलगी सुहलाने से मिले सुख से जो मेरी ही गोद में सो जाता था, उस मणिकण्ठ मोर को मेरे पास भेज देना, जब उसके कलाप निकल आएँ ॥१३॥

तापसी (हँसकर) ऐसा ही करूँगी।

उर्वशी भगवति! चरण छूती हूँ।

राजा भगवति! प्रणाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तापसी सोत्थि भोदु तुम्हाणं। *निष्क्रान्ता* । स्वस्ति भवतु युष्मभ्यम्। (निष्क्रान्ता) १४.४

राजा *उर्वशीं प्रति* कल्याणि! १४.५

अद्याहं पुत्रिणामग्र्यः सत्पुत्रेणामुना तव।
पौलोमीसम्भवेनेव जयन्तेन पुरन्दरः॥१४॥

उर्वशी *स्मृत्वा रोदिति*। १५.१

विदूषकः *विलोक्य सावेगम्* भो! किं णु क्खु संपदं अत्तभोदी एक्कपदे अस्सुमुही संवुत्ता? भोः! किं नु खलु साम्प्रतमत्रभवती एकपदे अश्रुमुखी संवृत्ता। १५.२

राजा *सावेगम्* १५.३

किं सुन्दरि! प्ररुदितासि ममोपनीते वंशस्थितेरधिगमान्महति प्रमोदे ।
पीनस्तनोपरि निपातिभिरानयन्ती मुक्तावलीविरचनां पुनरुक्तिमस्त्रैः॥१५॥

अस्या बाष्पं प्रमार्ष्टि। १६.१

उर्वशी सुणादु महाराओ! पढमं उण पुत्तदंसणसमुत्थेण आणंदेण विसुमिरिदा म्हि। दाणिं महिंदसंकित्तणेण सुमरिदो समओ मह हिअअं आआसेदि।
शृणोतु महाराजः। प्रथमं पुनः पुत्रदर्शन–समुत्थेनानन्देन विस्मृतास्मि। इदानीं महेन्द्रसंकीर्तनेन स्मृतः समयो मम हृदयमायासयति। १६.२

राजा कथ्यतां समयः। १६.३

उर्वशी अहं पुरा महाराअगहीदहिअआ गुरुसावसंमूढा महिंदेण आणत्ता।
अहं पुरा महाराजगृहीतहृदया गुरुशापसंमूढा महेन्द्रेण आज्ञप्ता। १६.४

राजा किमिति। १६.५

उर्वशी जदा सो मे पिअसहो राएसी तुइ समुप्पण्णस्स वंसकरस्स मुहं पेक्खिस्सदि तदा तुए भूओ वि मं समीवं आअंदव्वं त्ति। तदो मए महाराअविओअभीरुदाए जादमेत्तो येव्व विज्जाअमणिमित्तं भअवदो चवणस्स अस्समे एसो पुत्तओ अज्जाए सच्चबदीए हत्थे अप्पआसं णिक्खित्तो। अज्ज पिदुणो आराहणसमत्थो संवुत्तो त्ति कलअंतीए तए णिज्जादिदो एसो मे दीघाऊ आऊ। ता एत्तओ मे महाराएण सह संवासो।
यदा स मे प्रियसखो राजर्षिस्त्वयि समुत्पन्नस्य वंशकरस्य मुखं प्रेक्षिष्यते तदा त्वया भूयोऽपि मम समीपमागन्तव्यमिति। ततो मया महाराजवियोगभीरुतया जातमात्र एव विद्यागमनिमित्तं भगवतश्च्यवनस्याश्रमे एष पुत्रक आर्यायाः सत्यवत्या हस्ते अप्रकाशं निक्षिप्तः। अद्य पितुराराधनसमर्थः संवृत्त इति कलयन्त्या तया निर्यातित एष मे दीर्घायुरायुः। तत् एतावान् मे महाराजेन सह संवासः। १६.६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तापसी आप सबका कल्याण हो। (निकल जाती है)

राजा (उर्वशी के प्रति) कल्याणि!

आज मैं पुत्रवानों में प्रथम हूँ तेरे इस सत्पुत्र से, जैसे पौलोमी (शची) **से उत्पन्न जयन्त से इन्द्र ॥१४॥**

उर्वशी (यादकर के रोती है।)

विदूषक (देखकर आवेग सहित) भोः देखो तो अत्रभवती उर्वशी एकाएक आँसू बहा रही हैं।

राजा (आवेग के साथ) —

हे सुन्दरि! क्यों तुम रोने लगी हो। वह भी तब जब मेरे लिए बहुत बड़ी प्रसन्नता का अवसर आया – मेरे वंश की प्रतिष्ठा इस कुमार की प्राप्ति से। अरे देखो तुम्हारे बड़े बड़े स्तनों पर गिर रही आँसू की बूँदों से दूसरी मुक्तावली बना रही हो तुम ॥१५॥

(आँसू पोंछता है।)

उर्वशी सुनें महाराज! पहले तो पुत्रदर्शन से उत्पन्न आनन्द से याद नहीं आया। अब जब महेन्द्र का नाम लिया तो याद आ गयी सीमा। उसी का क्लेश सता रहा है।

राजा कैसी सीमा?

उर्वशी मैं आप पर हृदय से आसक्त थी। गुरु (भरत) के शाप से मेरा मन अज्ञान में डूबा हुआ था तो महेन्द्र ने आदेश दिया।

राजा क्या!

उर्वशी जब वह मेरा प्रियमित्र राजर्षि तुझसे उत्पन्न वंशकर पुत्र का मुख देख लेगा तब तुझे फिर से मेरे पास आ जाना है। इस महाराज से वियोग के भय से मैंने, उत्पन्न होते ही विद्यागम के निमित्त भगवान् च्यवन के आश्रम में यह पुत्र आर्या सत्यवती के हाथ में छिपे छिपे रख दिया। आज पिता की आराधना में समर्थ देख उसने इसे पहुँचा दिया यह दीर्घायु आयु मेरे पास। तो इतना ही था मेरा महाराज के साथ संवास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वे विषादं नाटयन्ति। १६.७

राजा *मोहमुपगच्छति।* १६.८

विदूषकः अब्बम्हणिअं अब्बम्हणिअं। अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्। १६.९

कञ्चुकी समाश्वसितु समाश्वसितु महाराजः। १६.१०

राजा *समाश्वस्य सनिःश्वसितम्* अहो सुखप्रत्यर्थिता दैवस्य। १६.११

आश्वासितस्य मम नाम सुतोपलब्ध्या
सद्यस्त्वया सह कृशोदरि! विप्रयोगः।
व्यावर्त्तितातपरुजः प्रथमाभ्रवृष्ट्या
वृक्षस्य वैद्युत इवाग्निरुपस्थितोऽयम् ॥१६ ॥

विदूषकः अअं सो अत्थो अणत्थानुबंधी संवुत्तो। संपदं तक्केमि अत्तभोदा वक्कलं गेण्हिअ तवोवणं गंदव्वं त्ति। अयं सोऽर्थः अनर्थानुबन्धी संवृत्तः । साम्प्रतं तर्कयामि अत्रभवता वल्कलं गृहीत्वा तपोवनं गन्तव्यमिति। १७.१

उर्वशी मं वि मंदभाइणिं किदविणअस्स पुत्तस्स लाहाणंदरं सग्गारोहणेण अवसिदकज्जं महाराओ समत्थइस्सदि। मामपि मन्दभागिनीं कृतविनयस्य पुत्रस्य लाभानन्तरं स्वर्गारोहणेनावसितकार्यां महाराजः समर्थयिष्यति? १७.२

राजा सुन्दरि! मा मैवम्। १७.३

न हि सुलभवियोगा कर्त्तुमात्मप्रियाणि
प्रभवति परवत्ता शासने तिष्ठ भर्त्तुः।
अहमपि तव सूनावद्य विन्यस्य राज्यं
विचरितमृगयूथान्याश्रयिष्ये वनानि॥१७ ॥

कुमारः नार्हति तातः पुङ्गवधारितायां धुरि दम्यं नियोजयितुम्। १८.१

राजा अयि वत्स! मा मैवम् । १८.२

शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
भवति सुतरां वीर्योदग्रं भुजङ्गशिशोर्विषम् ।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं[१] परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो भरः ॥१८ ॥

आर्य लातव्य! १९.१

कञ्चुकी आज्ञापयतु देवः। १९.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सभी विषाद का अभिनय करते हैं।)

राजा (मूर्छित हो जाता है।)

विदूषक बुरा हुआ बुरा हुआ।

कञ्चुकी महाराज! सम्हलें सम्हलें।

राजा (सम्हल कर निःश्वास लेते हुए) अहो विधाता की सुखशत्रुता।

कहाँ तो मैं पुत्र की उपलब्धि से आश्वस्त हुआ और कहाँ हे कृशोदरि! तेरे साथ तुरन्त उपस्थित हो गया वियोग। यह तो ग्रीष्मतप्त वृक्ष के प्रथमवृष्टि से शान्त होते ही उस पर गाज गिर पड़ी ॥१६॥

विदूषक यह तो अर्थ अनर्थ का सूचक हुआ। लगता है कि अब महाराज भी वल्कल धारण कर तपोवन चले जाएँगे।

उर्वशी पुत्र को शिक्षित करा लेने पर स्वर्ग चली जाऊँगी। तो महाराज मुझे भी कृतकार्या समझेंगे।

राजा सुन्दरि! ऐसा नहीं –

जिनके भाग्य में लिखा रहता है वियोग सुलभ वे अपना प्रिय कर पाते नहीं। पराधीनता सिर पर चढ़ी ही रहती है। जाओ तुम अपने मालिक की आज्ञा का पालन करो। मैं भी तेरे इस पुत्र को राज्य भार सौंप कर मृगयूथों से युक्त वनों में चले जा रहा हूँ ॥१७॥

कुमार तात पुंगवधारित भार में दम्य (बछड़े) को जोतें यह उचित नहीं।

राजा अयि वत्स! ऐसा नहीं।

गन्धगज कलभ (गजशावक) **भी हो तो अन्य गजों को भगा देता है, भुजङ्ग के बच्चे का भी विष बड़ी तेजी से चढ़ता है, अधिपति बच्चा हो तब भी पृथिवी की रक्षा करने में समर्थ होता है। वय से नहीं, जन्म से ही यह राजा अपना कार्यभार उठा लिया करता है ॥१८॥**

आर्य लातव्य!

कञ्चुकी आज्ञा दें देव!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा मद्वचनादमात्यपरिषदं ब्रूहि संभ्रियतामायुषो राज्याभिषेक इति। १९.३

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *दुःखितो निष्क्रान्तः।* १९.४

सर्वे दृष्टिविघातं नाटयन्ति। १९.५

राजा *आकाशमवलोक्य* किं नु खलु निरभ्रो विद्युत्संपातः?[१] १९.६

उर्वशी *विलोक्य* अम्मो! भगवं णारदः। अहो! भगवान् नारदः। १९.७

राजा *निपुणमवलोक्य* अये भगवान् नारदः। य एष – १९.८

गोरोचनानिकषपिङ्गजटाकलापः
संलक्ष्यते शशिकलामलवीतसूत्रः।
मुक्तागुणातिशयसंभृतमण्डनश्री–
र्हैमप्ररोह इव जङ्गमकल्पवृक्षः॥१९॥

अर्घ्यं तावदस्मै। २०.१

उर्वशी *यथोक्तमादाय* इयं भअवदे अरिहणा। इयं भगवतेऽर्हणा। २०.२

॥६॥

ततः प्रविशति नारदः २०.३

सर्वे *समुत्तिष्ठन्ति।* २०.३*a*

नारदः विजयतां विजयतां मध्यमलोकपालः। २०.४

राजा *उर्वशीहस्तादर्घ्यमादायावर्ज्य* च भगवन्नभिवादये। २०.५

उर्वशी भगवन् प्रणमामि। २०.६

नारदः अविरहितौ दम्पती भूयास्ताम्। २०.७

राजा *आत्मगतम्* अपि नामैवं स्यात्? *कुमारमाश्लिष्य प्रकाशम्* वत्स! भगवन्तमभिवादयस्व। २०.८

कुमारः भगवन्! और्वशेय आयुः प्रणमति। २०.९

नारदः आयुष्मानेधि। २०.१०

राजा अयं विष्टरोऽनुगृह्यताम्। २०.११

नारदः तथा। *उपविष्टः।* २०.१२

---

१. 'कुतो नु खलु भो विद्युत्संपातः' रं.ले.बो.मा., 'किं नु खलु निरभ्रे विद्युत्संपातः पं.चा.वे.काग्र.। निरभ्रो इति त्वौचित्यानुसारिणो वयम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा मेरे शब्दों में अमात्य परिषद् से कहो तैयारी की जाय कुमार आयु के राज्याभिषेक की।

कञ्चुकी जो आज्ञा महाराज की (दुःखित होकर निकल जाता है)।

(सभी दृष्टिविघात का अभिनय करते हैं।)

राजा (आकाश देखकर) क्या यह बिना बादल बिजली गिर रही है?

उर्वशी (देखकर) ओहो भगवान् नारद हैं।

राजा (बारीकी के साथ देखकर) अये भगवान् नारद हैं जो –

गोरोचना की रेखा सी पिंगवर्ण की जटाओं से युक्त और चन्द्रकला सा अमल–धवल यज्ञोपवीत धारण किए हुए ये मोती की मालाओं से अत्यन्त सुन्दर और सुनहली वरोहों से युक्त जङ्गम कल्पवृक्ष लग रहे हैं ॥१९॥[१]

इनके लिए अर्घ्य।

उर्वशी (अर्घ्य लाकर) यह भगवान् नारदजी के लिए पूजा।

॥ ६ ॥

(नारद प्रवेश करते हैं।)

सब (उठ खड़े होते हैं।)

नारद विजय हो, विजय हो मध्यमलोकपाल की।

राजा (उर्वशी के हाथ से अर्घ्य लेकर नारद जी को देते हुए) भगवन्! प्रणाम।

उर्वशी भगवन्! प्रणाम।

नारद अविरहित रहो तुम दोनों दम्पती।

राजा (स्वगत) क्या ऐसा हो सकता है? (कुमार का आश्लेष कर) (प्रकाश) वत्स! महर्षि का अभिवादन करो।

कुमार भगवान् उर्वशी का पुत्र आयु प्रणाम करता हूँ।

नारद आयुष्मान् होओ।

राजा यह रही आसन। बैठा जाए।

नारद ठीक है। (बैठ जाते हैं)

---

१. तुलना कीजिए माघ के नारद वर्णन की। वहाँ कवि को ऊपर से नीचे आती विद्युत् रूपी अग्नि का स्मरण नहीं आता और फलदायी कल्पवृक्ष का। उधर कालिदास माघ की कल्पना के किसी उपादान को नहीं छूते, न हाथी को, न बलराम आदि को।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वे *नारदमनूपविशन्ति।* २०.१३

राजा *सविनयम्* भगवन्! किमागमनप्रयोजनम्? २०.१४

नारदः राजन्! श्रूयतां महेन्द्रसन्देशः। २०.१५

राजा अवहितोऽस्मि २०.१६

नारदः प्रभावदर्शी मघवा वनगमनाय कृतबुद्धिं भवन्तमनुशास्ति। २०.१७

राजा किमाज्ञापयति? २०.१८

नारदः त्रिकालदर्शिभिर्मुनिभिरादिष्टः सुरासुरविमर्दो भावी। भवाँश्च सांयुगीनः सहायो नः। तेन न त्वया शस्त्रं संन्यस्तव्यम्। इयं चोर्वशी यावदायुः तव सहधर्मचारिणी भवत्विति। २०.१९

उर्वशी *अपवार्य* अम्महे! सल्लं मे हिअआ अवणीदं।

अहो शल्यमिव मे हृदयादपनीतम्। २०.२०

राजा परवानस्मि देवेश्वरेण। २०.२१

नारदः युक्तम्। २०.२२

त्वत्कार्यं वासवः कुर्यात् त्वं च तस्येष्टमाचरेः।
सूर्यः समेधयत्यग्निमग्निः सूर्यं स्वतेजसा ॥ २० ॥[१]

आकाशमवलोक्य रम्भे! उपनीयतां स्वयं महेन्द्रेण संभृतः कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेकसम्भारः। २१.१

प्रविष्टा यथोक्तहस्ता अप्सरसः। २१.२

अप्सरसः भअवं! इमे अहिसेअसंभारा। भगवन्! एते अभिषेकसम्भाराः। २१.३

नारदः उपवेश्यतामायुष्मानायुर्भद्रपीठे। २१.४

रम्भा इदो वच्छ! *कुमारं भद्रपीठ उपवेशयति।* इतो वत्स! २१.५

नारदः *कुमारस्य शिरसि कलशमावर्ज्य* रम्भे! निर्वर्त्यतां शेषो विधिः। २१.६

रम्भा *यथोक्तं निर्वर्त्य* वच्छ! पणम भअवंदं पितरौ अ।

वत्स! प्रणम भगवन्तं पितरौ च। २१.७

कुमारः *यथाक्रमं प्रणमति।* २१.८

नारदः स्वस्ति भवते। २१.९

---

१. तव कार्यमसौ कुर्यात् त्वं च तस्येष्टकार्यकृत् ।
सूर्यं संवर्द्धयत्यग्निरग्निं सूर्यः स्वतेजसा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी (नारद के बैठ जाने पर बैठते हैं)

राजा (सविनय) भगवन्! आने का क्या है प्रयोजन?

नारद राजन्! महेन्द्र का सन्देश सुना जाए।

राजा अवहित हूँ।

नारद प्रभाव से सब कुछ देख लेने वाले इन्द्र ने आपको वन के लिए उत्सुक देख यह संदेश भेजा है ।

राजा क्या आज्ञा है?

नारद त्रिकालदर्शी मुनियों ने भविष्यवाणी की है कि देव–दानव युद्ध होने वाला है। आप मेरे युद्ध के सहायक हैं। इसलिए आपको शस्त्र नहीं छोड़ना है और यह उर्वशी जीवन भर आपकी सहधर्मचारिणी रहेगी।

उर्वशी (अपवारित के साथ) अहा! मेरे हृदय से शल्य सा निकाल दिया।

राजा मैं तो देवेश्वर के अधीन हूँ।

नारद यही ठीक है – **तुम्हारा कार्य करता रहे देवेन्द्र और तुम पूरा करते रहो उसका इष्ट, सूर्य अग्नि को अपने तेज से समिद्ध करता है और अग्नि सूर्य को ॥२०॥**

(आकाश देखकर) रम्भे। लाओ स्वयं महेन्द्र ने भेजी अभिषेक सामग्री, कुमार आयु के राज्याभिषेक के लिए।

(हाथ में यथोक्त सामग्री लिए अप्सराएँ आती हैं।)

अप्सराएँ भगवन्! यह है अभिषेक–सामग्री।

नारद बिठलाया जाए कुमार को भद्रपीठ पर।

राजा वत्स इधर आ। (कुमार को भद्रपीठ पर बिठलाता है)

नारद (कुमार के शिर पर कलश उड़ेल कर) रम्भे! शेष विधि पूरी करो।

रम्भा (यथोक्त करके)वत्स! प्रणाम कर भगवान् नारद जी को और माता–पिता को।

कुमार (कथितक्रम से प्रणाम करता है।)

नारद तुम्हारा कल्याण हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा कुलधुरन्धरो भव। २१.१०

उर्वशी पितुणो आराहइत्तओ होहि। पितुराराधयिता भव। २१.११

नेपथ्ये वैतालिकद्वयम् २१.१२

वैतालिकौ विजयतां युवराजः। २१.१३

प्रथमः २१.१४

अमरमुनिरिवात्रिर्ब्रह्मणो[1]ऽत्रेरिवेन्दु–
र्बुध इव शिशिरांशोर्बोधनस्येव[2] देवः ।
भव पितुरनुरूपस्त्वं गुणैर्लोककान्तै–
रतिशयिनि समस्ता[3] वंश एवाशिषस्ते ।। २१ ।।

द्वितीयः २२.१

तव पितरि पुरस्तादुन्नतानां स्थितेऽस्मिन्
स्थितिमति च विभक्ता त्वय्यनाकम्पधैर्ये ।
अधिकतरमिदानीं राजते राजलक्ष्मी–
र्हिमवति जलधौ च [4]व्यस्ततोयेव गङ्गा ।। २२ ।।

अप्सरसः *उर्वशीमुपेत्य* दिट्ठिआ पिअसही पुत्तस्स जुवराअसिरीए भत्तुणो अविरहेण अ वड्ढइ। दिष्ट्या प्रियसखी पुत्रस्य युवराजश्रिया भर्तुरविरहेण च वर्धते। २३.१

उर्वशी णं साहारणो एसो अब्भुदओ णो। *कुमारं हस्ते गृहीत्वा* एहि वच्छ! जेट्ठमादरं अहिवंदेहि। ननु साधारण एषोऽभ्युदयः (कुमारं हस्ते गृहीत्वा) एहि वत्स! ज्येष्ठमातरमभिवन्दस्व। २३.२

कुमारः *प्रतिष्ठते*। २३.३

राजा तिष्ठ। सममेव तत्रभवत्याः समीपे यास्यामस्तावत्। २३.४

नारदः २३.५

आयुषो यौवराज्यश्रीः स्मारयत्यात्मजस्य ते ।
अभिषिक्तं महासेनं सैनापत्ये मरुत्वता ।। २३ ।।

---

१. **०ब्रह्मणो०** चा.वे.काग्र.; **स्रष्टुर०** रं.ला.बो.मा.।

२. **वैधवस्येव** ले.बो.मा.; **बोधनस्येव** र.चा.वे.काग्र.।

३. **समस्ता** रं.; **समाप्ता** ले.बो.मा.पं.चा.वे.।

४. **प्राप्ततो** ले.बो.मा.; **व्यस्ततो** रं.चा.वे.काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा कुलधुरन्धर बनो।

उर्वशी पिता का आराधयिता होओ।

(नेपथ्य में दो वैतालिक)

दोनों वैतालिक युवराज की जय हो।

प्रथम तुम अपने लोककान्त गुणों से अपने पिता के अनुरूप वैसे ही होओ जैसे देवमुनि अत्रि उनके पिता ब्रह्मा के अनुरूप हुए, इन्दु अत्रि के, बुध इन्दु के, और देव पुरूरवा बुध के। तुम्हारा वंश स्वयं अतिशय से युक्त है, अतः सभी आशीष हैं सुलभ ॥ २१॥

दूसरा उन्नत वीरों के अग्रणी तुम्हारे पिता और मर्यादापालक अकम्प धैर्य तुम दोनों में बँटी राजलक्ष्मी वैसी लग रही है जैसे लगती है हिमगिरि और समुद्र में विभक्त गङ्गा ॥ २२॥

अप्सराएँ (उर्वशी के पास पहुँच कर) बधाई पुत्र के राज्याभिषेक और पति के अविरह के उपलक्ष्य में।

उर्वशी अरे! यह तो अभ्युदय हम सबका है। (कुमार को हाथ से पकड़कर) आ वत्स! बड़ी माँ को प्रणाम कर।

कुमार (चलने लगता है।)

राजा ठहर। हम उनके पास साथ ही चलेंगे।

नारद तुम्हारे पुत्र आयु की यौवराज्यश्री याद दिला रही है, इन्द्र के द्वारा किए गए कार्त्तिकेय के सेनापतित्व के अभिषेक की ॥ २३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा अनुगृहीतोऽस्मि भगवता। २४.१

नारदः भो राजन्! किं ते भूयः प्रियमुपकरोतु पाकशासनः? २४.२

राजा यदि मे भगवान् प्रसन्नः किमतः परमिच्छामि। तथापीदमस्तु — २४.३

भरतवाक्यम् २४.४

परस्पर–विरोधिन्यो–रेकसंश्रय–दुर्लभम् ।
सङ्गतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम् ॥ २४ ॥

अपि च — २५.१

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥ २५॥

॥ निष्क्रान्ताः सर्व्वे॥ २६.१

इति महाकविकालिदासकृतौ विक्रमोर्वशीये त्रोटके पुरुवंशप्रतिष्ठा नाम पञ्चमोऽङ्कः ॥५॥ २६.२

॥ पूर्णं चेदमपूर्व्वं नाटकम् ॥

॥ ॐ तत् सत् ॥

---

१. श्रीश्रीशालिनि भूस्तने (Boston) निवसता सर्वज्ञगेहे मया
नाट्यानां त्रितयं व्यलेखि सुकवेः श्रीकालिदासस्य यत् ।
सा कारुण्यकथा तवैव जननि! त्वं मादृशे डिम्भके
वात्सल्यातिशयात् कदा न भविषी पीयूषकादम्बिनी ॥
२०.१०.२००१ एक्टन, अमेरिका तदिदमद्य मया काश्यपेन द्विवेदेन सनातनेन कविना रेवाप्रसादेनेह काश्यां भूयोऽप्यलेखि ०१.०२.२००३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा अनुगृहीत हूँ। महर्षि द्वारा।

नारद भो राजन्! इन्द्र तुम्हारा और क्या प्रिय करें?

राजा यदि मुझ पर भगवान् प्रसन्न हैं तो इससे अधिक और चाहिए ही क्या? तथापि यह अवश्य चाहूँगा –

(भरतवाक्य)

परस्परविरोधिनी श्री और सरस्वती का एक स्थान पर दुर्लभ मिलन
सत्पुरुषों की समृद्धि बढ़ाए सदा ही ।। २४।।

और,

सब दुर्ग पार करें, सबका कल्याण हो, सबकी इच्छाएँ पूर्ण हों और
सब सर्वत्र प्रसन्न रहें ।। २५।।

।। सभी निकल जाते हैं।।

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति विक्रमोर्वशीय नामक त्रोटक में
'पुरुवंशप्रतिष्ठा' नामक पञ्चम अङ्क पूर्ण हुआ ।। ५।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अभिज्ञानशाकुन्तलम् ।।

पात्राणि–

पुरुषाः– दुष्यन्तः– नायकः, **सूत्रधारः**– नाटकप्रबन्धकः, **माधव्यः**– विदूषकः, **सर्वदमनः**– शकुन्तलासूनुः, **सोमरातः**– पुरोहितः, **वैखानसः, शार्ङ्गरवः, शारद्वतः, हारीतः, गौतमः**– कण्वाश्रमिणः, **श्यालः**– प्रधानपुरुषः (Police Inspector), **सूचकः, जानुकः**– पुरुषौ (Policemen), **कञ्चुकी**– अन्तःपुराध्यक्षो वृद्धः, **रैवतकः, करभकः**– दौवारिकाः दासाः, **वैतालिकौ**– वन्दिनौ, **सेनापतिः, धीवरः** ।

पताकानायकः – कण्वः– काश्यपः शकुन्तलायाः पालयिता पिता, **दुर्वासा**– ऋषिः, **मारीचः**– कण्वसगोत्रः इन्द्रस्य पिता काश्यपः।

दिव्यः– देवराज इन्द्रः, मातलिः– इन्द्रसारथिः।

स्त्रियः– शकुन्तला– नायिका, **गौतमी**– कण्वाश्रमस्य वृद्धा तपस्विनी, **अनसूया, प्रियंवदा**– नायिकासख्यौ, **चतुरिका, परभृतिका, मधुकरिका, प्रतीहारी, यवन्यः**– राजसेविकाः, **सानुमती**– मेनकासखः अप्सरोविशेषः, **अदितिः दाक्षायणी**– मारीचस्य दाराः, इन्द्रस्य प्रसूः, **मेनका**– शकुन्तलायाः माता, **नटी**।

प्रकर्यः– कृष्णशारः, दीर्घापाङ्गः, चक्रवाकी, वनज्योत्स्ना, कोकिलः, मृगी।

स्थानानि – भूलोके– कण्वाश्रमः, **अन्तरिक्षे**– मारीचाश्रमः।

आधाराः – पाण्डुग्रन्थाः–

१. **हामा.**– हार्वर्डमातृकाः, अमेरिकाणां हार्वर्डविश्वविद्यालयीयाश्चत्वारो हस्तलेखाः MS Indic 1084, 1085, 1086 इत्येते त्रयः पूर्णाः, 1103 अपूर्णः।

प्रकाशितानि संस्करणानि–

२. **काग्र./काग्र–२** – कालिदासग्रन्थावल्या अस्मत्संपादितायाः काशीहिन्दूविश्वविद्यालयतः प्रकाशितं द्वितीयं संस्करणम् ई० १९८६।

३. **खि.** – नारायणशास्त्रिखिस्तेटीकितं संस्करणम्, मास्टरखेड़ालीलाल, वाराणसी, ई० १९३८।

४. **च.** – चतुर्वेदी पं०सीतारामः, ई०२००१

५. **नि.** – निर्णयसागर, मुम्बई, ई० १९५८।

६. **पि.** – रिचर्डपिशेल, बंगपाठसंस्करणं, हार्वर्डप्राच्यग्रन्थमाला–१६, अमेरिका, ई० १९२२।

७. **बा.** – ओथो बाथलिंग्क संस्करणम्, बान, जर्मनी, ई० १८४२।

८. **बो.** – पी.ए.बोलेन, लिपजिग, जर्मनी।

९. **मा.** – मोनियरविलियम्स, शकुन्तला लास्ट रिंग, आक्सफोर्डयूनिवर्सिटी, लन्दन, ई० १८७६।

१०. **शा.** – ए. शार्पे, कालिदासलेक्सिकन, बेल्जियम, ई० १९५४।

११. **सा.** – साहित्यअकादमी, दिल्ली, ई० १९८३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ अथ ॥

महाकविकालिदासकृतं

सनातनकविरेवाप्रसादद्विवेदिप्रतिसंस्कृतं

अभिज्ञानशाकुन्तलनाटकम्

॥ पूर्वरङ्गः ॥[१]

नेपथ्ये पुष्करघोषनान्दी[२] *ततो मङ्गलाशंसानान्दी*[३]

॥ १ ॥

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या[४], वहति विधिहुतं या[५] हविर्, या च होत्री[६]
ये द्वे [७]कालं विधत्तः[८], श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्[९] ।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति[१०], यया प्राणिनः प्राणवन्तः[११]
प्रत्यक्षाभिः [१२]प्रपन्नाँस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ १ ॥

नान्द्यन्ते प्रविश्य २.१

सूत्रधारः *नेपथ्याभिमुखमवलोक्य* आर्ये! यदि नेपथ्यविधानमवसितमित आगम्यताम्। २.२

प्रविश्य २.३

नटी अज्ज! इअं म्हि। आणवेदु अज्जो को णिओओ अणुचिट्ठीअदु त्ति।

आर्य! इयमस्मि। आज्ञापयतु आर्यः को नियोगः अनुष्ठीयतामिति। २.४

सूत्रधारः आर्ये! अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्[१३]। अत्र खलु **कालिदास**—ग्रथित—वस्तुना 'अभिज्ञानशाकुन्तल'—नामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः। तत् प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः। २.५

नटी सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स ण किं वि परिहाइस्सदि।

सुविहितप्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते। २.६

१—३. इयमस्मत्कृता योजना।

४—११. एतेऽनुच्छेदाः पारिपार्श्विकस्य एवमार्य्येति वचनार्थम्।

१२. प्रसन्नः पि.शा.। प्रपन्नः इत्यपरे। प्रपन्नाँस्त० इति आचार्याः ब्राह्मीलिपेरनुरोधात्, तेन च अभ्यर्हितस्य प्रपत्तियोगस्य लाभः अपुष्टत्वस्य निवृत्तिश्च।

१३. आर्ये रसभावविशेषदीर्घ(क्षा)गुरोः श्रीविक्रमादित्यस्य साहसाङ्कस्य अभिरूपभूयिष्ठा संसत् अद्य १०८६ हामा.काग्र.—२ टिप्पणी। तिसृष्वपि हामासु अभिज्ञानशाकुन्तलेत्येव लेखः। 'आर्ये' १०८५—१०८६ हामा., 'आर्य' १०८४ हामा.। शाकुन्तलमिति महाभारतप्रयोगमाश्रित्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ

महाकविकालिदासकृत

सनातनकविरेवाप्रसादद्विवेदिप्रतिसंस्कृत

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक

।। पूर्वरङ्ग ।।

(नेपथ्य में पुष्करवाद्यनान्दी)

(उसके अन्त में मङ्गलनान्दी)

।। १ ।।

ईश प्रपत्तियोग से युक्त (प्रपन्नान्) आप सबकी उनके आठों प्रत्यक्ष शरीरों से रक्षा करे – (१) जो सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की आद्या (प्रथम) सृष्टि है (जल) (२) विधिपूर्वक दिए गए आहुति द्रव्य को जो उन उन देवताओं तक पहुँचाता है (यज्ञाग्नि) (३) जो हवन करता है (४–५) जो दो काल (दिन, रात) का नियमन करते हैं (सूर्य, चन्द्र) (६) श्रवणविषय (शब्द) गुण वाला जो विश्व को व्याप्तकर अवस्थित है (आकाश) (७) जिसे सभी बीजों की प्रकृति कहते है (पृथिवी) और (८) जिससे सभी प्राणी श्वास लेते हैं (वायु)।। १ ।।

(मङ्गलनान्दी के अन्त में प्रवेश कर)

सूत्रधार (नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये! यदि नेपथ्य विधान पूरा हो चुका हो तो इधर आओ।

(प्रवेश कर)

नटी आर्य! यह हूँ मैं। आज्ञा दीजिए आर्य! कि क्या कार्य किया जाए।

सूत्रधार आर्ये! यह परिषद् ऐसी है जिसमें विद्वान् ही विद्वान् विराजमान हैं। और इसमें, जो है सो, हमें कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नए नाटक का प्रयोग करना है। तो प्रत्येक पात्र पर ध्यान देना है।

नटी आर्य तो बहुत ही अच्छी तरह प्रयोग करने के अभ्यासी हैं, निश्चिन्त रहें, कुछ भी कमी नहीं रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रधारः आर्ये! कथयामि ते भूतार्थम् – २.७

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ।। २।।

नटी अज्ज! एव्वं णेदं। अणन्तरकरणिज्जं दाव आणवेदु अज्जो।

आर्य! एवं न्विदम्। अनन्तरकरणीयम्, तावदाज्ञापयतु आर्यः। ३.१

सूत्रधारः किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादनतः। ३.२

नटी अज्ज कदरं उण उदुं समास्सिअ गाइस्सं।

आर्य! कतमं पुनः ऋतुं समाश्रित्य गायानि। ३.३

सूत्रधारः ननु इममेव तावदचिरप्रवृत्तम् उपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयतां तावत्। सम्प्रति हि – ३.४

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गिसुरभिवनवाताः ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ।। ३।।

नटी तथा। तथा। *गायति* –४.१

ईसीसि चुंबिआई भमरेहिं सुउमारकेसरसिहाईं ।
ओदंसअन्ति दअमाणा पमदाओ सिरीसकुसुमाई ।।४।।

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।।

सूत्रधारः आर्ये! साधु गीतम्। अहो रागबद्धचित्तवृत्तिः आलिखित इव सर्वतो रङ्गः। तत् इदानीं कतमं प्रयोगमाश्रित्य एनमाराधयामः? ५.१

नटी णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्तं अहिण्णाणसाउंतलं णाम अपुव्वं णाडअं पओए अहिकरीअदु त्ति। नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तम् अभिज्ञानशाकुन्तलं नाम अपूर्वं नाटकं प्रयोगे अधिक्रियतामिति। ५.२

सूत्रधारः आर्य्ये! सम्यगनुबोधितोऽस्मि। ननु अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया। कुतः – ५.३

तवाऽस्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।
एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ।।५।।

।। निष्क्रान्तौ ।। ६.१

।। प्रस्तावना पूर्वरङ्गश्च।। ६.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रधार आर्ये! तुझसे सच बात कहता हूँ –

मैं प्रयोग की शिक्षा (विज्ञान) **को तब तक ठीक नहीं मानता जब तक उस पर विद्वज्जन परितोष व्यक्त न कर दें। भलीभाँति शिक्षित व्यक्तियों का चित्त भी अपने पर अविश्वस्त ही रहता है ॥२॥**

नटी आर्य! बात तो ऐसी ही है। आगे जो करना है वह बतलावें।

सूत्रधार और क्या इस परिषद् के कानों की तृप्ति को छोड़कर।

नटी आर्य! किस ऋतु को लेकर गीत प्रस्तुत किया जाए।

सूत्रधार इस अभी अभी शुरू हुए उपभोगक्षम ग्रीष्म ऋतु को लेकर गाया जाए। इस ऋतु में जो है सो –

जलस्नान बड़ा प्रिय लगता है, वन की वात पाटल के संसर्ग से सुगन्धित है, गहरी छाया मिले तो नींद जल्दी आ जाती है, दिन अच्छे लगते हैं ढल जाने पर ॥३॥

नटी ठीक (गाती हैं),

प्रमदाएँ शिरीष पुष्पों को कानों में लगा रही हैं किन्तु बड़ी दया के साथ, भौरें भी इन्हें कुछ कुछ ही चूम रहे हैं। क्यों? इसलिए कि इनके रेशे बड़े ही सुकुमार और कोमल हैं, विशेषतः उनके अग्रभाग ॥४॥

सूत्रधार आर्ये! साधु, अच्छा गाया। देखो तो पूरे दर्शक राग पर बद्ध चित्तवृत्ति दिखाई दे रहे हैं, लगता है आलिखित हैं। तो बोलो, कौन सा प्रयोग अपनाएँ और इस समाज की आराधना करें?

नटी आर्यमिश्र ने पहले ही आज्ञा दे रखी है, **'अभिज्ञानशाकुन्तल'** नामक अपूर्व नाटक प्रयोगार्थ अपनायां जाए।

सूत्रधार आर्ये! ठीक ध्यान दिलाया। इस क्षण मैं भूल गया। क्यों? इसलिए कि –

तुम्हारे आकर्षक गीतराग से मेरा चित्त बरबस हर लिया गया, तीव्र वेग से दौड़ रहे इस सारंग के द्वारा इस राजा दुष्यन्त के समान ॥५॥

(दोनों निकल जाते हैं।)

(यह हुई प्रस्तावना : पूर्वरङ्ग पूरा हुआ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ प्रथमोऽङ्कः ।। ६.३

।। २।।

ततः प्रविशति मृगानुसारी चापहस्तो राजा रथेन सूतश्च ६.४

सूतः *राजानं मृगं चावलोक्य* आयुष्मन्! ६.५

कृष्णशारे ददच्चक्षुस्, त्वयि चाधिज्यकार्मुके ।
मृगाऽनुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ।। ६।।

राजा सूत! दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः। अयं पुनरिदानीमपि—७.१

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।। ७।।

तदेष कथमनुपतत एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः संवृत्तः। ८.१

सूतः आयुष्मन्! उद्घातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद् रथस्य मन्दीकृतो वेगः तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तरः संवृत्तः। संप्रति समदेशवर्त्तिनस्ते न दुरासदो भविष्यति। ८.२

राजा तेन हि मुच्यन्तामभीषवः। ८.३

सूतः यथाऽऽज्ञापयत्यायुष्मान्। *रथवेगं निरूप्य* आयुष्मन्! पश्य — ८.४

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया
निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः ।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाऽक्षमयेव रथ्याः ।। ८।।

राजा सत्यम्। अतीत्य हरितोऽपि हरींश्च वर्तन्ते वाजिनः। तथाहि— ९.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। प्रथम अङ्क ।।

।। २ ।।

(प्रवेश करता है मृग का पीछा कर रहा हाथ में धनुष लिए रथ पर बैठा राजा और सूत)

सूत (राजा और मृग को देखकर) आयुष्मन्! **एक ओर देखता हूँ कृष्णशार को और एक ओर धनुष ताने आपको तो लगता है मृग का पीछा कर रहे भगवान् शिव के प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं।। ६।।**

राजा सूत! यह सारङ्ग हमें बहुत दूर खींच लाया है। परन्तु यह अभी भी – **गरदन टेढ़ी कर अभिराम रूप में बार–बार उछलता चल रहा है और दृष्टि लगाए हुए है रथ पर, बाण की चोट के भय से इसने पूँछ वाला भाग सिर के भाग में घुसा सा दिया है, अधचिगले** (आधे चबाए) **दर्भ श्रम से फटे मुख में से गिरते जा रहे हैं जो बिखर रहे हैं मार्ग पर, छलाँग भर रहा है ऊँची, अत: अधिक चल रहा है आकाश में, पृथिवी पर कम।। ७।।**

अरे यह तो अब कठिनाई से दिखाई पड़ रहा है जबकि हम इसके पीछे दौड़ते ही आ रहे हैं।

सूत आयुष्मन्! भूमि ऊबड़ खाबड़ थी इसलिए मैंने लगाम खींच दी थी, अत: रथ की गति मन्द हो गई थी। इस कारण मृग दूर चला गया है। अब हम समान भूमि पर हैं। अब वह दुष्प्राप्य नहीं रह जाएगा।

राजा तो लगाम छोड़ दो।

सूत जो आयुष्मान् की आज्ञा। (रथवेग को देखकर)। आयुष्मन्! देखिए – **लगाम छोड़ देने से गरदन लम्बी करके घोड़े दौड़ रहे हैं तो इनकी गरदन के बाल निष्कम्प हैं, कान ऊँचे कर रखे हैं इन्होंने, ये इतनी तीव्रता में हैं कि इन्हें इन्हीं के पैर से उड़ी धूल भी नहीं छू पा रही है। मानों ये हिरन के वेग को सहन न कर लगा रहे हैं दौड़।। ८।।**

राजा सचमुच (इन्द्र के) हरे घोड़ों से भी तेज भाग रहे हैं ये घोड़े। देखिए –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत् ।
प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो–
र्न मे पार्श्वे किञ्चित् क्षणमपि न दूरे रथजवात् ॥ ९॥

सूत! पश्यैनं व्यापाद्यमानम्। *शरसन्धानं नाटयति।* १०.१

नेपथ्ये १०.२

भो भो राजन्! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः। १०.३

सूतः *आकर्ण्यावलोक्य च* आयुष्मन्! अस्य खलु ते बाणपातवर्त्तिनः कृष्णशारस्यान्तरे तपस्विन उपस्थिताः। १०.४

राजा *ससंभ्रमम्* तेन हि प्रगृह्यन्तां वाजिनः। १०.५

सूतः तथा। *रथं स्थापयति।* १०.६

॥ ३ ॥

ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयो वैखानसः। १०.७

वैखानसः *हस्तमुद्यम्य* राजन्! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः। १०.८

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ।
क्व खलु हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ॥ १०॥

[प्रथमः] तत् साधु कृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।

[इतरः] आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रम्।

[अपरः] न प्रहर्त्तुमनागसि ॥११॥

राजा एष प्रतिसंहृतः। *यथोक्तं करोति।* १२.१

वैखानसः सदृशमेतत् पुरुवंशप्रदीपस्य। १२.२

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं त्वयि ।
पुत्रमेवं गुणोपेतं[1] चक्रवर्त्तिनमाप्नुहि ॥ १२॥

इतरौ *बाहू उद्यम्य* [1]सर्व्वथा [2]चक्रवर्त्तिनं पुत्रमाप्नुहि। १३.१

१–२. इदमेवहि प्रयोजनमेतस्य नाटकोत्तमस्येत्यभिनवगुप्तो नाट्यशास्त्रविवृतावभिनवभरत्यां १९–२२ कारिकायां घनश्यामश्च। अत एव सार्थक्यं षष्ठसप्तमयोरङ्कयोः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो देखने में लग रहा था सूक्ष्म क्षणभर में वहीं एकाएक विपुल होता जा रहा है, जो बीच से टूटा हुआ था वह भी जुड़ा हुआ सा लग रहा है, जो स्वभावतः टेढ़ा था वह भी देखने में सम लगने लगा है। न तो कुछ भी क्षणभर के लिए मेरे पास होता है और न दूर। इतना तेज भाग रहा है मेरा रथ ॥९॥

सूत! अब लो यह गया जान से। (शरसन्धान का अभिनय करता है)

(नेपथ्य में)

भो राजन्! आश्रममृग है यह, हन्तव्य मृग नहीं, हन्तव्य नहीं।

सूत (सुनकर और देखकर) आयुष्मन्! यह कृष्णशार ज्योंही तुम्हारे बाण का लक्ष्य बना त्यों ही इसके बीच आ गए तपस्वी।

राजा (शीघ्रता में) तो तानों घोड़ों की लगाम।

सूत जो आज्ञा। (रथ को खड़ा कर देता है)।

॥ ३ ॥

(प्रवेश करता है दो वैखानसों के साथ एक तीसरा वैखानस)

वैखानस (हाथ उठाकर) राजन्! यह आश्रममृग है हन्तव्य मृग नहीं, हन्तव्य नहीं—

नहीं नहीं, न चलाएँ बाण इस मृदु मृगशरीर पर तूलराशि पर अग्नि के समान। भला कहाँ इन बेचारे हरिणों का अत्यन्त चंचल क्षणिक जीवन और कहाँ तुम्हारे वज्र से कठोर बाण ॥१०॥

प्रथम **तो ठीक से खींच भी लिया तो क्या शर वापस लें।**

द्वितीय **आपके अस्त्र आर्त्त की रक्षा के लिए हैं,**

तृतीय **निरपराध पर चलने के लिए नहीं ॥११॥**

राजा लीजिए लौटा लिया। (लौटाने का अभिनय करता है)

वैखानस यह पुरुवंशप्रदीप के अनुरूप ही है यह।

जिसका जन्म पुरु के वंश में हुआ उसे यही करना चाहिए। तुम्हें प्राप्त हो ऐसा हीं गुणों से युक्त चक्रवर्त्ती पुत्र ॥१२॥

दूसरे दोनों वैखानस (भुजाएँ उठाकर) सर्वथा चक्रवर्त्ती पुत्र प्राप्त हो तुम्हें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *सप्रणामम्* प्रतिगृहीतम्। १३.२

वैखानसः समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनु–मालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः। अपि च – १३.३

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य ।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति ।।१३।।

राजा अपि संनिहितोऽत्र कुलपतिः? १४.१

वैखानसः इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं [1]सोमतीर्थं गतः।१४.२

राजा भवतु। तामेव द्रक्ष्यामि। सा खलु विदितभक्तिं मां महर्षेः करिष्यति। १४.३

वैखानसः साधयामस्तावत्। *सशिष्यो निष्क्रान्तः।* १४.४

राजा सूत! चोदयाश्वान् पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहि। १४.५

सूतः यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। *भूयोरथवेगं निरूपयति।* १४.६

राजा *समन्तादवलोक्य.* सूत! अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथाऽयमाश्रमाभोगस्त–पोवनस्येति। १४.७

सूतः कथमिव? १४.८

राजा किं न पश्यति भवान्! इह हि– १४.९

नीवाराः शुक–गर्भ–कोटरमुख–भ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः ।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा–
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिःष्यन्द–रेखाङ्किताः ।।१४।।[2]

---

१. अयमेव १६ सन्दर्भे परामृष्टस्य महर्षेः कण्वस्य मृगत्वेन सङ्केतः। सोमतीर्थपदेनात्र सोमवंशीयो राजा दुष्यन्तोऽपि सुग्रहः।

२. अतः परं पद्यान्तरम् –

अपि च– कुल्याम्भोभिः प्रसृतचपलैः शाखिनो धौतमूला भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन।
एते चार्वागुपवनभुविच्छिन्नदर्भाङ्कुरायां नष्टातङ्काः हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति।।

और भी नालियों के जल फैल और हिलकर वृक्षों की जड़े धो रहे हैं, घीं के धूम उठे तो किसलयों का राग फीका पड़ गया, और ये हरिणशिशु निश्शङ्क घूम रहे हैं दर्भाङ्कुर से पटी उपवन भूमि में सभी ओर।। (कुल्या = नाली।))

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (प्रणाम करके) शिरोधार्य है यह आशीर्वाद।

वैखानस हम तो निकले हैं समिधा लाने के लिए। यह कण्व कुलपति का आश्रम मालिनी के तट पर दिखाई दे रहा है। अन्य कार्य बिगड़ने वाले न हों तो जाकर स्वीकार कीजिए अतिथिसत्कार। और –

तपोधनों के निर्विघ्न चल रहे अनुष्ठानों को देखकर जान सकेंगे कि 'मेरी मौर्वीकिण से अंकित भुजा कितनी रक्षा करती है' ॥१३॥

राजा क्या कुलपति सन्निहित हैं यहाँ?

वैखानस अभी–अभी पुत्री शकुन्तला को अतिथि सत्कार के लिए नियुक्त कर इसके प्रतिकूल दैव की शान्ति के लिए सोमतीर्थ गए हैं।

राजा कोई बात नहीं। उसी के दर्शन कर लेंगे। वही मेरी भक्ति महर्षि को बतला देगी।

वैखानस चलते हैं हम। (दोनों शिष्यों के साथ निकल जाता है)

राजा सूत! हाँको घोड़ों को पुण्याश्रम के दर्शन कर स्वयं पवित्र हो लें।

सूत जो आज्ञा आयुष्मान् की। (अधिक तेज रथवेग का अभिनय करता है)।

राजा (चारों ओर देखकर) सूत! बिना कहे भी समझ में आ रहा है कि यह आश्रम है तपोवन का।

सूत कैसे?

राजा देख नहीं रहे हैं आप। यहाँ –

कोटर में पल रहे तोतों के मुखों से गिरे नीवार दिखाई दे रहे हैं वृक्षों के नीचे, कहीं पड़े हैं चिकने पत्थर जिनसे इंगुदी फल तोड़े जाते हैं, हरिण इतने हिले हुए हैं कि आवाज से घबरा नहीं रहे हैं, जलाशयों के मार्ग भी वल्कल–शिखा से चुए जल की रेखा से अंकित हैं ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूतः सर्व्वमुपपन्नम्। १५.१

राजा *स्तोकमन्तरं गत्वा* सूत! तपोवननिवासिनामुपरोधो मा भूत्। एतावत्येव रथं स्थापय। यावदवतरामि। १५.२

सूतः धृताः प्रग्रहाः। अवतरत्वायुष्मान्। १५.३

राजा *अवतीर्य* सूत! विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावद् गृह्यताम्। *सूतायाभरणानि धनुश्चापनीयार्पयति* यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्या— हमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः। १५.४

सूतः तथा *निष्क्रान्तः* १५.५

राजा *परिक्रम्यावलोक्य च* इदमाश्रमद्वारम्। यावत् प्रविशामि। *प्रविश्य निमित्तं सूचयन्* । १५.६

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य ।
अथवा, भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्व्वत्र ।।१५।।

नेपथ्ये १६.१

इदो इदो सहिओ । इत इतः सख्यौ १६.२

राजा *कर्णं दत्त्वा* अये! दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते। यावदवगच्छामि। *परिक्रम्यावलोक्य च* अये, एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैः बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्त्तन्ते। *निपुणं निरूप्य* अहो मधुरमासां दर्शनम्— १६.३

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ।।१६।।

यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि। *विलोकयन् स्थितः।* १७.१

।। ४ ।।

ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला १७.२

शकुन्तला इदो इदो सहीओ! इतः इतः सख्यौ! १७.३

एका हला सउंदले! तुवत्तो वि तादकस्सवस्स अस्समरुक्खआ पियदरे त्ति तक्केमि,जेण णोमालिआकुसुमपेलवा तुमं वि एदाणं आलवालपूरणे णिउत्ता। सखि शकुन्तले! त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्य आश्रमवृक्षकाः प्रियतरा इति तर्कयामि, येन नवमालिकाकुसुमपेलवा त्वमपि एतेषामालवालपूरणे नियुक्ता। १७.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत ठीक कह रहे हैं आप।

राजा (थोड़ी दूर चलकर) सूत! तपोवन निवासियों को कष्ट हो इसलिए यहीं रोक दो रथ। उतरूँ मैं इससे।

सूत लगाम खींच रखी है। आयुष्मान् उतरें।

राजा (उतर कर) सूत! तपोवनों में विनीत वेष धारण कर प्रवेश करना होता है, अतः यह सब तुम सम्हालो। (सूत को आभरण और धनुष उतार कर देता है) सूत! मैं आश्रमवासियों का निरीक्षण कर लौटता हूँ तब तक तुम घोड़ों की पीठ भिगा लो। (आर्द्रपृष्ठाः – अर्थात् इन्हें नहला लो)।

सूत जो आज्ञा (निकल जाता है)।

राजा (घूमकर और देखकर) यह है आश्रम का द्वार। चलूँ इसमें प्रवेश करूँ। (प्रवेश करता है। शुभ शकुन सूचित करता है)।

अरे यह तो शान्त आश्रम है और (दाहिना) **हाथ फड़क रहा है, अथवा होनहार के द्वार सब कहीं रहते हैं ॥१५॥**

(नेपथ्य में)

इधर इधर सखियों!

राजा (कान देकर) अये! वृक्ष की इस वाटिका के दाहिने आवाज सी सुनाई दे रही है। जानूँ कि यह किसकी है। (घूम कर और देख कर)

अये! ये हैं तपस्विकन्याएँ । लिए हुए हैं अपने प्रमाण के सेचनघट। पौधों को पानी देने के लिए ये इधर ही आ रही हैं। (निहार कर) कितना मधुर है इनका दर्शन। **यह रूप तो मेरे अन्तःपुर में भी दुर्लभ है और इन आश्रमवासियों में ऐसा शरीर। निश्चित ही उद्यान की लताओं को हटा दिया वन की लताओं ने गुणों से ॥१६॥**

तो, इस छाया में खड़ा होकर करूँ प्रतीक्षा इनकी । (देखता हुआ खड़ा है)।

॥४॥

(प्रवेश करती है पानी देती शकुन्तला दो सखियों के साथ)

शकुन्तला इधर इधर सखियों!

एका सखि शकुन्तले! तात काश्यप को आश्रमवृक्ष तुझसे भी अधिक प्यारे लगते हैं जो नवमालिका पुष्प सी सुकोमल तुझे इनके थाले भरने में नियुक्त कर रखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला हला अणसूऐ! ण केवलं तादणिओओ एव्व, अत्थि मे सोदरसिणेहो वि एदेसु। सखि अनसूये! न केवलं तातनियोग एव, अस्ति मे सोदरस्नेहोऽपि एतेषु। *वृक्षसेचनं रूपयति।* १७.५

राजा *निर्वर्ण्य सकौतुकम् आत्मगतम्* कथम् इयं कण्वदुहिता? असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपः य इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते। १७.६

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया[1] समिल्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ।।१७।।

भवतु, पादपान्तरितः एव विस्रब्धस्तावदेनां पश्यामि। *तथा करोति* १८.१

शकुन्तला हला अणसूए! अदिपिणद्धेण वक्कलेण प्पियंवदाए दिढं णिअंतिदम्हि। सिढिलेहि दाव णं। सखि अनसूये! अतिपिनद्धेन वल्कलेन पियंवदया दृढं नियन्त्रितास्मि। शिथिलय तावदेतत्। १८.२

अनसूया तध[2] । तथा। *शिथिलयति।* १८.३

प्रियंवदा *सहासम्* एत्थ पओहरवित्थारइत्तअं अत्तणो जोव्वणं उवालहसु। अत्र पयोरधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व। १८.४

राजा सम्यगियमाह। काममननुरूपमस्या वयसो वल्कलं न पुनरलङ्कारश्रियं न पुष्यति। कुतः — १८.५

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनाऽपि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिक–मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।। १८।।[3]

---

१. नीलोत्पलपत्रे खड्गत्वमत्रोपपित्सितम्। नूनं कालिदासः कामे सूक्ष्मदर्शी।

२. महदेवेदमुद्दीपनं पुरुषाय यत् अनावृतस्य युवत्याः प्ररूढस्तनद्वयस्य वक्षोदेशस्य निरुपधि साक्षात्करणम्। जागरितमितो दुष्यन्तस्य पौरुषम् प्रतिबुद्धश्चास्य मनसि भगवान् मनोभवः। स्वभाव एष न दोषः। उक्तमेव कालिदासेनैव मेघदूते 'ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थ' इति। सेयं दुष्यन्तस्य वैवशी शकुन्तलामभिलषितुम्।

३. प्रक्षिप्तम्– इदमुपहित–सूक्ष्म–ग्रन्थिना स्कन्ध–देशे स्तनयुगपरिणाहाऽऽच्छादिना वल्कलेन ।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण ।।
यह जो वल्कल इसके दोनों स्तनों के परिणाह को ढँके हुए है यह कन्धे पर सूक्ष्म गाँठ से बँधा है। इससे भी इसकी नई गात्रयष्टि शोभित ही हो रही है जैसे फूल पीले पत्तों के बीच दिख रहा हो।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला सखि अनसूये! न केवल तात की आज्ञा है इसीलिए मैं इनकी सेवा में लगी हूँ इन पर मेरा सगे भाई सा प्रेम भी है। (पेड़ों को सींचने का अभिनय करती है)

राजा (निहार कर औत्सुक्य (कौतुक) के साथ) क्या यह है वह कण्वदुहिता? तत्रभवान् काश्यप (कण्व) का निर्णय ठीक नहीं है जो इस (ऐसी सुकोमल पुत्री) को आश्रम धर्म में लगाए हुए हैं। –

इस निसर्गसुन्दर (अव्याजमनोहर) **शरीर को जो तप करने योग्य बनाना चाह रहे हैं, वे महर्षि निश्चित ही नीलोत्पल की पंखुड़ी की धार से समिधा की शाखा काटना चाहते हैं।।१७।।**

जो हो (भवतु)। वृक्ष के पीछे छिपे छिपे ही इतमीनान के साथ इन्हें देखूँ (वैसा ही करता है)।

शकुन्तला सखि अनसूये! प्रियंवदा ने वल्कल कस कर बाँध दिया है। पीड़ा हो रही है इससे। इसे थोड़ा ढीला कर दे।

अनसूया ठीक है। (ढीला करती है)

प्रियंवदा (हँसकर) इस तेरे यौवन को दे उलाहना, जिसने तेरे उरोज इतने फैला दिए। मुझे उलहना क्यों देती है?

राजा ठीक कहा इसने। माना कि इस वय के अनुरूप यह है नहीं, तथापि यह भी अलंकार सा ही बन रहा है। क्योंकि –

सरसिज शैवाल से घिरकर भी अच्छा ही लगता है, चन्द्रमा का कलंक मलिन होने पर भी शोभा ही बढ़ाता है। यह तन्वी भी वल्कल से भी अधिक सुन्दर ही लग रही है। आकृति मधुर हो तो क्या नहीं बन जाता मण्डन?।।१८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला *अग्रतोऽवलोक्य* सहिओ! एसो वादेरितपल्लवंगुलेहिँ तुवरेदि विअ मं केसररुक्खओ। जाव णं संभावेमि। सख्यौ! एष वातेरितपल्लवाङ्गुली–भिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः। यावदेनं संभावयामि। (परिक्रामति।) १९.१

प्रियंवदा हला सउंदले! एत्थ दाव मुहुत्तअं चिट्ठ।
सखि शकुन्तले! अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ। १९.२

शकुन्तला किं णिमित्तं? किं निमित्तम्? १९.३

प्रियंवदा जाव तुए उवगदाए लतासणाहो विअ अअं केसररुक्खओ पडिभादि।
यावत् त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति। १९.४

शकुन्तला अदो खु पिअंवदासि तुमं। अतः खलु प्रियंवदाऽसि त्वम्। १९.५

राजा प्रियमपि तथ्यमाह शकुन्तलां प्रियंवदा। अस्याः खलु– १९.६

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ।। १९।।

अनसूया हला सउंदले! इअं सअंवरवहू सहआरस्स तुए किदणामहेआ वणजोसिणि त्ति णोमालिआ। आणं विसुमरिदासि। सखि शकुन्तले! इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका। एनां विस्मृतवत्यसि? २०.१

शकुन्तला तदा अत्ताणं वि विसुमरिस्सं। *लतामुपेत्यावलोक्य च* हला! रमणीए खु काले इमस्स लदापादअमिहुणस्स वइवरो संवुत्तो णवकुसुमजोव्वणा वणजोसिणी, सिणिद्धपल्लवदाए अ उवहोअक्खमो सहआरो। *पश्यन्ती तिष्ठति।* तदात्मानमपि विस्मरिष्यामि। (लतामुपेत्यावलोक्य च) सखि! रमणीये खलु काले एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः। नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ना, स्निग्धपल्लवतया च उपभोगक्षमः सहकारः। (पश्यन्ती तिष्ठति) २०.२

प्रियंवदा अणसूए! जाणासि किंणिमित्तं सउंदला वणजोसिणीं अदिमेत्तं पेक्खदित्ति?
अनसूये! जानासि किंनिमित्तं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं पश्यति? २०.३

अनसूया ण क्खु विहावेमि। कहेहि। न खलु विभावयामि। कथय। २०.४

प्रियंवदा जह वणजोसिणि अणुरूवेण पाअवेण संगदा अवि णाम एव्वं अहं वि अत्तणो अणुरूवं वरं लहेअं त्ति। यथा वनज्योत्स्ना अनुरूपेण पादपेन संगता, अपि नाम एवमहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति। २०.५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला (आगे देखकर) यह केसर वृक्ष हवा से हिलते पत्तों की अँगुलियों से मुझे जल्दी करने को कहसा रहा है। चलूँ इसकी सेवा करूँ। (घूमती हैं)

प्रियंवदा सखि शकुन्तले! एक क्षण यहीं खड़ी रह।

शकुन्तला किसलिए?

प्रियंवदा तुम्हारे पास खड़े रहने से यह केसर वृक्ष ऐसा लग रहा है जैसे लता से युक्त है।

शकुन्तला इसीलिए तो तू प्रियंवदा है।

राजा प्रियंवदा ने शकुन्तला से जो कहा वह प्रिय तो है परंतु सत्य भी है। निश्चय ही इसका –

अधर है रागयुक्त किसलय, बाहु हैं कोमल टहनियाँ और लुभावना
अंग अंग में उमड़ता यौवन है कुसुम ॥१९॥

अनसूया सखि शकुन्तला! यह है सहकार की स्वयंवरवधू नवमल्लिका। इसे तूने ही दिया है नाम 'वनज्योत्स्ना'। इसे भूल गई है तू।

शकुन्तला तब तो मैं स्वयं को भी भूल जाऊँगी। (लता के पास जाकर और देखकर) सखि! अच्छे समय पर इस 'लता–पादप' मिथुन का सम्बन्ध हो गया। वनज्योत्स्ना नवकुसुमयौवना है और पत्ते निकल आने से सहकार हो गया है उपभोगक्षम। (रुककर देखती रहती है।)

प्रियंवदा अनसूये! जानती है शकुन्तला वनज्योत्स्ना को क्यों अत्यधिक देख रही है?

अनसूया मैं तो समझ नहीं पा रही हूँ। तू ही बता।

प्रियंवदा जैसे वनज्योत्स्ना अनुरूप पादप से जुड़ गई, ऐसे ही मैं भी अपने अनुरूप पति पा लेती इसलिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला एसो णूणं तुह अत्तगदो मणोरहो। *कलशमावर्जयति।*

एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः। २०.६

राजा अपि कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसंभवा स्यात्? अथवा कृतं सन्देहेन — २०.७

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः—करणप्रवृत्तयः ।। २०।।

तथापि तत्त्वत एवैनामुपलप्स्ये। २१.१

।। ५ ।।

शकुन्तला *ससंभ्रमम्* अम्मओ सलिलसेअसंभमुग्गदो णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ। *भ्रमरबाधां रूपयति।*

अहो! सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते।[२] २१.२

राजा *सस्पृहं सासूयमिव विलोक्य* २१.३

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर! हतास्त्वं खलु कृती ।। २१।।[१]

शकुन्तला ण एसो धिट्ठो विरमदि। अण्णदो गमिस्सं। *पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्* कहं इदो वि आअच्छदि? हला! परित्ताअह मं इमिणा दुव्विणीदेण महुअरेण अहिहूयमाणं। न एष धृष्टो विरमति। अन्यतो गमिष्यामि। (पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्) कथमितोऽप्यागच्छति? सखि! परित्रायेथां माम् अनेन दुर्विनीतेन मधुकरेण अभिभूयमानाम्। २२.१

सख्यौ *सस्मितम्* का अम्महे परित्तादुं ? दुस्संदं आकंद राअरक्खिदव्वाइँ तवोवणाणि णाम। के आवां परित्रातुम्? दुष्यन्तमाक्रन्द। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम। २२.२

---

१. प्रक्षिप्तम्— साध्वसाराधनमपि रमणीयमस्याः —

यतो यतः षट्चरणोभिवर्धते ततस्ततः प्रेरितवामलोचना ।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते भयादकामपि हि दृष्टिविभ्रमम् ।।२२।।

यह वामलोचना जिधर जिधर भौंरा जाता है उधर उधर अपने सुन्दर (वाम) नेत्र घुमा रही है और भौंहे चढ़ा रखी है। ऐसा लगता है कि यह भय के कारण अनचाहे में ही दृष्टिविभ्रम की शिक्षा ले रही है।। २२।।

२. भ्रमर एष दुष्यन्तस्य कामि मन एव। द्र. काग्र.—२ गता ५४१—४२ पृष्ठेऽस्माकं टिप्पणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला यह निश्चय ही तेरा अपना मनोरथ है। (घड़ा उड़ेलती है)

राजा क्या यह कुलपति की अन्य जाति की पत्नी की संतान है? अथवा यहाँ संदेह का कोई अवसर नहीं –

यह निश्चित ही क्षत्रिय की पत्नी होने योग्य है, तभी तो मेरे आर्य मन में इसकी अभिलाषा जाग उठी। जहाँ सन्देह होता है वहाँ सत्पुरुष अपने अन्तःकरण की प्रवृत्ति को (निर्णायक) **प्रमाण मानते हैं ॥ २०॥**

तब भी इसे ठीक से जान लेना चाहूँगा।

॥ ५ ॥

शकुन्तला (घबराहट के साथ) अरे! यह भौंरा सलिलसेक से घबरा कर नवमालिका को छोड़कर मेरे मुख पर टूट पड़ा है। (भ्रमरबाधा का अभिनय करती है)।

राजा (स्पृहा लिए हुए असूयापूर्वक देखकर)

हे भ्रमर! बार बार चलापाङ्ग[1] और काँपती दृष्टि को छू रहा है, रहस्य की बात कहता सा कान के पास मृदुस्वन कर रहा है, हाथों को फटकार रही इसके रतिसर्वस्व अधर को पी रहा है, सो हम तो तत्त्वतः अन्वेषण में ही मारे गए, तू हो गया सफल ॥ २१॥

शकुन्तला यह धृष्ट रुक नहीं रहा है। अन्यत्र कहीं जाऊँ।

(एक डग चलकर खड़ी होती है और दृष्टिक्षेप के साथ)

अरे! यह तो यहाँ भी आ रहा है।

सखि! बचा मुझे इस मधुकर के आक्रमण से।

दोनों सखियाँ (स्मितपूर्वक) हम कौन होती हैं बचाने वाली। दुष्यन्त को पुकार। तपोवन की रक्षा तो राजा लोग करते हैं।

---

१. चलापाङ्ग– चंचल नेत्रप्रान्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। न भेतव्यम् *इत्यर्धोक्ते आत्मगतम्* राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत्। भवतु एवं तावदभिधास्ये २२.३

शकुन्तला *पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्* कहं इदो वि मं अणुसरदि? कथमितोऽपि मामनुसरति? २२.४

राजा *सत्वरमुपसृत्य* आः— २२.५

कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम् ।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ।। २२।।

सर्वा राजानं दृष्ट्वा किञ्चिदिव संभ्रान्ताः २३.१

अनसूया अज्ज! ण खु किंवि अच्चाहिदं। इअं णो पिअसही महुअरेण अहिहूयमाणा कादरीभूदा। आर्य! न खलु किमप्यत्याहितम्, इयं नः प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरीभूता। *शकुन्तलां दर्शयति।* २३.२

राजा *शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा* अपि तपो वर्धते? २३.३

शकुन्तला *साध्वसादवचना तिष्ठति।* २३.४

अनसूया दाणिं अदिहिविसेसलाहेण *शकुन्तलामुद्दिश्य* हला सउंदले! गच्छ उडअं। फलमिस्सं अग्घं उवहर, इदं पादोदअं हविस्सदि। इदानीमतिथिविशेषलाभेन (शकुन्तलामुद्दिश्य) सखि शकुन्तले! गच्छोटजम्, फलमिश्रमर्घमुपहर, इदं पादोदकं भविष्यति। २३.५

राजा भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्।[१] २३.६

प्रियंवदा तेण हि इमस्सिं पच्छाअसीदलाए सत्तवण्णवेदिआए मुहुत्तअं उवविसिअ परिस्समविणोदं करेदु अज्जो। तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायां मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः। २३.७

राजा नूनं यूयमप्यनेन कर्म्मणा परिश्रान्ताः। २३.८

अनसूया हला संउदले! उइदं णो पज्जुवासणं अदिहीणं। एत्थ उवविसम्ह। सखि शकुन्तले! उचितं नः पर्युपासनमतिथीनाम्; अत्रोपविशामः। २३.९

सर्वे उपविशन्ति २३.१०

शकुन्तला *आत्मगतम्* किं णु खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआरस्स गमणीअ म्हि संवुत्ता? किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता?२३.११

राजा *सर्वा विलोक्य* अहो समवयोरूपलावण्यं भवतीनां सौहार्दम्। २३.१२

---

१. नास्त्यत्र भ्रमरः कथं स हि मनो भोक्तुः सकामं स चाध्यक्षः संप्रति सोमवंशजनितस्तीर्थायमानो नृपः।
भूत्वा कृष्णमृगः स काश्यपमुनिर्यं पूर्वसंकल्पितं विश्वामित्रतपोभुवा तनयया संयोज्य जातः कृती।। रे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — यह अच्छा अवसर है अपने को प्रकाशित करने का। डरो मत। (आधा कह कर स्वगत) इससे मेरा राजा होना प्रकट हो जाएगा। कोई बात नहीं ऐसा उत्तर दे दिया जाएगा।

शकुन्तला — (एक डग चल कर रुक जाती है और दृष्टिक्षेप कर) अरे! यह तो इधर भी मेरे पीछे आ रहा है।

राजा — (शीघ्र पहुँचकर) आः — **कौन है यह जो पौरव के पृथ्वीरक्षक रहते और दुर्विनीतों का शासन करते हुए भी भोली तपस्विकन्याओं के साथ अविनय कर रहा है।। २२।।**

(सभी राजा को देख कर कुछ घबराती हैं)

अनसूया — आर्य! कुछ अनिष्ट नहीं हुआ है। यह हमारी प्रिय सखी मधुकर से त्रस्त होकर त्राण चाह रही है। (शकुन्तला को दिखाती है)।

राजा — (शकुन्तला की ओर मुख कर) बढ़ रहा है न तप?

शकुन्तला — (घबराहट से चुप खड़ी रहती है)

अनसूया — अब जब विशिष्ट अतिथि मिले, (शकुन्तला को लक्ष्य करके) सखि शकुन्तले! जा उटज। फल और अर्घ्य ला। यह पादोदक तो है ही।

राजा — आप सबकी मीठी वाणी से ही हो गया आतिथ्य।

प्रियंवदा — तो फिर इस गहरी और शीतल छाया वाली सप्तपर्ण की वेदिका पर कुछ देर बैठकर आप थकावट दूर करें।

राजा — आप सब भी इस कार्य से थक गई होंगी।

अनसूया — सखि शकुन्तले! हमारा कर्त्तव्य है अतिथि की सेवा। चल हम भी बैठें।

(सब बैठ जाते हैं।)

शकुन्तला — (स्वगत) इसे देखने से मेरे मन में आश्रमविरोधी भाव क्यों जाग रहा है?

राजा — (सभी को देखकर) कितना उत्तम है आप तीनों का सौहार्द। सबका समान रूप, समान वय और समान लावण्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा *जनान्तिकम्* अणसूए! को णु खु एसो चउरगंभीराकिदी महुरमहुरं आलवन्तो पहाववं आलक्खीअदि। अनसूये! को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिः मधुरमधुर–मालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते? २३.१३

अनसूया सहि! अत्थि मं वि कोदूहलं। पुच्छिस्सं दाव णं। *प्रकाशम्* अज्जस्स महुरालावजणिदो विस्संभो मं मंतावेदि कदमो अज्जेण राएसिणो वंसो अलंकरीअदि, कदमो वा विरहपज्जुस्सुअजणो किदो देसो? किण्णिमित्तं वा सुउमारतरो वि तवोवणगमणपरिस्समस्स अत्ता पदं उवणीदो त्ति?

सखि! अस्ति ममापि कौतूहलम्। पृच्छामि तावदेनम्। (प्रकाशम्) आर्यस्य मधुरालापजनितो विस्रम्भो मां मन्त्रयते कतम आर्येण राजर्षिवंशोऽलंक्रियते? कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः? किंनिमित्तं वा सुकुमारतरोऽपि तपोवनगमनपरिश्रमस्य आत्मा पदमुपनीतः इति? २३.१४

शकुन्तला हिअअ! मा उत्तम्म। एसा तुए चिंतिदाइं अणसूआ मंतेदि।

हृदय! मा उत्ताम्य। एषा त्वया चिन्तितानि अनसूया मन्त्रयते। २३.१५

राजा *आत्मगतम्* कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि कथं वा आत्माऽपहारं करोमि। भवत्वेनां तावदेवं वक्ष्ये। *प्रकाशम्* भवति! यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्म्मारण्यमिदमायातः। २३.१६

अनसूया सणाधा दाणिं धम्मआरिणो। सनाथा इदानीं धर्मचारिणः। २३.१७

शकुन्तला *शृङ्गारलज्जां नाटयति।* २३.१८

सख्यौ *उभयोराकारं विदित्वा जनान्तिकं* 'हला सउंदले!' जइ एत्थ अज्ज तादो सण्णिहिदो भवे? सखि शकुन्तले! यदि अत्र अद्य तातः संनिहितो भवेत्? २३.१९

शकुन्तला *सरोषमिव* तदो किं भवे? ततः किं भवेत्? २३.२०

प्रियंवदा इमं जीविदसव्वस्सेण वि अदिहिविसेसं किदत्थं करिस्सदि।

इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थं कुर्यात्। २३.२१

शकुन्तला *सकृतककोपम्* तुम्हे अवेध! किंवि हिअए करिअ मंतेध। ण वो वअण सुणिस्सं। युवामपेतम्। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न युवयोर्वचनं श्रोष्यामि। २३.२२

राजा वयमपि तावद् भवत्योः सखीगतं किमपि प्रष्टुमिच्छामः। २३.२३

सख्यौ अज्ज! अणुग्गहो विअ इअं अब्भत्थणा। आर्य! अनुग्रह इव इयमभ्यर्थना। २३.२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा (जनान्तिक) अनसूये! कौन है यह चतुर, गम्भीर आकृति वाला। बड़ी ही मीठी कर रहा है बात। लगता है कोई प्रभावशाली है।

अनसूया सखि! कुतूहल मुझ में भी है। पूछती हूँ इससे। (प्रकाश) आर्य जो मीठा बोल रहे हैं तो उससे हिम्मत हो रही पूछने की कि – 'आर्य ने किन राजर्षियों का कौन सा वंश किया है अलंकृत, कौन सा देश कर दिया विरह से पर्युत्सुक और किस निमित्त सुकुमारतर स्वयं को तपोवन तक आने के कष्ट में डाला।

शकुन्तला हृदय! उछल मत। तेरी सोची बात अनसूया पूंछ रही है।

राजा (स्वगत) कैसे अब बतलाऊँ खुद को और कैसे छिपाऊँ? कोई बात नहीं ऐसा कहूँगा। (प्रकाश) आर्ये! जिसे पुरुवंश के राजा ने धर्माधिकार के लिए नियुक्त किया है वह हूँ मैं। यहाँ धर्मारण्य में तपस्वियों के कार्य ठीक से तो चल रहे हैं यह जानने आया हूँ।

अनसूया सनाथ हैं इस क्षण धर्मचारी लोग।

शकुन्तला (शृङ्गारलज्जा का अभिनय करती है।)

दोनों सखियाँ (दोनों का आकार समझ कर जनान्तिक) हला शकुन्तले! यदि आज तात यहाँ होते?

शकुन्तला (सरोष जैसी) तो क्या होता?

प्रियंवदा इस विशिष्ट अतिथि को प्राणों के सर्वस्व से कृतार्थ कर देते।

शकुन्तला (बनावटी कोप के साथ) हटो तुम। मन में कुछ रख कर बोल रही हो तुम। तुम्हारी बात नहीं सुनूँगी।

राजा हम भी तुम्हारी सखी के बारे में कुछ पूछना चाहते हैं।

दोनों सखियाँ आर्य! अनुग्रह जैसी है आपकी यह अभ्यर्थना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा भगवान् काश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः, इयं च वः सखी तदात्मजेति कथमेतत्? २३.२५

अनसूया सुणादु अज्जो। 'अत्थि को वि कोसिओ त्ति गोत्तणामहेओ महप्पहावो राएसी'।

शृणोत्वार्यः। अस्ति कोऽपि कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः। २३.२६

राजा अस्ति। श्रूयते। २३.२७

अनसूया तं णो पिअसहीए पहवं अवगच्छ। उज्झिदाए सरीरसंवड्ढणादीहिं तादकस्सवो से पिदा। तमावयोः प्रियसख्याः प्रभवमवगच्छ। उज्झितायाः शरीरसंवर्धनादिभिस्तातकाश्यपोऽस्याः पिता। २३.२८

राजा 'उज्झित'—शब्देन जनितं मे कौतूहलम्। आ मूलाच्छ्रोतुमिच्छामि। २३.२९

अनसूया सुणादु अज्जो। 'गोदमीतीरे पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किंवि जादसंकेहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा प्पेसिदा णिअमविग्घकालिणी।' शृणोत्वार्यः; गौतमीतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेः उग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर् मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी।२३.३०

राजा अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्। ततस्ततः। २३.३१

अनसूया तदो वसंतोदाररमणिज्जे समए से उम्मादइत्तं रूवं पेक्खिअ' *इत्यर्धोक्ते लज्जया विरमति।* ततो वसन्तोदाररमणीये समये तस्या उन्मादयितृ रूपं प्रेक्ष्य,२३.३२

राजा परस्ताद् गम्यत एव। सर्व्वथा अप्सरःसंभवैषा। २३.३३

अनसूया अध किं। अथ किम्? २३.३४

राजा उपपद्यते — २३.३५

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥ २३॥

शकुन्तला *अधोमुखी तिष्ठति।* २४.१

राजा *आत्मगतम्* लब्धावकाशो मे मनोरथः। किं तु सख्या परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधीभावकातरं मे मनः। २४.२

प्रियंवदा *सस्मितम्। शकुन्तलां विलोक्य नायकाभिमुखी भूत्वा*
पुणो वि वत्तुकामो विअ अज्जो। पुनरपि वक्तुकाम इवार्यः। २४.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — भगवान् काश्यप के विषय में यह सूचना है कि वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं और यह तुम्हारी सखी उनकी पुत्री है, यह कैसे?

अनसूया — सुनिए आर्य! एक हैं गोत्र के आधार पर कौशिक नामक राजर्षि। बड़े ही प्रभावशाली हैं वे।

राजा — हैं, सुना है।

अनसूया — उन्हें आप इसका जन्मदाता पिता समझें। छोड़ दी गई थी यह तो। पाला है तात काश्यप ने, अतः वे हैं इसके पिता।

राजा — छोड़ने की बात से कुतूहल जागा है। शुरू से सुनना चाहता हूँ।

अनसूया — सुनिए आर्य! पहले कभी गौतमी तीर पर वह राजर्षि उग्र तप कर रहे थे, तो देवताओं को कुछ शंका हुई। उन्होंने मेनका नामक अप्सरा भेजी नियमविघ्न करने हेतु।

राजा — हाँ देवताओं को अन्य की समाधि से डर लगता ही है। तब?

अनसूया — पश्चात्, एक समय वसन्त ऋतु के सुन्दर समय में उसका उन्मादक रूप देखकर (अर्धोक्ति के साथ रुकती है)।

राजा — आगे स्पष्ट ही है कि अप्सरा से हुआ है इसका जन्म।

अनसूया — और क्या?

राजा — ठीक ही है –

यह रूप मानुषी स्त्रियों में संभव ही कैसे? प्रभातरल (चमचमाता)
तारा जमीन से पैदा नहीं होता ।। २३।।

शकुन्तला — (अधोमुखी बैठती है।)

राजा — (स्वगत) मेरी कामना को जगह तो मिली। किन्तु सखी की वरप्रार्थना का परिहास सुन कर मेरा मन द्वैधीभाव से कातर है।

प्रियंवदा — (मुसकुराकर शकुन्तला को देखकर नायक की ओर मुख करके) और कुछ कहना चाहते हैं आर्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला *सखीमङ्गुल्या तर्जयति।* २४.४

राजा सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नः सच्चरितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्। २४.५

अनसूया अलं विआरिअ। अणिअंतणाणुओओ तवस्सिजणो णाम।

अलं विचार्य। अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम। २४.६

राजा सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि — २४.७

वैखानसं किमनया व्रतमा प्रदानाद्
व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम् ।
अत्यन्तमेव सदृशेक्षणवल्लभाभि–
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः ।। २४।।

प्रियंवदा अज्ज! धम्मचरणे वि परवसो अअं जणो। गुरुणा उण से अणुरूववरप्पदाणे संकप्पो।

आर्य! धर्मचरणेऽपि परवशोऽयं जनः, गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने संकल्पः। २५.१

राजा *आत्मगतम्* न दुरवापेयं खलु प्रार्थना। २५.२

भव हृदय! साभिलाषं संप्रति सन्देहनिर्णयो जातः ।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ।। २५।।

शकुन्तला *सरोषमिव* अणसूए! गमिस्सं अहं। अनसूये। गमिष्याम्यहम्। २६.१

अनसूया किं णिमित्तं? किंनिमित्तम्? २६.२

शकुन्तला इमं असंबद्धप्पलाविणिं पिअंवदं अज्जाए गोदिमिए णिवेदइदुं।

इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै निवेदयितुम्। २६.३

अनसूया सहि! ण दे जुत्तं अकिदसक्कारं अदिहिविसेसं विसज्जिअ सच्छंददो गमणं।

सखि! न युक्तं ते अकृतसत्कारमतिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम्। २६.४

शकुन्तला *न किञ्चिदुक्त्वा प्रस्थितैव।* २६.५

राजा *आत्मगतं* कथं गच्छति? *ग्रहीतुमिच्छन्निगृह्यात्मानम्, आत्मगतम्*

अहो! चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः। अहं हि— २६.६

अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः ।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः ।। २६।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला (सखी को अङ्गुली से डाँटती है।)

राजा ठीक समझा आपने। सच्चरित के श्रवण के लोभ से अन्य भी कुछ प्रष्टव्य है।

अनसूया विचारने की कोई आवश्यकता नहीं। तपस्वियों से प्रश्न में नियन्त्रण नहीं रहता।

राजा तुम्हारी सखी के विषय में यह जानना चाहता हूँ कि

क्या इसने काम विकार को रोकने वाला वैखानस–व्रत केवल विवाह के पहले तक के लिए धारण किया है या आँखो की समानता के कारण प्रिय हरिणाङ्गनाओं के ही साथ सदा रहना है इसे ।। २४।।

प्रियंवदा आर्य! यह तो तप के लिए भी उत्सुक है, परन्तु पिताजी का संकल्प है इसे अनुरूप वर को प्रदान करने का।

राजा (स्वगत) इस इच्छा का पूरा होना कठिन नहीं है –

हे हृदय! साभिलाष हो। अब संदेह का निर्णय हो गया। जिसे तू अग्नि समझ रहा था वह निकला स्पर्शक्षम रत्न ।। २५।।

शकुन्तला (गुस्सा सा करके) अनसूये! मैं चली जाऊँगी।

अनसूया क्यों?

शकुन्तला इस असंबद्धप्रलापिनी प्रियंवदा के विषय में आर्या गौतमी से कहने के लिए।

अनसूया सखि! ठीक नहीं है, विशिष्ट अतिथि का सत्कार किए बिना अपनी इच्छा से चले जाना।

शकुन्तला (बिना कुछ कहे चलने ही लगी)

राजा (स्वगत) क्यों जा रही है? (पकड़ना चाहता है किन्तु स्वयं को रोककर स्वगत) देखो तो कामिजन की चित्तवृत्ति चेष्टा में प्रतिफलित हो जाती है। मैं जो हूँ सो–

मुनिपुत्री शकुन्तला के पीछे जाने के लिए उत्सुक था, परन्तु विनय ने सहसा रोक दिया। स्थान से बिना हटे ही जाकर लौट सा आया ।। २६।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा *शकुन्तलां प्रतिरुध्य* हला! ण दे जुत्तं गन्तुं। सखि! न ते युक्तं गन्तुम्। २७.१

शकुन्तला *सभ्रूभङ्गम्* किं णिमित्तं। किंनिमित्तम्? २७.२

प्रियंवदा रुक्खसेअणं दुअं धारेसि मे। एहि दाव अत्ताणं मोचअ। तदो गमिस्ससि। *बलादेनां निवर्त्तयति।* वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे। एहि तावत्; आत्मानं मोचय ततो गमिष्यसि। (बलादेनां निवर्त्तयति।) २७.३

राजा भद्रे! वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये। तथाह्यस्याः— २७.४

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणा—
दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः ।
स्रस्तं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्य्याकुला मूर्धजाः ।। २७।।

तत् अहमेनामनृणां करोमि। *अङ्गुलीयं दातुमिच्छति।* २८.१

उभे *नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयतः।* २८.२

राजा अलमस्मानन्यथा संभाव्य। राज्ञः परिग्रहोऽयमिति राजपुरुषं माम् अवगच्छथ। २८.३

प्रियंवदा तेण हि णारिहदि एदं अंगुलीअअं अंगुलीविओअं। अज्जस्स वअणेण अणिरिणा दाणिं एसा। *किञ्चिद् विहस्य।* हला सउंदले! मोइदासि अणुअंपिणा अज्जेण, अहवा महाराएण। गच्छ दाणिं। तेन हि नार्हत्येतद— ङ्गुलीयकमङ्गुलीवियोगम्। आर्यस्य वचनेन अनृणा इदानीम् एषा।(किञ्चिद् विहस्य) सखि शकुन्तले! मोचितासि अनुकम्पिना आर्येण, अथवा महाराजेन; गच्छेदानीम्।२८.४

शकुन्तला *आत्मगतम्* गमिस्सं जइ अत्तणो पहविस्सं। *प्रकाशम्* का तुमं विसज्जिदव्वस्स रुंधिदव्वस्स वा? (आत्मगतम्) गमिष्यामि, यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। (प्रकाशम्) का त्वं विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा? २८.५

राजा *शकुन्तलां विलोक्यात्मगतम्* किं नु खलु यथा वयमस्याम् एवमियमपि अस्मान् प्रति स्यात्। अथवा लब्धावकाशा मे प्रार्थना। कुतः— २८.६

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे ।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीयं
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ।। २८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा (शकुन्तला को रोककर) सखि! तेरा जाना ठीक नहीं।

शकुन्तला (भ्रूभङ्ग के साथ) क्यों?

प्रियंवदा मेरे दो वृक्ष सींचना तुझ पर चढ़ा है। आ अपने को छुड़ा। तब जाना। (इसे बलात् लौटाती है)।

राजा भद्रे! लगता है ये वृक्ष सींचने से ही थकी हुई लग रही हैं। क्योंकि इनके – **दोनों बाहुओं के कन्धे ढीले दिखाई दे रहे हैं, हथेलियाँ बहुत अधिक लाल हैं घड़े उठाने से, श्वास की जो गति तेज हुई उससे इसके स्तन अभी तक काँप ही रहे हैं। पसीने की जो धार धूप से बनी है उससे कर्णशिरीष का खिसकना रुक गया है और जूड़ा खुल जाने से खुरदुरे** (अस्त व्यस्त) **हुए केश एक हाथ से पकड़े हुए हैं ॥ २७॥**

इसे मैं अनृण करता हूँ। (अङ्गुलीयक देना चाहता है)।

दोनों सखियाँ (नाममुद्रा बाँच कर एक दूसरे को देखती हैं।)

राजा हमें अन्यथा न समझें। यह अँगूठी राजा की है इसलिए मुझे राजपुरुष समझें।

प्रियंवदा तो यह अँगूठी अंगुली वियोग के योग्य नहीं है। आर्य के कहने से ही अब यह अनृणा हो गई। (कुछ हँसकर) सखि शकुन्तला! छुड़ा दी गई है तू कृपालु आर्य के द्वारा अथवा महाराज के द्वारा। अब जा तू।

शकुन्तला (स्वगत) यदि जा सकूँगी। (प्रकाश) तू कौन होती है भेजने वाली या रोकने वाली?

राजा (शकुन्तला को देखकर स्वगत) क्या यह भी हमारी ओर उसी प्रकार खिंची है जिस प्रकार इसकी ओर हम। अथवा मेरी प्रार्थना उचित है। क्योंकि, **यद्यपि मेरी बात में बात नहीं मिलाती, तथापि मैं बोलता हूँ तो उस पर कान देती है। भले ही मेरे सामने खड़ी न रहे यह, तब भी इसकी दृष्टि अधिक देर तक अन्यत्र नहीं जाती ॥ २८॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपथ्ये/आकाशे २९.१

भो भोस्तपस्विनः! सन्निहितास्तपोवनसत्त्वरक्षायै भवत। प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः — २९.२

तुरगखुरहतस्तथाहि रेणुर्विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु ।
पतति परिणताऽरुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ।। २९।।

अपि च —३०.१

तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धभग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयाऽऽसङ्गसञ्जातपाशः ।
मूर्त्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्म्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ।। ३०।।

सर्वाः *कर्णं दत्वा किञ्चिदिव संभ्रान्ताः।* ३१.१

राजा *आत्मगतम्* अहो धिक् पौरा मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति। भवतु। प्रतिगमिष्यामस्तावत्। ३१.२

सख्यौ अज्ज! इमिणा आरण्णअवुत्तंतेण पज्जाउला म्हो। अणुजाणाहि णो उडअगमणाअ। आर्य! अनेनारण्यकवृत्तान्तेन पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि नः उटजगमनाय। ३१.३

राजा *ससम्भ्रमम्* गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमपीडा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे। ३१.४

सर्वे *उत्तिष्ठन्ति।* ३१.५

सख्यौ अज्ज! असंभाविदअदिहिसक्कारा भूओ वि पेक्खणनिमित्तं लज्जामो अज्जं विण्णविदुं। आर्य! असंभावितातिथिसत्कारा भूयोऽपि प्रेक्षणनिमित्तं लज्जावहे आर्यं विज्ञापयितुम्। ३१.६

राजा मा मैवम्। दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि। ३१.७

शकुन्तला *द्विपदिकया भङ्गं रूपयन्ती* अणसूए! हद्धी हद्धी। अहिणवकुससूइपरिक्खदं मे चलणं। *स्थित्वा राजानं विलोक्य पुनर्द्विपदिकया स्थित्वा* सहि! कुरबअसाहा—परिलग्गं अ मे वक्कलं। ता पडिवालेध मं जाव णं मोआवेमि।

भूयोऽपि राजानं सव्याजं विलोकयन्ती सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नेपथ्य/आकाश में)

भो भो तपस्विजनों! तपोवन के प्राणियों की रक्षा के लिए अपने अपने स्थान के पास आ जाओ। मृगयाविहारी राजा दुष्यन्त पास आ गया है। देखो देखो –

घोड़ों के खुरों से उठी यह धूल चिपक गई है शाखाओं पर लटके भीगे वल्कलों पर। यह ऐसी लग रही है जैसे सूर्य के सान्ध्य तेज जैसा अरुण वर्ण का शलभ समूह हो आश्रमवृक्षों पर टूटता ।। २९।।

दूसरे –

तीव्र आघात से आहत तरुशाखा से एक दाँत तोड़े, पैर से खिंचे लता समूह के आसङ्ग से बाँधा हुआ, मृगयूथों को तितर–बितर कर रहा यह गज रथ के देखने से डर कर धर्मारण्य में आ घुसा है ।। ३०।।

सभी (कान देकर कुछ डरती हैं।)

राजा (स्वगत) अहो धिक्, मुझे खोज रहे नगरवासी लोग तपोवन को पीड़ा पहुँचा रहे हैं। कोई बात नहीं। लौट जाएँगे।

दोनों सखियाँ आर्य! इस आरण्यक वृत्तान्त से पर्याकुल हैं हम। अनुज्ञा दीजिए हमें उटज जाने की।

राजा (जल्दी जल्दी में) जावें आप सब। हम भी प्रयत्न करेंगे कि आश्रमपीड़ा न हो।

सभी (उठ खड़े होते हैं।)

दोनों सखियाँ आर्य! अतिथि सत्कार न कर सकने से हम लज्जित हैं आपको पुनः दर्शन देने का अनुरोध करने में।

राजा नहीं नहीं, ऐसा नहीं। आप सबके दर्शन से ही मैं (सत्कृत क्या) पुरस्कृत हो गया हूँ।

शकुन्तला (दो डग चलकर रुकावट कर अभिनय करती हुई) अनसूये! हाय हाय, कुश की नई नोंक से पैर घायल हो गया मेरा (रुककर राजा को देखकर फिर दो डग चलकर रुक जाती है) सखि! मेरा वल्कल कुरबक की शाखा में उलझ गया है, थोड़ा रुक जा जब तक इसे छुड़ाती हूँ।

(फिर राजा पर दृष्टि लगाए व्याजपूर्वक, सखियों के साथ निकल जाती है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(द्विपदिकया भङ्गं रूपयन्ती) हा धिक्, हा धिक्, अभिनवकुशसूचिपरिक्षतौ मे चरणौ (स्थित्वा राजानं विलोक्य पुनर्द्विपदिकया स्थित्वा) सखि! कुरवकशाखापरिलग्नं च मे वल्कलम्। तत् प्रतिपालयतं माम्, यावदेतत् मोचयामि।

(भूयोऽपि राजानं सव्याजं विलोकयन्ती सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता।) ३१.८

राजा *निश्श्वस्य* हन्त। गताः सर्वाः। अहं पुनः मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति, यावदनुयात्रिकान् समेत्य दूरे तपोवनस्य निवेशयामि। *द्विपदिकया* न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्त्तयितुम्। मम हि — ३१.९

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ।। ३१ ।।

निष्क्रान्ताः सर्वे ३२.१

इति कालिदासकृतौ अभिज्ञानशाकुन्तले नाटके शकुन्तलासंस्तवो नाम प्रथमोऽङ्कः ।। १ ।।[१] ३२.२

---

१. इदमैदम्पर्यमस्य

हस्तिनापुरपतेरपुत्रिणश्चक्रवर्त्तिसुतलाभहेतवे ।
काश्यपेन मृगरूपिणाऽऽहृते पौरवेऽत्र निहिता शकुन्तला ।। १ ।।
तत्त्वतः समुपलभ्य तामिमां रूपिणीं श्रियमिव स्तनद्वये ।
वीक्ष्य धैर्यममुचच्च तद्गतामन्वमंस्त च रतिं निजं प्रति ।। २ ।।
कालिदासकृतिमद्भुतामिमां[२] पश्चिमाब्धिसकलेन्दुविभ्रमाम् ।। ३ ।।
प्राकृतेऽपि दृढमीक्षिकां श्रितः पाण्डुलेखमभिवीक्ष्य धैर्यतः ।
लेखिनीमहमचालयं भवेत् प्रीणितः खलु ततो महेश्वरः ।। ४ ।।
८.२.२००४ सोमः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (लम्बी साँस लेकर) मैं तो अब नगर जाने के लिए कम उत्सुक हूँ। चलूँ पीछे आ रहे लोगों से मिलकर तपोवन से दूर उनका पड़ाव डलवा दूँ। मेरा –

शरीर तो चल रहा है आगे पर मन दौड़ रहा है पीछे, ऐसा बनकर जैसे इसका मुझसे कुछ लेना देना ही नहीं है; सामने की हवा हो तो उसी ओर चले रथ के चीनांशुक के समान।। ३१ ।।

(सभी निकल जाते हैं।)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में 'शकुन्तलासंस्तव' नामक प्रथम अंक पूर्ण हुआ ।। १ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ द्वितीयाङ्कप्रवेशकः।।[१] १.१

।।१।।

ततः प्रविशति विषण्णो विदूषकः १.२

विदूषकः *निःश्वस्य* भो! दिट्ठं[२]। एदस्स मअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो म्हि। अअं मओ अअं वराहो अअं सद्दूलो त्ति मज्झण्णे वि गिम्हविरलपाअवछाआसु वणराइसु आहिण्डीअदि अडवीदो अडवी। पत्तसंकरकसआइँ कडुआइँ गिरिणदीजलाइं पीअंदि। अणिअदवेलं सूल्लमंसभूइट्ठो आहारो अण्हीअदि। तुरगाणुधावणकंडिदसंधिणो रत्तिं वि णिकामं सइदव्वं णत्थि। तदो महंते एव्व पच्चूसे दासीए पुत्तेहिं सउणिलुद्धएहिं वणग्गहणकोलाहलेण पडिबोहिदो म्हि। एत्तएण दाणिं वि पीडा ण णिक्कमदि। तदो गण्डस्स उवरि पिण्डओ संवुत्तो। हिओ किल अम्हेसु ओहीणेसु तत्तभोदो मिआणुसारेण अस्समपदं पविट्ठस्स तावसकण्णआ सउंदला मह अधण्णदाए दंसिदा। संपदं णगरगमणस्स मणो कहं वि ण करेदि। अज्ज वि तस्स तं एव्व चिंतअंतस्स अक्खीसु प्पभादं आसि। का गदी? जाव णं किदाचारपरिक्कमं पेक्खामि।

(निःश्वस्य) भोः! दृष्टम्। एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्य भावेन निर्विण्णोस्मि। अयं मृगः, अयं वराहः, अयं शार्दूल इति मध्याह्नेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजी–ष्वाहिण्ड्यतेऽटवीतोऽटवी। पत्रसंकरकषायाणि कटूनि गिरिनदीजलानि पीयन्ते। अनियतवेलं शूल्यमांसभूयिष्ठ आहारो भुज्यते। तुरगानुधावनकण्डितसंधे रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति। ततो महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। इयतेदानीमपि पीडा न निष्क्रामति। ततो गण्डस्योपरि पिटकः संवृत्तः। ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यतया दृष्टा। सांप्रतं नगरगमनस्य मनः कथमपि न करोति। अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातमासीत्। का गतिः? यावत् तं कृताचारपरिक्रमं पश्यामि।

---

१. इयमस्माकं योजना ।

२. दिट्ठं १०८४–१०८६ हामा.। कट्ठं अन्यत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीयाङ्क प्रवेशक।।

।।१।।

(प्रवेश करता है विषण्ण विदूषक)

विदूषक (लम्बी साँस लेकर) भो! देख लिया। इस मृगयाशील राजा की मित्रता से तो ऊब चुका हूँ। यह मृग है, यह वराह है, यह शार्दूल है। ऐसा कर करके दोपहर में भी दौड़ते दौड़ते एक जंगल से दूसरे जंगल, ऊपर से ऋतु ग्रीष्म, पैड़ों में पत्तों का नाम नहीं, छाया बड़ी विरल। पीने को मिलता है जंगली नदियों का पानी जो मात्रा में भी बहुत कम रहता और सड़े पत्तों से कसैला भी। खाना भी मिलता है कभी कभी और वह भी अधिकतर शूलमांस ही। घोड़े से दौड़ना पड़ रहा है शिकारों के पीछे तो अंग अंग शिथिल पड़ गए हैं, इसलिए रात को भी भर नींद सोना कठिन हो गया है। तिस पर भी बहुत सबेरे ही पक्षियों के, दासीपुत्र (हरामजादे) शिकारियों की चिल्ल–पौं ने जगा दिया है। इस कारण इस समय भी पीड़ा नहीं हट रही है। इसके आगे तो गण्ड पर फुड़िया निकल आई। कल ही की बात है हम लोग इधर उधर थे तभी हिरन का पीछा करते करते आश्रमपद में महाराजा साहब जा पहुँचे और वहाँ कोई तापस छोकरी शकुन्तला, मेरे दुर्भाग्य से दिखाई दे गई। अब नगर लौटने का मन किसी भी प्रकार नहीं कर रहे हैं। आज भी उसी की चिन्ता करते करते उसकी आँख नहीं लगी और सबेरा हो गया। क्या किया जाए, कोई रास्ता नहीं? चलूँ इसके दर्शन करूँ परिक्रमा की रस्म पूरी कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिक्रम्यावलोक्य च एसो बाणाऽसणहत्थाहिं जवणीहिं वणपुप्फ–माला–धारिणीहिं पडिवुदो इदो येव्व आअच्छदि पिअवअस्सो। होदु। अंगभंग–विअलो विअ भविअ चिट्ठिस्सं जइ एव्वं वि णाम विस्समं लहेअं।

(परिक्रम्यावलोक्य च) एष बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वनपुष्पमालाधारिणीभिः परिवृतः इत एवागच्छति प्रियवयस्यः। भवतुः अङ्गभङ्गविकल इव भूत्वा स्थास्यामि। यद्येवमपि नाम विश्रमं लभेय।

दण्डकाष्ठमवलम्ब्य स्थितः। १.३

।।प्रवेशकः।। १.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घूमकर और देखकर) ये देखो धनुष ली हुई यवनियों से, जो जंगली फूल की माला पहनी हुई हैं, घिरा घिराया इधर ही आ रहा है प्रिय वयस्य। जो हो। अंगभंगविकल सा होकर बैठूँगा, यदि इस प्रकार भी विश्राम पा जाऊँ।

(दण्डकाष्ठ लेकर वैसा ही बैठ जाता है)

।। प्रवेशक समाप्त।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ द्वितीयोऽङ्कः।। १.५

।। २।।

ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा १.६

राजा *आत्मगतम्* १.७

कामं प्रियां न सुलभा मनस्तु[1] तद्भावदर्शनाश्वासि[2]।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ।। १।।

स्मितं कृत्वा एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता जनो विडम्ब्यते। तथाहि– २.१

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत् प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव ।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत् किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति ।। २।।

विदूषकः *तथास्थित एव* भो वअस्स! ण मे हत्थपादा पसरंदि। ता वाचामत्तेण जीवइस्सामि[3]। भो वयस्य! न मे हस्तपादं, प्रसरति। तत् वाङ्मात्रेण जीवयिष्यामि। ३.१

राजा *सस्मितम्* भो वयस्य! कुतोऽयं गात्रोपघातः? ३.२

विदूषकः कुदो किल? सअं अच्छिं आउलीकरिअ अस्सुकारणं पुच्छसि?
कुतः किल? स्वयमेव अक्षि आकुलीकृत्य अश्रुकारणं पृच्छसि? ३.३

राजा न खल्ववगच्छामि। ३.४

विदूषकः भो वअस्स! जं वेतसो खुज्जलीलं विडंबेदि तं किं अत्तणो पहावेण उण णईवेअस्स? भो वयस्य! यद् वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति तत्किमात्मनः प्रभावेण उत नदीवेगस्य? ३.५

राजा नदीवेगस्तत्र कारणम्। ३.६

---

१. मनश्च १०८६ हामा.।
२. श्वासि नायासि १०८४–८६ हामा.। आयास एष आश्वासौपायिक एवेति प्रसिद्ध एव पाठो युक्ततरः।
३. जीवौवइस्सं १०८४ हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रैवतक जो आज्ञा। (निकल जाता है और सेनापति के साथ फिर से प्रवेशकर) ये हैं आज्ञा–वचन के लिए उत्कण्ठित मालिक, इनकी दृष्टि इधर ही है। जाएँ पास।

सेनापति (राजा को देखकर स्वगत) मृगया में दोष तो हैं, परन्तु मालिक में तो यह केवल लाभकारी (गुण) ही सिद्ध हुई। क्योंकि – **इनका शरीर दुबला गया है, किन्तु इसमें प्राणों की शक्ति है जैसे किसी गिरिचारी हाथी में हुआ करती है। दुबले होने का कारण भी स्पष्ट है– निरन्तर खींचते रहते हैं ये प्रत्यञ्चा, करते रहते आस्फालन, इससे धूप इन्हें सह्य हो गई है, पसीना नहीं छूट रहा है। अब दुबलाहट भी समझ में नहीं आ रही है क्योंकि डील–डौल भारी है इनका।।४।।**

(पास जाकर) (प्रकाश) जय हो! महाराज की। सिंह का जंगल घेर लिया गया है। और क्या करना है?

राजा मेरा उत्साह माधव्य ने मन्द कर दिया है, मृगया का विरोध कर।

सेनापति (जनान्तिक) सखे! ऐसी ही रुकावट लगाए रहना। मैं स्वामी की इच्छा का अनुवर्त्तन करूँगा। (प्रकाश) यह तो मूर्ख है। बकने दीजिए इसे। आप खुद प्रमाण हैं कि– **मृगया जैसा विनोद नहीं। इसमें चर्बी कट जाती है और पेट कृश हो जाता है, शरीर में स्फूर्त्ति आ जाती है और चट से उठ खड़े होना संभव हो जाता है। प्राणियों के मन में विकृति आती है तो उसमें उनकी जो विकृतियाँ होती हैं उनको जानने का अवसर मिलता है। इससे बड़ा और क्या उत्कर्ष होगा धनुषधारी वीरों के लिए कि उनको सिद्धि मिल जाती है चल लक्ष्य के वेध की। लोग झूठे ही मृगया को व्यसन कहते हैं।।५।।**

विदूषक (रोष करते हुए) बड़ा आया बढ़ावा देने वाला। भाग, भाग। महाराज जिस किसी प्रकार प्रकृति में लौटे हैं। मरना हो तो तू मर। घूम इस जंगल से उस जंगल। कोई मिल जाएगा तुझे नरनासिका का लोलुप बूढ़ा रीछ, जा पड़ उसके मुँह में।

राजा भद्र सेनापति! हमारा पड़ाव आश्रम के पास है, अतः तुम्हारी बात नहीं मानूँगा। आज जो है –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु ।
विस्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रान्तिं[1] लभतामिदञ्च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः ।। ६।।

सेनापतिः यत् प्रभविष्णवे रोचते। ७.१

राजा तेन हि निवर्त्तय पूर्व्वगतान् वनग्राहिणः। यथा न मे सैनिकास्तपोवनमु–परुन्धन्ति तथा निषेद्धव्याः। पश्य – ७.२

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।
स्पर्शानुकूलापि हि [2]सूर्यकान्तास्तेजोऽन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ।। ७।।

सेनापतिः यदाज्ञापयति स्वामी। ८.१

विदूषकः भो! धंसिदो दे उत्साहवुत्तंतो। भो! ध्वस्तः ते उत्साहवृत्तान्तः। ८.२

निष्क्रान्तः सेनापतिः ८.३

राजा *परिजनं विलोक्य* अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेषम्। रैवतक! त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु। ८.४

परिजनः जं देवो आणवेदि। *निष्क्रान्तः।* यद् देव आज्ञापयति। (निष्क्रान्तः)। ८.५

विदूषकः किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संवदं एतस्सिं पादवच्छाआए विरइदलदाविदाणदंसणीज्जाए आसणे णिसीददु भवं। जाव अहं वि सुहासीणो होमि। कृतं भवता निर्मक्षिकम्। सांप्रतमेतस्यां पादपच्छायायां विरचित–लतावितानदर्शनीय आसने निषीदतु भवान्, यावदहमपि सुखासीनो भवामि। ८.६

राजा गच्छाग्रतः। ८.७

विदूषक एदु एदु भवं। एतु एतु भवान्। ८.८

उभौ *परिक्रम्योपविष्टौ।* ८.९

राजा सखे माधव्य! अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्। ८.१०

विदूषक णं भवं अग्गतो मे वट्टई। ननु भवानग्रतो मे वर्तते। ८.११

---

१. विश्रान्तिं १०८५, विश्रामं १०८४, १०८६ हामा.,काग्र.।

२. कान्तास्तेजोऽन्यतेजो = कान्तास्तदन्यतेजो १०८४, १०८६ हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गड्ढों के जल का अवगाहन सींगो से पीट पीटकर करें खूब भैंसे, मृगसमूह कहीं भी छाया में गोल बनाकर करें अभ्यास रोंथने (जुगाली) **का, वराहपंक्तियाँ बेखटके काटें मुस्ता गड्ढों में और हमारा यह धनुष भी कर ले विश्राम ज्याबन्ध से छूटकर।। ६।।**

सेनापति जैसी महाराज की इच्छा।

राजा इसलिए वन में शिकार के लिए गए हुए सैनिकों को लौटा लो । मेरे सैनिक तपोवन में विघ्न न करें ऐसा निर्देश उनको दे दो। देखो – **शान्तिप्रधान तपस्वियों में छिपा रहता है भस्म कर देने वाला तेज, जिसे वे प्रकट करते हैं, जब उन्हें चोट पहुँचती है। स्पर्शयोग्य सूर्यकान्त मणि आग उगलने ही लगती है जब उस पर अन्य** (सूर्य) **का प्रकाश पड़ता है।। ७।।**

सेनापति जैसी आज्ञा स्वामी की।

विदूषक भो! ध्वंस हो गया तेरे उत्साहवृत्तान्त का।

(सेनापति चला गया।)

राजा (परिजनों को देखकर) आप सब भी मृगया वेष बदल लें। रैवतक! तुम भी अपना काम करो।

परिजन जो आज्ञा देव की। (निकल जाते हैं)।

विदूषक तुमने निर्मक्षिक (जनशून्य) कर दिया। अब इस वृक्ष की छाया में लता वितान से दर्शनीय आसन पर बैठें आप। मैं भी सुखासीन हो जाता हूँ।

राजा चलो आगे।

विदूषक आइए, आइए महाराज।

दोनों (घूमकर बैठ जाते हैं।)

राजा सखे माधव्य! तेरे चक्षु विफल हैं, जिन्होंने देखने योग्य को नहीं देखा।

विदूषक अरे आप तो मेरे सामने हैं ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सर्व्वः खलु कान्तमात्मीयं[१] पश्यति। तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामाश्रित्य ब्रवीमि। ८.१२

विदूषकः *आत्मगतम्* होदु से ओसरं ण दाइस्सं। *प्रकाशम्।* भो वअस्स जदो सा तावसकण्णआ अणब्भत्थणीआ तदो ताए किं दिट्ठाए।

(आत्मगतम्) भवतु, अस्यावसरं न दास्यामि (प्रकाशम्) भो वयस्य यतः सा तापसकन्यका अनभ्यर्थनीया, ततः किं तया दृष्टया? ८.१३

राजा सखे! ८.१४

निराकृतनिमेषाभिः पक्ष्मपङ्क्तिभिरुन्मुखः।
नवामिन्दुकलां लोकः केन भावेन पश्यति।। ८।।

सखे! न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्त्तते। ९.१

सुरयुवतिसम्भवं मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि पतितं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्।। ९।।

विदूषकः *विहस्य* जइ कस्स वि पिंडखज्जूरेहिं उव्वेइदस्स तिंतिणीए अहिलासो भवे तह अंतेउर–इत्थिआ–रअण–परिभोगिणो भवदो इअं अब्भत्थणा।

(विहस्य) यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत्, तथा अन्तःपुरस्त्रीरत्नपरिभोगिनो भवत इयमभ्यर्थना। १०.१

राजा न तावदेनां पश्यसि येन त्वमेवंवादीः। १०.२

विदूषकः तं खु रमणिज्जं जं भवदो वि विम्हअं उप्पादेई।

तत् खलु रमणीयं यद् भवतोऽपि विस्मयमुत्पादयति। १०.३

राजा वयस्य! किं बहुना – १०.४

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।। १०।।

विदूषकः जदि एव्वं पच्चादेसो दाणिं रूववदीणं। यद्येवं, प्रत्यादेशः इदानीं रूपवतीनाम्। ११.१

---

१. मात्मीयां १०८६ काग्र., मात्मानाम् १०८४–१०८५ हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीय अङ्क ।।

।। २।।

(प्रवेश करता है पूर्व सूचित परिवार के साथ राजा)

राजा (स्वगत)

माना प्रिया सुलभ नहीं है, परन्तु, मन तो उसका भाव देखकर आश्वस्त है। मनसिज कृतार्थ भले ही न हो, पर दोनों की चाह मन को रमाए रहती है।। १।।

(स्मित करके) इस प्रकार, प्रीति का पिटा व्यक्ति अपने अभिप्राय से इष्टजन की चित्तवृत्ति का अनुमान करता और विडम्बना सहता रहता है । देखो न –

उसने दृष्टि कहीं अन्यत्र डाली, मैंने सोचा कि मुझे प्रेम से निहारा, वह मन्दगति से चली नितम्बों के बोझ से, परन्तु मैंने सोचा विलास से, सखी ने 'मत जा' कहकर रोका तो असूया के साथ उसने देखा सखी को, किन्तु मैं समझा उसका लक्ष्य मुझको। अहो! कामी स्वता ही स्वता देखता है।। २।।

विदूषक (उसी प्रकार अंगभंगविकल ही बैठे बैठे) भो वयस्य! मेरे तो हाथ पैर चल नहीं रहे हैं, अत: केवल बोलकर तुम्हें जयकारा अर्पित कर रहा हूँ।

राजा (स्मित लिए हुए) भो वयस्य! कैसे आया यह अंगों का उपघात?

विदूषक कैसे पूछते हो? खुद ही ने आँख में ऊँगली कर दी और पूछते हैं आँसू क्यों आ रहे हैं?

राजा समझा नहीं।

विदूषक भो वयस्य! वेतस जो कुब्ज की दशा में पहुँचता है वह क्या अपने प्रभाव से या नदी के वेग से?

राजा उसमें कारण होता है नदी का वेग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः मम वि भवं। ममापि भवान्। ३.७

राजा कथमिव? ३.८

विदूषकः एवं राअकज्जाणि उज्झिअ एत्तरिसे आउलप्पदेसे वणचरवुत्तिणा तुए होदव्वं? यं सच्चं पच्चहं सावदसमुच्छारणेहिं संखोहिअसंधिबंधाणं मम गत्ताणं अणीसो म्हि संवुत्तो। ता पसीददु भवं, विसज्जिदुं मं एक्काहं वि दाव विस्समिदुं।

एवं राजकार्याणि उज्झित्वा एतादृश आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना त्वया भवितव्यम्? यत्सत्यम्, प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसंधिबन्धानां मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत् प्रसीदतु भवान्, विसृजतु मामेकाहमपि तावद् विश्रमितुम्। ३.९

राजा *आत्मगतम्* अयं चैवमाह। ममापि काश्यपसुतामनुस्मृत्य मृगयां प्रति निरुत्सुकं चेतः।[१] तथाहि —३.१०

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु ।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः ।। ३।।

विदूषकः *राज्ञो मुखं विलोक्य* अत्तभवं किं वि हिअए करिअ मंतेदि। अरण्णे मए रुदिअं आसि। अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये मया रुदितमासीत्। ४.१

राजा *सस्मितम्* किमन्यत् अनतिक्रमणीयं मे सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि। ४.२

विदूषकः चिरं जीव। गन्तुमिच्छति ४.३

राजा वयस्य! सावशेषं मे वचः। ४.४

विदूषकः आणवेदु भवं। आज्ञापयतु भवान्। ४.५

राजा विश्रान्तेन भवता ममाप्यनायासे[२] कर्म्मणि सहायेन भवितव्यम्। ४.६

विदूषकः किं मोदअखंडिआए? तेण हि अअं सुगहीदो क्खणो।

किं मोदकखण्डिकायाम्? तेन ह्ययं सुगृहीतः क्षणः। ४.७

राजा यत्र वक्ष्यामि। कस्कोऽत्र भोः? ४.८

प्रविश्य दौवारिकः ४.९

दौवारिकः *प्रणम्य* आणवेदु भट्टा। आज्ञापयतु भर्ता। ४.१०

राजा रैवतक! सेनापतिस्तावदाहूयताम्। ४.११

---

१. मृगयाविक्लवं चेतः बा.।

२. ममाप्येकस्मिन्ननायासे बा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक मेरे भी आप।

राजा कैसे?

विदूषक इस प्रकार राजकाज छोड़कर इस प्रकार के घिरे घिराए जंगल में तुम्हें यह उचित लगता है क्या कि तुम वनचर बनकर दौड़ो? सचमुच प्रतिदिन श्वापद के पीछे हाँका लगाते लगाते शिथिल अंगबन्ध वाला मैं मेरे अंगों का स्वामी नहीं रह गया हूँ। तो मिन्नत करता हूँ मुझे छुट्टी देने की कम से कम एक दिन के लिए भी विश्राम करने हेतु।

राजा (स्वगत) यह भी ऐसा कह रहा है, मेरा भी काश्यप सुता को याद कर मृगया से मन भाग रहा है। क्योंकि –

मैं प्रत्यञ्चा चढ़े धनुष को खींच तक नहीं पा रहा हूँ मृगों पर, जिन्होंने प्रिया को साथ साथ रहकर सिखा दिया है भोली दृष्टि से देखना।। ३।। ?

विदूषक (राजा का मुँह देखकर) आप तो मन ही मन कुछ सोच रहे हैं। मैंने अरण्यरोदन किया था।

राजा (स्मितपूर्वक) और क्या सुहृद्वाक्य अनुल्लंघनीय मान चुप हूँ।

विदूषक चिर जियो। (जाना चाहता है)।

राजा वयस्य! मुझे कुछ कहना था।

विदूषक आज्ञा दें।

राजा जब तुम विश्राम कर लो तब तुमको मेरे भी एक आयासरहित कार्य में सहायक बनना है।

विदूषक क्या लड्डू काटने में? तब तो समय ही समय है।

राजा जिसमें मैं कहूँ। कौन, कौन है यहाँ?

(प्रवेश कर दौवारिक)

दौवारिक (प्रणाम करके) आज्ञा हो मालिक।

राजा रैवतक! सेनापति को बुलाओ तो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रैवतकः तध। *निष्क्रम्य सेनापतिना सह पुनः प्रविश्य* एसो अण्णावअणुक्कंठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी एव्व चिट्ठदि। उवसप्पदु अज्जो। तथा (निष्क्रम्य सेनापतिना सह पुनः प्रविश्य) एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः। ४.१२

सेनापतिः *राजानमवलोक्य आत्मगतम्* कथं दृष्टदोषापि स्वामिनि मृगया केवलं गुण एव संवृत्ता। तथाहि देवः—४.१३

अनवरतधनुर्ज्याऽऽस्फालनक्रूरपूर्व्वं
रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम् ।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्त्ति ।।४।।

उपेत्य प्रकाशम् जयतु स्वामी गृहीतश्वापदमरण्यम्। [१] किमन्यदनुष्ठीयताम्? ५.१

राजा मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयाऽपवादिना माधव्येन। ५.२

सेनापतिः *जनान्तिकम्* सखे! स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्ति—मनुवर्तिष्ये। *प्रकाशम्* प्रलपत्वेष वैधेयः[२]। ननु प्रभुरेव निदर्शनम् — ५.३

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः ।।५।।

विदूषकः *सरोषम्* अवेहि रे उच्छाहहेतुअ! अत्तभवं पकिदिं आपण्णो। तुमं दाव अडवीदो अडविं आहिंडिअ णरणासिआलोलुवस्स जिण्णरिक्खस्स कस्स वि मुहे पडिस्ससि। अपेहि रे उत्साहहेतुक! अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदटवीतोऽटवी—माहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि। ६.१

राजा भद्र सेनापते! आश्रमसन्निकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि। अद्य तावत् — ६.२

---

१. किमन्यदवस्थीयते १०८४—८६ हामा.।

२. वैधेयः १०८४ हामा., वैधवेयः १०८५, १०८६ हामा.। वैधवेयः विधवापुत्रः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — सभी अपने व्यक्ति को मानते हैं सुन्दर। मैं तो कह रहा हूँ आश्रम की ललाम उस शकुन्तला को लेकर।

विदूषक — (स्वगत) जो हो इसे मौका नहीं देना है। (प्रकाश) भो वयस्य! वह है तापसकन्या, इसीलिए उसे चाहा नहीं जा सकता तो देखने से भी क्या!

राजा — सखे! (प्रक्षिप्त)

निर्निमेष पक्ष्मपंक्तियों से नई इन्दुकला को सारा संसार किस दृष्टि से देखता है ॥८॥

सखे! परिहार्य वस्तु पर पौरवों का मन नहीं झुकता।

वह तो फल है अप्सरा का, उसने छोड़ दिया और पड़ा मिला अपत्य है मुनि का, जैसे अकौआ पर टपका हुआ नवमालिका का पुष्प॥ ९॥

विदूषक — (हँसकर) जैसे पिण्डखजूर खाते—खाते ऊबे हुए किसी को इमली की चाह हो वैसी ही है तुम्हारी यह चाह, जिसके रनिवास में स्त्रीरत्न का परिभोग सुलभ है।

राजा — इसे देखा नहीं है इसलिए ऐसा बोल रहा है।

विदूषक — अवश्य की रमणीय है जो तुमको भी विस्मित कर रही है।

राजा — वयस्य! और क्या —

एक ओर विधाता का विभुत्व और एक ओर उसका शरीर देखकर सोचना पड़ता है कि विधाता ने उसके निर्माण के समय या तो पहले गढ़ी होगी सुरम्य मूर्त्ति (चित्र) फिर डाल दिया होगा उसमें सत्त्व (प्राण) या जहाँ जो ग्राह्य था उस उस रूप को किया होगा वहाँ वहाँ से चुनकर इकट्ठा फिर उससे बनाया होगा इसे या मन से ही बना डाला होगा॥१०॥

विदूषक — यदि ऐसा है तो छँट गई सभी रूपवती सुन्दरियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा इदं च मे मनसि वर्त्तते– ११.२

अनाघ्रातं पुष्पं, किसलयमलूनं कररुहैर्
अनाविद्धं[१] रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ।। ११ ।।

विदूषकः तेण हि लहु परित्ताअदु णं भवं। मा कस्स वि तवस्सिणो इंगुदीतेल्लमिस्सचिक्कणसीसस्स हत्थे पडिस्सदि। तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान्। मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति। १२.१

राजा परवती खलु तत्रभवती। न च सन्निहितोऽत्र गुरुजनः। १२.२

विदूषकः अध अत्तभवंतमंतरेण कीरिसो से दिट्ठिराओ?
अथ अत्रभवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः? १२.३

राजा निसर्गादेवाप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः। तथापि तु – १२.४

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणं हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम् ।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया न मदनो विवृतो न च संवृतः ।। १२।।

विदूषकः ण खु दिट्ठमेत्तस्स तुह अंकमारोहदि। न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कमारोहति। १३.१

राजा मिथःप्रस्थाने शालीनतया काममाविष्कृतो भावस्तत्रभवत्या। तथाहि १३.२

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।
आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ।। १३।।

विदूषकः तेण हि गहीदपाहेउ किदोसि ताए। किदं तुए उववणं तवोवणं ति पेक्खामि।
तेन हि गृहीतपाथेयः कृतोऽसि तया। कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति प्रेक्षे। १४.१

राजा सखे! तपस्विभिः कैश्चित् परिज्ञातोऽस्मि। चिन्तय तावत् केनापदेशेन सकृदप्याश्रमे वसामः।[२] १४.२

विदूषकः णं भवं राआं । ननु भवान् राजा । १४.३

राजा ततः किम् ? १४.४

---

१. आविद्धं कुटिलमित्यमरः। अनामुक्तमिति भोजः सरस्वतीकण्ठाभरणम् ४.३१।

२. गच्छामः काग्र., वसामः हामा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा मेरे मन में यह भी विचार जागता है कि–

उसका अनघ रूप एक प्रकार से अनाघ्रात पुष्प है, नाखूनों से अनकटा किसलय है, अनाविद्ध (निर्दोष) रत्न है, अनचखा नया मधु है, पुण्यों का अखण्ड फल है, परन्तु पता नहीं विधाता किस बड़भागी को धन्य करता है उसके भोग से ॥११॥

विदूषक तो इसकी रक्षा शीघ्र ही कर लो आप, ऐसा न हो कि किसी इंगुदी के तेल से चिकने सिर वाले तपस्वी के हाथ में पड़ जाय।

राजा वह बेचारी पराधीन है और गुरुजन यहाँ हैं नहीं।

विदूषक उसकी दृष्टि का राग आपके विषय में कैसा है?

राजा तपस्वियों की कन्याएँ स्वभाव से ही अप्रगल्भ हुआ करती हैं। तथापि–

आँखें मिली तो आँखे अलग कर ली, हँसी भी वह, किन्तु उसके उदय का कारण और कुछ दरसाते हुए। इस प्रकार उसने विनय से वारित रखा मदन की वृत्ति को, परन्तु उसने मदन को न तो स्पष्ट होने दिया और न उसे छिपाकर ही रखा ॥१२॥

विदूषक तो क्या दिखते ही तुम्हारी गोद में आकर बैठ जाती वह?

राजा प्रस्थान करते समय तो उसने अपना भाव और अधिक स्पष्ट कर दिया। क्योंकि –

यह दर्भाङ्कुर चरण में चुभ गया ऐसा कहकर वह तन्वी दो एक डग चल कर एकाएक रुक गई। इसी प्रकार वृक्ष की शाखा में न उलझे अंचल को छुड़ाती खड़ी रही मुख मोड़कर मुझे देखती हुई॥१३॥

विदूषक तुम कलेऊ तो कर ही चुके। तुमने तपोवन को उपवन बना दिया ऐसा समझता हूँ।

राजा सखे! कुछ तपस्वियों ने मुझे देख लिया है। सोच कि किस बहाने फिर से एक बार आश्रम में रुकें।

विदूषक अरे आप तो राजा हैं।

राजा तो इससे क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः को अवरो अवदेसो? णीवारछट्टभाअं अम्हाणं उवहरंदु त्ति।

कः अपरोऽपदेशः? नीवारषष्ठभागमस्माकमुपहरन्त्विति। १४.५

राजा अन्यदेव भागमेते तपस्विनो निर्वपन्ति यो रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यते[1] १४.६

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो/पौरेभ्यो नृपाणां क्षयि तद् धनम् ।
तपः—षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः ॥१४॥

नेपथ्ये[2] १५.१

हन्त सिद्धार्थौ स्वः। १५.२

राजा *कर्णं दत्त्वा* अये धीरप्रशान्तः स्वरः। तपस्विभिर्भवितव्यम्। १५.३

प्रविश्य दौवारिकः १५.४

दौवारिकः जेदु भट्टा। एदे दुवे रिसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवट्ठिदा।

जयतु भर्ता। एतौ द्वौ ऋषिकुमारकौ प्रतीहारभूमिमुपस्थितौ। १५.५

राजा अविलम्बितं प्रवेशय। १५.६

दौवारिकः एसो पवेसेमि *निष्क्रम्य ऋषिकुमारकाभ्यां सह प्रविश्य* इदो इदो भअवंता।

एष प्रवेशयामि। (निष्क्रम्य ऋषिकुमारकाभ्यां सह प्रविश्य) इत इतो भवन्तौ। १५.७

॥ ३ ॥

उभौ *राजानं विलोकयतः*। १५.८

प्रथमः अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयताऽस्य वपुषः। अथवा उपपन्नमेतद् मुनिभ्यो नातिभिन्ने राजनि। कुतः — १५.९

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्व्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति ।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्व्वः ॥१५॥

द्वितीयः गौतम! अयं स बलभित्सखो दुःष्यन्तः? १६.१

गौतमः अथ किम्। १६.२

द्वितीयः तेन हि — १६.३

---

१. राजा — धिङ् मूर्ख! अन्यद् भागधेयमेतेषां रक्षणे निपतति यद् रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यम्। पश्य — बा.।

२. नेपथ्ये/आकाशे काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक दूसरे किसी बहाने की आवश्यकता ही क्या? 'तुम राजा लोगों के लिए नीवार का छठा हिस्सा दो' इसे छोड़कर।

राजा इनकी रक्षा का भाग (टैक्स) दूसरा ही मिलता है, जो रत्नराशियों से भी बड़ा हुआ करता है। देख –

जो धन पुरवासी वर्णों से उघाया जाता है वह तो नश्वर है, ये आरण्यक देते हैं हमें तप का छठा भाग जो अक्षय्य हुआ करता है ॥१४॥

(नेपथ्य में)

हन्त बन गया कार्य हम दोनों का।

राजा (सुनकर) अये! यह स्वर धीर और प्रशान्त है। तपस्वियों को होना चाहिए।

(प्रवेश कर)

दौवारिक जय हो मालिक की। ये दो ऋषिकुमार प्रतिहार भूमि में उपस्थित हैं।

राजा भेजो उन्हें बिना विलम्ब के।

दौवारिक यह कराया उन्हें प्रविष्ट। (निकलकर दोनों ऋषिकुमारों के साथ प्रवेश कर) इधर आवें भगवन्!

॥ ३ ॥

दोनों (राजा को देखते हैं)

प्रथम अहो कैसा अच्छा है इसका शरीर – दीप्तिमान् भी है और विश्वसनीय भी। अथवा ठीक ही है इसमें, यह राजा होते हुए भी मुनियों से अधिक भिन्न नहीं है। क्योंकि –

मुनि आश्रमवासी होते हैं, सो इसने भी सर्वभोग्य आश्रम (गार्हस्थ्य) **में वास कर रखा है, मुनि तप करते हैं सो वह भी रक्षा–योग के द्वारा प्रतिदिन तप करता ही रहता है, और इसके लिए 'मुनि' यह पवित्र शब्द कहा जाता है – यहाँ भी और स्वर्गलोक में भी, अन्तर इतना ही है कि इसके मुनि नाम के पहले 'राज'–शब्द और जुड़ा रहता =** (राजर्षि) **॥१५॥**

द्वितीय गौतम! क्या यही है वह इन्द्र का सखा दुष्यन्त?

गौतम और क्या?

द्वितीयः इसलिए तो –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री–
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसन्ते समितिषु[1] सुरा बद्धवैरा हि दैत्यै–
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥१६॥

उभौ *उपगम्य* विजयस्व राजन्! १७.१

राजा *आसनादुत्थाय* अभिवादये भगवन्तौ। १७.२

उभौ स्वस्ति भवते। *फलान्युपहरतः*। १७.३

राजा *सप्रणामं परिगृह्य* आज्ञापयितुमिच्छामि। १७.४

उभौ विदितो भवान् आश्रमसदामिहस्थः। ते भवन्तं प्रार्थयन्ते। १७.५

राजा किमाज्ञापयन्ति? १७.६

उभौ तत्रभवतः कण्वस्य कुलपतेरसान्निध्याद् रक्षांसि नः इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति। तत् कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति। १७.७

राजा अनुगृहीतोऽस्मि। १७.८

विदूषकः *अपवार्य* एसो दाणिं अणुऊलो दे गलहथो[2]।
एष इदानीम् अनुकूलस्ते गलहस्तः। १७.९

राजा *स्मितं कृत्वा* रैवतक! मद्वचनादुच्यतां सारथिः सबाणासनं रथमुपस्थापयेति। १७.१०

दौवारिकः जं देवो आणवेदि! *निष्क्रान्तः*। यद्देव आज्ञापयति। (निष्क्रान्तः) १७.११

उभौ *सहर्षम्* १७.१२

अनुकारिणि पूर्व्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि ।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ॥१७॥

राजा *सप्रणामम्* गच्छतां भवन्तौ। अहमप्यनुपदमागत एव। १८.१

उभौ विजयस्व। *निष्क्रान्तौ* १८.२

राजा माधव्य! अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम् । १८.३

विदूषकः पढमं सपरीवाहं आसि। दाणिं रक्खसवुत्तंतेण बिन्दु वि णावसेसिदो।
प्रथमं सपरीवाहमासीत्। इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः। १८.४

---

१. समितिषु सुरा–सुरयुवतयो हामा. काग्र.। समितिर्युद्धम्।
२. (अपवार्य) एसा दाणिं अणुऊला ते अब्भत्थणा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि नगर के परकोटे सी ऊँची और नगरद्वार की अर्गला सी सुदीर्घ, सुपुष्ट भुजाओं से यह अकेला ही समुद्र से श्याम सीमा वाली इस पूरी पृथिवी की रक्षा कर लेता है। स्वर्ग में जब कभी दैत्यों के साथ युद्ध का संकट आ पड़ता है तब देवता लोग पहले इसके अधिज्य धनुष, पश्चात् इन्द्र के वज्र पर ही विजय की आशंसा करते रहते हैं ॥१६।

दोनों (पास जाकर) राजन्! आपकी जय हो।

राजा (आसन से उठकर) आप दोनों पूज्यों को प्रणाम ।

दोनों आपका कल्याण हो। (फल भेंट करते हैं)

राजा (प्रणाम करके ग्रहण करता है) आज्ञा दीजिए।

दोनों आश्रमवासियों को विदित हो गया है कि आप यहाँ आए हुए हैं, इसलिए आपसे उनकी प्रार्थना है।

राजा क्या है आज्ञा?

दोनों पूज्य महर्षि कण्व यहाँ हैं नहीं, अतः राक्षस लोग हमारे यज्ञों में विघ्न उत्पन्न कर रहे हैं, अतः कुछ दिनों के लिए सारथिसहित आप आश्रम को सनाथ करें।

राजा अनुगृहीत हूँ।

विदूषक (अपवारण के साथ) यह आपकी दूसरी प्रार्थना भी पूरी हुई।

राजा (मुसकुराकर) रैवतक! मेरे शब्दों में सारथि से कहो धनुष, बाण और रथ लेकर आवे।

दौवारिक जो देव की आज्ञा। (निकल जाता है)

दोनों (सहर्ष) **पूर्वजों के पदचिह्नों पर चलने वाले आप के लिए यही आचार ठीक है। पुरुवंश के लोग आपत्ति में पड़े व्यक्तियों की रक्षा को यज्ञ मानते और उसमें सदा ही दीक्षित रहते हैं ॥१७॥**

राजा (प्रणाम करते हुए) आप दोनों चलें, मैं भी पीछे पीछे आया ही।

दोनों विजयी हों। (निकल जाते हैं)

राजा माधव्य! है क्या शकुन्तला के दर्शन का कुतूहल?

विदूषक पहले तो उफना रहा था, पर अब राक्षसों की बात सुनकर उसकी बूँद भी नहीं बची।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा मा भैषीः। ननु मत्समीपे वर्त्तिष्यसे। १८.५

विदूषकः एसो रक्खसादो रक्खिदो म्हि। एष राक्षसाद् रक्षितोऽस्मि। १८.६

प्रविश्य १८.७

दौवारिकः सज्जो रधो भत्तुणो विअअप्पत्थाणं पेक्खदि। एसो उण णअरादो देविणं आणत्तिहरओ करभओ आअदो। सज्जो रथः भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्षते। एष पुनर्नगराद् देवीनामाज्ञप्तिहरः करभक आगतः। १८.८

राजा *सादरं* किम् अम्बाभिः प्रेषितः? १८.९

दौवारिकः अध इं? अथ किम्? १८.१०

राजा ननु प्रवेश्यताम्। १८.११

दौवारिकः तधा। *निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्य* एस भट्टा, उवसप्प। *उपसृप्य।*
तथा। (निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्य) एष भर्ताः उपसर्प। (उपसृत्य) १८.१२

करभकः जेदु भट्टा! देवि आणवेदि। जयतु भर्ता! देव्य आज्ञापयन्ति। १८.१३

राजा किमाज्ञापयन्ति? १८.१४

करभकः आआमिणि चदुट्ठदिअसे पुत्तपिंडपालणो णाम पउत्थपारणो मे उववासो भविस्सदि। तहिं दीहाउणा अवस्सं संभावइदव्व त्ति।
आगामिचतुर्थदिवसे पुत्रपिण्डपालनो नाम प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषा अवश्यं संभावनीया इति। १८.१५

राजा इतस्तपस्विकार्यम्, इतो गुरुजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्। किमत्र प्रतिविधेयम्? १८.१६

विदूषकः तिसंकू विअ अंतराले चिट्ठ। त्रिशङ्कुरिव अन्तराले तिष्ठ। १८.१७

राजा सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि — १८.१८

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः।
पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा ॥१८॥

विचिन्त्य सखे! त्वमम्बाभिः पुत्र इति प्रतिगृहीतः। अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्यग्रमानसं मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति। १९.१

विदूषकः ण खु मं रक्खोभीरुअं गणेसि। न खलु मां रक्षोभीरुकं गणयसि? १९.२

राजा *सस्मितम्* कथमेतद् भवति संभाव्यते। १९.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा डरो मत। मेरे पास रहोगे।

विदूषक बच गया मैं राक्षस से ।

(प्रवेश करके)

दौवारिक रथ तैयार है। आपके विजयप्रस्थान की प्रतीक्षा कर रहा है। और नगर से देवियों का आज्ञावाहक दूत करभक आया है।

राजा (आदरपूर्वक) पूज्य माताओं ने भेजा है क्या?

दौवारिक जी हाँ।

राजा भेजा जाए।

दौवारिक जो आज्ञा । (निकल कर फिर से करभक के साथ आता है।) ये हैं स्वामी पास जाएँ। (पास जाकर)

करभक महाराज की जय हो। देवी आज्ञा कर रही हैं कि।

राजा क्या आज्ञा कर रही हैं देवी?

करभक आज से चौथे दिन मेरे 'पुत्रपिण्डपालन'—नामक व्रत की पारणा है। उसमें दीर्घायु आप को अवश्य ही आना है।

राजा इधर तपस्वियों का कार्य और इधर गुरुजनों की आज्ञा। दोनों का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। इसका क्या किया जाए समाधान?

विदूषक त्रिशङ्कु के समान बीच में ही अटके रहो।

राजा सचमुच समझ नहीं पा रहा हूँ क्या करूँ। —

दो अवश्यकरणीय कृत्य, दोनों भिन्न—भिन्न स्थानों पर, मन द्वैधीभाव को प्राप्त है वैसे ही जैसे नदी का स्रोत पहाड़ के सामने पड़ जाने से होता है ॥१८॥

(सोचकर) सखे! तुम्हें माताओं ने पुत्र जैसा माना है, अतः तुम यहाँ से लौटकर पूज्य माताओं से 'मैं तपस्वीजन के कार्य में व्यस्त हूँ' ऐसा कह देना और तुम उनका कार्य संपन्न कर देना।

विदूषक मुझे राक्षसभीरु तो नहीं मान रहे हो?

राजा (सस्मित) यह आप में कैसे संभव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः तेण हि जह राआणुएण गंतव्वं तह गच्छेमि।

तेन हि यथा राजानुजेन गन्तव्यं तथा गच्छामि। १९.४

राजा ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्व्वानानुयात्रिकांस्त्वयैव सह प्रस्थापयामि। १९.५

विदूषकः ही ही,जुवराओ म्हि दाणिं संवुत्तो। ही ही, युवराजोऽस्मि इदानीं संवृत्तः। १९.६

राजा *आत्मगतम्* चपलोऽयं वटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवतु। एनमेवं वक्ष्ये। *विदूषकं हस्ते गृहीत्वा, प्रकाशम्* वयस्य! ऋषिगौरवादाश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां ममाभिलाषः। पश्य— १९.७

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः ।
परिहासविजल्पितं सखे! परमार्थेन न गृह्यतां वचः ।।१९।।

।। निष्क्रान्ताः सर्वे।। २०.१

इति महाकविकालिदासकृतौ अभिज्ञानशाकुन्तले नाटके नायकौत्सुक्यो नाम द्वितीयोऽङ्कः।। २।।[१] २०.२

---

१. एक्टने सुतगृहे निवासिनाऽलेखि सोऽङ्क इह काश्यपेन वै।
प्राकृतं भवति यत्र भूयसा मोहमेति च गणेशधीरपि।। १४.९.२००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक तो मैं राजा के छोटे भाई की तरह जाऊँगा।

राजा ऐसा है कि सेना भी लौटाए देता हूँ जिससे तपोवन की पीड़ा का भी परिहार हो सके।

विदूषक तब तो, ही ही भो! मैं युवराज बन गया।

राजा (स्वगत) यह वटु चपल है। कदाचित् हमारी (शकुन्तला) प्रार्थना को अन्त:पुर में कह दे। ठीक है ऐसा कहे देता हूँ इससे (विदूषक का हाथ पकड़ कर, प्रकाश) वयस्य! ऋषियों के गौरव से आश्रम जा रहा हूँ। मेरा तापसकन्या से कोई सचमुच अनुराग नहीं है। देखो –

कहाँ हम! और कहाँ काम से जिसका कोई लेना–देना नहीं ऐसी मृगशावकों के साथ पली वह लड़की। अत: मैंने जो कहा वह परिहास था। उसे सत्य न समझना ।।१९।।

(सभी निकल गए)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में 'नायकौत्सुक्य' नामक द्वितीय अङ्क पूरा हुआ।। २।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ तृतीयाङ्कविष्कम्भकः।। १.१

।।१।।

ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः। १.२

शिष्यः अहो महानुभावो राजा दुष्यन्तः । प्रविष्टमात्र एव आश्रमं तत्रभवति निरुपप्लवानि नः कर्माणि । १.३

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः ।
हुंकारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति ।।१।।

यावदिमान् वेदीसंस्तरणार्थं दर्भान् ऋत्विग्भ्य उपनयामि।

परिक्रम्यावलोक्य च, आकाशे। २.१

प्रियंवदे! कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयन्ते?

आकर्ण्य २.२

किं ब्रवीषि? आतपलङ्घनाद् बलवदसुस्था शकुन्तला; तस्याः शरीरनिर्वापणायेति? २.३

तर्हि, त्वरितं गम्यताम्। सखि! सा खलु भगवतः कण्वस्य कुलपतेरुच्छ्वसितम् । अहमपि तावद् वैतानिकं शान्त्युदकम्, अस्यै, गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि। २.४

निष्क्रान्तः २.५

।। इति विष्कम्भकः[1] ।। २.६

---

१. विष्कम्भक = शुद्धविष्कम्भकः हामा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीयाङ्क विष्कम्भक ।।

।।१।।

(यजमान शिष्य का प्रवेश । हाथ में कुश लिए हुए है।)

शिष्य अहो! कितना प्रभावशाली है राजा दुष्यन्त, जिसके आश्रम में प्रविष्ट होते ही हमारे यज्ञ कर्मों के सारे उपद्रव समाप्त हो गए ।

बाणसन्धान की तो कथा ही क्या, धनुष की हुंकार जैसी डोरी की टंकार से ही वह विघ्न दूर कर रहा है ।।१।।

चलूँ इन कुशों को वेदिसंस्तरण के लिए ऋत्विजों को दे आऊँ।
(घूमकर और देखकर आकाश में)

प्रियंवदे! ये खश का अनुलेपन और मृणालसहित नलिनीपत्र किसके लिए ले जाए जा रहे हैं । (सुनकर)

क्या कहा? लू लगने से शकुन्तला की तबियत काफी खराब है। उसके शरीर को ठंडा करने के लिए?

ऐसा है तो शीघ्रता की जाए। सखि! वह शकुन्तला जो है सो कुलपति कण्व की जान है। मैं भी यज्ञ का शान्तिजल गौतमी के हाथ भिजवाता हूँ।

(निकल जाता है।)

।। विष्कम्भक समाप्त।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ तृतीयोऽङ्कः।। २.७

।। २।।

ततः प्रविशति कामयानावस्थो राजा। २.८

राजा *निःश्वस्य* २.९

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम् ।
न च निम्नादिव सलिलं निवर्तते मे ततो हृदयम्।। २।।[1]

मदनबाधां निरूप्य भगवन् कुसुमायुध! त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्या–मतिसन्धीयते कामिजनसार्थः। कुतः –३.१

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्
द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै[2]**–**
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ।। ३।।

अथवा ४.१

अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे ।
यदि मयि संभृतहृदयां तामधिकृत्य प्रहरतीति ।। ४।।[3]

परिक्रम्य ५.१

क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः श्रमक्लान्तमात्मानं विनोदयामि? *निःश्वस्य* किं नु खलु मे प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत्? यावदेनामन्विष्यामि। *सूर्यमवलोक्य* इमामुग्रातपवेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति। तत्रैव तावद् गच्छामि। *परिक्रम्यावलोक्य च* अनया बालपादपवीथ्या सुतनुरचिरगतेति तर्कयामि। कुतः–५.२

---

१. अत्र बंगीयः पाठः उत्तरार्द्धस्य – **अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्त्तयितुम् ।। २।।**
Abhijnanasakuntalam, Harvard Oriental Series, USA, Vol. 16, , 1922

२. सोऽयमुद्देशप्रतिनिर्देशयोः क्रमे चूलिकान्यायः प्रतिनिर्देश उद्देशक्रमवैपरीत्यात्।

३. वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग ! नीतोऽसि मयातिवृद्धिम् ।
आकृष्य चापं श्रवणोपकण्ठे मय्येव युक्तस्तव बाणमोक्षः ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीय अङ्क ।।

(प्रवेश करता है कामपीड़ित राजा दुष्यन्त)

राजा (साँस लेकर) **मुझे तप की शक्ति का ज्ञान है, मुझे यह भी ज्ञान है कि वह बाला** (शकुन्तला) **पराधीन है, तथापि नहीं कर पा रहा हूँ उससे मन को निवृत्त, नीचे प्रवाहित जल को उलटने के समान।। २।।**

(मदनबाधा का अभिनय कर) भगवन् कुसुमायुध! तेरे और चन्द्रमा के द्वारा सभी कामिजनों की बड़ी वञ्चना होती है। क्योंकि –

तुम कहलाते तो हो कुसुमशर और चन्द्रमा शीतरश्मि, परन्तु ये दोनों तथ्य अयथार्थ दिखाई दे रहे हैं मुझ जैसों पर (चूलिकान्याय)[१] **चन्द्रमा ठंडी किरणों से मुझ जैसे विरहियों पर बरसा रहा है अग्नि, और तुम, तुम भी फूल के बाणों को वज्र सा कठोर करके फेंक रहे हो ।। ३।।**

अथवा, **काम मुझे निरन्तर मानसिक सन्ताप दे तो वह मुझे मान्य है, यदि मुझ पर अनुरक्त उस सुन्दरी को आधार बनाकर वह ऐसा करता है ।।४।।**

(घूमकर) ऋषियों का कार्य समाप्त हो गया और उन्होंने अनुज्ञा दे दी अपनी थकावट दूर करने की, पर जाऊँ कहाँ विश्राम करने? (साँस लेकर) मेरे लिए और क्या हो सकता है विनोद का साधन प्रिया के दर्शन को छोड़कर। तो चलूँ इसी को खोजूँ। (सूर्य को देखकर) इस समय धूप उग्र है। इस समय को शकुन्तला प्रायः लताकुञ्ज वाले मालिनी तट पर बिताती है, दोनों सखियाँ भी उसके साथ रहती हैं। वहीं चलूँ। (घूमकर और देखकर) लगता है इस छोटे पौधो के रास्ते से वह सुन्दरी अभी अभी निकली है, क्योंकि –

---

१. चूड़ियाँ जिस क्रम से पँहनी जाती हैं उतारी जाती हैं उससे ठीक उल्टे क्रम से। प्रतिनिर्देश में उद्देश क्रम को उलटना है चूलिकान्याय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोशास्तयाऽवचितपुष्पाः ।
क्षीरस्निग्धाश्चामी दृश्यन्ते किसलयच्छेदाः ॥५॥

परिक्रम्य संस्पर्शं रूपयित्वा। अहो प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः। ६.१

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम् ।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः ॥ ६॥

परिक्रम्यावलोक्य च । अस्मिन् वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे भवितव्यं तया। तथा हि – ७.१

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात् पश्चात् ।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा ॥७॥

यावद् विटपान्तरेणावलोकयामि। *परिक्रम्य तथा कृत्वा* अये! लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्ट–मधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते। भवतु। श्रोष्याम्यासां विस्रम्भकथितानि। *विलोकयन् स्थितः।* ८.१

॥ ३ ॥

ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला ८.२

सख्यौ *उपवीजयतः* हला शकुन्तले! अवि सुहअदि दे णलिणीपत्तवातो?
सखि शकुन्तले! अपि सुखयति ते नलिनीपत्रवातः? ८.३

शकुन्तला किं वीअअन्ति मं सहीओ? किं वीजयतो मां सख्यौ? ८.४

सख्यौ *विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः।* ८.५

राजा बलवदसुस्थशरीरा शकुन्तला दृश्यते। *सवितर्कम्* तत् किमयमातपदोषः स्यात्, उत यथा मे मनसि वर्त्तते। *विचिन्त्य* अथवा कृतं सन्देहेन। ८.६

स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् ।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो–
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ॥८॥[1]

---

१. अतः परं पद्यान्तरं – शशिकरविशदान्यस्यास्तथा हि दुःसहनिदाघ शंसिनि ।
भिन्नानि श्यामिकया मृणालनिर्माणवलयानि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके चुने पुष्पों के वृन्त (बेंत) **अभी तक सूखे नहीं हैं और उसने जो कोपलें चुनी हैं उनसे दूध अभी भी रिस रहा है ॥५॥**

(घूमकर और संस्पर्श का अभिनय कर) अहो! कितना सुभग है यह प्रवात स्थान – **यह जो पवन है इसे कामतप्त अङ्गों से कसकर लगाया जा सकता** (आलिंगन)। **यह कमलगन्ध से सुगन्धित भी है और मालिनी की तरङ्गों के कणों से शीतल भी ॥६॥**

(घूमकर और देखकर) इस बाँस से घिरे हुए लतामण्डप में उसको होना चाहिए। क्योंकि – **पाण्डु सिकतावाले इसके द्वार पर उसकी नई पदपङ्क्ति दिखाई दे रही है। यह उसी की है क्योंकि आगे उठी है और पीछे नितम्ब**(जघन) **भार से गहरी है ॥७॥**

चलूँ वृक्ष शाखाओं में छुपकर देखूँ। (घूमकर और शाखा के पीछे छिपकर) अये! मिल गया नेत्रनिर्वाण। यहाँ यह है मेरी मनोरथप्रियतमा पुष्प के आस्तरण वाले शिलापट्ट पर लेटी है और इसकी दोनों सखियाँ इसकी सेवा में हैं। अच्छा तो सुनूँ इनकी निस्संकोच बातचीत। (विलोकन करते हुए खड़ा रहता है)।

॥३॥

(दोनों सखियों के साथ उक्त स्थिति में शकुन्तला का प्रवेश)

दोनों सखियाँ (पंखा झलती हैं) सखि शकुन्तला! तुझे कुछ अच्छी लग रही है यह नलिनीपत्र की हवा?

शकुन्तला क्या सखियाँ मुझ पर पंखा झल रही हैं?

दोनों सखियाँ (विषाद का अभिनय कर एक दूसरे को देखती हैं)

राजा शकुन्तला अधिक अस्वस्थ लग रही है। (वितर्क सहित) तो क्या यह लपट का असर है या जैसा मेरे मन में है। (सोचकर) अथवा संदेह छोड़ा जाए – **प्रिया का शरीर बाधायुक्त तो है, जिस कारण स्तनों पर उशीर** (खश) **का आलेप है** (रखी हुई है), **मृणाल मात्र का वलय काफी ढीला पड़ गया है। इतने पर भी किसी भी कारण यह कमनीय ही है। काम और ग्रीष्म दोनों का ताप होता तो समान ही है, तथापि ग्रीष्म का दुष्प्रभाव युवतियों में इतना सुलभ/सुभग नहीं होता ॥८॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा *जनान्तिकम्* सहि अणसूए! तस्स राएसिणो पढमदंस्सणादो आरहिअ पज्जुस्सुआ विअ सउंदला। किं णु क्खु से तण्णिमित्तो अअं आदंओ भवे। सखि अनसूये! तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकेव शकुन्तला। किं नु खलु तस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत्? ९.१

अनसूया सहि! मम वि ईरिसि आसंआ हिअअस्स। होदु, पुच्छिस्सं दाव णं। *प्रकाशम्* सहि! पुच्छिदव्वासि किंपि। बलीयो खु दे संदावो।
सखि! ममापीदृशी आशङ्का हृदयस्य। भवतु, प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। (प्रकाशम्) सखि! प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान् खलु ते संतापः। ९.२

शकुन्तला *पूर्वार्धेन पुष्पशय्यामुदस्य* हला किं वत्तुकामासि। सखि! किं वक्तुकामासि? ९.३

अनसूया हला सउंदले! अणब्भन्तरा क्खु अम्हे मअणगदस्स वुत्तंतस्स। किंदु जारिसी इदिहासणिबन्धेसु कामअमाणाणां अवत्था सुणीअदि तारिसी दे पेक्खामि। कहेहि किण्णमित्तं दे संदावो। विआरं क्खु परमत्थदो अआणिअ अणारंभो पडिआरस्स। सखि शकुन्तले! अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। किंतु यादृशी इतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्था श्रूयते तादृशीं तव पश्यामि; कथय किंनिमित्तस्ते संतापः? विकारं खलु परमार्थतः अज्ञात्वा अनारम्भः प्रतीकारस्य। ९.४

राजा अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः। नहि स्वाभिप्रायेण मे दर्शनम्। ९.५

शकुन्तला *आत्मगतम्* बलवं क्खु मे अहिणिएसो। दाणिं वि सहसा एदाणं ण सक्कुणोमि णिवेदिदुं। (आत्मगतम्) बलीयान् खलु मेऽभिनिवेशः। इदानीमपि सहसा एतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम्। ९.६

प्रियंवदा सहि सउंदले! सुट्ठु एसा भणदि। किं अत्तणो आतंकं उवेक्खसि? अणुदिअहं खु पडिहीअसे अंगेहिं। केवलं लावण्णमई छाआ तुमं ण मुंचदि। सखि शकुन्तले! सुष्ठु एषा भणति। किमात्मन आतङ्कमुपेक्षसे? अनुदिवसं खलु परिहीयसेऽङ्गैः, केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति। ९.७

राजा [1]अवितथ्यमाह प्रियंवदा। तथा हि— ९.८

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा ।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी ।। ९ ।।

---

१. अवितथ्य – १०८६, हामा., अवितथ १०८४, १०८५ हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा (जनान्तिक) सखि अनसूये! उस राजर्षि का जब से प्रथम दर्शन हुआ तभी से शकुन्तला पर्युत्सुक सी है। क्या इसका यह ताप उसी कारण है?

अनसूया सखि! मेरे हृदय में भी यही आशंका है। अच्छा तो इससे पूछ ही लूँ। (प्रकाश) सखि! शकुन्तले कुछ पूछना है तुझसे? बहुत बड़ी है तुझे पीड़ा।

शकुन्तला (पूर्वार्द्ध से पुष्पशयन छोड़कर) सखि! क्या कहना चाहती हो?

अनसूया सखि शकुन्तले! हमें तो मदनगत वृत्तान्त का ज्ञान नहीं है, किन्तु जैसी इतिहास ग्रन्थों में कामपीड़ितों की अवस्था सुनी जाती है तेरी अवस्था वैसी ही देख रही हूँ। बतला तेरी पीड़ा का कारण क्या है? विकार ठीक से न जान लिया जाय तो प्रतीकार शुरू नहीं होता।

राजा अनसूया में भी जागा मेरा तर्क। मेरा तर्क स्वाभिप्रायमूलक नहीं है।

शकुन्तला (स्वगत) मेरा अभिनिवेश बहुत बलवान् तो हो गया है, परन्तु इस स्थिति में भी नहीं कह पा रही हूँ इन दोनों से।

प्रियंवदा सखि शकुन्तला! यह ठीक कह रही है। अपने आतंक की उपेक्षा क्यों कर रही है? रोज रोज होती जा रही दुबली, केवल तुझे लावण्यमयी छाया नहीं छोड़ रही है।

राजा प्रियंवदा ने सत्य कहा। क्योंकि –

इसके चेहरे के कपोल अति दुबले हो गए, उरःस्थल ढीला पड़ गया, मध्य क्लान्ति में और अधिक जा डूबा है। कन्धे, दोनों ही काफी झुक गए, कान्ति पीली पड़ गई। मदनक्लेश में यह शोचनीय तो है, पर प्रियदर्शना भी है, जैसे माधवीलता को पतझड़ की हवा छू गई हो ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला (प्रकाश) सहि!कस्स वा अण्णस्स कधइस्सं? आआसइत्तिआ दाणिं वो भविस्सं।
सखि! कस्य वा अन्यस्य कथयिष्यामि? आयासयित्री इदानीं वां भविष्यामि। १०.१

उभे अदो एव्व खु णिब्बंधो। सिणिद्धअणसंविभत्तं हि दुःखं सज्झवेअणं भोदि।
अत एव खलु निर्बन्धः। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति। १०.२

राजा १०.३

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम् ।
दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण–
मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि ।।१०।।

शकुन्तला सहि! जदो पहुदि मह दंसणपहं आअदो सो तवोवणरक्खिदा राएसी,
अर्धोक्ते लज्जां नाटयति।
सखि! यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः, ११.१

उभे कधेदु प्रियसहि। कथयतु प्रियसखि। ११.२

शकुन्तला तदा आरहिअ तग्गदेण अहिलासेण एदावत्थम्हि संवुत्ता।
तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थास्मि संवृत्ता। ११.३

राजा *सहर्षम्* श्रुतं यत् श्रोतव्यम् – ११.४

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः ।
दिवस [1]इवाऽभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य ।।११।।

शकुन्तला तं जई वां अणुमदं तह तधा बट्टह जध तस्स राएसिणो अणुकंपणिज्जा होमि।[2] अण्णधा अवस्सं सिंचह मे तिलोदअं। तद् यदि वामनुमतम्, तदा, तथा वर्तेयाथाम्, यथा, तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि[2]। अन्यथा अवश्यं सिञ्चितं मे तिलोदकम्। १२.१

राजा संशयच्छेदि वचनम्। १२.२

प्रियंवदा *जनान्तिकम्* अणसूए! दूरंगअमम्महा अक्खमा इअं कालहरणस्स। जस्सिं बद्धभावा एसा सो ललामभूदो पोरवाणं।[3] ता जुत्तं से अहिलासो अहिणंदिदुं। अनसूये! दूरगतमन्मथा अक्षमेयं कालहरणस्य। यस्मिन् बद्धभावैषा स ललामभूतः पोरवाणाम्। तद् युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम्। १२.३

---

१. हामासु 'र्द्ध' इति पाठः।
२. पाठान्तर– तधा करेध जधा तस्स राइणो अणुकम्पणीआ भोमि (शब्दानुशासनं हेमचन्द्रस्य)।
३. पौरवाणा अज्जुन्नता से.– १०८६ हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला (प्रकाश) सखि! अन्य किससे कहूँगी, पर तुम दोनों को मैं आयास में डाल दूँगी।

दोनों इसलिए तो हमारा और हठ है। स्नेहीजनों में सविभक्त दुःख की वेदना सह्य हो जाती है।

राजा **दुःख और सुख दोनों में समान रूप से साथ देने वाली सखियों ने पूछा है तो यह बाला अपनी आधि का हेतु निश्चित रूप से बताएगी ही, किन्तु इसने मुझे जो मुड़मुड़कर देखा प्यासे नेत्रों से– इसलिए इस अन्तराल में मै कितना अधिक श्रवणकातर हो गया हूँ ॥१०॥**

शकुन्तला सखि! जबसे मेरे दर्शनपथ में पड़ा है वह तपोवन का रक्षक राजर्षि (आधा बोलकर लज्जा का अभिनय करती है।)

दोनों बोल प्रियसखी ।

शकुन्तला तब से लेकर उसके विषय की अभिलाषा जागी हुई है मेरे हृदय में, उसी ने पहुँचा दिया है इस दशा में मुझे।

राजा (खुशी के साथ) सुन लिया जो सुनना था –

स्मर ने ही मुझे तपाया और स्मर ने ही शान्त किया। जीवलोक को, अभ्रश्याम दिवस के समान जो ग्रीष्म के बाद आता है॥११॥

शकुन्तला तो यदि तुम्हें मान्य हो तो वैसा कुछ करो जिससे वह राजर्षि मुझ पर अनुकम्पा कर सके, नहीं तो सींचना मेरे लिए तिलोदक।

राजा संशय को इस वचन ने काट ही दिया।

प्रियंवदा (जनान्तिक) अनसूया! इसका कामविकार बहुत दूर तक फैला गया है, यह अधिक समय बिता सकती नहीं। और जिसे यह चाह रही है वह पौरवों का ललाम है। तो ठीक होगा इसके इस झुकाव का अभिनन्दन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया सहि! तधा जधा भणसि। सखि! तथा, यथा भणसि। १२.४

प्रियंवदा *प्रकाशम्* सहि! दिट्ठिआ अणुरूवो दे अहिणिवेसो। सागरं वज्जिअ कहिं वा महाणई ओदरदि? को दाणिं सहआरमंतरेण अदिमुत्तलदं पल्लविदं सहेदि? (प्रकाशं) सखि! दिष्ट्या अनुरूपस्तेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानदी अवतरति? क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते? १२.५

राजा किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्त्तेते। १२.६

अनसूया को उण उवाओ भवे जेण अविलंबिदं णिहुदं अ सहीए मणोरधं संपादेम्ह? कः पुनरुपायो भवेद् येनाविलम्बितं निभृतं च सख्या मनोरथं संपादयावः? १२.७

प्रियंवदा णिहुअंत्ति चिंतणिज्जं हवे। सिग्घंत्ति सुअरं।
निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत्। शीघ्रमिति सुकरम्। १२.८

अनसूया कहं विअ? कथमिव? १२.९

प्रियंवदा णं सो राएसि इमस्सिं सिणिद्धदिट्ठीए सूइदाहिलासो [1]इमाइं दिअहाइं पजाअरकिसो लक्खीअदि। ननु स राजर्षिरतस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाषः एतान् दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते। १२.१०

राजा सत्यमित्थम्भूत एवास्मि। तथाहि— १२.११

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः ।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ।।१२।।

प्रियंवदा *विचिन्त्य* हला मअणलेहो से करीअदु। इमं देवदा—सेसा—वदेसेण सुमणोगोपिअं करिअ से हत्थं पावइस्सं। हला! मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। इमं देवताशेषाऽपदेशेन सुमनोगोपितं कृत्वा तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि। १३.१

अनसूया रोअइ मे सुउमारो पओओ। किं वा सउंदला भणादि?
रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति? १३.२

शकुन्तला को णिओओ विकप्पीअदि? को नियोगो विकल्प्यते? १३.३

प्रियंवदा तेण हि अत्तणो उवण्णासपुव्वं चितेहि दाव किम्पि ललिअपदबंधणं।
तेन हि, आत्मनः उपन्यासपूर्वकं चिन्तय तावत् किमपि ल्ललितपदबन्धनम्। १३.४

---

१ 'इमाशंः कुउं दिअहाइ' इति १०८६ हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया सखि! यही बात है ।

प्रियंवदा (प्रकाश) सखि! भाग्य से इसका अभिनिवेश उचित है। सागर को छोड़कर कहाँ उतरती है महानदी। अतिमुक्तलता में पत्तियाँ आ जाएँ तो कौन सा वृक्ष उसे अच्छा लगे सहकार को छोड़कर।

राजा इसमें कोई आश्चर्य नहीं यदि विशाखाएँ शशाङ्कलेखा का अनुवर्त्तन करें।

अनसूया कौन सा हो सकता है उपाय जिससे अविलम्ब और गुप्त रूप से सखी का मनोरथ पूरा कर सकें?

प्रियंवदा 'गुप्तरूप से' इस पर विचार करना होगा, शीघ्रता तो सुकर है।

अनसूया कैसे?

प्रियंवदा वह राजर्षि भी इस पर स्निग्ध दृष्टि डालता रहा। निश्चित ही वह भी इसे चाहता है और इन दिनों तो उसे नींद नहीं आ रही है, अतः कृश हो गया है।

राजा सचमुच, मैं ऐसा ही तो हूँ। क्योंकि –

मैं रात रात भर (बाँई) हथेली पर कपोल रखे बैठा ही रह जाता हूँ। आँखों से निरन्तर झरते रहते हैं अन्तस्ताप से गरम आँसू, उनसे कनकवलय में लगी मणि भदरंगी हो गई है। कृशता इतनी बढ़ गई है कि कलाई का कनकवलय कुहनी तक नीचे उतर जाता है, यहाँ तक कि प्रत्यञ्चा की चोट से बने घट्टे में भी वह अटकता नहीं है। मैं उसे बार–बार ऊपर सरकाता रहता हूँ ।।१२।।

प्रियंवदा (सोचकर) सखि! इसके लिए एक मदनलेख बना। इसे मैं देवता के प्रसाद (शेषा) के बहाने फूलों में छिपाकर उसके हाथ तक पहुँचा दूँगी।

अनसूया यह प्रयोग बड़ा ही सुकुमार है। मुझे पसंद है यह। शकुन्तला क्या कहती है?

शकुन्तला कौन सा उपाय सोचा जा रहा है?

प्रियंवदा तो ऐसा कर कि अपने को डालकर सोच कोई ललितपदबन्ध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला चिंतेमि अहं। अवधीरणाभीरुअं पुणो वेवइ मे हिअअं।

चिन्तयाम्यहम्। अवधीरणाभीरु पुनर् वेपते मे हृदयम्। १३.५

राजा **अयं स ते तिष्ठति सङ्गमोत्सुको विशङ्कसे भीरु! यतोऽवधीरणाम् ।**
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रिया दुरापः[१] कथमीप्सितो[२] भवेत् ॥१३॥

सख्यौ अइ अत्तगुणावमाणिणि! को णाम सरीरणिव्वापइत्तिअं सारदिअं जोसिणिं पडंतेण वारेदि? अयि आत्मगुणावमानिनि! को नाम शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति? १४.१

शकुन्तला *सस्मितम्* णिओइदा दाणिं म्हि। नियोजिता इदानीमस्मि *उपविश्य चिन्तयति।* १४.२

राजा स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। १४.३

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः ।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन ॥१४।

शकुन्तला हला! चिंतिअं मए गीदवत्थु, ण हु सण्णिहिदाणि उण लेहसाहणाणि।

सखि! चिन्तितं मया गीतवस्तु। न संनिहितानि पुनर्लेखसाधनानि। १५.१

प्रियंवदा हला! इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीवत्ते पत्तच्छेदभत्तीए णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि। सखि! एतस्मिन् शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे पत्रच्छेदभक्त्या नखैर् निक्षिप्तवर्णं कुरु। १५.२

शकुन्तला *यथोक्तं रूपयित्वा* हला! सुणह दाव संगदत्थं ण वे त्ति।

(यथोक्तं रूपयित्वा) सखि! शृणुतं तावत्, संगतार्थं न वेत्ति। १५.३

उभे अवहिद म्ह। अवहिते स्वः। १५.४

शकुन्तला *वाचयति* १५.५

तुज्झ ण जाणे हिअअं मम उण [३]मअणो दिवा वि रत्तिं वि ।
णिग्घिण![४] तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाई अंगाई ॥ १५॥

तव न जाने हृदय मम पुनर्मदनो दिवापि रात्रावपि ।
निर्घृण! तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि ॥

राजा *सहसोपसृत्य*, १६.१

---

१. 'दुरापः' इति सर्वा अपि हामा.। २. 'तो' इति सर्वा अपि हामा.।
३. चतुर्दश उत्तरपद्ये मदनपदस्यास्ति प्रयोग इत्यत्रापि कामपदस्य स्थाने मदनपदमेवोचितम्।
४. तिसृष्वपि हामासु निष्कृपेति पाठः। घृणा कृपा चेत्यनर्थान्तरम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला सोचती हूँ मैं, परन्तु अवज्ञा के भय से मेरा हृदय काँपता है।

राजा **हे भीरु! जिससे तू अवज्ञा की शंका कर रही है वह तो स्वयं यहाँ उपस्थित है तेरे संगम के लिए उत्सुक होकर। अरे चाहने वाला श्री पाए या नहीं, किन्तु जिसे खुद श्री चाहे वह दुराप कैसे हो सकता है ॥१३॥**

दोनों सखियाँ अरी आत्मगुणावमानिनि! कौन रोकेगा शरीर को शीतल कर देने वाली चाँदनी को पटान्त से?

शकुन्तला (सस्मित) लगा ही दिया तुम दोनों ने मुझे इस कार्य में। (बैठकर सोचती है)

राजा प्रिया को देखने में मेरा जो पलक झँपकना रुक गया सो ठीक ही है – **यह जो लता जैसी भौंह को उठाकर पदों को रच रही है और जो कपोल पर रोमाञ्च छा गया है इससे इसका मुख मेरे प्रति अनुराग उजागर कर रहा है ॥१४॥**

शकुन्तला सखि! मैंने सोच तो लिया गीत और उसकी वस्तु, परन्तु लिखने के साधन यहाँ नहीं हैं।

प्रियंवदा सखि! कमलिनी के इस शुकोदरसुकुमार पत्ते पर नाखून से खोद दे (निक्षिप्तवर्ण)।

शकुन्तला (वैसा ही करने की चेष्टा दिखलाती है) सखि! अब सुन लो कि इसका अर्थ संगत है या नहीं।

दोनों सखियाँ सावधान हैं हम।

शकुन्तला (बाँचती है) –

तेरा हृदय तो जानती नहीं, पर मेरे हृदय को तो मदन दिन में भी और रात में भी, तेजी से तपा रहा है, हे निर्दय (निर्घृण = घृणा दया) **तुझमें मनोरथ बाँध कर ॥१५॥**

राजा (एकाएक पहुँचकर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपति तनुगात्रि ! मदनस्त्वां मां पुनर्दहत्येव ।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः ।। १६।।

सख्यौ *सहर्षम्* सुआगदं अविलंबिणो मणोरहस्स। स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य। १७.१

शकुन्तला *अभ्युत्थातुमिच्छति* १७.२

राजा अलमलमायासेन। १७.३

संदष्टकुसुमशयनान्याशु विमर्दितमृणालवलयानि[1] ।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ।।१७।।

अनसूया इदो सिलातलेक्कदेसं अलंकरेदु वअस्सो।
इतः शिलातलैकदेशमलङ्करोतु महाराजः। १८.१

राजा *उपविशति* १८.२

शकुन्तला *सलज्जा[2] तिष्ठति* १८.३

प्रियंवदा दुवेणं वि वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सहीसणेहो मं पुणरुत्तवादिणीं करेदि। द्वयोरपि वामन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहो मां पुनरुक्तवादिनीं करोति। १८.४

राजा भद्रे! नैतत् परिहार्यम्। विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति। १८.५

प्रियंवदा णणु आवण्णस्स विसअ[3]—वासिणो जनस्स अत्तिहरेण रण्णा होदव्वं त्ति एसो वो धम्मो। ननु आपन्नस्य विषयवासिनो जनस्य आर्त्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष वो धर्मः। १८.६

राजा नास्मात् परम्। १८.७

प्रियंवदा तेण हि इअं णो पिअसही तुमं उदिसिअ इमं अवत्थंन्तरं भअवदा मअणेण आरोविदा। ता अरुहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलंबिदुं। तेन हि इयमावयोः प्रियसखी, त्वामुद्दिश्य इदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता। तत् अर्हसि अभ्युपपत्त्या जीवितमस्या अवलम्बितुम्। १८.८

राजा भद्रे! साधारणोऽयं प्रणयः। सर्व्वथाऽनुगृहीतोऽस्मि । १८.९

शकुन्तला *प्रियम्वदामवलोक्य* हला! किं अंतेउरविरहपज्जुस्सुअस्स राएसिणो उवरोहेण। (प्रियम्वदामवलोक्य) सखि! किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन? १८.१०

---

१. १०८४, १०८५ हार्वर्डमातृकयोरत्र पाठः 'आशुक्लान्तविसविभङ्गसुरभीणि', १०८६ हामायां पुनः 'आशुक्लान्तविसविभङ्गेति'

२. सर्वास्वपि हामासु सलज्जमित्येव पाठः। सलज्जा इति काग्र.। ३. विषयो जनपदो कामादिश्च।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे तनुगात्रि! मदन तुझे तो तपा ही रहा है, मुझे तो जलाए ही डाल रहा है। दिन जितनी ग्लानि चन्द्रबिम्ब में पैदा करता है उतनी कुमुद्वती में नहीं ॥१६॥

दोनों सखियाँ (खुश होकर) स्वागत अविलम्बी मनोरथ का।

शकुन्तला (उठना चाहती है।)

राजा बस बस, कष्ट मत करो। **प्रिये! तुम्हें तीव्र परिताप है क्योंकि कुसुमशयन भी म्लान हो गया है, मृणालवलय भी तुरन्त मसला गए हैं। अतः** (उठने का) **उपचार उचित नहीं ॥१७॥**[1]

अनसूया वयस्य! आप इसी शिलातल के एक अंश पर बैठ जाएँ।

राजा (बैठ जाता है।)

शकुन्तला (लज्जा में डूबी दिखाई देती है।)

प्रियंवदा आप दोनों का परस्पर में जो अनुराग है वह स्पष्ट है, तथापि सखी के प्रति स्नेह मुझे कुछ कहने हेतु बाध्य कर रहा है, यद्यपि वह कथित ही है।

राजा भद्रे! इसे छोड़ो मत। वक्तव्य बात न कही जाए तो अनुताप देती है।

प्रियंवदा जो विषय (राज्यक्षेत्र और चाह) बासी होता है उस प्रत्येक की आर्त्ति दूर करने का दायित्व राजा पर होता है। यह आप (राजा) लोगों का धर्म ही है।[2]

राजा इससे भिन्न कुछ नहीं।

प्रियंवदा तो यह हमारी प्रियसखी आप को लेकर भगवान् काम के द्वारा इस अवस्था में पहुँचा दी गई है। आपका कर्त्तव्य है कृपा कर इसके प्राण बचाना।

राजा भद्रे! यह तो हम दोनों के लिए समान है । सर्वथा अनुगृहीत हूँ।

शकुन्तला (प्रियंवदा को देखकर) सखि! ये राजर्षि पर्युत्सुक तो हैं, परन्तु हो सकता है अपने अन्तःपुर के लिए हों। तो इनको कष्ट देने से क्या लाभ।

---

१. विवर्णित पाठ में वैवर्ण्य अर्थ।

२. विषय=शकुन्तला का दुष्यन्त को चाहना, और विषय राज्यक्षेत्र= श्लेष।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सुन्दरि! १८.११

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते! हृदयं मम ।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे! मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः ।। १८।।

अनसूया वअस्स! बहुबल्लहा राजाणो सुणीअंदि। ता जहा इअं णो पिअसही बंधुजणसोअणिज्जा ण भोदि तह णिव्वत्तेहि। वयस्य! बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। तत् यथा इयं नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वर्तय। १९.१

राजा भद्रे! किं बहुना १९.२

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्रवसना चोर्व्वी सखी च युवयोरियम् ।। १९।।

उभे णिव्वुदे म्ह[1]। निर्वृते स्वः। २०.१

प्रियंवदा *सदृष्टिक्षेपम्* अणसूए! जह एसो इदो दिण्णदिट्ठि उत्सुओ मिअपोदओ मादरं अण्णीसदि संजोएम णं। अनसूये! यथैष इतो दत्तदृष्टिरुत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति, एहि; संयोजयाव एनम्। २०.२

उभे *प्रस्थिते* २०.३

शकुन्तला हला! असरण म्हि। अण्णदरा वो आअच्छदु।
सखि! अशरणास्मि। अन्यतरा युवयोरागच्छतु। २०.४

उभे पुहवीए जो सरणं सो तुह समीवे वट्टइ।
पृथिव्या यः शरणं स तव समीपे वर्तते। *निष्क्रान्ते* २०.५

शकुन्तला कहिं गदाओ एव्व? कथं गते एव? २०.६

राजा अलमलमावेगेन। तवायं समाराधयिता जनः समीपे वर्त्तते। २०.७

किं [2]शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं
सञ्चारयामि नलिनीदलतालवृन्तम् ।
अङ्के निधाय करभोरु! यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।। २०।।

शकुन्तला ण माणणीएसु अत्ताणं ओराहइस्सं। *उत्थाय गन्तुमिच्छति* ।
न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये। २१.१

राजा सुन्दरि! अनिर्वाणो दिवसः। इयं च ते समवस्था २१.२

---

१. इतः पर यो वङ्गीयः पाठः सोऽस्माभिः कालिदासग्रन्थावल्याः द्वितीयसंस्करणस्य पादटिप्पणे दत्तः।
२. सीकरैः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सुन्दरि!

हे हृदय में बसी, मदिरेक्षणे! कामबाणों से हुआ घाव और गहरा हो जाएगा, यदि तुम मेरे तुम में लगे अनन्यपरायण चित्त को, तुम ही अन्यथा (अन्य परायण) **मानोगी ॥१८॥**

अनसूया वयस्य! राजा लोगों की वल्लभाएँ कई होती हैं ऐसा सुना जाता है, तो हमारी यह सखी, ऐसा करें कि बन्धुजनों के लिए शोचनीय न बनें।

राजा भद्रे! अधिक क्या,

यह सत्य है कि पत्नियाँ अनेक हैं, परन्तु मेरे कुल की प्रतिष्ठा दो ही है समुद्रवसना पृथिवी और यह तुम दोनों की सखी ॥१९॥

दोनों सखियाँ अब हम हल्की हुईं।

प्रियंवदा (दृष्टि फेंककर) अनसूये! यह मृगपोतक इधर ही दृष्टि दिए माता को खोज रहा है, चलो, इसे मिला दें।

दोनों (चलने लगती है)।

शकुन्तला सखि! अशरणा हूँ मैं। एक तो यहाँ रह जा।

दोनों जो पृथिवी का शरण है वह तेरे पास है (निकल जाती हैं)।

शकुन्तला क्या चली ही गईं?

राजा उद्विग्न मत हो। तेरे पास तेरी आराधना करने वाला यह जन (मैं) तो उपस्थित है। बोल क्या करूँ –

क्या नलिनीदलों से ठंडी हवा करूँ जिससे थकावट दूर हो, या गोद में रखकर, हे करभोरु! तेरे दोनों कमल से लाल लाल चरणों को सहता सहता सुहलाऊँ ॥२०॥

शकुन्तला आप माननीय हैं। मैं आपका अपराध नहीं उठाना चाहती।

(उठकर जाना चाहती है)

राजा सुन्दरि! दिन उतरा नहीं है। और तेरे शरीर की दशा है यह। अतः –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनाऽऽवरणा ।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः ।। २१ ।।

[1]*बलादेनां निवर्त्तयति । २२.१*

शकुन्तला पोरव! रक्ख[2] विणअं। मअणसंतत्ता वि ण हु अत्तणो पहवामि।

पौरव! रक्ष विनयम्। मदनसंतप्तापि न खल्वात्मनः प्रभवामि। २२.२

राजा भीरु! अलं गुरुजनभयेन। दृष्ट्वा विदितधर्म्मा तत्रभवान्नात्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि च — २२.३

गान्धर्वेण[3] विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः ।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ।। २२।।

शकुन्तला मुञ्च दाव मं। भूओ वि सहीजणं अणुमाणइस्सं।

मुञ्च तावत् माम्। भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये। २३.१

राजा भवतु, मोक्ष्यामि। २३.२

शकुन्तला कदा? कदा? २३.३

राजा २३.४

अपरिक्षतकोमलस्य तावत् कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन ।
अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि![4] पीयते रसोऽस्य ।। २३।।

मुखमस्या उन्नमयितुमिच्छति। २४.१

शकुन्तला *परिहरति नाट्येन। २४.२*

नेपथ्ये २४.३

चक्कवाअवहुए! आमंतेहि सहअरं। उवट्ठिदा रअणी।

चक्रवाकवधुके! आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी। २४.४

शकुन्तला *ससम्भ्रमम्* पोरव! असंसअं मह सरिरवुत्तंदोवलंभास्स अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छदि। दाव विडवन्तरिदो होहि। पौरव! असंशयं मम शरीरवृत्तान्तो–पलम्भाय आर्या गौतमी इत एवागच्छति। यावद् विटपान्तरितो भव। २४.५

राजा तथा।[1] *आत्मानमावृत्य तिष्ठति २४.६*

---

१. स एष प्रथमप्रथमः स्पर्शः।

२. विणअं=अविणअ हामा.।

३. गन्धर्वोऽर्वा स यथा कामातुरो वडवामारोढुमेव यतते तथैवात्र।

४. अपरिक्षतिः, कोमलता, कुसुमोपमितता, अधरत्वम्, रसः, अधोवृत्तित्वं चेति कन्याकर्मिकां क्रियानिर्वृतिं द्योतयितुं विशेषणानि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुष्पशय्या पर नलिनीपत्र से ढँकी पड़ी हो तुम। इसे छोड़कर कैसे जाओगी धूप में, जबकी तुम्हें अंग अंग में पीड़ा है।। २१।।

(पकड़कर शकुन्तला को रोकता है।)[१]

शकुन्तला — पौरव! विनय की रक्षा करो। मदनसंतप्ता हूँ, परन्तु मुझ पर मेरा अधिकार नहीं है।

राजा — भीरु! बड़ों का भय छोड़ो। कुलपति धर्म को जानते हैं। वे देख लेंगे और तुझे दोषी नहीं मानेंगें। और –

राजर्षियों की अनेक कन्याएँ गान्धर्व विवाह विधि से ब्याही गई और माता–पिता ने उनका अनुमोदन भी कर दिया ।। २२।।

शकुन्तला — छोड़ो तो, मैं सखियों के पास जाऊँगी।

राजा — हाँ हाँ छोड़ूँगा।

शकुन्तला — कब?

राजा — **नए फूल के समान तेरे अधर का भौरें के समान मैं पिपासु हूँ, तो जब तक इसका हे सुन्दरि! रस पी लूँगा तब।। २३।।**

(इसका मुख उठाना चाहता है)

शकुन्तला — (उसे बचाने को अभिनय करती है)

(नेपथ्य में)

चक्रवाक वधू, अपने सहचर से विदा ले ले, रजनी आ पहुँची है।

शकुन्तला — (घबराकर) पौरव! निश्चित हो मेरे शरीर का हाल जानने के लिए आर्या गौतमी इधर ही आ रही हैं। तो शाखाओं में छिप जाओ।

राजा — ठीक है (वैसा ही करता है।)

।।४।।

---

१. यह है शकुन्तला का प्रथम स्पर्श।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥४॥

ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी सख्यौ च। २४.७

सख्यौ इद इदो अज्जा गोदमी। इत इत आर्या गौतमी। २४.८

गौतमी *शकुन्तलामुपेत्य* जादे! अवि लहुसंदावाइं दे अंगाइं!

जाते! अपि लघुसंतापानि ते अङ्गानि? २४.९

शकुन्तला अत्थि मे विसेसो। अस्ति मे विशेषः। २४.१०

गौतमी इमिणा दब्भोदएण निरावाधं एव्व दे सरीरं भविस्सदि। *शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य* वच्छे! परिणदो दिअसो। एहि उडजं एव्व गच्छम्ह। *प्रस्थिताः*

अनेन दर्भोदकेन निराबाधमेव ते शरीरं भविष्यति। (शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वत्से! परिणतो दिवसः एहि, उटजमेव गच्छामः। (प्रस्थिताः) २४.११

शकुन्तला *आत्मगतम्* हिअअ! पढमं एव्व सुहोवणदे मणोरधे कादरभावं ण मुञ्चसि साणुसअविसज्जिअस्स कधं दे संपदं संदावो? *पदान्तरे स्थित्वा प्रकाशम्* लदावलअ! संदावहारअ! आमन्तेमि तुमं भूओ वि परिभोअस्स। *दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः।*

हृदय! प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुञ्चसि। सानुशयविघटितस्य कथं ते सांप्रतं संतापः? (पदान्तरे स्थित्वा प्रकाशम्) लतावलय! संतापहारक! आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय। (दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः।) २४.१२

राजा *पूर्वस्थानमुपेत्य सनिःश्वासम्* अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। मया हि २४.१३

मुहुरङ्गुलिसंवृताऽधरोष्ठं
प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम् ।
मुखमंसविवर्त्ति पक्ष्मलाक्ष्याः
कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ॥ २४॥

क्व नु खलु सम्प्रति गच्छामि। अथवा इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतावलये मुहूर्त्तं स्थास्यामि। *सर्वतोऽवलोक्य* २५.१

---

१. सोऽयं कः समयः समागमकृते संतप्तयोः कामतो नूनं स प्रशमं प्रयाति हि यदा गावो रवेर्धूसराः।
सन्ध्योपासनयोत्सुकेषु मुनिषु स्वैरं समाजग्मुषोरुदम्पत्योरयमेव लग्नसुभगो गोधूलिवेलाक्षणः॥ रे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रवेश करती है हाथ में पात्र लिए गौतमी और उसके साथ दोनों सखियाँ।)

दोनों सखियाँ इधर से, इधर से आर्या गौतमी।

गौतमी (शकुन्तला के पास पहुँचकर) जाते! तेरे अंगो का संताप कम तो है?

शकुन्तला कुछ अन्तर (विशेष) पड़ा है।

गौतमी इस दर्भोदक से तेरा शरीर सभी कष्टों से मुक्त हो जाएगा। (शकुन्तला के सिर पर पानी छिड़क कर) वत्से! दिन ढल गया। आ अब उटज ही चलें। (चल देती हैं)

शकुन्तला (स्वगत) हृदय! पहले तो जब मनोरथ सुख से पास आ पहुँचा तब तो कातरता छोड़ी नहीं, बड़े पछतावे में जब उसे विसर्जन दे दिया गया तो अब मुझे संताप क्यों हो रहा है? (एक डग चलकर) (प्रकाश) लतावलय! संतापहारक! तुझे फिर से परिभोग के लिए आज्ञा दे। (शकुन्तला तीनों के साथ दुःख के साथ निकल जाती है)।

राजा (पूर्वस्थान पहुँचकर और लम्बी साँस लेकर) देखो तो अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में विघ्न आते ही हैं।

मैंने जिस किसी प्रकार प्रिया का अँगुलियों से ढँके अधरोष्ठ वाला और प्रतिषेधाक्षर से आकुल, किन्तु सुन्दर मुख उठाया तो, किन्तु उसे चूँम पाया नहीं।। २४।।

अब जाऊँ कहाँ? अथवा यहीं प्रिया के द्वारा परिभुक्त और मुक्त लतावलय में कुछ क्षण ठहरूँगा। (सब ओर देखकर)

यह है उसकी नीचे लगी उसके शरीर से मसली हुई पुष्पशय्या, यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्जमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ।। २५।।[१]

आकाशे २६.१

भो! भो! राजन्! २६.२

सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते
वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रकीर्णाः ।
छायाश्चरन्ति बहुशो भयमादधानाः
सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ।। २६।।

राजा *आकर्ण्य सावष्टम्भम्* भो भोस्तपस्विनः! मा भैष्ट, अयमहमागतोऽस्मि।

निष्क्रान्ताः सर्व्वे। २७.१

इति कालिदासकृतौ अभिज्ञानशाकुन्तले नाटके शृङ्गारभोगोपोद्घातो नाम तृतीयोऽङ्कः ।।३।।[२] २७.२

---

१. अतः परं पद्यान्तरम् –
पुनः/रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनर्
न कालं हास्याकम प्रकृतिदुरवापा हि विषयाः ।
इति क्लिष्टं विघ्नैर्गणयति च मे मूढहृदयं
प्रियायाः प्रत्यक्षं किमपि च तथा कातरमिव ।।

२. अम्रीकाराष्ट्रभूमिस्तनगत इह योऽस्त्येक्टनाख्यः प्रदेश–
स्तस्मिन् 'सर्वज्ञ'–नामा वसति मम सुतस्तद्वधूश्चापि साध्वी ।
मैसासेट्यूट–हार्वर्ड इति च परैरक्षरैः सुप्रसिद्धे
क्षेत्रे तस्यैव गेहे कृतवसतिरिमं नाटकाङ्कं लिलेख ।। ।। तत्सत्।।
२५ सेप्टेम्बर बुधवार प्रातः १०.२० वादने, २१ फरवरी २००४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसका क्लान्त मदनलेख नलिनीपत्र पर नाखूनों से अर्पित, यह है हाथ से गिरा मृणालवलय – इस प्रकार दृष्टि अटक रही है और इस वेतसगृह से एकाएक निकल नहीं पा रहा हूँ, यद्यपि यह शून्य है, यहाँ कोई नहीं है ॥ २५॥

(आकाश में)

हे राजन्!

सायन्तन सवनकर्म ज्यों ही शुरू हुआ कि अग्नियुक्त वेदी के चहुँ ओर फैलने लगी हैं, राक्षसों की सन्ध्याकालीन मेघ सी कपिश और डरावनी अनेक छाया ॥ २६॥

राजा (सुनकर उत्साह के साथ) हे तपस्वियों! मत डरो। यह मैं आया।

(सभी निकल जाते हैं)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति अभिज्ञानशाकुन्तल में 'शृङ्गारभोगोपोद्घात' नामक तृतीय अंक पूरा हुआ॥ ३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ चतुर्थाङ्कमिश्रविष्कम्भकः।। १.१

।। १ ।।

प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ १.२

अनसूया हला पियंवदे! जइ वि गंधव्वेण विवाहविहिणा णिवुत्तकल्लाणा सउंदला अणुरूवभत्तुगामिणी संवुत्ता त्ति णिव्वुदं मे हिअअं, तह वि एत्तिअं चिंतणिज्जं। सखि प्रियंवदे! यद्यपि गान्धर्वेण विवाहविधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तला अनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम्, तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्। १.३

प्रियंवदा कहं विअ? कथमिव? १.४

अनसूया अज्ज सो राएसि इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं विसज्जिदो अप्पणो णअरं पविसिअ अंतेउरसमागदो इदोगदं वुत्तंतं सुमिरदि ण वेत्ति।

अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्य अन्तःपुरसमागतः इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति? १.५

प्रियंवदा विस्सद्धा होहि। ण तारिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। तादो दाणिं इमं वुत्तंतं सुणिअ ण आणे किं पडिवज्जिस्सदि।

विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यते। १.६

अनसूया जधा अहं पेक्खामि तधा तस्स अणुमदं भवे।

यथाहं प्रेक्षे तथा तस्यानुमतं भवेत्। १.७

प्रियंवदा कधं विअ? कथमिव? १.८

अनसूया गुणवंतस्स[1] कण्णआ पडिवादणिज्जेति अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संवादेदि णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो।

गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति ननु अप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः। १.९

प्रियंवदा *पुष्पभाजनं विलोक्य* सहि! अवचिदाइँ बलिकम्मपज्जत्ताइँ कुसुमाइँ।

(पुष्पभाजनं विलोक्य) सखि! अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि। १.१०

---

१. गुणवंतस्स क १०८४ हामा., गुणवदे क हामा. १०८५, १०८६। चतुर्थ्यर्थे षष्ठीति प्राकृतनियमादिदम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्थाङ्क मिश्रविष्कम्भक।।

।। १ ।।

(प्रवेश करती हैं कुसुम–चयन का अभिनय करती दोनों सखियाँ)

अनसूया सखि प्रियंवदे! यद्यपि गान्धर्व विवाह से शकुन्तला का कल्याण हो गया और उससे उसे अनुरूप पति मिल गया, इससे मेरा हृदय हल्का हुआ तब भी इतना विषय चिन्ता का है?

प्रियंवदा कैसा?

अनसूया उस राजर्षि को आज ऋषियों ने इष्टि समाप्त कर विदा कर दिया। वह अपने नगर में प्रवेश कर मिल जाएगा अन्तःपुर के साथ, तो यहाँ का वृत्तान्त याद करेगा कि नहीं?

प्रियंवदा निश्चिन्त रह। वैसी विशिष्ट आकृतियाँ गुणविरोधिनी नहीं हुआ करतीं। सोचना तो यह है कि इस वृत्तान्त पर तात क्या सोचेंगे।

अनसूया जैसा मैं देखती हूँ यह उन्हें मान्य ही होगा।

प्रियंवदा कैसे?

अनसूया गुणवान् को कन्या देनी चाहिए यह जो है सो प्रथम संकल्प होता है। उसे यदि देव ही संपन्न कर रहा हो तो समझना चाहिए कि माता–पिता बिना प्रयास के कृतार्थ हो गए।

प्रियंवदा (पुष्पपात्र देखकर) सखि! पूजा के लिए जितने पुष्प अपेक्षित हैं उतने चुन लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया णं पिअसहीए सउंदलाए सोहग्गदेवआ अच्चणिज्जा।

ननु प्रियसख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया। १.११

प्रियंवदा जुज्जदि। युज्यते । १.१२

तदेव कर्मारिभेते। १.१३

नेपथ्ये १.१४

अयमहं भोः १.१५

अनसूया *कर्णं दत्त्वा* सहि! अदिधीणं विअ णिवेदिदं। सखि! अतिथीनामिव निवेदितम्। १.१६

प्रियंवदा णं उडअसण्णिहिदा सउंदला। *आत्मगतम्* अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा।

ननु उटजसंनिहिता शकुन्तला। *(आत्मगतम्)* अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता। १.१७

अनसूया होदु, अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं। भवतु, अलमेतावद्भिः कुसुमैः । १.१८

प्रस्थिते १.१९

नेपथ्ये १.२०

आः अतिथिपरिभाविनि! १.२१

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।। १ ।।

प्रियंवदा हद्धी हद्धी अप्पिअं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरिहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सउंदला। हा धिक्, हा धिक्, अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिंश्चित् पूजार्हे अपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। २.१

अनसूया *पुरोऽवलोक्य* णहु जस्सिं कस्सिं वि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसि। तधा सविअ वेअवलुप्फुल्लआ दुव्वारआ गइए पडिणिवुत्तो।

न हि यस्मिन् कस्मिन्नपि। एस दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। २.२

प्रियंवदा को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि? कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति? २.३

अनसूया पियंवदे! गच्छ पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं, जाव अहं अग्घोदअं उपकप्पेमि। प्रियंवदे! गच्छ, पादयोः प्रणम्य निवर्तय एनम्, यावदहम् अर्घोदकमुपकल्पयामि। २.४

प्रियंवदा तधा। तथा *निष्क्रान्ता* २.५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया प्रियसखी शकुन्तला की सौभाग्यदेवता की पूजा करनी है।

प्रियंवदा ठीक है।

(पुनः वही काम करने लगती हैं।)

(नेपथ्य में)

यह हूँ मैं।

अनसूया (कान देकर) सखि! अतिथियों की सी बोली है।

प्रियंवदा उटज के पास शकुन्तला है (स्वगत) परन्तु आज हृदय से सन्निहित नहीं है।

अनसूया रहने दो, इन फूलों से क्या लाभ?

(प्रस्थान करती हैं दोनों)

(नेपथ्य में)

आः अतिथि की अवज्ञा करने वाली!

तू सब ओर से मन खींचकर जिसका ध्यान कर रही है और उपस्थित मुझ तपस्वी अतिथि पर ध्यान नहीं दे रही। वह तुझे याद दिलाने पर भी याद नहीं करेगा जैसे प्रमत्त व्यक्ति बीती घटना (कथा) को याद नहीं करता ॥१॥

प्रियंवदा हाय हाय! अप्रिय ही घट गया। किसी पूजायोग्य का हो गया अपराध शकुन्तला से।

अनसूया (आगे देखकर) ऐसे वैसे का नहीं। ये हैं तुरन्त गुस्सा होने वाले महर्षि दुर्वासा। वैसा शाप देकर वेगोत्फुल्ल दुर्वार गति से लौट गए वे।

प्रियंवदा कौन दूसरा अग्नि को छोड़ जला सकता है?

अनसूया प्रियंवदा जा पैरों पर गिर कर उन्हें लौटा। तब तक मैं अर्घोदक तैयार करती हूँ।

प्रियंवदा ठीक है। (निकल जाती है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया *पदान्तरे स्खलितं निरूप्य* अम्मो! आवेअक्खलिदाए गईए पब्भट्ठं पुप्फभाअणं। अहो! आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं पुष्पभाजनम्।

पुष्पोच्चयं रूपयति। २.६

प्रविश्य २.७

प्रियंवदा सहि! पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि? किं वि उण साणुक्कोसो किदो? सखि! प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति? किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः। २.८

अनसूया *सस्मितम्* तस्सिं बहु एदं पि। कहेहि। तस्मिन् बह्वेतदपि। कथय। २.९

प्रियंवदा जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णविदो मए भअवं! पढमं त्ति पेक्खिअ अविण्णाद तवप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वो त्ति। यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया – भगवन्! प्रथम इति प्रेक्ष्य अविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवता एकोऽपराधो मर्षितव्य इति। २.१०

अनसूया तदो तदो? ततस्ततः? २.११

प्रियंवदा तदो 'मे वअणं अण्णधा हविदुं णारिहदि, किंदु अहिण्णाणाहरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि' त्ति मंतअंतो स अन्तरिहिदो। ततो 'मे वचनमन्यथाभवितुं नार्हति, किन्त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत' इति मन्त्रयन्ने वान्तर्हितः। २.१२

अनसूया सक्कं दाणिं समस्ससिदुं। अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेयंकिदं अंगुलीअअं सुमरणिअं त्ति सअं पिणद्धं। तस्सिं साहीणोवाआ सउंदला भविस्सदि। शक्यमिदानीं समाश्वसितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्। तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति। २.१३

प्रियंवदा सहि! एहि देवकज्जं दाव णिवत्तेम्हो। सखि! एहि, देवकार्यं तावन्निर्वर्तयावः। २.१४

परिक्रामतः। २.१५

प्रियंवदा *विलोक्य* अणसूए! पेक्ख दाव वामहत्थोवहितवअणा आलिहिदा विअ पियसही भत्तुगदाए चिंताए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदिं किं उण आगंतुअं।

(विलोक्य) अनसूये! पश्य तावत् वामहस्तोपहितवदना आलिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तया आत्मानमपि नैषा विभावयति, किं पुनरागन्तुकम्? २.१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया (एक डग चलकर फिसल पड़ने पर अभिनय करती) अहो! आवेग से फिसल गई और पुष्पपात्र हाथ से छिटक गया। (बिखरे फूल बीनने का अभिनय करती है)

(प्रवेश कर)

प्रियंवदा सखि! वह तो स्वभाव से ही टेढ़ा ऋषि है, वह किसका अनुनय स्वीकार करने चला। कुछ दयालु हुआ।

अनसूया (मुसकुराते हुए) उसके लिए उतना भी बहुत है। कह।

प्रियंवदा जब उसने लौटना स्वीकार नहीं किया तब मैंने प्रार्थना की कि 'भगवन्! यह प्रथम अपराध है यह देखकर तप के प्रभाव से अनभिज्ञ बेटी का एक अपराध तो क्षमा कर दिया जाना चाहिए।'

अनसूया तब, तब?

प्रियंवदा तब मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु अभिज्ञान आभरणादि के दिखाने से शाप हट जाएगा ऐसा कहते—कहते वह अलक्षित हो गया।

अनसूया कुछ हिम्मत तो हुई। उस राजर्षि ने लौटते समय अपने नाम से अंकित अँगूठी याददाश्त के लिए अपने हाथ से पहना रखी है। तो शकुन्तला के पास शापनिवृत्ति का उपाय स्वाधीन रहेगा।

प्रियंवदा सखि! आ पहले देवकार्य पूरा कर लें।

(घूमती हैं)

प्रियंवदा (देखकर) अनसूये! देख तो यह प्रियसखी बाएँ हाथ पर मुँह रखे चित्रलिखित सी बैठी है। प्रिय के ध्यान में इसे अपना भी ध्यान नहीं है, आने वाले की बात ही क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया पियंवदे! दुवेणं एव्व णो मुहे एसो वुत्तंतो चिठ्ठदु। रक्खिदव्वा खु पकिदिपेलवा पिअसही। प्रियंवदे! द्वयोरेव ननु नौ मुखे एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी। २.१७

प्रियंवदा को णाम उष्णोदएण णोमालिअं सिंचेदि?

को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति? २.१८

उभे *निष्क्रान्ते।* २.१९

॥ २॥

ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः २.२०

शिष्यः वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदालोकयामि कियदवशिष्टं रजन्याः।*परिक्रम्यावलोक्य च।* हन्त प्रभातम्। तथाहि— २.२१

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना—
माविष्कृतोऽरुणपुरस्सर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥ २॥

~~अपि च~~ २.२

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ ३॥[१]

---

१. अतः परमपि प्रसंगेऽत्रपद्यद्वयमिदं पठ्यते—

कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या दार्भं मुञ्चत्युटजपटलं वीतनिद्रो मयूरः।
वेदिप्रान्तात्खुरविलिखितादुत्थितश्चैष सद्यः पश्चादुच्चैर्भवति हरिणः स्वांगमायच्छमानः ॥

और देखो बैरों के ऊपर पड़ी ओस को उषाकाल रंग रहा है, जागा मोर लकड़ी के उटज पटल को छोड़ रहा है, ये हरिण शिशु चारों ओर उपवन में निर्भय चर रहे हैं, क्योंकि इसमें दर्भाङ्कुर हटा दिए गए हैं॥

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः क्रान्तं येन क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः।
सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखैरत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा ॥

जिस(चन्द्र) ने पर्वतराज सुमेरु के सिर पर पादन्यास पर अँधियारी दूर करते हुए भगवान् विष्णु के दूसरे धाम पर विचरण किया था वही चन्द्र अब बहुत कम बची किरणों के साथ आकाश से गिर रहा है। अत्यारूढ़ि बड़ों को भी पतन का मुख दिखलाती है॥

द्र० काग्र. पृ. ५८१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया प्रियंवदे! हम दो ही के मुख में रहे यह बात। प्रियसखी बड़ी सुकुमार है। इसे इससे बचाना चाहिए।

प्रियंवदा कौन सींचता है नवमालिका को गर्म पानी से?

दोनों (निकल जाती हैं)

॥ २॥

(प्रवेश करता है सोकर उठा शिष्य)

शिष्य प्रवास से लौटे पूज्य काश्यप ने समय जानने का आदेश दिया है। बाहर निकल कर देखूँ कि रात कितनी बची है। (घूमकर और देखकर) हन्त रात प्रभात बनने जा रही है, क्योंकि –

एक ओर चन्द्रमण्डल अस्तशिखर को पहुँच रहा है और एक ओर अरुण को आगे किए उदित हो रहा है सूर्य। दो तेज और दोनों का एक साथ व्यसन(अस्त) तथा अभ्युदय। इनसे लोक को शिक्षा मिलती है अपनी दशा बदलने की॥ २॥

इसी प्रकार,

चन्द्र डूब गया तो वही कुमुद्वती अब आँखों को आनन्दित नहीं कर रही है। इष्ट (प्रिय) के प्रवास से उत्पन्न दुःख अबलाओं को अत्यन्त दुःसह होते हैं॥ ३॥[१]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रविश्याऽपटीक्षेपेण ४.१

अनसूया जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स वि जणस्स एदं णो विदिदं तहवि तेण रण्णा सउंदलाए अणज्जं आअरिदं।[१] यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्य इदं न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्। ४.२

शिष्यः यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। *निष्क्रान्तः*। ४.३

अनसूया णं प्पभाता रअणी। ता लहु सहिं पडिबोहेमि। अधवा पडिबुद्धावि सा किं करिस्सदि? ण से[२] उइदेसु करणिज्जेसु हत्थपाआ पसरंदि। कामो दाणिं सआमो होदु जेण असच्चसंधे जणे सुद्धहिअआ सही पदं कारिदा। अधवा, दुव्वासस्स कोवो एसो विआरेदि। अण्णधा कहं सो राएसि तारिसाणि मंतिअ एत्तिअस्स कालस्स लेखमत्तं वि ण विसज्जेदि? ता इदो अहिण्णाणं अंगुलीअअं से विसज्जेम। दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भीअदु? णं सहीगामी दोसो त्ति व्ववसिदा वि ण पारेमि पवासप्पडिणिवुत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्संतपरिणीतं आवण्णसत्तं सउंदलं णिवेदिदुं। इत्थंगए अम्हेहिं किं करणिज्जं? ननु प्रभाता रजनी तल्लघु सखीं प्रतिबोधयामि। अथवा प्रतिबुद्धापि सा किं करिष्यति? नास्या उचितेष्वपि कार्येषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानीं सकामो भवतु येन असत्यसंधे जने शून्यहृदया सखी पदं कारिता। अथवा, दुर्वाससः कोप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वा एवावत्कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति? तदितः अभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः। दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्? ननु सखीगामी दोष इति व्यवसितापि न पारयामि, प्रवास–प्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीताम् आपन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थंगते अस्माभिः किं करणीयम्? ४.४

प्रविश्य ४.५

प्रियंवदा *सहर्षम्* सहि! तुवर सउंदलाए पत्थाणकोदुअं णिव्वत्तिदुं।
सखि! त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्। ४.६

१.अनसूया उक्तिरियमेवमेवं हामा.१०८४–१०८६ इत्येतासु मातृकासु शिष्योक्तिद्वयमध्यलिखितैव लभ्यते।

२. अत्र हामा. १०८४–१०८६ इत्येतासु तिसृष्वपि मातृकासु स एव पाठो योऽसंगतार्थोऽपि निर्णयसागरादिभ्यः प्रकाशितः उद्धृतश्च काग्र. पृ. ५८२ । 'से = अस्याः सख्याः' । अस्य स्थाने 'मे = मम' वक्त्र्या अनसूयायाः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अपटीक्षेप के साथ प्रवेशकर)

अनसूया यद्यपि विषय पराङ्मुख लोगों को इसकी खबर नहीं है, तथापि उस राजा ने शकुन्तला के साथ अनार्य व्यवहार किया।

शिष्य चलूँ होमवेला आ गई है, यह गुरुजी को बतला आऊँ। (निकल जाता है)

अनसूया रजनी प्रभात बन गई है तो चलूँ सखी को जल्दी जगा दूँ। अथवा जागकर भी वह करेगी क्या? उसके तो दैनिक कार्यों (उचित) में भी हाथ पैर नहीं चल रहे हैं। काम की इच्छा पूरी हो ले जिसने झूठे व्यक्ति को शून्यहृदया सखी दिला दी। अथवा यह दुर्वासा का कोप है जो ऐसा दोष पैदा कर रहा है। नहीं तो भला वह राजा होते हुए वैसी बात कर इतने दिनों तक लेख भी नहीं भेजता? तो यहाँ से उसको अँगूठी भिजवाएँ। किन्तु समीप के तपस्वियों का स्वभाव रूखा। किससे कहा जाए? और दोष सखी का है इसलिए प्रवास से लौटे तात काश्यप से भी यह कहते नहीं बन रहा है कि शकुन्तला का दुष्यन्त ने परिणय कर लिया और वह गर्भवती है। ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए।

(प्रवेश कर)

प्रियंवदा (हर्ष के साथ) सखि! जल्दी कर शकुन्तला की विदाई की तैयारी करने की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया *सविस्मयं* सहि! कहं एदं? *सखि! कथमेतत्?* ४.७

प्रियंवदा सुणाहि, दाणिं सुहसइदपुच्छिआ सउंदलासआसं गदम्हि। तदो जाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणंदिदं 'दिट्ठिआ धूमाउलिददिट्ठस्स वि जअमाणस्स पावए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे! सुसिस्सदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जा सि संवुत्ता। अज्ज एव इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति'।

शृणु, इदानीं सुखशयितपृच्छिका शकुन्तलासकाशं गतास्मि। ततो यावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम्— 'दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से! सुशिष्यदत्ता विद्येव अशोचनीयाऽसि संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामि' इति। ४.८

अनसूया अध केण सूइदो तादकस्सवस्स अअं वुत्तंतो।

अथ केन सूचितः तातकाश्यपस्य अयं वृत्तान्तः? ४.९

प्रियंवदा अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छंदोमईए अणआ वाणिआए।

अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या अनया वाण्या। ४.१०

संस्कृतमाश्रित्य ४.११

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः[१] ।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ।।४।।

अनसूया *प्रियम्वदामाश्लिष्य* सहि! पिअं मे किंदु अज्ज एव्व सउंदला णीअदि त्ति उक्कंठासाहारणं परितोसं अणुहोमि। सखि! प्रियं मे, किन्तु अद्यैव शकुन्तला नीयत इति उत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि। ५.१

प्रियंवदा सहि! अम्हं कहं वि उक्कंठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणि णिव्वुदा होदु।

सखि! आवां कथमपि उत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृता भवतु। ५.२

अनसूया तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलंबिदे णारिएरसमुग्गए तण्णिमित्तं एव्व कालंतरक्खमा णिक्खित्ता मए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसंणिहिदं करेहि। जाव अहं वि से मिअरोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआइं त्ति मंगलसमालंभणाणि विरएमि। तेन हि एतस्मिन् चूतशाखावलम्बिते नालिकेरसमुद्गके एतन्निमित्तमेव कालहरणक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। त्वम्, इमां हस्तसंनिहितां कुरु, अहमपि तस्यै मृगरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि। ५.३

---

१. इदमेव हि कालिदासनाट्यकलाया प्रमुखं प्रयोजनं यद् भुवो भूतिः। द्र. रघुवंश— १९.५७ भवार्थपदपाठान्तरम्। इयमेव हि भारतीयानां राष्ट्रिया सामाजिकी चान्तर्दृष्टिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया (विस्मय के साथ) सखि! यह हुआ कैसे?

प्रियंवदा सुन! सुखशयन पूछने शकुन्तला के पास गई थी मैं। वहाँ तात काश्यप ने लज्जानतमुखी शकुन्तला को छाती से लगाकर कहा— 'यजमान की दृष्टि तो धूम से आकुलित थी तब भी भाग्य से उसकी आहुति अग्नि में ही पड़ी।' वत्से! सुशिष्य को दी विद्या के समान अब तेरी चिन्ता से मैं मुक्त हुआ। आज ही मुझे ऋषियों की रक्षा में ससुराल भेजता हूँ।

अनसूया और तात काश्यप को इस वृत्तान्त की सूचना किसने दी।

प्रियंवदा अग्निशरण में पहुँचते ही छन्दोमयी आकाशवाणी ने।

(संस्कृत में)

भूमि के उत्कर्ष के लिए, हे ब्रह्मन्! अपनी कन्या को दुष्यन्त के द्वारा आहित तेज को धारण की हुई समझो, अग्निगर्भा शमी जैसी ।।४।।

अनसूया (प्रियंवदा का आलिंगन कर) सखि! प्रिय बात कही। किन्तु शकुन्तला आज ही ससुराल ले जाई जा रही है इसलिए उत्कण्ठा (बिछुड़ने के दुःख से) मिश्रित परितोष का अनुभव कर रही हूँ।

प्रियंवदा सखि! हमलोग बिछुड़ने का दुःख (उत्कण्ठा) सह लेंगे। वह बेचारी तृप्त हो ।

अनसूया तो फिर इस आम की शाखा पर लटकी नारियल की पिटारी में इसीलिए देर तक टिकने वाली केसर (वकुल पुष्प) माला मैंने रख छोड़ी है। उसे हाथ में रख ले । मैं भी इसके लिए 'मृगरोचना, तीर्थमृत्तिका, दूर्वाकिसलय'— ये मांगलिक सामग्री तैयार करती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा तह करीअदु। तथा क्रियताम्। ५.४

अनसूया *निष्क्रान्ता* ५.५

प्रियंवदा *नाट्येन सुमनसो गृह्णाति।* ५.६

नेपथ्ये ५.७

गौतमि! आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय। ५.८

प्रियंवदा *कर्णं दत्त्वा* अणसूए! तुवरसु, एदे क्खु हत्थिणाउरगामिणो इसिओ सद्दावीअंदि। अनसूये। त्वरस्व! एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषय शब्दाप्यन्ते। ५.९

प्रविश्य समालम्भनहस्ता ५.१०

अनसूया सहि एहि गच्छम्ह। सखि! एहि गच्छाव। ५.११

परिक्रामतः ५.१२

प्रियंवदा *विलोक्य* एसा सुज्जोदए एव्व सिहामज्जिदा पडिच्छिदणीवारहत्थाहिं सोत्थिवाअणिकाहिं तापसीहिं अहिणंदिअमाणा सउंदला चिट्ठदि। उपसप्पम्ह णं। (विलोक्य) एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतिष्ठितनीवार–हस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनाम्। ५.१३

उपसर्पतः। ५.१४

॥ मिश्रविष्कम्भकः॥ ५.१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा ठीक है। वैसा ही किया जाए।

अनसूया (निकल जाती है।)

प्रियंवदा (फूल चुनने का अभिनय करती है।)

(नेपथ्य में)

गौतमि! शार्ङ्गरव आदि को आदेश दो शकुन्तला को ले जाने के लिए।

प्रियंवदा (कान देकर) अनसूये! जल्दी कर, जल्दी कर। ये, सुन, हस्तिनापुर जाने वाले ऋषि पुकारे जा रहे हैं।

(हाथ में शृङ्गार की सामग्री लिए प्रवेश कर)

अनसूया सखि! आ। चलें।

(घूमती हैं)

प्रियंवदा (देखकर) देखो यह बैठी है शकुन्तला। इसने सबेरे सबेरे ही सिर धोकर स्नान किया है, नीवार ली हुई तापसी स्वस्तिवाचिका इसका अभिनन्दन कर रही हैं। चलें इसके पास।

(पास पहुँचती हैं।)

।। मिश्रविष्कम्भक समाप्त ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ चतुर्थोऽङ्कः ।। ५.१६

।। ३ ।।

ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारा आसनस्था शकुन्तला तापस्यश्च ५.१७

शकुन्तला *तापसीः प्रति* भअवदीओ! बंदामि। भगवत्यः! वन्दे। ५.१८

एका[1] *शकुन्तलां प्रति* जादे! भत्तुणो बहुमाणसूअअं देईसद्दं लहेहि।

जाते! भर्तुः बहुमानसूचकं देवीशब्दं लभस्व। ५.१९

द्वितीया वच्छे! वीरप्पसविणी होहि। वत्से! वीरप्रसविनी भव। ५.२०

तृतीया वच्छे! भत्तुणो बहुमदा होहि। वत्से! भर्तुर्बहुमता भव। ५.२१

आशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः ५.२२

सख्यौ *शकुन्तलामुपसृत्य* सहि! सुहमज्जणं दे होदु। सखि! सुखमज्जनं ते भवतु। ५.२३

शकुन्तला सागदं मम पिअसहीणं। इदो णिसीदह।

स्वागतं मम प्रियसख्योः। इतो निषीदतम्। ५.२४

उभे *मङ्गलपात्राण्यादायोपविश्य* सहि! सज्जा होहि जाव दे मंगलसमालंभणं विरएम।

सखि! सज्जा भव। यावत् ते मङ्गलसमालम्भनं विरचयाव। ५.२५

शकुन्तला एदं वि बहु मंतव्वं। दुल्लहं दाणिं सहीगंडणं भविस्सिदि त्ति। इदमप्यद्य बहु मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं से सखीमण्डनं भविष्यतीति। *बाष्पं विसृजति*[2] ५.२६

उभे सहि! उइदं ण दे मंगलकाले अंसूणि विसज्जिदुं। सखि! उचितं न ते मङ्गलकाले अश्रूणि विसर्जयितुम्। *अश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः।* ५.२७

प्रियंवदा आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाधणेहिं विप्पआरीअदि।

आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते। ५.२८

प्रविश्योपायनहस्तौ ऋषिकुमारौ ५.२९

ऋषिकुमारौ इदमलङ्करणम्। अलङ्क्रियतामत्रभवती शकुन्तला। ५.३०

---

१. हामामातृकात्रितयेऽपि 'एका, द्वितीया, तृतीया, इत्येव लेखः।

२. विसृजति = विहरति हामाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्थ अङ्क।।

।। ३ ।।

(प्रवेश करती है उपर्युक्त स्थिति में आसन पर बैठी शकुन्तला और तापसियाँ)

शकुन्तला (तापसियों के प्रति) भगवतियों को प्रणाम।

एक तापसी (शकुन्तला के प्रति) पुत्रि! भर्त्ता के बहुमान का सूचक देवी शब्द प्राप्त कर।

दूसरी तापसी वत्से! वीरप्रसविनी हो।

तीसरी तापसी वत्से! पति को मान्य बन।

(आशीर्वाद देकर गौतमी को छोड़ सब निकल जाती हैं)

दोनों सखियाँ (शकुन्तला के पास पहुँचकर) सखि! तेरा स्नान सुखद हो।

शकुन्तला मेरी सभी प्रिय सखियों का स्वागत। यहाँ बैठो।

दोनों सखियाँ (मङ्गलपात्र लेकर और बैठकर) सखि! तैयार हो जा, तेरा मांगलिक मण्डन करें।

शकुन्तला यह भी बहुत मानना पड़ेगा। अब सखीमण्डन दुर्लभ हो जाएगा। (आँसू बहाती है)

दोनों सखियाँ सखि! उचित नहीं है तेरा मंगलवेला में आँसू बहाना।

(आँसू पोंछकर अलंकरण करने का अभिनय करती हैं)

प्रियंवदा आभरणोचित रूप को आश्रमसुलभ प्रसाधनसामग्री से बिगाड़ा जा रहा हैं।

(हाथ में उपायन लिए दो ऋषिकुमार प्रवेश कर)

ऋषिकुमार यह लीजिए अलङ्करण। अलंकृत की जाए पूज्य शकुन्तला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व्वाः विलोक्य विस्मिताः ५.३१

गौतमी वच्छ णारद! कुदो एदं? वत्स नारद! कुत एतत्? ५.३२

नारदः[१] तातकाश्यपप्रभावात्। ५.३३

गौतमी किं मानसी सिद्धिः ५.३४

गौतमः न खलु। श्रूयताम्। तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति। तत इदानीम् ५.३५

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपयो/भोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्व्वभागोत्थितैर्
दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ।। ५।।

प्रियंवदा *शकुन्तलां विलोक्य* हला! इमाए अब्भुववत्तिए सूइदा 'दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छि' ति।

सखि! अनया अभ्युपपत्त्या सूचिता, ते भर्तुर्गेहे अनुभवितव्या राजलक्ष्मीरिति। ६.१

शकुन्तला *व्रीडां रूपयति।* ६.२

नारदः[२] गौतम! एह्येहि अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः। ६.३

गौतमः[३] तथा। ६.४

निष्क्रान्तौ ६.५

सख्यौ आए! अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। ता चित्तकम्मपरिअएण अंगेसु दे आभरणविणिओअं करेम्ह। अये! अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। तत्, चित्रकर्मपरिचयेन, अङ्गेषु ते आभरणविनियोगं कुर्वः। ६.६

शकुन्तला जाणे वो णेउणं। जाने वां नैपुणम्। ६.७

उभे *नाट्येनालङ्कुरुतः।* ६.८

---

१. नारदः – एकः हामाः, गौतमः – द्वितीयः हामाः।

२. नारदः – प्रथमः हामाः।

३. गौतम– द्वितीयः हामाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सभी देखकर विस्मय में पड़ती है)

गौतमी वत्स नारद! यह कहाँ से?

नारद तात काश्यप के प्रभाव से।

गौतमी क्या मानसी सिद्धि है यह।

गौतम ऐसा नहीं। सुना जाय पूज्य महर्षि जी ने हमें आज्ञा दी कि शकुन्तला के लिए वनस्पतियों से पुष्प चुन लाओ । उसके पश्चात् –

किसी वृक्ष ने चन्द्रधवल माङ्गलिक क्षौम आविष्कृत कर दिया, किसी ने चरण में लगाने योग्य माङ्गलिक लाक्षारस, अन्य वृक्षों ने आभरण दे दिये उनके किसलयों जैसे लाल–लाल वनदेवियों के पर्वभाग तक प्रकट हुए करतलों से।। ५।।

प्रियंवदा (शकुन्तला को देखकर) सखि! इस अनुग्रह से सूचित है कि तुझे पति के घर राज्यलक्ष्मी का अनुभव करना है।

शकुन्तला (लज्जा का अभिनय करती है।)

नारद गौतम! आ आ अभिषेक (स्नान) करके ऊपर आए तात काश्यप को यह वनस्पति सेवा सूचित करें।

गौतम ठीक।

(दोनों निकल जाते है)।

दोनों सखियाँ आर्ये। हमने तो कभी आभूषणों का उपयोग किया ही नहीं। तो चित्रकार्य को देख देखकर अंगों में आभरण पँहनाए देती हैं।

शकुन्तला तुम्हारी कला जानती हूँ।

दोनों सखियाँ (अलङ्करण का अभिनय करती हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ४ ॥

ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः[१] ६.९

काश्यपः ६.१०

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः[२] **॥ ६॥**

परिक्रामति । ७.१ ।

सख्यौ हला सउंदले! अवसिदमंडणासि। परिधेहि संपदं विचित्तं खोमजुअलं।
सखि शकुन्तले! अवसितमण्डनासि। परिधत्स्व सांप्रतं विचित्रं क्षौमयुगलम्। ७.२

शकुन्तला *उत्थाय परिधत्ते*[३] । ७.३

गौतमी जादे एसो दे आनंदपरिवाहिणा चक्खुसा[४] परिस्सजंतो विअ गुरू उवत्थिदो आआरं दाव पडिवज्जसु। जाते! एष ते आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव, गुरुरुपस्थितः आचारं तावत् प्रतिपद्यस्व। ७.४

शकुन्तला *सव्रीडम्* ताद वंदामि। तात! वन्दे। ७.५

काश्यपः वत्से! ७.६

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्त्तुर्बहुमता भव ।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥ ७॥

गौतमी भअवं! वरो क्खु एसो ण आसिसा। भगवन्! वरः खल्वेषः, नाशिषः। ८.१

काश्यपः वत्से! इतः सद्योहुतानग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व। ८.२

सर्वे परिक्रामन्ति ८.३

काश्यपः [५]*ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते* ८.४

---

१. अयं हि प्रथमश्चरमश्च प्रवेशः कण्वस्य।
२. श्लोकचतुष्टये प्रथमः श्लोकः।
३. मञ्चे परिधानं वर्जितं विशेषेण योषिताम्।
४. चक्खुणा हामा. १०८६।
५. ऋगियं काश्यपघटिताक्षरेति पौरुषेयी। अतोऽत्र कविश्छन्दःपदं प्रायुङ्क्त न तु मन्त्रपदम्। मन्त्राणां केवलमपौरुषेवत्वमेवेति तदिदं छन्दोऽत्र पद्यरूपम्। पदयोजना तु ऋग्वेदीयेति तथोक्तिः। अत एव काव्यमेव प्रथमं विद्यास्थानं तदनुशासनं च मीमांसात्मकं काव्यशास्त्रमिति प्रतिपत्तव्यम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥४॥

(प्रवेश करते हैं नहा कर ऊपर आए काश्यप (कण्व)[१]

काश्यप — **१. आज शकुन्तला की विदाई होनी है तो हृदय में बिछुड़ने की पीड़ा हो रही है, कण्ठ आँसुओं से रुँध गया है, चिन्ता के कारण दृष्टि में कुछ सूझता ही नहीं। इतनी व्याकुलता स्नेहवश जब मुझ वनवासी में है तब, पुत्री के विश्लेष के नए नए दुःखों से गृहस्थ जनों को कितनी पीड़ा नहीं होती होगी॥ ६॥**[२]

(घूमते हैं)

दोनों सखियाँ — हला शकुन्तले! तेरा अलङ्करण पूरा हो गया। धारण कर ये दो क्षौम वस्त्र।

शकुन्तला — (खड़ी होकर पहन लेती है।)[३]

गौतमी — पुत्रि! ये तेरे, आनन्दाश्रु की बाढ लिए नेत्रों से आलिंगन सा कर रहे गुरु उपस्थित हैं। आचार का पालन कर।

शकुन्तला — (लज्जासहित) तात प्रणाम करती हूँ।

काश्यप — वत्से!

अपने पति को बहुमत हो, ययाति को शर्मिष्ठा के समान।
तुम सम्राट् पुत्र पाना, जैसे उसने पाया था पूरु ॥७॥

गौतमी — भगवन्! यह तो वर है आशीर्वादमात्र नहीं।

काश्यप — वत्से! इधर तुरन्त आहुति पड़ी यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा कर।

(सभी घूमते हैं)

काश्यप — (ऋक्छन्द से आशीर्वाद)

---

१. कण्व की प्रथम और अन्तिम बार मञ्च पर उपस्थिति। कण्व स्वयं कालिदास।

२. चतुर्थ अंक के चार पद्यों में प्रथम पद्य।

३. मञ्च पर वस्त्र बदलना आपत्तिजनक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर् वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥ ८॥

प्रतिष्ठस्वेदानीम्। *सदृष्टिक्षेपम्* क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः? ९.१

प्रविश्य ९.२

शिष्यौ भगवन्निमौ स्वः। ९.३

काश्यपः *शार्ङ्गरवं वीक्ष्य* भगिन्यास्ते मार्गमादेशय । ९.४

शार्ङ्गरवः इत इतो भवती । *सर्वे परिक्रामन्ति* । ९.५

काश्यपः भो भोः[1] सन्निहितास्तपोवनतरवः। ९.६

२. पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्व्वैरनुज्ञायताम[2] ॥ ९॥

कोकिलरवं सूचयित्वा १०.१

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥ १०॥

आकाशे ११.१

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि–
श्छायाद्रुमैर् नियमितार्क्कमयूखतापः ।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ॥ ११॥

सर्वे सविस्मयं आकर्णयन्ति। १२.१

गौतमी जादे! ण्णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादासि तवोवणदेवताहिं। पणम भअवदीणं। जाते! ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातासि तपोवनदेवताभिः। प्रणम भगवतीः। १२.२

---

१. गौरीशङ्करशिखरमेतद् भावनातिशयोद्रेकस्य। तरुष्वत्र बन्धुत्वदृक्। तरवोऽपि परमार्थबन्धवः न तु स्थावरपिण्डाः। अत एव कोकिलरवद्वारा दत्ताशिषः। तेऽपि समुच्छलच्चेतनाधाराः अत एवोपस्थिता भगवती पौरुषेयी वाक् लौकिकैस्त्रिभिः काश्यपरचितोदीरितैः शार्दूलविक्रीडितार्यावसन्ततिलकवृत्तैः अयमेव च शकुन्तलाप्रस्थानमुहूर्तः इयमेव चैतन्नाट्यप्रयोगवेला 'ईसीसि चु'. इति।

२. श्लोकचतुष्टये द्वितीयः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ की ये अग्नियाँ तुझे पवित्र करें। ये वेदी में चहुँओर प्रज्वलित हैं (प्रदक्षिणायुक्त) इनमें समिधाएँ छोड़ी जा रही हैं, इनके आस–पास चहुँओर दर्भ विछे हुए हैं। ये हव्यगन्ध से पाप का ध्वंस कर रहे हैं ॥८॥

अब कर प्रस्थान। (दृष्टि डालकर) कहाँ हैं वे शार्ङ्गरव आदि (मिश्रा)?

(प्रवेश कर)

दोनों शिष्य — भगवन्! ये हैं हम।

काश्यप — (शार्ङ्गरव को देखकर) अपनी बहिन को रास्ता दिखलाओ।

शार्ङ्गरव — इधर से, इधर से आएँ आप। (सभी घूमते हैं)

काश्यप — भो भो! यहाँ सन्निहित तपोवन के वृक्षों –

२. आज शकुन्तला ससुराल जा रही है। इसे सब अनुज्ञा दें। यह वही शकुन्तला है जो तब तक खुद पानी नहीं पीती थी जब तक आप सब न पी लें, आपके स्नेह से मण्डनप्रिय होते हुए भी जो आपकी पत्ती तक नहीं छूती थी, जो उत्सव मनाती थी जब आप में पुष्पों के पहले अंकुर फूटते थे ॥९॥[१]

(कोयल की बोली की सूचना) –

वनवास के बन्धुवृक्षों ने दे दी शकुन्तला को विदाई, इन्होंने कोकिल की कूक में ऐसा उत्तर जो दे दिया॥१०॥

(आकाशवाणी)

इसका मार्ग मंगलमय हो – रास्ते में भी जगह जगह कमलिनी से हरे सरोवर मिलें, छाया वाले वृक्षों से धूप रुकी रहे, रास्ते की धूली कमल रेणु सी मृदु हो जाए, पवन शान्त भी हो और अनुकूल भी ॥११॥

(सभी विस्मय के साथ सुनते हैं।)

गौतमी — जाते! तपोवन देवताओं ने दे दी तुझे अनुमति, इनमें तेरे ऊपर मायके (ज्ञातिजन) का स्नेह है। इन देवियों को कर प्रणाम।

---

२. यह चार पद्यों में दूसरा पद्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला *सप्रणामं परिक्रम्य जनान्तिकम्* हला पिअंवदे! णं अज्जउत्तदंसणुस्सुआए वि अस्समं परिच्चजन्तिए दुखेण मह चरणा पुरतो प्पवट्टंति। सखि प्रियंवदे! ननु आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अपि आश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तेते। १२.३

प्रियंवदा ण केवलं तवोवणविरहकादरा सही एव्व, तुह उवट्ठिदविओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्था दीसइ। न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव, त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्था दृश्यते। १२.४

उग्गलिअदब्भकवला मआ परिच्चत्त–णच्चणा मोरा ।
ओसरिअ–पंडु–वत्ता मुअंति अस्सूणि विअ लदाओ ।। १२।।

(उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ।।)

शकुन्तला *स्मृत्वा* ताद! लदाबहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमंतइस्सं।
तात! लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये। १३.१

काश्यपः अवैमि ते तस्यां सोदर्यस्नेहम्। इयं तावद् दक्षिणेन। १३.२

शकुन्तला *लतामुपेत्य* वणज्जोसिणि! चूदसंगदा वि मं पच्चालिंग इदोगहाहिं साहावाहाहिं। अज्जप्पहुदि दूरपरिवट्टिणी भविस्सम्हि ।
वनज्योत्स्ने! चूतसंगतापि मां प्रत्यालिङ्ग। इतोगताभिः शाखाबाहाभिः, अद्यप्रभृति दूरपरिवर्तिनी भविष्यामि। १३.३

काश्यपः १३.४

संकल्पितं[१] प्रथममेव मया [२]त्वदर्थे
भर्त्तारमात्मसदृशं [३]सुकृतैर्गता त्वम् ।
चूतेन [४]संगतवती नवमालिकेय–
मस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः ।।१३।।

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व।१४.१

---

१. सूत्रमिदमस्माकमुत्प्रेक्षायाः कण्व एव सारङ्गो भूत्वा दुष्यन्तमाचकर्षेति।
२. त्वदर्थं = तवार्थे हामा. साहित्यअकादमी–२ च।
३. द्र. अत्रास्माकं काग्र.। सुकृतैः हामाः. काग्र.।
४. संगमपदार्थोऽत्र सविशेषं विचार्यः। संगत = संश्रित हामा. काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला (प्रणाम की अञ्जलि लिए घूमती हुई जनान्तिक) सखी प्रियंवदे! क्या कहूँ आर्यपुत्र के दर्शन के लिए हूँ तो मैं समुत्सुक, परन्तु आश्रम को छोड़ते हुए मेरे पैर कठिनाई से आगे बढ़ रहे हैं।

प्रियंवदा तपोवन के विरह में प्रियसखी तू ही केवल कातर नहीं है, तुझसे बिछुड़ रहे तपोवन की भी ऐसी ही अवस्था दिखाई दे रही है। देख –

ये हिरनियाँ दर्भ उगल कर स्तब्ध खड़ी हैं, ये मोर नृत्य छोड़े हुए हैं, ये लताएँ पाण्डुपत्रों के रूप में आँसू की बूँदें टपका रही हैं।।१२।।

शकुन्तला (याद कर) तात! मैं लताभगिनी वनज्योत्स्ना से विदा लूँगी।

काश्यप मैं जानता हूँ तुम्हारा उसके प्रति सगे जैसा सम्बन्ध। यह रही वह दाहिने।

शकुन्तला (लता के समीप जाकर) वनज्योत्स्ने! आम से लिपटी है तू, परन्तु इधर निकली शाखाओं से मेरा आलिंगन कर, आज से तुझसे दूर चली जाऊँगी मैं।

काश्यप **बेटी! तेरे लिए मैंने जो वर सोच रखा था, पुण्यों के प्रभाव से तू उसी को प्राप्त हो गई और यह नवमालिका संगिनी बन गई आम की, तो इसकी और तेरी चिन्ता से मुक्त हुआ मैं ।।१३।।**

इधर से अब रास्ता पकड़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला *सख्यौ प्रति* हला! एसा दुवेणं वो हत्थे णिक्खेवो।

सखि! एषा द्वयोर्युवयोर्ननु हस्ते निक्षेपः। १४.२

सख्यौ अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदो।

अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः? *बाष्पं विहरतः।* १४.३

काश्यपः अनसूये! अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्त्तव्या शकुन्तला। १४.४

सर्वे परिक्रामन्ति। १४.५

शकुन्तला ताद! एसा उडजपज्जंतचारिणी गब्भमंथरा मिअवहू जदा अनघप्पसवा होइ तदा मं कंवि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह।

तात! एषा उटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूः यदा अनघप्रसवा भवति तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ। १४.६

काश्यपः नेदं विस्मरिष्यामः। १४.७

शकुन्तला *गतिभङ्गं रूपयित्वा* को णु खु एसो णिवसने मह सज्जइ? *परावर्त्तते*

को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते? १४.८

काश्यपः वत्से! १४.९

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ।।१४।।

शकुन्तला वच्छ! किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि? अइरप्पसूताए जणणीए विणा विवड्ढिदो एव्व। दाणिं वि मए विरहिदं तुमं तादो चिंतइस्सदि। णिवत्तेहि दाव।

वत्स! किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि? अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्त्तस्व तावत्। *रुदती*[1] *प्रस्थिता* १५.१

काश्यपः १५.२

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं बाष्पं कुरु स्थिरतया विरतानुबन्धम् ।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति।।१५।।[2]

---

१. रुदती = रुदंती हामाः।

२. पुडइणिवतंतरिअं बाहरिओ णाणुवाहरेइ पिअं ।
मुहउव्वूढमुणालो तुइ दिट्ठिं देइ चक्काओ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला (सखियों से) सखि! तुम दोनों के हाथ में यह है मेरी धरोहर।

दोनों सखियाँ इस जन (मुझ) को किसे सौंप रही है? (आँसू बहाती हैं)

काश्यप अनसूये! रो मत। अरे तुम्हीं दोनों को तो शकुन्तला को ढाढस बँधाना है।
(सभी घूमते हैं।)

शकुन्तला तात! उटज के आस–पास तक ही घूम पाती इस गर्भमन्थरा मृगवधू को जब सकुशल प्रसव हो जाए तो मेरे पास किसी के हाथ, प्रिय खबर भिजवा देना।

काश्यप यह नहीं भूलेंगे ।

शकुन्तला (रुकावट की सूचना देकर) कौन है यह जो मेरी साड़ी पकड़ रहा है? (घूमकर देखती है)

काश्यप वत्से!

यह तेरा पुत्र बनाया मृगशिशु है। वही तेरा मार्ग नहीं छोड़ रहा। इसका मुख जब दर्भाङ्कुर से टुच (बिंध) जाता था तो तू व्रण भरने वाला इंगुदी का तैल लगाती रहती थी, साँवा की मुट्ठी खिला–खिला कर बड़ा किया था इसे तूने ही ।।१४।।

शकुन्तला वत्स! साथ छोड़ रही मेरा अनुसरण क्यों कर रहा है? तुझे जन्म देकर तेरी माँ नहीं रही थी तो तुझे बड़ा किया ही, अब भी मुझसे छूटे तुझ पर तात ध्यान देते रहेंगे। जा लौट जा। (रोती आगे बढ़ती है)।

काश्यप **ऊँची बरौनी वाली पलक में बार बार आ रहे इन आँसुओं को चित्त में दृढ़ता लाकर रोक। मार्ग ऊँचा नीचा है। तुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है और तेरे पाँव विषम हो रहे हैं ।।१५।।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरवः भगवन्नोदकान्तात् स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि। १६.१

काश्यपः तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः। १६.२

सर्वे परिक्रम्य स्थिताः। १६.३

काश्यपः *आत्मगतम्* किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम्। *चिन्तयति* १६.४

शकुन्तला *जनान्तिकम्* हला! पेक्ख णलिणी—वत्तन्तरिदं वि सहअरं अदेक्खंदी आदुरा चक्कवई आरडदि दुक्करमहं करोमि त्ति। (जनान्तिकम्) सखि! प्रेक्षस्व नलिनी—पत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्ती आतुरा चक्रवाकी आरटति। दुष्करमहं करोमीति। १६.५

अनूसया सहि! मा एव्वं मंतिअ। १६.६

एसा वि पिएण विणा गमेइ रअणिं विसाददिग्घतमां ।
गरुअं पि विरहदुःखं आसाबंधो सहावेदि ।।१६।।

सखि! मैवं मन्त्रय।

एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम् ।
गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ।।

काश्यपः शार्ङ्गरव! इति त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः। १७.१

शार्ङ्गरवः आज्ञापयतु भगवान्। १७.२

काश्यपः १७.३

३. अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन—
स्त्वय्यस्यां कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः[1] ।। १७।।

शार्ङ्गरवः गृहीतः सन्देशः। १८.१

काश्यपः वत्से! त्वमिदानीमनुशासनीयासि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञाः वयम्। १८.२

---

१. श्लोकचतुष्टये तृतीयः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरव 'स्नेही जन के पीछे जलाशय पर्यन्त जाना चाहिए' ऐसा सुना जाता है। तो यह है तालाब का तट। यहाँ संदेश देकर आप कृपया, लौटें।

काश्यप तो फिर इस क्षीरवृक्ष की छाया में खड़े हो जाएँ।

(सभी घूमकर खड़े हो गए।)

काश्यप (स्वगत) ऐसा क्या सन्देश दें जो महाराज दुष्यन्त के अनुरूप हो (सोचकर)

शकुन्तला (जनान्तिक) सखि! देख नलिनीपत्र से छिपे हुए सहचर को भी न देख। यह आतुर हुई चक्रवाकी चिल्ला रही है, लगता है मैं दुष्कर कार्य कर रही हूँ।

अनसूया सखि! ऐसा मत कह।

यह भी प्रिय के बिना विषाद से दीर्घतम रात बिता लेती है, भारी होता है तब भी विरह–दुःख को आशाबन्ध सहवा लेता है।।१६।।

काश्यप शार्ङ्गरव! यह कहना मेरे शब्दों में उस राजा से शकुन्तला को सामने करके –

शार्ङ्गरव आज्ञा दें भगवान्।

काश्यप **३. तुम्हारे द्वारा इस** (शकुन्तला) **को सामान्य बुद्धि**[१] **के साथ सभी रानियों के बीच देखा जाना होगा** (तीन कारणों से) **हमको संयमधन मानकर, अपने उच्च कुल का ध्यान रख और तुम्हारे इसके भीतर की उस सीमा की स्नेहप्रवृत्तियों को ध्यान में रख जिसमें बान्धवों को नहीं पूछा गया। इसके आगे भाग्य जो कराए। उसे वधूबन्धु कह नहीं सकते**[२] **।।१७।।**

शार्ङ्गरव संदेश ग्रहण कर लिया।

काश्यप वत्से! अब तेरा अनुशासन आवश्यक है। हम रहते भले ही वन में हैं, परन्तु, लोकाचार का हमें ज्ञान है।

---

१. सामान्य सभी रानियों के बराबर, 'सा मान्य' वह यह मान्य आदरणीय।

२. चार श्लोकों में तीसरा श्लोक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरवः न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम। १८.३

काश्यपः सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य — १८.४

४. शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्त्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने [1]भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः[2] ।। १८।।

कथं वा गौतमी मन्यते? १९.१

गौतमी एत्तिओ वहूजणस्स उवदेसो । *शकुन्तलां प्रति* जादे! एदं खु सव्वं ओधारेहि।
एतावान् वधूजनस्योपदेशः। (शकुन्तलां प्रति) जाते! एतत् खलु सर्वमवधारय। १९.२

काश्यपः वत्से! परिष्वजस्व मां सखीजनं च। १९.३

शकुन्तला ताद! इदो एव्व किं पियंवदामिस्सा सहिओ णिवत्तिस्संदि?
तात! इत एव किं प्रियवदामिश्राः सख्यो निवर्तिष्यन्ते? १९.४

काश्यपः वत्से! इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति। १९.५

शकुन्तला *पितरमाश्लिष्य* कहं दाणिं तादस्स अङ्कादो परिब्भट्टा मलअतरुम्मूलिदा चंदणलदा विअ देसंतरे जीविदं धारइस्सं। कथमिदानीं तातस्य अङ्कात् परिभ्रष्टा मलयपर्वतोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि। १९.६

काश्यपः वत्से! किमेवं कातरासि? १९.७

अभिजनवतो भर्त्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां[3] न त्वं वत्से! शुचं गणयिष्यसि ।। १९।।

शकुन्तला *पितुः पादयोः अवनम्य।* ताद! वंदामि। तात! वन्दे। २०.१

काश्यपः यदिच्छामि[4] ते तदस्तु। २०.२

---

१. भोगेष्व = भाग्येष्व हामाः। भोगेष्विति तु कामशास्त्रानुवादः। २. चतुर्षु चतुर्थ एष श्लोकः।
३. तिसृष्वपि हामासु 'न त्वं वत्से शुचं' अयमेव पदक्रमः। वत्से न त्वमिति च पाठः।
४. यदिच्छामि ते तदस्तु १०८४, १०८६ हामा., 'यदिच्छसि तदस्तु' १०८५ हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरव जो धीमान् होते हैं उनके लिए कुछ भी अविषय नहीं होता।

काश्यप तू यहाँ से पतिगृह पहुँचकर –

४. 'बड़ों की शुश्रूषा करती रहना, सपत्नियों के साथ प्रियसखी का व्यवहार रखना, परिजनों में अधिक से अधिक अनुकूल रहना और भोगों में गर्व न करना'। ऐसा करने पर लड़कियाँ गृहिणी (घरमालकिन) **का पद पा लेती हैं। जो ऐसा नहीं करतीं वे बन बैठती हैं पूरे वंश की मनोव्यथा**[१] **।।१८।।** और गौतमी क्या सोचती हैं।

गौतमी वधूजन के लिए इतना ही तो दिया जाता है उपदेश।

(शकुन्तला के प्रति) बच्ची! इस सबको ध्यान से समझे रहना।

काश्यप वत्से! आ मेरा आलिंगन कर और सखियों का भी।

शकुन्तला तात! यहीं से क्या प्रियंवदा आदि सखियाँ लौट जाएँगीं?

काश्यप वत्से! ये भी प्रदेय हैं। इनका वहाँ जाना ठीक नहीं। तेरे साथ गौतमी जाएगी।

शकुन्तला (पिता का आलिंगन कर) अब पिता की गोद से हटकर मलयतरु से हटी चन्दनलता के समान अन्यत्र कैसे जिऊँगी।

काश्यप वत्से! ऐसी कातर क्यों होती है –

भरे पूरे अभिजन (खानदान) **वाले पतिके श्लाघनीय गृहिणी पद पर अवस्थित होकर, उसके वैभव से भारी कार्यों में प्रतिक्षण व्यस्त रहकर, प्राची जैसे सूर्य को जन्म देती है वैसे ही शीघ्र ही पुत्र को जन्म देकर, हे वत्से! मेरे विरह से उत्पन्न व्यथा को गिन नहीं पाएगी।।१९।।**

शकुन्तला (पिता के चरणों पर गिरती है।) तात! प्रणाम।

काश्यप जो चाहता हूँ तेरे लिए वह हो।

---

१. चार श्लोकों में चौथा श्लोक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला *सख्यावुपेत्य* सहिओ! एत्थ दुवे वि मं समं एव्व परिस्सअह।
(सख्यावुपेत्य) सख्यौ! द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्। २०.३

सख्यौ *तथा कृत्वा* सहि! जइ णाम सो राएसि पच्चहिण्णाणमंथरो भवेय्य तदा से इमं अत्तणामहेअअंकिदं अंगुलीअअं दंसेहि। सखि! यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत् ततः तस्य इदम् आत्मनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय। २०.४

शकुन्तला इमिणा संदेहेण[1] वो आकम्पिदम्हि। अनेन संदेहेन वामाकम्पितास्मि। २०.५

सख्यौ मा भाआहि। अदिसिणेहो पावसंकी। मा भैषीः, अतिस्नेहः पापशङ्की। २०.६

शार्ङ्गरवः अगान्तरमारूढः[2] सविता। त्वरतामत्रभवती। २०.७

शकुन्तला *आश्रमाभिमुखी स्थित्वा* ताद! कदा णु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं?
तात! कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये? २०.८

काश्यपः श्रूयताम् २०.९

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौःष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।[3]
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ।। २०।।

गौतमी जादे! परिहीअदि गमणवेला। णिवत्तेहि पिदरं। अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं ज्जेव मंतइस्सदि। णिव्वट्टदु भवं। जाते! परिहीयते गमनवेला। निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषा एवं मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान्। २१.१

काश्यपः वत्से! उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम्। २१.२

शकुन्तला *भूयः पितरमाश्लिष्य* तवच्चरणपीडिदं तादसरीरं। ता मा अदिमेत्तं मम किदे उक्कंठेदु। तपश्चरणपीडितं तातशरीरम्। तन्मातिमात्रं मम कृते उत्कण्ठितुम्। २१.३

काश्यपः *सनिश्वासम्* २१.४

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से! त्वया रचितपूर्वम् ।
उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ।। २१।।

गच्छ शिवास्ते पन्थानः सन्तु। २२.१

---

१. संदेहेण = संदेसेण हामाः।

२. अगान्तर = युगान्तर हामाः।

३. निवेशो विवाहः। द्र. रघुवंश १२.५६ 'एवमात्तरतिरात्मसंभवाँस्तान्निवेश्ये' ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला (सखियों के पास जाकर) सखियों! दोनों ही इस क्षण मुझसे साथ ही साथ गले मिलो।

दोनों सखियाँ (वैसा ही करती हैं) सखि! यदि कदाचित् वह राजर्षि पहँचान में कुछ कठिनाई का अनुभव करे, तो उसे यह उसी के नाम से अंकित अगूँठी दिखला देना।

शकुन्तला इस, तुम्हारे, संदेह से काँप गई मैं।

दोनों सखियाँ डरो मत। अति स्नेह पापशंकी होता है।

शार्ङ्गरव दूसरे पर्वत पर जा चढ़ा है सूर्य। शीघ्रता करें आप।

शकुन्तला (आश्रम की ओर मुँह करके) तात! फिर से कब दर्शन करूँगी तपोवन के?

काश्यप सुना जाए –

इस शान्त आश्रम में पुनः स्थान बनाएगी, जब पूरी पृथिवी की सपत्नी चिरकाल तक रह लेगी और दुष्यन्त से प्राप्त अप्रतिरथ तनय का विवाह कर लेगी, वह भी उस पर कुटुम्ब का भार अर्पित कर चुके पति के साथ ।। २०।।

गौतमी जाते! गमनवेला बीत रही है। लौटा पिता को। अथवा चिरकाल तक यह ऐसी ही बात करती रहेगी। आप लौटें।

काश्यप वत्से! तपोऽनुष्ठान में बाधा पड़ रही है।

शकुन्तला (फिर से पिता के गले लग) तात का शरीर तपश्चरण से पीड़ित है। तो मेरे लिए अधिक उत्कण्ठित न हों।

काश्यप (साँस लेकर)

हे वत्से! तेरे द्वारा रचित उटजद्वार पर रूढ नीवार बलि को देखूँगा तो मेरा कैसे होगा शान्त शोक ।। २१।।

जा तेरे पथ मंगलमय हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च २२.२

सख्यौ *शकुन्तलां विलोक्य* हद्धी हद्धी अंतरिहिदा सउंदला वणराईए।

हा धिक् हा धिक्। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या। २२.३

काश्यपः *सनिश्वासम्* अनसूये! गतवती वां सहधर्म्मचारिणी। निगृह्य शोकमनुगच्छ मां प्रस्थितम्। २२.४

सर्वे प्रस्थिताः २२.५

उभे ताद! सउंदलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं कहं पविसामो?

तात! शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः? २२.६

काश्यपः स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी। *सविमर्शं परिक्रम्य*

हन्त भोः! शकुन्तलां पतिगृहं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः—२२.७

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ।। २२।।

निष्क्रान्ताः सर्वे २३.१

इति कालिदासकृतौ अभिज्ञानशाकुन्तले नाटके शकुन्तलाप्रस्थानो नाम चतुर्थोऽङ्कः ।। ४।। २३.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शकुन्तला और सहयायी निकल जाते हैं)

दोनों सखियाँ (शकुन्तला को देखकर) हाय हाय छिप गई शकुन्तला वनराजियों में।

काश्यप (साँस लेकर) अनसूये। चली गई तुम दोनों की सहधर्मचारिणी। दुःख रोककर आओ मेरे पीछे।

(सभी प्रस्थान करते हैं)

दोनों सखियाँ तात! शकुन्तला विरहित शून्य जैसे तपोवन में कैसे करेंगे प्रवेश?

काश्यप स्नेहप्रवृत्ति ऐसा ही सोचती है। (विमर्श करके घूमकर)
हं हो भो! शकुन्तला को पतिगृह भेजकर अब पाया स्वास्थ्य मैंने।

कन्या तो पराया ही धन है। उसे आज पति के पास भेज मेरी यह अन्तरात्मा और विशद हो गई जैसे धरोहर लौटा देने पर होती है।। २२।।

(सभी निकल गए)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में 'शकुन्तलाप्रस्थान' नामक चौथा अंक पूरा हुआ।। ४।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ पञ्चमोऽङ्कः ।। १.१

।।१।।

[1]*ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा विदूषकश्च* १.२

विदूषकः *कर्णं दत्त्वा* भो वअस्स! संगीदसालब्भंतरे अवधाणं देहि। कलविसुद्धाए गीदीए सरसंजोओ सुणीअदि। जाणे तत्तहोदी हंसपदिका वण्णपरिअअं करेदि त्ति। भो वयस्य! संगीतशालाभ्यन्तरे अवधानं देहि। कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति। १.३

राजा तूष्णीं भव। यावदाकर्णयामि। *आकाशे गीयते।* १.४

अहिणवमहुलोलुवो तुमं तह परिचुंबिअ चूअमंजरिं ।
कमलवसइमेत्तणिव्वुदो महुअर विम्हरिदोसि णं कधं ।। १।।

अभिनवमधुलोलुपो भवान् तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमेत्य निर्वृतो मधुकर! विस्मृतोऽस्येनां कथम् ।।

राजा अहो रागपरिवाहिणी गीतिः? २.१

विदूषकः किं दाव गीदीए अवगदो अक्खरत्थो? किं तावत् गीतेरवगतः अक्षरार्थः? २.२

राजा *स्मितं कृत्वा* [2]सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवीं वसुमतीम् अन्तरेणोपालम्भमेव गतोऽस्मि। सखे माधव्य! मद्वचनादुच्यतां हंसपदिका निपुणमुपालब्धोऽस्मीति। २.३

विदूषकः जं भव आणवेदि। *उत्थाय* भो वअस्स! गहीदस्स ताए परकरएहिं सिहंडए ताडिअमाणस्स अच्छराए विदराअस्स विअ णत्थि दाणिं मह मोक्खो। यद् भवान् आज्ञापयति (उत्थाय) भो वयस्य! गृहीतस्य तया पुरुषैः शिखण्डके ताड्यमानस्य अप्सरसा वीतरागस्येव नास्ति इदानीं मे मोक्षः। २.४

राजा गच्छ नागरकवृत्त्या संज्ञापयैनाम्। २.५

विदूषकः का गई? का गतिः? *निष्क्रान्तः* २.६

राजा *आत्मगतम्* किं नु गीतमेवंविधमाकर्ण्य इष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। अथवा– २.७

---

१. अत्र मा.नि.खि.च. संस्करणेषु संवादक्रमान्तरं द्रष्टव्यं काग्र.–२, पृ. ५९४।

२. हार्वर्डगतासु सर्वास्वपि मातृकासु सकृदित्येव पाठः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चम अङ्क ।।

।।१।।

(आसन पर बैठे राजा और विदूषक का प्रवेश)

विदूषक (कान देकर) भो वयस्य! संगीतशाला में ध्यान दो, कल विशुद्ध गीति का स्वरसंयोग सुनाई दे रहा है। लगता है तत्रभवती हंसपदिका संगीत (वर्ण) का रियाज कर रही हैं ।

राजा चुप रहो। सुनूँ।

(आकाश में गीति)

अभिनवमधु के लोलुप तुम, हे मधुकर! भूल कैसे गए उस प्रकार चुम्बन कर उस आम्रमञ्जरी को? केवल कमल में निवास पाकर हो गए तुम तुष्ट। ऐसा कैसे ।।१।।

राजा अहो राग बिखेरती (रागपरिवाहिणी) गीति।

विदूषक क्या गीति का अक्षरार्थ भी समझा?

राजा (स्मितपूर्वक) एक बार प्रणयप्रपञ्च में पड़ चुका हूँ। लगता है देवी वसुमती के विषय में दिया है मुझे उलाहना। सखे माधव्य! मेरे शब्दों में हंसपदिका से कह दो – 'बड़ी सफाई के साथ किया मेरा उपालम्भ।'

विदूषक जो आप की आज्ञा। (उठकर) भो वयस्य! वह मुझे पकड़वा लेगी और दूसरों के हाथों पिटवाने लगेगी तो उससे मैं छूट नहीं सकूँगा, जैसे वीतराग व्यक्ति अप्सराओं से।

राजा जा नागरक वृत्ति से बात करना उससे।

विदूषक क्या किया जाए। लाचार हूँ (निकल जाता है)।

राजा (स्वगत) ऐसा गीत सुनकर क्यों मेरे मन में उत्कण्ठा जाग रही है जबकि इष्टजन के विरह की कोई बात नहीं है। अथवा –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रम्याणि वीक्ष्य मधुराँश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति[1] नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ।। २।।

पर्याकुलस्तिष्ठति ३.१

।। २।।

ततः प्रविशति कञ्चुकी ३.२

कञ्चुकी अहो नु खलु कीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि — ३.३

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः ।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता
प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था[2] ।। ३।।

भोः! कामं धर्म्मकार्य्यमनतिपात्यं देवस्य तथापीदानीमेव धर्म्मासना—दुत्थितस्य पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्य[3] नोत्सहे निवेदितुम्। अथवा अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राऽधिकारः। कुतः — ४.१

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव नक्तन्दिवं गन्धवहः प्रवाति[4] ।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म्म एषः ।।४।।

यावन्नियोगमनुतिष्ठामि। *परिक्रम्यावलोक्य च* एष[5] देवः — ५.१

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा[6] निषेवते श्रान्तमना विविक्तम् ।
यूथानि सञ्चार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ।। ५।।

उपगम्य जयतु जयतु देवः। एते खलु हिमवतो गिरेरुपत्यकारण्यवासिनः काश्यपसंदेशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः संप्राप्ताः। श्रुत्वा देवः प्रमाणम्। ६.१

राजा सादरम्। किं काश्यपसंदेशहारिणः? ६.२

कञ्चुकी अथ किम्। ६.३

---

१. स्मृतिरियं परामर्शरूपाऽन्तःसाक्षात्कृतिरिति महामाहेश्वराचार्यस्तत्रभवानभिनवगुप्तः।
२. नार्था हामा. १०८५, नार्थम् हामा. १०८४, १०८६।
३. मस्य = मस्मै हामाः।
४. प्रयातीति प्रचलितभूयिष्ठः पाठः।
५. एष = य एष हामा. १०८५।
६. तन्त्रयित्वा = सान्त्वयित्वा हामाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रम्य पदार्थों को देख और मधुर शब्दों को सुनकर सुखी व्यक्ति भी यदि पर्युत्सुक होता है तो निश्चित ही वह मन ही मन संस्कार रूप में अज्ञातरूप से विद्यमान जन्मान्तरीय सौहृदों का स्मरण करता है ॥ २॥

(व्याकुल हो जाता है)

॥ २॥

(प्रवेश करता है कञ्चुकी)

कञ्चुकी अहो, देखो तो मैं कैसी अवस्था में आ पहुँचा हूँ –

मैंने राजा के रनिवास में जिस बेंत को आचार समझ कर पकड़ा था, वही चलने में पैंरों की कँपकँपी का सहारा बन गया है आज, बहुत बड़ा समय बीत जाने पर ॥ ३॥

भो:! नियमत: धर्मकार्य में विलम्ब नहीं होना चाहिए तथापि महाराजा साहब धर्मासन से अभी अभी उठे हैं, अत: फिर से बाधाकारी कण्वशिष्यागमन इन्हें सूचित करने का उत्साह नहीं जुटा पा रहा हूँ। अथवा 'लोकतन्त्र के अधिकार में विश्राम नहीं होता। (लोकों का नियमन = लोकतन्त्र) देखिए न–

सूर्य के रथ में घोड़े जुते, सो जुते ही हैं, हवा ने एक बार चलना शुरू किया सो चल ही रही है, शेषनाग भूमि का भार सदा ही ढोते ही रह गए, (षष्ठांशवृत्ति) **राजा का भी धर्म यही है ॥ ४॥**

चलूँ अपना काम करूँ। (घूमकर और देखकर) ये ठहरे देव! – **प्रजा को अपनी प्रजा** (सन्तति) **के समान शासित कर जब मन में थकावट अनुभव हुई तब ये एकान्त सेवन कर रहे हैं, जैसे यूथों का सञ्चालन कर धूप से प्रतप्त गजराज दिन में शीतस्थान का सेवन करता है॥ ५॥**

(पास पहुँचकर) देव की जय हो, जय हो देव की। हिमालय की तराई के वनवासी कुछ तपस्वी काश्यप संदेश लेकर उपस्थित हैं आपके दर्शन हेतु। इनके साथ स्त्री भी है अब आप की जो आज्ञा।

राजा (आदरपूर्वक) क्या काश्यप का संदेश लाए हैं?

कञ्चुकी जी हाँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा तेन हि मद्वचनाद् विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः अमून् आश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हति। अहमप्यत्र तपस्विजनदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि। ६.४

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रान्तः* ६.५

राजा *उत्थाय* वेत्रवति! अग्निशरणमार्गमादेशय। ६.६

प्रतीहारी इदो इदो देवो। इत इतो देवः। ६.७

राजा *परिक्रामति । अधिकारखेदं निरूप्य* सर्व्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव— ६.८

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेनम् ।
नातिश्रमाऽपनयनाय न च श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ।। ६।।

नेपथ्ये ७.१

वैतालिकौ विजयतां देवः। ७.२

प्रथमः ७.३

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ।। ७।।

द्वितीयः ८.१

नियमयसि [1]कुमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय ।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ।। ८।।

राजा एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः स्मः। *परिक्रामति* ९.१

प्रतीहारी अहिणवसंमज्जणसस्सिरिओ संणिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिंदो। आरुहदु देवो। अभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः। आरोहतु देवः। ९.२

---

१. विमार्ग०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — तो उपाध्याय सोमरात से मेरे शब्दों में कह दो — इन आश्रमवासिओं का सत्कार श्रौत विधि से करके स्वयं ही यहाँ लावें। मैं भी यहाँ तपस्विजनों के दर्शनयोग्य स्थान में बैठा प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

कञ्चुकी — देव की जो आज्ञा। (निकल जाता है)

राजा — (उठकर) वेत्रवति! अग्निशाला का मार्ग दिखा।

प्रतीहारी — इधर से इधर से महाराज!

राजा — (घूमता है और अधिकार खेद का अभिनय करता है) — अन्य सब चाही वस्तु पाकर सुखी हो जाया करते हैं, परन्तु राजा लोगों की चरितार्थता दुःख ही लिए रहती है —

राजा बनने से प्रतिष्ठा तो मिलती है, किन्तु उससे औत्सुक्यमात्र दूर होता है, लब्धपरिपालन का कार्य तो सतत ही क्लेश देता रहता है उसे। तो, राज्य हुआ अपने हाथ में रखा छत्ता, न तो अधिकश्रम हटाता और न श्रम होने देता ॥६॥

(नेपथ्य में)

दोनों वैतालिक — जय हो, विजय हो देव की।

एक — **प्रजा के पूरे बन्धु आप हैं अपने सुख की इच्छा छोड़े, लोक के लिए सदा खेद सहते, वह भी प्रतिदिन। बीतती है जिन्दगी आपकी वैसे ही जैसे पादप की, तीव्र ताप खुद के सिर पर और आश्रितों के लिए छाया परिताप शान्ति के लिए ॥७॥**

दूसरा — **दण्ड लेकर कु/विमार्ग पर चल रहे लोगों का करते रहते हैं नियन्त्रण, विवाद शान्त करते हैं और सफलतापूर्वक करते रहते हैं आप रक्षा। कुलबन्धु (ज्ञाति) ढेर सारी दौलत में उत्तराधिकार के लिए खड़े हो सकते हैं, उनका जो कृत्य है वह बचता ही नहीं आपसे। और यह भी सब सभी प्रजाजन के लिए ॥८॥**

राजा — मन में क्लान्ति आ गई थी। अब पुनर्नव हो गए हम (घूमता है)।

प्रतीहारी — अग्निशाला का तुरन्त धुला अलिन्द अच्छा लग रहा है। पास में है होमधेनु। चढ़ें देव! (अलिन्द = चबूतरा।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *आरुह्य परिजनांसावलम्बी तिष्ठति।* वेत्रवति! किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशम् ऋषयः प्रेषिताः स्युः? ९.३

किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा–
मित्यारूढबहुप्रतर्क्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥ ९॥

प्रतीहारी सुअरिदणंदिणो इस्सिओ देवं सभाजइदुं आअद त्ति तक्केमि।

सुचरितनन्दिनः ऋषयो देवं सभाजयितुमागता इति तर्कयामि। १०.१

॥ ३॥

ततः प्रविशन्ति गौतममीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः पुरश्चैषां कञ्चुकी पुरोहितश्च १०.२

कञ्चुकी इत इतो भवन्तः। १०.३

शार्ङ्गरवशारद्वतौ परस्परम्। १०.४

शार्ङ्गरवः शारद्वत! १०.५

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरहो
न कश्चिद् वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजति ।
तथापीदं शश्वत् परिचितिविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव ॥ १०॥

शारद्वतः जाने भवान् पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः। अहमपि – ११.१

अभ्यक्तमिव स्नातः, शुचिरशुचिमिव, प्रबुद्ध इव सुप्तम् ।
बद्धमिव स्वैरगतिर्, जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि ॥ ११॥

शकुन्तला *अनिमित्त*[1] *सूचयित्वा* अम्महो! किं मे वामेदरं णअणं विप्फुरदि?

अहो! किं मे वामेतरं नयनं विस्फुरति? १२.१

गौतमी पडिहदं अमंगलं। सुहाइँ दे भत्तुकुलदेवदाओ विदरंदु। *परिक्रामति*

प्रतिहतममङ्गलम्। सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु। १२.२

पुरोहितः *राजानं निर्दिश्य* भोस्तपस्विनः! असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो वः प्रतिपालयति। पश्यतैनम् । १२.३

---

१. निमित्तं १०८६ इति। हार्वर्डमातृकात्रितयेऽप्येक एव पाठः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (चढ़कर परिजन द्वारा लाए आसन पर बैठता है) वेत्रवति! किस प्रयोजन से, भगवान् काश्यप ने मेरे पास ऋषियों को भेजा होगा?

कहीं ऐसा तो नहीं कि व्रती तपस्वियों के तप में विघ्नों ने दोष उत्पन्न किए हैं, या धर्मारण्यचारी प्राणियों में किसी ने कोई कुचेष्टा कर दी है, या हो सकता है मेरे गलत व्यवहार से लताओं में फूल आना रुक गया है – ऐसे अनेक तर्क मेरे मन में उठ रहे हैं और निर्णय न होने से वह पर्याकुल है ॥९॥

प्रतीहारी ऋषिजन सुचरित से प्रसन्न होकर आपका अभिनन्दन करने के उद्देश्य से पधारे होंगे, ऐसा मैं सोचती हूँ।

॥३॥

(प्रवेश करते हैं गौतमी सहित शकुन्तला को आगे किए मुनिजन और उनके साथ कञ्चुकी तथा पुरोहित)

कञ्चुकी इधर से इधर से आप सब।

(शार्ङ्गरव और शारद्वत आपस में)

शार्ङ्गरव शारद्वत!

माना कि यह राजा महाभाग और मर्यादापालक है, इसके राज्य में गया–गुजरा भी कोई गलत रास्ते नहीं जाता, तथापि इसका यह जनाकीर्ण महल, परिचय न होने के कारण मन को ऐसा लग रहा है जैसे आग लगा घर हो ॥१०॥

शारद्वत पुरप्रवेश के कारण आप तो यह अनुभव कर रहे हैं और यहाँ –

सुख में लगे लोग मुझे ऐसे लग रहे हैं जैसे स्नात को अभ्यक्त (तैल लगाए) **जन लगता है, शुचि को अशुचि, जागे को सोया या स्वैरगति को बद्ध ॥११॥**

शकुन्तला (अपशकुन की सूचना देकर) अहो! क्यों फड़क रहा है मेरा दाहिना नेत्र।

गौतमी अमङ्गल नष्ट हो। सुख दें तुझे तेरे पति के कुलदेवता। (घूमकर)।

पुरोहित (राजा की ओर इशारा कर) भो तपस्विजन! वर्णों और आश्रमों के रक्षक ये हैं अत्रभवान् महाराजा साहब। ये पहले से आसन छोड़े आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। चलें इनसे मिलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरवः भो महाब्राह्मण! काममेतदभिनन्दनीयं[१] तथापि वयमत्र मध्यस्थाः।

कुतः — १२.४

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।। १२।।

प्रतीहारी देव! पसण्णमुहवण्णा दीसंदि। जाणामि वीसद्धकज्जा इसीओ।

देव! प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विस्रब्धकार्या ऋषयः। १३.१

राजा *शकुन्तलां दृष्ट्वा* अथात्रभवती। १३.२

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्।। १३।।

प्रतीहारी देव! कुदूहलगब्भो ण मे तक्को पसरदि। णं दंसणीआ उण से आकिदी[२] लक्खीअदि। देव! कुतूहलगर्भो न मे तर्कः प्रसरति। ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते। १४.१

राजा *दोहदं लक्षयित्वा* भवतु, अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्। १४.२

शकुन्तला *हस्तमुरसि कृत्वाऽऽत्मगतम्* हिअअ किं एव्वं वेवसि। अज्जउत्तस्स भावं ओधारिअ धीरं दाव होहि। हृदय! किमेवं वेपसे? आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद् भव। १४.३

पुरोहितः *पुरो गत्वा* एते विधिवदर्च्चितास्तपोधनाः। कश्चिदेषामुपाध्यायसंदेशः। तं देवः श्रोतुमर्हतीति। १४.४

राजा अवहितोऽस्मि। १४.५

शिष्यौ *हस्तमुद्यम्य* स्वस्ति भवते।[३] १४.६

राजा अभिवादये वः।[४] १४.७

शिष्यौ इष्टेन युज्यस्व। १४.८

राजा अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः? १४.९

---

१. 'एतद्' विनयातिशयादिकम्' इति १०८४ हामातृकायां पार्श्वटिप्पणी।

२. प्रतीहारी णं दंसणीआ से इत्येतावानेव लेखः १०८५हामा. मातृकायाम्। हामा. १०८४, १०८६ मातृकयोः पुनरत्र लेखः 'गब्बोवहिदो'। मन्येऽत्र पाठद्वयं मिश्रितं 'हलगब्भं' इति 'हलोवहिद' इति च।

३. विजयस्व राजन् बो.

४. सर्वानभिवादये बो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरव — भो महाब्राह्मण! माना कि इनका अभिनन्दन करना चाहिए, परन्तु इससे क्या? क्योंकि– **यह तो परोपकारियों का स्वभाव ही होता है। परोपकारी वृक्ष फल लगने पर झुक ही जाते हैं, परोपकारी नये पानी भरे मेघ काफी झुके होते हैं। जो सत्पुरुष होते हैं वे समृद्धि पाकर उद्धत नहीं होते ॥१२॥**

प्रतीहारी — देव! इनके चहरे खिले हैं। लगता है ऋषियों के अनुष्ठान ठीक ठीक हैं।

राजा — (शकुन्तला को देखकर) और ये महाशया –

घूँघट काढ़े और अधिक न उभड़े शरीरलावण्य वाली कौन है तपस्वियों के बीच, पीले पत्तों के बीच कोंपल सी ॥१३॥

प्रतीहारी — देव! मुझे भी कुतूहल है। अतः यद्यपि मेरा तर्क फैल नहीं रहा है, परन्तु यह तो तय है कि इसकी आकृति दर्शनीय है।

राजा — (गर्भ देखकर) हटाओ, परकलत्र का निर्वर्णन ठीक नहीं।

शकुन्तला — (हाथ छाती पर रखकर स्वगत) हृदय! क्यों ऐसा काँप रहा है। आर्यपुत्र का प्रेम यादकर धीर होना चाहिए तुझे।

पुरोहित — (आगे बढ़कर) इन तपस्वियों की विधिवत् कर दी गई पूजा। इनके पास कोई संदेश है इनके उपाध्याय का। देव कृपा करें उसे सुनने की।

राजा — सावधान हूँ।

दोनों शिष्य — (हाथ उठाकर) राजन् विजयी हों।

राजा — आप सबका अभिवादन।

दोनों शिष्य — इष्ट सिद्ध हो आपका।

राजा — मुनिजनों के तपोऽनुष्ठान निर्विघ्न तो हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्यौ १४.१०

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति घर्म्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ।। १४।।

राजा *आत्मगतम्* अर्थवान् खलु मे राजशब्दः। *प्रकाशम्* अथ भगवान् लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः? १५.१

शिष्यौ स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वमिदमाह। १५.२

राजा किमाज्ञापयति भगवान्? १५.३

शार्ङ्गरवः यन्मिथः—समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपायंस्त तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुतः – १५.४

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि [1]नः
शकुन्तला मूर्त्तिमती च[2] सत्क्रिया ।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ।।१५।।

तदिदानीमापन्नसत्त्वेयं प्रतिगृह्यतां [3]सहधर्मचरणायेति। १६.१

गौतमी अज्ज! किं पि वत्तुकामा म्हि। आर्य! किमपि वक्तुकामास्मि। १६.२

राजा आर्ये! कथ्यताम् । १६.३

गौतमी अहवा ण में वअणावसरो अत्थि। जदो— १६.४

णावेक्खिओ गुरुअणो इमाए ण तुमे वि पुच्छिआ बंधू ।
एक्कक्कमेव चरिए भणामि किं एक्कमेकस्स ।।१६।।

अथवा न मे वचनावसरोऽस्ति। यतः—

नापेक्षितो गुरुजनोऽनया न त्वयापि पृष्टो बन्धुजनः ।
एकैकस्मिन्नेव चरिते भणामि किमेकमेकस्य ।।

शकुन्तला *आत्मगतम्* किंणु खु अज्जउत्तो भणादि? किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति? १७.१

---

१. हामासु 'यत्' इति लिपिः।

२. 'मतीव' इति च लेखः।

'आर्या' १०८४ हामा.। १०८५ मातृकायां पुनः 'पन्नसत्त्वे' इत्यतः 'गुरुजणो ण' इति पर्यन्तं विस्मृतो लेखः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों शिष्य **आप जब सत्पुरुषों के रक्षक हैं तो कैसे संभव है धर्मानुष्ठानों में विघ्न। सूर्य के तपते, तम प्रकट हो कैसे सकता है ॥१४॥**

राजा (स्वगत) मेरा राज शब्द सार्थक है। (प्रकाश) अच्छा, भगवान् कण्व तो लोकानुग्रह के लिए सकुशल हैं?

दोनों शिष्य वे तो सिद्ध महापुरुष हैं, कुशलता तो उनकी मुट्ठी में रहती है। वे आप से अनामय प्रश्नपूर्वक यह कह रहे हैं।

राजा क्या है उनकी आज्ञा?

शार्ङ्गरव आपने मेरी इस पुत्री के साथ आपस में तय कर जो विवाह कर लिया उसका प्रसन्नता के साथ मैंने अनुमोदन कर दिया। क्योंकि –

आप हैं हमारे लिए प्रथम पूज्य और शकुन्तला है मूर्त्तिमती सत्क्रिया। आप दोनों तुल्यगुण वधूवर को मिलाकर विधाता चिरकाल के बाद वाच्यता (निन्दा) को प्राप्त होने से बचा ॥१५॥

अब है यह आपन्नसत्त्वा। इसे स्वीकार करें सहधर्माचरण के लिए।

गौतमी आर्य! कुछ कहना चाहती हूँ।

राजा आर्ये! जी हाँ कहिए।

गौतमी यद्यपि मेरे लिए कुछ भी कहने का अवसर है नहीं।

क्यों? इसलिए कि –

न तो गुरुजनों की ओर देखा इसने और न बन्धुजनों से पूछा आपने। अकेले ही किए निर्णय में कोई किसी एक से क्या कहे॥१६॥

शकुन्तला (स्वगत) देखूँ क्या कहते हैं आर्यपुत्र?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा किमिदमुपन्यस्तम्? १७.२

शकुन्तला पावओ क्खु वअणोवण्णासो।[१] पावकः खलु वचनोपन्यासः। १७.३

शार्ङ्गरवः कथमिदं नाम? भवन्त एव लोकवृत्तान्तनिष्णाताः। १७.४

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया[२] वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ।। १७।।

राजा किं वाऽत्रभवती मया [३]परिणीतपूर्व्वा? १८.१

शकुन्तला *सविषादमात्मगतम्* हिअअ संपदं दे [४]आसंका। हृदय! सांप्रतं त आशङ्का। १८.२

शार्ङ्गरवः **किं कृतकार्यद्वेषो? धर्मं प्रति विमुखता? [५]कृतेऽवज्ञा?** १८.३

राजा कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रसङ्गः?[६] १८.४

शार्ङ्गरवः **मूर्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ।। १८।।**

राजा विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि। १९.१

गौतमी जादे! मुहूत्तअं मा लज्जसु। अवणइस्सं दाव दे ओगुंठणं। तदो तुमं भट्टा अहिजाणिस्सदि। जाते! मुहूर्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत् ते अवगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ता अभिज्ञास्यति। *यथोक्तं करोति* १९.२

राजा *शकुन्तलां निर्वर्ण्य आत्मगतम्* १९.३

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्नवेत्यध्यवस्यन्[७] ।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न [८]च खलु परिभोक्तुं नापि शक्नोमि मोक्तुम्[९] ।। १९।।

प्रतीहारी *आत्मगतम्* अहो धम्मावेक्खिदा भट्टिणो। इरिसं णाम सुहोवणदं रूवं देक्खिअ को अण्णो विआरेदि? अहो धर्मावेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति?। २०.१

---

१. वअणावक्खेवो (वचनोपक्षेपः) काग्र. पृ० ६०२

२. 'प्रियाऽप्रियापि' हामा १०८४, 'तदप्रियापि प्र' १०८५, ८६ हामा., 'प्रियाऽप्रिया वा' काग्र., चतुर्वेदी।

३. मया परिणीतपूर्वा हामा. १०८४, १९८६, परिणीतपूर्वा १९८५, परिणीतपूर्वा मया १०८५ हामा.।

४. 'का' इत्येव पाठः सर्वासु हामासु।

५. कृतावज्ञा हामा.।

६. प्रसङ्गः = प्रश्नः इति हामा.।

७. ध्यवस्यन् काग्र., व्यवस्यन् हामाः।

८. न च खलु काग्र., न खलु च हामाः।

९. नापि शक्नोमि मोक्तुम्=नैव शक्नोमि हातुम् हामा.१०८४,१०८६, नैव हातुं समर्थः १०८५हामा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा यह क्या छिड़ गया?

शकुन्तला हूँ इसकी बोली तो आग जैसी है।

शार्ङ्गरव क्या कहा, यह क्या? आप स्वयं बहुत अच्छे ज्ञाता हैं लोकवृत्तान्त के। **सती भी हो परन्तु यदि केवल मातृकुल में ही रहती हो तो विवाहिता पर लोग़ अन्यथा** (असती) **होने का सन्देह करते हैं। अतः उसके बन्धुजन चाहते हैं कि प्रिया या अप्रिया जो भी हो वह अपने पति के ही पास रहे।।१७।।**

राजा क्या मैंने इसे कभी ब्याहा है?

शकुन्तला (विषादसहित स्वगत) हृदय! तेरी शंका ठीक थी।

शार्ङ्गरव कृतकार्य से यह कैसा द्वेष? प्राप्त धर्म से भाग रहे हैं क्यों? ऐसी कृतघ्नता?

राजा कैसे कर रहे हैं ये असत् कल्पनाएँ?

शार्ङ्गरव **ये वे विकार हैं जो प्रायः ऐश्वर्यमत्तों में देखे ही जाते हैं।।१८।।**

राजा भारी अधिक्षेप है यह मेरा।

गौतमी जाते! थोड़ी देर लाज छोड़। मैं तेरा घूँघट हटा देती हूँ तब तुझे तेरा पति पहँचान लेगा। (घूँघट हटाती है।)

राजा (शकुन्तला को भलीभाँति देखकर स्वगत)

यह ऐसा बेदाग (निर्दोष) **रूप उपस्थित है और पड़ा हूँ मैं सोच में कि पहले इसे अपनाया है या नहीं। न इसे भोग सकता हूँ, न सकता हूँ त्याग। मेरी गति उस भ्रमर सी है जो तुषार की बूँद से गर्भित कुन्द पर मँडराता ही रहता है बैठ नहीं पाता ।।१९।।**

प्रतीहारी (स्वगत) देखो तो कैसी धर्मदृष्टि है मालिक की। ऐसा अनायास प्राप्त रूप देखकर अन्य कौन विचारता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरवः भो राजन्! किमिति जोषमास्यते? २०.२

राजा भोस्तपस्विन्! चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत् कथम् इमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रति आत्मानं क्षेत्रिणमाशङ्कमानः प्रतिपत्स्ये। २०.३

शकुन्तला *अपवार्य* अज्जस्य परिणए ज्जेव संदेहो? कुदो दाणिं मे दूरा[1]धिरोहिणी आसा? आर्यस्य परिणय एव संदेहः। कुत इदानीं मे दूराधिरोहिणी आशा? २०.४

शार्ङ्गरवः मा तावत्। २०.५

कृताभिमर्शामनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः ।
मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ।। २०।।

शारद्वतः शार्ङ्गरव! विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले! यद् वक्तव्यं तदुक्तमस्माभिः सोऽयमत्रभवानेवमाह। दीयतामस्य प्रत्ययप्रतिवचनम्। २१.१

शकुन्तला *अपवार्य* इमं अवत्थन्तरं गदे तारिसे अणुराए किं वा सुमराविदेण? अत्ता दाणिं मे सोअणिओ त्ति व्यवसिदं एदं। *प्रकाशम्* अज्जउत्त! *इत्यर्धोक्ते आत्मगतम्* अहवा संसइदो दाणिं एसो णो समुदाआरो। *प्रकाशम्* पौरव! ण जुत्तं णाम दे तह पुरा अस्समपदे सहावुत्ताणहिअअं इमं जणं समअपुव्वं पतारिअ ईरिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं।

इदमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन? आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत्। (प्रकाशम्) आर्यपुत्र! (इत्यर्धोक्तौ आत्मगतम्) अथवा संशयितः इदानीमेष नः समुदाहारः । (प्रकाशम्) पौरव! न युक्तं नाम ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्य ईदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्। २१.२

राजा शान्तं पापम्, शान्तं पापम्। २१.३

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् ।
कूलङ्कषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च ।। २१।।

शकुन्तला होदु। जइ परमत्थदो परपरिग्गहसंकिणा तुए एव्वं वत्तुं पउत्तं ता अहिण्णाणेण इमिणा तुह आसंकं अपणइस्सं। भवतु, यदि परमार्थतः परपरिग्रहशङ्किना त्वयैवं वक्तुं प्रवृत्तं तदभिज्ञानेनानेन तवाशङ्कामपनेष्यामि। २२.१

राजा उदारः[2] कल्पः। २२.२

शकुन्तला *मुद्रास्थानं परामृश्य* हद्धी, हद्धी अंगुलीअअसुण्णा मे अंगुली। *सविषादं गौतमीमवेक्षते।* हा धिक् हा धिक् अङ्गुलीयकशून्या मेऽङ्गुलिः। २२.३

---

१. हामातृकात्रितयेऽप्यत्र धकार एव स्पष्टं लिखितः

२. प्रथमः काग्र. पृ. ६०४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरव भो राजन्! चुप क्यों बैठे हैं?

राजा भो तपस्विन्! सोचने पर भी मुझे इनके साथ विवाह होने की बात का स्मरण नहीं आ रहा। तो बतलाएँ कैसे मैं स्पष्ट गर्भलक्षण वाली इसके प्रति स्वयं को क्षेत्री स्वीकार कर लूँ, जबकि स्थिति संदेह की है?

शकुन्तला (अपवारणं के साथ) आर्य को परिणय मे ही सन्देह है? मेरी लम्बी आशाओं का कहाँ स्थान?

शार्ङ्गरव ऐसा अन्याय!

उन महर्षि कण्व की ऐसी अवज्ञा, जिन्होंने पुत्री के स्पर्श का भी अनुमोदन किया, यानी लूटा धन लुटेरे को ही दान कर दिया पात्र मानकर ॥ २०॥

शारद्वत शार्ङ्गरव तुम अब रुको। शकुन्तले! जो कहना था वह कह दिया हमने। ये ऐसा कह रहे हैं। इन्हें विश्वास दिलाने की बात अब तुम्हीं कहो?

शकुन्तला (अपवारण के साथ) वैसा अनुराग जब इस प्रकार बदल गया तब क्या लाभ स्मरण दिलाने से भी। मैं स्वयं अवश्य पड़ गई शोचनीयता में, यह जो सब यहाँ हुआ।

(प्रकाश) आर्यपुत्र! (आधा की कहकर स्वगत) अथवा अब यह संबोधन संदिग्ध है, (प्रकाश) पौरव! ठीक नहीं कर रहे हो यह कि पहले आश्रम में स्वभाव से उत्तानहृदया मुझे प्रतिज्ञापूर्वक ठगा और अब ऐसे शब्दों में छोड़ रहे हो।

राजा शान्तं पापं, शान्तं पापम् –

अरी भली आदमन 'इस शब्द को क्यों करना चाहती गन्दला और क्यों चाहती है इस जन को पतित करना, कूलङ्कषा नदी के समान स्वच्छ जल को और तटतरु को ॥ २१॥

शकुन्तला छोड़िए! यदि सचमुच परस्त्री के सन्देह में यह कदम उठाया गया है तो इस अभिज्ञान से आशंका दूर कर देती हूँ।

राजा बहुत अच्छा।

शकुन्तला (मुद्रास्थान को छूकर) हाय हाय मेरी उँगली में अँगूठी नहीं है। (विषाद के साथ गौतमी को देखती है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौतमी णूणं दे सक्कावदारब्भंदरे सचीतित्थसलिलं बंदमाणाए पब्भट्ठं अंगुलीअअं।
नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थे सलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम्। २२.४

राजा *सस्मितम्*। इदं तत् प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणं यदुच्यते। २२.५

शकुन्तला एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं। अवरं दे कहइस्सं।
अत्र तावद् विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि। २२.६

राजा श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्। २२.७

शकुन्तला णं एक्कस्सिं दिअहे णोमालिआमंडवे णलिणीवत्तभाअणगदं उदअं तुह हत्थे संणिहिदं आसि। ननु, एकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं, तव हस्ते संनिहितमासीत्। २२.८

राजा शृणुमस्तावत्। २२.९

शकुन्तला तक्खणं सो मे पुत्तकिदओ दीहापंगो णाम मिअपोदओ उवट्ठिदो णु। तुए अअं दाव पढमं पिअउ त्ति अणुकंपिणा उवच्छंदिदो उअएण। ण उण दे अपरिचआदो हत्थब्भासं उवगदो। पच्छा तस्सिं एव्व मए गहिदे सलिले णेण किदो पणओ। तदा तुमं एत्थं पहसिदो सि सव्वो सगंधेसु विस्ससिदि। दुवे वि एत्थ आरण्णआ त्ति।
तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः ननु। त्वया अयं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिना उपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्तेऽपरिचयाद् हस्ताभ्याशमुपगतः। पश्चात् तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिले अनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि—'सर्व सगन्धेषु विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकौ' इति। २२.१०

राजा एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्त्तिनीभिरनृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः।२२.११

गौतमी महाभाग! णारुहसि एव्वं मंतिदुं। तवोवणसंवड्ढिदो अणभिण्णो खु अअं जणो कइदवस्स। महाभाग! नार्हस्येवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितः अनभिज्ञः खलु अयं जनः कैतवस्य। २२.१२

राजा तापसवृद्धे! २२.१३

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात्[1] स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृतः खलु पोषयन्ति ।। २२।।[2]

---

१. पतनात्० परिपोषयन्तीति तु मम हृद्गतः पाठः।

२. न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं वचोऽपि परुषाक्षरं न च पदेषु संसज्जते।
हिमार्त इव वेपते सकल एव बिम्बाधरः स्वभावविनते भ्रुवौ युगपदेव भेदं गते।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौतमी निश्चित ही शक्रावतार के भीतर शचीतीर्थ के जल को प्रणाम करते समय तेरी अँगूठी खिसक गई।

राजा (स्मितपूर्वक) यही तो है जो कहा जाता है, स्त्रियाँ तुरतबुद्धि होती हैं।

शकुन्तला इस जगह तो विधाता ने दिखला दिया प्रभुत्व, दूसरी बात कहती हूँ।

राजा अवश्य हो गया अब तो तुम्हारा वचन श्रोतव्य।

शकुन्तला एक दिन नवमालिकामण्डप में नलिनीपत्र के दोनें में रखा जल तुम्हारे हाथ में था।

राजा सुन रहे हैं हम।

शकुन्तला उसी समय वह मेरा बेटा दीर्घापाङ्ग नामक मृग का छौना आ पहुँचा। तुमने कहा 'यह पहले पी ले' और दया कर दिया उसे वह जल। पर वह तुम अपरिचित के पास गया नहीं, जब वही मैंने ले लिया तो उसने उसे ग्रहण कर लिया। तब तुमने हँसी की थी यह कहते हुए कि 'सब लोग सगे का भरोसा करते हैं। तुम दोनों ही जंगली जो हो।'

राजा इस प्रकार की झूठी और मीठी बातों से आकृष्ट होते हैं विषयी लोग।

गौतमी महाभाग! ऐसा कहना उचित नहीं। तपोवन में बढ़ा यह जन कैतव से अनभिज्ञ है।

राजा तापसवृद्धे!

स्त्रियाँ जो हैं वे बिना सीखे चतुर होती हैं, यहाँ तक कि अमानुषी स्त्रियाँ भी। फिर उनका क्या कहना जो समझदार होती हैं (मानुषी)। **आकाश में उड़ने के पहले अपने बच्चों को कोकिलाएँ दूसरे ही द्विजों से पुंसवाती हैं ॥ २२॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला *सरोषम्* अणज्ज! अत्तणो हिअआणुमाणेण पेक्खसि। को दाणिं अण्णो धम्मकंचुअप्पवेसिणो तिणछण्णकूवस्स[१] दे अणुकिदिं पटिवदिस्सदि? अनार्य! आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि। क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनः तृणच्छन्नकूपस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते? २३.१

राजा *आत्मगतम्* संदिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकृतक इवास्याः कोपो लक्ष्यते। तथाहि अनया— २३.२

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ
वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने ।
भेदाद् भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य ।। २३।।

प्रकाशम् भद्रे! प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितम्। तथापीदं न लक्षये। २४.१

शकुन्तला सुट्ठु दाव। अत्त सछंदआरिणी किदम्हि, जा अहं इमस्स पुरुवंसस्सप्पच्चएण मुहमहुणो हिअअट्ठिदविसस्स हत्थब्भासं उवगदा। *पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति।*

सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि, या अहमस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थितविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता। (पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति।) २४.२

शार्ङ्गरवः [२]इत्थमात्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति। २४.३

अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषात् संगतं रहः ।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ।। २४।।

राजा अयि भोः! किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान् [३]संवृतदोषाक्षरेण [४]क्षिणुथ? २५.१

शारद्वतः *सासूयम्* श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम् — २५.२

आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यः तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।
परातिसन्धानमधीयते यैर् विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ।। २५।।

---

१. तिणछण्णकूवस्स = तिणछण्णकूवोवमस्स
२. कृतं परिहतं हामाः। अर्थस्त्वत्र चिन्त्यः।
३. संयुत० हामाः; क्षरेण हामाः, क्षरैः काग्र.।
४. क्षिणुध हामाः., अधिक्षिपथ काग्र.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला (सरोष) अनार्य! अपने हृदय सा सबको देख रहा है। कौन होगा दूसरा जो धर्म का चोंगा पहने तृण से छिपे कुएँ का अनुकरण करेगा?

राजा (स्वगत) इसका कोप तो वास्तविक जैसा लगता है। मेरी बुद्धि में इससे संदेह उत्पन्न होने लगा है। देखिए न –

अत्यन्त लाल नेत्रों के साथ इसने भौहें टेढ़ी कर कामदेव का धनुष जैसे तोड़ दिया और बता दिया कि मैं ही विस्मरण से दारुण और हुई घटना को भुलाए हूँ ॥ २३॥

(प्रकाश) भद्रे! दुष्यन्त का चरित प्रसिद्ध है। उसमें यह दिखाई नहीं देता।

शकुन्तला बहुत अच्छा किया, मुझे स्वैरिणी बना दिया आज, मैं तो इसके हाथ लग गई, इसके पुरुवंश के भरोसे और यह है मुँह का मीठा और हृदय का विषभरा। (आँचल से मुँह ढँकती और रोती है)।

शार्ङ्गरव अपने आप किया चापल ऐसे ही जलाता है।

इसीलिए सोच समझकर करना चाहिये मिलन, वह भी एकान्त का मिलन तो और अधिक सोचकर। अज्ञात हृदय वालों से की गई प्रीति इस प्रकार वैर बन बैठती है ॥ २४॥

राजा अयि भोः! कैसे आप कर रहे हैं ये दोषारोपण, केवल इन महोदया (शकुन्तला) के विश्वास पर?

शारद्वत (असूया के साथ) ऊँच नीच सब आप जानते हैं।

वह झूठा जिसने जन्म से ही शाठ्य जाना ही नहीं, और वह सच्चा जो शाठ्य का अभ्यास करता है, विद्या कहकर ॥ २५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा भोः सत्यवादिन्! अभ्युपगतमस्माभिरेवम्। किं पुनरिमामतिसन्धाय लभ्यते? २६.१

शार्ङ्गरवः विनिपातः। २६.२

राजा विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इत्यश्रद्धेयमेतत्। २६.३

शारद्वतः शार्ङ्गरव! किमुत्तरेण। अनुष्ठितो गुरोर्निदेषः। प्रतिनिवर्त्तामहै वयम्।

राजानं प्रति — २६.४

तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा ।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्व्वतोमुखी ।। २६।।

गौतमी गच्छाग्रतः। २७.१

प्रस्थिताः २७.२

शकुन्तला अहं इमिणा किदवेण विप्पलद्धम्हि। तुम्हे वि मं परिच्चअह। *अनुप्रतिष्ठते।*

अहमनेन कितवेन विप्रलब्धास्मि। युवामपि मां परित्यजथः? २७.३

गौतमी *स्थित्वा* वच्छ संगरव! अणुगच्छदि इअं खु णो करुणपरिदेइणी सउंदला। पच्चादेसपरुसे भत्तुणि किं मे पुत्तिआ करेदु? (स्थित्वा) वत्स शार्ङ्गरव! अनुगच्छतीयं खलु नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि, किं वा मे पुत्रिका करोतु? २७.४

शार्ङ्गरवः *सरोषम् संनिवृत्य* किं पुरोभागे! स्वातन्त्र्यमवलम्बसे। २७.५

शकुन्तला *भीता वेपते।* २७.६

शार्ङ्गरवः शकुन्तले! २७.७

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा
त्वमसि, किं पितुरुत्कुलया त्वया ।
अथ तु वेत्सि, शुचि व्रतमात्मनः
पतिगृहे तव दास्यमपि क्षमम् ।। २७।।

तिष्ठ साधयामो वयम्। २८.१

राजा भोस्तपस्विन्! किमत्रभवतीं विप्रलभसे? पश्य— २८.२

कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव ।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ।। २८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — भो सत्यवादिन्! माना कि हम (राजा) ऐसे ही (शाठ्य विद्या में निपुण) हैं। पर यह बतलाओ इसे ठगकर क्या मिलेगा?

शार्ङ्गरव — पतन।

राजा — पतन पौरव लोग चाहें यह सर्वथा अमान्य है।

शारद्वत — शार्ङ्गरव! आगे (उत्तर) मत बढ़ो। हमने गुरु के आदेश का पालन कर दिया, चलो लौटें हमलोग। (राजा की ओर होकर)

यह तुम्हारी पत्नी है, छोड़ो या रखो। स्त्री पर सभी प्रकार की प्रभुता हुआ करती है ॥ २६॥

गौतमि! चल आगे।

(चलने लगे)

शकुन्तला — मैं इस ठग से धोखा खा गई, तुम भी मुझे रोती छोड़ रहे हो। (पीछे चलने लगती है)।

गौतमी — (रुककर) वत्स! शार्ङ्गरव यह पीछे आ रही है करुण विलखती शकुन्तला। पति ने छोड़ दिया तो मेरी यह बेटी क्या करे?

शार्ङ्गरव — (गुस्से में लौटकर) अरी पुरोभागे! स्वातन्त्र्य अपना रही है। (स्मरणीय न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' वचन)

शकुन्तला — (डर कर काँपने लगी।)

शार्ङ्गरव — शकुन्तले!

जैसा राजा कह रहा है वह वैसा ही है तो पिता के साथ तेरा सम्बन्ध तूने खुद काट ही डाला और यदि तू अपना (पति) व्रत शुचि मानती है तो तेरा पतिगृह में दासी बनकर रहना भी ठीक होगा ॥ २७॥

खड़ी रह। जाते हैं हम।

राजा — भो तपस्विन्! इन्हें इस प्रकार क्यों ठग रहे हैं?

केवल कुमुद को खिलाता है चन्द्र, सूर्य भी केवल कमल को। वशी लोग पराई स्त्री की ओर मुँह नहीं करते ॥ २८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरवः यदात्र पूर्व्ववृत्तमन्यसङ्गाद् विस्मृतो भवान् कथमधर्मभीरुः। २९.१

राजा भवन्तमेव गुरुलाघवं पृच्छामि। २९.२

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये ।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ।। २९।।

पुरोहितः *विचार्य* यदि तावदेवं क्रियताम्। ३०.१

राजा अनुशास्तु मां भवान्। ३०.२

पुरोहितः अत्रभवती तावदाप्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। ३०.३

राजा कुत इदम्? ३०.४

पुरोहितः त्वं साधुभिरुद्दिष्टः प्रथममेव चक्रवर्त्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्य्यये तु पितुरस्याः समीपे नयनमवस्थितमेव। ३०.५

राजा यथा गुरुभ्यो रोचते। ३०.६

पुरोहितः वत्से! अनुगच्छ माम्। ३०.७

शकुन्तला भअवदि वसुहे! देहि मे विवरं। भगवति वसुधे! देहि मे विवरम्।

रुदती प्रस्थिता निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च। ३०.८

राजा *शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति।* ३०.९

नेपथ्ये ३०.१०

आश्चर्यम् आश्चर्यम् ३०.११

राजा *आकर्ण्य* किं नु खलु स्यात्? ३०.१२

प्रविश्य ३०.१३

पुरोहितः *सविस्मयम्* देव! अद्भुतं खलु संवृत्तम्। ३०.१४

राजा किमिव? ३०.१५

पुरोहितः देव! परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु– ३०.१६

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला
बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता ।

राजा किञ्च? ३०.१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरव — अब आप पुरानी घटना को दूसरों की संगति में पड़कर भूल गए तो फिर यह अधर्मभीरुता कैसी?

राजा — आप से ही पूछता हूँ गुरुलाघव। बोलिए—

या तो मैं भूल रहा हूँ या यह झूठ बोल रही है। तो दारत्याग का अपराधी बनूँ या परस्त्रीस्पर्श का पापी ॥ २९॥

पुरोहित — (सोचकर) ऐसा है तो ऐसा किया जाए।

राजा — कीजिए मेरा अनुशासन।

पुरोहित — ये महोदया प्रसव तक हमारे घर रहें।

राजा — ऐसा क्यों?

पुरोहित — यदि यह कुतूहल हो तो सुनें 'आप के लिए साधु भविष्यवेत्ताओं ने घोषणा की है कि आपको पहले ही चक्रवर्त्ती पुत्र होगा। वह मुनि दौहित्र यदि उन लक्षणों से युक्त हो तो इनका अभिनन्दन करना और अपने रनिवास में स्थान देना। ऐसा न हो तो इनका अपने पिता के पास जाना निश्चित ही है।

राजा — आप गुरु हैं, आपको जो रुचे।

पुरोहित — वत्से! मेरे पीछे आ ।

शकुन्तला — भगवति! वसुन्धरे! मुझे अपने भीतर समा ले।

(रोती रोती पीछे चलती। पुरोहित और तपस्वियों के साथ निकल जाती है।)

राजा — (शाप से स्मृति रुकी है, किन्तु सोचता रहता है शकुन्तला के विषय में ही)

(नेपथ्य में)

आश्चर्य, आश्चर्य!

राजा — (सुनकर) क्या बात है?

(प्रवेश कर)

पुरोहित — (विस्मय के साथ) देव! अद्भुत घटना घट गई।

राजा — कैसी?

पुरोहित — देव! जब कण्वशिष्य लौट गए तब—

वह बाला अपने भाग्य को कोसने और लगी हाथ फेंक फेंक कर रोने और,

राजा — और क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोहितः ३०.१८

स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारा–
दुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥ ३० ॥

सर्वे विस्मयं[1] *रूपयन्ति।* ३१.१

राजा भगवन्! प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्क्केणान्विष्यते। विश्राम्यतु भवान्। ३१.२

पुरोहितः *विलोक्य* विजयस्व। *निष्क्रान्तः* ३१.३

राजा वेत्रवति! पर्य्याकुलोस्मि। शयनभूमिमार्गमादेशय। ३१.४

प्रतीहारी इदो इदो देओ! इत इतो देवः। *प्रस्थिता* ३१.५

राजा ३१.६

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मे हृदयम्[2] **॥ ३१ ॥**

सर्वे निष्क्रान्ताः। ३२.१

इति महाकविकालिदासकृतौ अभिज्ञानशाकुन्तले नाटके 'शकुन्तला'–प्रत्याख्यानो नाम पञ्चमोऽङ्कः ॥ ५ ॥[3]

---

१. सर्वे विस्मयं रूपयन्ति १०८४–८५ हामा., सर्वे विस्मयन्ते १०८६ हामा.।

२. 'मे चेतः' १०८४ हामाः 'मे हृदयम्' १०८५, १०८६ हामा., काग्र.।

३. अद्य श्रीविजयाराजेसिन्धियायाः सुतो हहा ।
जीवन्नेवाग्निना वायुयानलग्नेन भक्षितः ॥
काङ्ग्रेसप्राणभूतः श्रीमाधवरावसिन्धिया ३०.९.२००१, १ वादने।
सीमासर्व्वज्ञयोर्धाम्नि सपत्नीकः सनातनः ।
अङ्कं शाकुन्तले हन्त पञ्चमं प्रत्यलीलिपम् ॥
गर्भसन्धिरयं ह्यत्र 'शाकुन्तल' उपागतः ।
प्रत्याख्यातश्च तत्प्राप्तौ नैराश्यं चोपपादितम् ॥
शकुन्तलायाः प्राप्तिश्चेदभविष्यदिहार्थिता ।
जाता सा तु तृतीयेऽङ्के शापगर्भौ ततो वृथा ॥
ऐक्टने वोस्टनक्षेत्रे वनराजिविराजिते ।
हार्वर्डयूनिवर्सीटीमातृकाः शीलयाम्यहम् ॥
रेवाप्रसादो द्विवेदी ३०.०९.२००१ रविः, ०६.०५.२००४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोहित **स्त्री के रूप में अप्सरस्तीर्थ के पास एक ज्योति उसे उठाकर चली गई ॥ ३०॥**

(सभी विस्मय का अभिनय करते हैं।)

राजा भगवन्! पहले ही हमनें छोड़ दिया था उसे। निरर्थक है तर्क करना और उसकी खोज करना। जाइए आप विश्राम कीजिए।

पुरोहित (देखकर) आपकी जय हो। (निकल जाता है।)

राजा वेत्रवति! मैं अत्यधिक व्याकुल हूँ, शयनागार का मार्ग बतलाओ।

प्रतीहारी इधर से, इधर से देव। (चल देती है)

राजा **माना कि मैंने छोड़ दिया, अभी भी मुझे याद नहीं आ रहा है कि मुनि की पुत्री मेरी पत्नी थी, परन्तु मन बहुत व्यथित हो रहा है और एक प्रकार से निश्चय करा रहा है मुनि पुत्री के परिग्रह की ॥ ३१॥**

(सभी निकल जाते हैं)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति अभिज्ञानशाकुन्तल में 'शकुन्तलाप्रत्याख्यान' नामक पञ्चम अङ्क पूर्ण हुआ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षष्ठाङ्कमिश्रविष्कम्भकः[१] ।। १.१

।।१।।

ततः[२] प्रविशति नागरकः श्यालः पश्चाद् [३]बद्धं पुरुषमादाय रक्षिणौ च। १.२

रक्षिणौ *ताडयित्वा* अले कुम्भीलआ! कहेहि कहिं तुए एशे [४]महालदणभाशुले उक्किणणामहेए लाअकीए अंगुलीअए [५]शमाशादिए।

अरे कुम्भीलक! कथय कुत्र त्वयैतन्महारत्नभासुरम् उत्कीर्णनामधेयं राजकीयमङ्गुलीयकं समासादितम्? १.३

पुरुषः *भीतिनाटितकेन*[६] पशीदंते भावमिश्शे! अहके ण इरिसकम्मकाली।

प्रसीदन्तु भावमिश्राः। अहं नेदृशकर्मकारी। १.४

प्रथमः[७] किं सोहणे बम्हणेति कलिय लञ्ञा पडिग्गहे दिण्णे।

किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः? १.५

पुरुषः शुणुह दाणिं। हगे शक्कावदालब्भंतलवाशी धीवले।

शृणुत इदानीम्। अहं शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः। १.६

द्वितीयो रक्षी पाडञ्चल! किं अम्हेहिं जादी पुच्छिदा? पाटच्चर! किमस्माभिर्जातिः पृष्टा? १.७

श्यालकः सूअअ! कहेदु शव्वं अणुक्कमेण। मा णं अंतरा पडिबंधह।

सूचक! कथयतु सर्वमनुक्रमेण। मैनमन्तरे प्रतिबन्धय। १.८

उभौ रक्षिणौ जदावुत्तो आणवेदि। *पुरुषं प्रति* कहेहि।

यदावुत्त आज्ञापयति (पुरुषं प्रति) कथय। १.९

---

१. २७ मई, २००४।

२. मे चेतः।। ।। इति निष्क्रान्ताः सर्व्वे। पूर्णा तृतीया पङ्क्तिः इति पञ्चमोऽङ्कः।। ।।
ततः १०८४ हामा.।
मे हृदयम्। इति निष्क्रान्ताः सर्व्वे पञ्चमोऽङ्कः।। पूर्णा षष्ठी पङ्क्तिः ततः १०८५ हामा.।
मे हृदयम्। इति निष्क्रान्ताः सर्व्वे पञ्चमोऽङ्कः।। पूर्णा सप्तमपङ्क्तेर्मध्ये ततः १०८६ हामा.।

३. बद्धपुरुष० हामाः।

४. महालदणभासुणे उक्किणणामहेये काग्र.।

५. शकारबहुलं प्राकृतं हामासु।

६. भीतिनाटितकेन १०८४, १९८६ हामा. काग.; भीतिं नाटयित्वा १०८५ हामा.।

७. प्रथमो रक्षी– किं णु खु शोहणे बम्हणं शित्ति कलिअ रण्णा पडिग्गहे दिण्णे?
किं नु खलु शोभनो ब्राह्मण् इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः? १.३ सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षष्ठाङ्क मिश्रविष्कम्भक ।।

।।१।।

(प्रवेश करता है नागरक श्याल पीछे बँधे हाथ वाले पुरुष को लिए हुए दो आरक्षी)

दोनों आरक्षी (पीटकर) अरे चोर! बोल कहाँ पायी तूने यह राजा के नाम से अंकित राजकीय अँगूठी?

पुरुष (भय का अभिनय पर) प्रसन्न हों भावमिश्र! मैं ऐसा काम करने वाला नहीं।

प्रथम आरक्षी तो क्या शोभन ब्राह्मण समझकर राजा ने दान दिया है तुझे।

पुरुष तो अब सुनिए, मैं शक्रावतार के भीतर रहने वाला धीवर हूँ।

द्वितीय आरक्षी चोर! क्या हमने तुझसे जाति पूछी है?

श्यालक सूचक, कह सब शुरू से लेकर। इसे बीच में रोको मत।

दोनों आरक्षी जो आवुत्त[१] की आज्ञा। (पुरुष के प्रति) कह।

---

१. आवुत्त = बहनोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषः हगे जालुग्गालादिहिं मच्छबंधणोवाएहिं कुडुंबभलणं कलेमि।

अहं जालोद्गालादिभिर् मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि। १.१०

श्यालकः *विहस्य* विशुद्धो दाणिं आजीवो। विशुद्ध इदानीमाजीवः। १.११

पुरुषः भट्टा/भस्टके मा एवं भण। भर्त्ता! मैवं भण। १.१२

शहए किल जे विणिंदिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए ।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकंपामिदु जेव्व शोत्तिए ।। १।।

(सहजं किल यद् विनिन्दितं न हि तत् कर्म विवर्जनीयकम् ।
पशुमारणकर्मदारुणोऽप्यनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः (याज्ञिकः) ।।)

श्यालकः तदो तदो? ततस्ततः? २.१

पुरुषः एक्कशिंश दिअशे खंडशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे जाव, तश्श उदलब्भंतले एदं लदणभाशुलं अंगुलीअअं पेस्कामि। पच्छा अहके शे बिक्कआअ दंशअंते गहिदे भावमिश्शेहिं। मालेध वा मुंचेध वा। अअं शे आअमवुत्तंते। एकस्मिन् दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत्, तस्योदराभ्यन्तर इदं रत्नाभसुरमङ्गुलीयकं पश्यामि। पश्चादहं तस्य विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः। मारयथ वा मुञ्चथ वा। अयमस्यागमवृत्तान्तः। २.२

श्यालकः जाणुअ! विस्सगंधी गोहादी एसो मच्छबंधो एव्व णिस्संअअं। अंगुलीअअदंसणं शे विमरिसिदव्वं। राअउलं येव्व गच्छामो।

जानुक! विस्रगन्धी गोधादी एषः मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम्। अङ्गुलीयक–दर्शनमस्य विमर्शियतव्यम्। राजकुलमेव गच्छामः। २.३

रक्षिणौ तधा। गच्छ अले गंडिभेदअ! तथा। गच्छ अरे ग्रन्थिभेदक! २.४

सर्वे परिक्रामन्ति। २.५

श्यालकः सूअअ! इमं गोपुरदुआरे अप्पमत्ता पडिबालह, जाव इमं अंगुलीअं जहागमणं भट्टिणो णिवेदिअ, तदो सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि।

सूचक! इमं गोपुरद्वारे अप्रमत्तो प्रतिपालयतम्, यावदिदमङ्गुलीयकं यथागमनं भर्तुर्निवेद्य, ततः शासनं प्रतीष्य, निष्क्रामामि। २.६

उभौ पविसदु आउत्ते शामिपशादश्श। प्रविशत्वावुत्तः स्वामिप्रसादाय। २.७

निष्क्रान्तः श्यालः २.८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष मैं जाल आदि से मछली पकड़कर कुटुम्ब का पालन करता हूँ।

श्यालक (हँसकर) बड़ी बढ़ियाँ है तेरी रोजी ।

पुरुष मालिक! ऐसा मत कहो।

जो सहज होते हैं वे कर्म त्याज्य नहीं होते। श्रोत्रिय दयालु ही होता है यद्यपि पशुमारण का दारुण कर्म भी करता है ।। १।।

श्यालक आगे क्या हुआ?

पुरुष एक दिन रोहित मत्स्य को मैंने काटा तो उसके पेट के भीतर यह रत्नभासुर अँगूठी देखी। बाद में मैं उसे बेंचने के लिए दिखला रहा था कि आपने पकड़ लिया। मारें या छोड़ें। यह है इसके मिलने का वृत्तान्त।

श्यालक जानुक! सड़ी बास आ रही है इससे। यह गोह खाने वाला मछुआ तो निस्संदेह है। इसको अँगूठी मिलने की बात पर विचार करना होगा। चलो राजमहल ही चलें।

दोनों आरक्षी जो आज्ञा। चल रे अरे गिरहकट!

(सभी घूमते हैं।)

श्यालक सूचक! इसे गोपुर के दरवाजे पर सावधान रहते हुए देखो जब तक मैं इस अँगूठी के मिलने की बात राजा साहब को सूचित कर उनसे मिला आदेश लेकर आता हूँ।

दोनों आरक्षी जाएँ आवुत्त स्वामी को प्रसन्न करने के लिए।

(श्यालक निकल जाता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचकः याणुअ! चिलाअदि क्खु आवुत्ते। जानुक! चिरायते खल्वावुत्तः। २.९

जानुकः णं ओशलोवशप्पणीआ लाआणो। नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः। २.१०

सूचकः याणुअ! स्फुलंति मे अग्गहत्था *धीवरं निर्दिश्य* इमश्श बज्झश्श शुमणा पिणद्धुं। जानुक! प्रस्फुरतो मम अग्रहस्तौ (धीवरं निर्दिश्य) अस्य वध्यस्य सुमनसः पिनद्धुम्। २.११

पुरुषः ण अलुहदि भावे अकालणमालणे भविदुं।

नार्हति भावः, अकारणमारणो भवितुम्। २.१२

जानुकः *विलोक्य* एशे अम्हाणं शामी पत्तहत्थे लाअशाशणं पडिच्छिअ इदोमुहे देक्खीअदि। गिद्धबली भविश्शशि, शुणो मुहं वा देक्खिश्शशि।

एष नः स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीष्य इतोमुखो दृश्यते। गृध्रबलिर्भविष्यसि, शुनो मुखं वा द्रक्षसि। २.१३

प्रविश्य २.१४

श्यालः शिग्घं शिग्घं। शीघ्रं शीघ्रं। २.१५

पुरुषः *भयं नाटयति।* २.१६

श्यालकः सूअअ! मुंचेदु एशे जालोअजीवी। उववण्णो खु अंगुलीअअस्श आअमो। सूचक! मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्नः खलु अङ्गुलीयकस्यागमः। २.१७

सूचकः जधा आवुत्ते भणादि। यथावुत्तो भणति। २.१८

जानुकः एशे यमशदणं पविशिअ पडिणिवुत्ते। एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः। २.१९

पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति। २.२०

पुरुषः *श्यालं प्रणम्य* भस्टके! अध कधअ कीलिशे मह आजीवे?

भर्तः! अथ कथय कीदृशो मे आजीवः? २.२१

श्यालकः एसो भट्टिणा अंगुलीअमुल्लसम्मिदो पशादो वि दाविदो। *पुरुषाय स्वं प्रयच्छति।*

एष भर्त्रा अङ्गुलीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽपि दापितः। २.२२

पुरुषः *सप्रणामं प्रतिगृह्य* भस्टके! अणुग्गहीदे म्हि। भर्तः। अनुगृहीतोऽस्मि। २.२३

सूचकः एशे णाम अणुग्गहे जे शूलादो अवदालिअ हत्थिखंधे पडिट्ठाविदे।

एष नामानुग्रहो यच्छूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः। २.२४

जानुकः आवुत्त! पलिदोशं कहेदि, तेण महालिहलदणेण अँगुलीअएण भट्टिणो शम्मदेण होदव्वं। आवुत्त! परितोषः कथयति, तेन महार्हरत्नेन तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः संमतेन भवितव्यम्। २.२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचक — जानुक! आवुत्त देर कर रहे हैं।

जानुक — ऐसा है कि अवसर मिलने पर मिला जा सकता है राजा लोगों से।

सूचक — जानुक! मेरी ऊँगलियाँ फुरफुरा रही हैं इस वध्य को फूल पहनाने हेतु। (पुरुष की ओर इशारा करता है)

पुरुष — भाव! अकारण मारक बनना आप को शोभा नहीं देता ।

जानुक — (देखकर) यह हमारे स्वामी हाथ में पत्र लिए राजशासन के साथ इसी ओर मुँह किए आ रहे हैं । या तो गिद्धबलि बनेगा या कुत्तों का मुँह देखेगा।

(प्रवेश कर)

श्यालक — जल्दी जल्दी।

पुरुष — (भय का अभिनय करता है।)

श्यालक — सूचक! छोड़ दो इस जालोपजीवी को। इस अँगूठी के मिलने की बात ठीक है।

सूचक — जैसी आवुत्त की आज्ञा।

जानुक — यह यमगृह पहुँच कर लौट आया।

(पुरुष को बन्धनमुक्त करता है)

पुरुष — (श्यालक को प्रणाम कर) भट्टा! कहिए कैसा है मेरा पेशा।

श्यालक — यह प्रसाद भी स्वामी ने दिया है अँगूठी के मूल्य के बराबर।

(पुरुष को धन देता है)

पुरुष — (प्रणाम कर और ग्रहण कर) भट्टक! अनुगृहीत हुआ।

सूचक — इसे कहते हैं अनुग्रह कि सूली से उतारकर हाथी के ऊपर[१] बिठा दिया।

जानुक — आवुत्त! परितोष से लगता है कि अँगूठी राजा को प्रिय होनी चाहिए।

---

१. हाथी की सवारी तीन ही करते थे राजा, दूलह और नगरश्रेष्ठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यालकः ण तस्मि महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदं त्ति तक्केमि। तस्स दंसणेण भट्टिणो अभिमदो जणो सुमराविदो। मुहुत्तअं पकिदिगंभीरो वि पज्जुस्सुअ–णअणो आसि। न तस्मिन् महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः। मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकनयन आसीत्।२.२६

सूचकः शेविदो णाम भस्टा आवुत्तेण। सेवितो नाम भर्ता आवुत्तेन। २.२७

जानुकः णं भणाहि। इमश्श कए मरिछआभत्तुणोत्ति। *पुरुषमसूयया पश्यति* ननु भण। अस्य कृते मात्स्यिकभर्तुरिति। २.२८

पुरुषः भट्टालक! इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होउ।
भट्टारक! इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवति। २.२९

जानुकः एत्तके जुज्जई। एतावद् युज्यते। २.३०

श्यालः धीवर! महत्तरो तुमं पिअवअस्सओ दाणिं मे संवुत्तो। कादंबरी–सक्खिअं अम्हाणं पढमसोहिदं इच्छीअदि। ता सोंडिआपणं एव्व गच्छामो।
धीवर! महत्तरस्त्वं प्रियवयस्यकः इदानीं मे संवृत्तः। कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमसौहृदमिष्यते। तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः। २.३१

निष्क्रान्ताः सर्वे २.३२

॥ २ ॥

ततः प्रविशत्याकाशयानेन सानुमती नामाप्सराः २.३३

सानुमती णिव्वट्टिदं मए पज्जाअणिव्वत्तणिज्जं अच्छरातित्थसण्णिज्झं जाव साहुजणस्स अहिसेअकालो त्ति। संपदं इमस्स राएसिणो उंदतं पच्चक्खीकरिस्सं। मेणआसंबंधेण सरीरभूदा मे सउंदला। ताए अ दुहिदुणिमित्तं आदिट्ठपुव्व म्हि। *समन्तादवलोक्य* किं णु खु उदुच्छवे वि णिरुच्छवारंभं विअ राअउलं दीसइ? अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं परिण्णादुं। किं दु सहीए आदरो मए माणइदव्वो। होदु, इमाणं एव्व उज्जाणपालिआण तिरक्खरिणीपडिच्छणा वस्सवत्तिणी भविअ उवलहिस्सं। *नाट्येनावतीर्य स्थिता।*
निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयम् अप्सरस्तीर्थसांनिध्यं यावत् साधुजनस्याभिषेककाल इति। सांप्रतमस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि। मेनकासंबन्धेन शरीरभूता से शकुन्तला। तया च दुहितृनिमित्तमादिष्टपूर्वास्मि। (समन्तादवलोक्य) किं नु खलु ऋतूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते? अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं परिज्ञातुम्। किं तु सख्या आदरो मया मानयितव्यः। भवतु, अनयोरेव उद्यानपलिकयोस्तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनी भूत्वा उपलप्स्ये। (नाट्येनावतीर्य स्थिता) २.३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यालक इसमें लगा कीमती रत्न स्वामी को अधिक प्रिय था ऐसा नहीं, उसे देखकर स्वामी को कोई प्यारा व्यक्ति याद आ गया ऐसा सोचता हूँ, क्योंकि थोड़ी देर तो प्रकृति गम्भीर रहे फिर एका–एक पर्युत्सुक हो उठे।

सूचक तब तो स्वामी की खुशी का काम कर स्वामी की सेवा कर दी आवुत्त ने।

जानुक यह कहो कि इस मछुआरे के लिए। (पुरुष को असूया के साथ देखता है)

पुरुष भट्टारक! इसमें से आधा आपके (वध्य) पुष्पों का मूल्य ले लें।

जानुक इतना ठीक होगा।

श्यालक धीवर महाराज! तुम भी हमारे दोस्त बन गए। पहली यह दोस्ती कादम्बरी (उत्तम मदिरा) के प्याले पर हो। तो चलो मदिरालय चलें।

(निकल जाते हैं)

(यह हुआ तीसरा प्रवेशक)

॥ २ ॥

(प्रवेश करती है आकाशयान से सानुमती नामक अप्सरा।)

सानुमती पूरा कर दिया मैंने अप्सरा तीर्थ का क्रमप्राप्त कार्य। अब साधुजनों के स्नान का समय हो गया तो अब इस राजर्षि का समाचार लूँ। चलूँ स्वयं देखूँ। मेनका के सम्बन्ध से शकुन्तला मेरी भी शरीरभूता है। उसने बेटी के लिए मुझे आदेश दे रखा है। (चारों ओर देखकर) क्या कारण है कि ऋतूत्सव के अवसर पर भी राजमहल में उत्सव का कोई कार्य नहीं दिखाई दे रहा है?

मुझ में ध्यान से भी सब कुछ देख लेने की शक्ति है, तथापि सखी का आदर मुझे करना चाहिए। चलूँ इन उद्यानपालिकाओं से ही तिरस्करिणीविद्या से छिपी हुई मैं उपलब्ध करूँ वृत्तान्त।

(उतरने का अभिनय कर खड़ी हो जाती है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः प्रविशति चूताङ्कुरमवलोकयन्ती चेटी, अपरा च पृष्ठतस्तस्याः २.३५

प्रथमा **आतम्महरिअपंडुर जीविदसव्वं वसंदमासस्स ।**
दिट्ठो सि चूअकोरअ! उदुमंगल! तुमं पसाएमि ।। २।।

आताम्रहरितपाण्डुर जीवितसर्वं वसन्तमासस्य ।
दृष्टोऽसि चूतकोरक! ऋतुमङ्गल! त्वां प्रसादयामि ।।

द्वितीया परहुदिए! किं एआइणी मंतेसि? परभृतिके! किमेकाकिनी मन्त्रयसे? ३.१

परभृतिका महुअरिए! चूदकलिअं देक्खिअ उम्मत्तिआ परहुदिआ होदि।
मधुकरिके! चूतकलिकां दृष्ट्वा उन्मत्ता परभृतिका भवति! ३.२

मधुकारिका *सहर्षं त्वरयोपगम्य* कहं उवट्ठिदो महुमासो? कथमुपस्थितो मधुमासः? ३.३

परभृतिका महुअरिए! तव दाणिं कालो एसो मदविब्भमगीदाणं।
मधुकरिके! तवेदानीं काल एष मदविभ्रमगीतानाम्। ३.४

मधुकारिका सहि! अवलंब मं जाव अग्गपादट्ठिआ भविअ चूदकलिअं गेण्हिअ कामदेवच्चणं करेमि। सखि! अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा चूतकलिकां गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि। ३.५

परभृतिका जइ मम वि क्खु अद्धं अच्चणफलस्स।
यदि ममापि खलु अर्धमर्चनफलस्य। ३.६

मधुकारिका अकहिदे वि एदं संपज्जइ, जदो एक्कं एव्व णो जीविदं, दुधा ट्ठिदं सरीरं। *सखीमवलम्ब्य स्थिता चूताङ्कुरं गृह्णाति* अए, अप्पडिबुद्धो वि चूदप्पसवो एत्थ बंधणभंगसुरही होदि।
अकथितेऽप्येतत् संपद्यते। यतः एकमेव नौ जीवितम्, द्विधा स्थितं शरीरम्। (सखीमवलम्ब्य स्थिता चूताङ्कुरं गृह्णाति) अये, अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभङ्गसुरभिर्भवति। ३.७

कपोतहस्तकं कृत्वा ३.८

तुं सि मए चूअंकुर दिण्णो कामस्स गहीदचावस्स ।
पधिअ—जण—जुवइलक्खो पंचब्भहिओ सरो होहि[1] ।। ३।।

त्वमसि मया चूताङ्कुर! दत्तः कामाय गृहीतचापाय ।
पथिकजनयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भव ।।

प्रविश्यापटीक्षेपेण कुपितः ४.१

---

१. तुं सि.....कुर = अरिहसि मे चूअंकुर। पहिअ= तरुण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रवेश करती है आम्राङ्कुर देख रही चेटी और उसके पीछे दूसरी चेटी)

प्रथमा — **है कुछ कुछ तामियाँ रंग का, कुछ हरा और कुछ भूरा आम्राङ्कुर। तू वसन्तमास का प्राणसर्वस्व है। तू ऋतुमंगल है। तू प्रसन्न रहना मुझ पर ॥ २॥**

द्वितीया — परभृतिके! अकेली क्या गुनगुना रही है?

परभृतिका — मधुकरिके! आम्रकलिका को देखकर परभृतिका पगला जाती ही है।

मधुकरिका — (तुरन्त खुशी खुशी पास जाकर) क्या मधुमास आ पहुँचा?

परभृतिका — मधुकरिके! तो यह अवसर है मदविभ्रम गीतों का।

मधुकरिका — सखि! पकड़ मुझे, पंजे पर खड़ी होकर आम्रकलिका तोड़ लूँ और कामदेव की पूजा करूँ।

परभृतिका — यदि ऐसा है तो मुझे भी मिलेगा आधा फल पूजा का।

मधुकरिका — यह तो बिना कहे ही हो जाएगा। हमारी जान एक ही है, शरीर ही दो हैं। (सखी को पकड़ कर खड़ी हो चूताङ्कुर को पकड़ती है।)
अरे, खिलने के पहले ही, तोड़ो तो आम का अंकुर सुगन्ध बिखेरता है।

(कपोतहस्तक मुद्रा बनाकर)

हे आम के टिकोरे! मैंने तुझे समर्पित किया भगवान् काम को, धनुष तो लिए ही हैं ये, छठा बाण तू बन जा। लक्ष्य तो पथिकजनों की युवतियाँ हैं ही॥ ३॥

(तभी अपटी (पर्दा) हटाकर कुपित कञ्चुकी प्रवेश करता है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कञ्चुकी मा तावत्। अनात्मज्ञे! देवेन प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वं चूतकलिकाभङ्गम् आरभसे? ४.२

उभे *भीते* पसीददु अज्जो। अग्गहीदत्थाओ अम्हे।

प्रसीदत्वार्यः।अगृहीतार्थे आवाम्।४.३

कञ्चुकी हुं, न किल श्रुतं युवाभ्यां यद् वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च। तथा हि— ४.४

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
सन्नद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया ।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम् ।।४।।

उभे णेत्थ संदेहो। महाप्पहाओ राएसी। नात्र संदेहः। महाप्रभावो राजर्षिः। ५.१

परभृतिका अज्ज! कदि दिअहाइं [१]अम्हाणं मित्तावसुणा रट्ठिएण भट्टिणीपाअमूलं पेसिदाणं? [२]दाणिं अ णो पमदवणस्स पालणकम्म समप्पिदं। ता आअंतुअदाए अस्सुदपुव्वो अम्हेहिं एसो वुत्तंतो। आर्य! कति दिवसा आवयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलं प्रेषितयोः? इदानीं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम्। तत् आगन्तुकतया अश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः? ५.२

कञ्चुकी भवतु। पुनरेवं न प्रवर्तितव्यम्।[३] ५.३

उभे अज्ज! कोदूहलं णो। जइ इमिणा जणेण सोदव्वं कहेदु। अअं किंणिमित्तं भट्टिणा वसंतुस्सवो पडिसिद्धो? आर्य! कौतूहलं नौ यद्यनेन श्रोतव्यं कथय। अयं किंनिमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्धः? ५.४

सानुमती उस्सवप्पिआ खु मणुस्सा। गुरुणा कारणेण होदव्वं।

उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्। ५.५

कञ्चुकी बहुलीभूतमेतत् किं न कथ्यते। किमत्रभवत्योः कर्णपथं नायातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्? ५.६

उभे सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अंगुलीअदंसणं।

श्रुतं राष्ट्रियमुखाद् यावदङ्गुलीयदकदर्शनम्। ५.७

---

१. अम्हाणं इध पमदवणे चित्तकम्मं अप्पिदुं अदो कञ्चुकी ण सुदपुव्वो।
२. एत्थं।
३. तेन हि पुनरेवं न।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कञ्चुकी — क्या कर रही है (मा तावत्) री अनात्मज्ञे! राजा साहब ने वसन्तोत्सव न करने का आदेश दिया है तो भी तू आम का टिकोरा (अङ्कुर) तोड़ रही है?

दोनों चेटियाँ — (डर जाती हैं) आर्य क्षमा करें, प्रसन्न हों, हमें इस बात का ज्ञान नहीं था।

कञ्चुकी — क्या तुम दोनों ने सुना नहीं राजा साहब के जिस शासन को वसन्त के वृक्षों ने भी मान रखा है और उन पर रहते पखेरुओं ने भी। देखो— **आमों में कलियाँ कब की निकली हैं, परंतु उनमें, रज** (पराग) **नहीं आ रहा है, कुरबक पूरी तरह तैयार है, किन्तु अभी तक कोरकावस्था में ही रुका हुआ है, शिशिर बीत चुका तब भी कोयलों की कूक में फिसलन है, हो न हो, काम ने भी, तरकश से आधा खींचा बाण छोड़ रखा है, क्योंकि वह भी चकित है।।४।।**

दोनों चेटियाँ — सन्देह नहीं राजर्षि का प्रभाव बहुत बड़ा है।

परभृतिका — आर्य! हमें कुछ दिनों से राष्ट्रिय मित्रावसु ने देवी पादमूल में भेज रखा था। प्रमदवन की देख—रेख का भार हमें अभी अभी मिला हैं। बाहर से आई हैं हम इसलिए हमने यह वृत्तान्त सुना नहीं था।

कञ्चुकी — कोई बात नहीं। फिर ऐसा न करना।

दोनों चेटियाँ — आर्य! हमें कुतूहल है यदि हमारे सुनने योग्य हो तो बतलावें। यह वसन्तोत्सव मालिक ने किस कारण रोका।

सानुमती — मनुष्य तो उत्सवप्रिय होते हैं। कारण बड़ा होना चाहिए।

कञ्चुकी — बहुत प्रसार है इस बात का। क्यों नहीं कही जाए। क्या तुम दोनों को सुनने को मिला है कि महाराजा ने शकुन्तला को स्वीकार नहीं किया।

दोनों चेटियाँ — सुना है राष्ट्रिय (राजा का साला) के मुख से अँगूठी मिलने तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कञ्चुकी *आत्मगतम्* तेन हि अल्पं कथयितव्यम्। *प्रकाशम्* यदैव खलु स्वाङ्गुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन 'सत्यमूढपूर्वा मया तत्रभवती [३]रहसि शकुन्तला मोहात् प्रत्यादिष्टे'–ति, तदाप्रभृत्येव पश्चात्तापमुपगतो देवः। तथा हि – ५.८

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्त–विवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः ।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम् ।। ५।।

सानुमती पिअं मे। प्रिय मे। ६.१

कञ्चुकी अस्मात् प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः। ६.२

उभे जुज्जइ। युज्यते। ६.३

नेपथ्ये ६.४

एदु एदु भवं। एतु एतु भवान्। ६.५

कञ्चुकी *कर्णं दत्त्वा परिचारिके विलोक्य* अये! इत एवाभिवर्तते देवः। स्वकर्मानुष्ठीयताम्। ६.६

उभे तध। तथा। *निष्क्रान्ते* ६.७

।। मिश्रविष्कम्भकः।। ६.८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कञ्चुकी (स्वगत) तब तो थोड़ा ही कहना शेष है। (प्रकाश) ज्यों ही अपनी अँगूठी देखी तो राजा को याद आ गया कि सचमुच मैंने पूज्य शकुन्तला से एकान्त में विवाह किया था, मोहवश याद न आने के कारण उसे स्वीकार नहीं किया – तभी से राजा साहब पछतावे में डूबे हैं। देखो न –

रम्य से द्वेष कर रहे हैं, पहले के समान प्रतिदिन प्रकृति (अमात्यों और प्रजाजनों) **से मिल नहीं रहे हैं, रातें बिना नींद के ही आस पास करवटें ले लेकर बिता रहे हैं, मुलाहिजे में जब कभी रानियों को उत्तर भी देते हैं तो किसी की जगह किसी को पुकार बैठते हैं और फिर देरी तक लाज में डूबे रहते हैं।।५।।**

सानुमती मेरे लिए तो यह प्रिय है, प्रिय है।

कञ्चुकी उस वैमनस्य के प्रभाव से उत्सव रोक दिया उन्होंने।

दोनों चेटियाँ ऐसा ही होना उचित था ।

(नेपथ्य में)

आएँ आएँ आप।

कञ्चुकी (कान देकर परिचारिकाओं को देखकर) अये! देव (राजा साहब) तो इधर ही आ रहे हैं। अपना काम किया जाए।

दोनों चेटियाँ जो आज्ञा। (निकल जाती हैं)

।। यह हुआ मिश्रविष्कम्भक ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ षष्ठोऽङ्कः।। ६.९

।। ३।।

ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो राजा विदूषकः प्रतीहारी च ६.१०

कञ्चुकी *राजानमवलोक्य* अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। एवमुत्सुकोऽपि प्रियदर्शनो देवः। तथा हि — ६.११

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठे श्लथं
बिभ्रत् काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरण — प्रताम्रनयनस्तेजोगुणैरात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ।। ६।।

सानुमती *राजानं दृष्ट्वा* ठाणे खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स किदे सउंदलं किलम्मदि त्ति।

स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यतीति। ७.१

राजा *ध्यानमन्दं परिक्रम्य* ७.२

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम् ।। ७।।

सानुमती णं ईरिसाणि तवस्सिणीए भाअहेआणि?

नन्वीदृशानि तपस्विन्या भागधेयानि? ८.१

विदूषकः *आत्मगतम्* लंघिदो एसो भूओ वि सउंदलावाहिणा। ण आणे कहं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदि त्ति। लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति। ८.२

कञ्चुकी *उपगम्य* जयतु महाराजः! प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः। यथाकाम—मध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः। ८.३

राजा वेत्रवति! मद्वचनादमात्यमार्यपिशुनं ब्रूहि। चिरप्रबोधनान्न संभावित—मस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम्। यत् प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण तत् पत्रारूढं कृत्वा प्रस्थाप्यतामिति। ८.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षष्ठ अङ्क ।।

।। ३ ।।

(प्रवेश होता है पश्चात्ताप के वेष में राजा विदूषक और प्रतीहारी का।)

कञ्चुकी (राजा को देखकर) अहो! कुछ आकृतियाँ ऐसी होती हैं जो सभी अवस्थाओं में रमणीय ही लगती हैं। अत्यधिक उत्कण्ठित होने पर भी देव अच्छे ही दिखाई दे रहे हैं । देखिए न –

महाराज साहब ने छोड़ रखी है विशेष मण्डना, बाएँ प्रकोष्ठ में ही एक पहने हुए हैं कनकवलय, अधर (उष्ण) श्वासों से लाल पड़ गया है, चिन्ता में नींद न होने से आँखे कुम्हलाई हुई/प्रताम्र हैं, परन्तु इनमें अपना तेज इतना अधिक है, कि इनकी क्षीणता समझ में नहीं आ रही, संस्कार के लिए शाण से घिसे महामणि जैसे ।। ६।।

सानुमती (राजा को देखकर) ठीक ही प्रत्यादेश से अपमानित होने पर भी इसके लिए शकुन्तला क्लान्त हो रही है।

राजा (ध्यानमन्द घूमकर) **यह मेरा हतहृदय, सारङ्गाक्षी प्रिया ने जगाया तो पहले रहा सुप्त, और यह जागा है अब केवल पछताने और उसकी पीड़ा भोगने के लिए ।।७।।**

सानुमती देखो तो, तपस्विनी शकुन्तला का ऐसा है भाग्य?

विदूषक (स्वगत) अब फिर से सवार होने वाली है इस पर शकुन्तला की व्याधि ।। समझ में नहीं आ रहा कैसे होगी इसकी चिकित्सा।

कञ्चुकी (पास जाकर) देव की जय हो। देव! प्रमदवन भूमियाँ ठीक से देख लीं। महाराज मनचाही जगह मनोविनोद कर सकते हैं।

राजा वेत्रवति! मेरे शब्दों में अमात्य पिशुन से कह दो कि 'देर तक जागने के कारण आज धर्मासन पर बैठना हमारे लिए संभव नहीं है। जो पौरकार्य देख लिया हो उसे आर्य! पत्र में चढ़ाकर दे दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारी जं देवो आणवेदि। यद् देव आज्ञापयति। *निष्क्रान्ता* ८.५

राजा वातायन! त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु। ८.६

कञ्चुकी यदाज्ञापयति देवः। *निष्क्रान्तः* ८.७

विदूषकः किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संपदं सिसिरविच्छेअरमणिज्जे इमस्सिं पमदवणुद्देसे अत्ताणं रमइस्ससि। कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरविच्छेदरमणीये अस्मिन् प्रमदवनोद्देशे आत्मानं रमयिष्यसि। ८.८

राजा वयस्य! रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते तदव्यभिचारि कुतः—८.९

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।
मनसिजेन सखे! प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ।। ८ ।।

विदूषकः चिट्ठ दाव, इमिणा दंडकट्ठेण कंदप्पबाणं णासइस्सं। *दण्डकाष्ठमुद्यम्य चूताङ्कुरं पातयितुमिच्छति।* तिष्ठ तावत्; अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पबाणं नाशयिष्यामि। ९.१

राजा *सस्मितम्* भवतु; दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे! क्वोपविष्टः प्रियायाः किञ्चिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि? ९.२

विदूषकः णं आसण्णपरिआरिआ चदुरिआ भवदा संदिट्ठा— माहवीमंडवे इमं वेलं अदिवाहिस्सं। तहिं च मे चित्तफलअगदं सहत्थलिहिदं तत्तहोदीए सउंदलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति। ननु आसन्नपरिचारिका चतुरिका भवता संदिष्टा— 'माधवीमण्डपे इमां वेलामतिवाहयिष्ये। तत्र च मे चित्रफलकगतां स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानये'ति। ९.३

राजा ईदृशं हृदयविनोदस्थानम्। तत् तमेव मार्गमादेशय। ९.४

विदूषकः इदो इदो भवं। इत इतो भवान्। ९.५

उभौ *परिभ्रमतः* ९.६

सानुमती *अनुगच्छति* ९.७

विदूषकः एसो मणिसिलापट्टअसणाहो माहवीमंडवो उवहाररमणिज्जदाए णिस्संसअं साअदेण विअ णो पडिच्छदि। ता पविसिअ णिसीददु भवं। एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डपः उपहाररमणीयतया निःसंशयं स्वागतेनेव नौ प्रतीच्छति। तत् प्रविश्य निषीदतु भवान्। ९.८

उभौ *प्रवेशं कृत्वोपविष्टौ* ९.९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारी — जो आज्ञा देव की (निकल जाती है)

राजा — वातायन! तुम भी अपना काम करो।

कञ्चुकी — जैसी आज्ञा (निकल जाता है)।

विदूषक — आपने कर दिया निर्मक्षिक। अब शिशिर और धूप हट जाने से सुन्दर प्रमदवन के इस स्थान पर मन रमाओ।

राजा — वयस्य! 'अनर्थ टूटते हैं जहाँ छिद्र दिखते हैं' यह कथन सत्य है। क्योंकि — **मुनिसुता के प्रेम की स्मृति को रोकने वाले अज्ञान से मेरा मन मुक्त हुआ इधर और उधर काम ने प्रहार करने की इच्छा से अपने धनुष पर यह आम का बाण चढ़ाया ॥८॥**

विदूषक — ठहरो इस दण्डकाष्ठ से कन्दर्पबाण को किए देता हूँ नष्ट।
(दण्डकाष्ठ उठाकर आम की मञ्जरी को गिराना चाहता है।)

राजा — (मुस्कुराकर) रहने दो। देख लिया ब्रह्मवर्चस। सखे! कहाँ बैठकर प्रिया का कुछ अनुकरण करती लताओं में दृष्टि लगाऊँ?

विदूषक — अरे! आपने ही तो आसन्न परिचारिका चतुरिका से कहा है 'इस समय को माधवी मण्डप में बिताऊँगा। वहीं मुझे स्वहस्तनिर्मित शकुन्तला का चित्र लाकर दे ।

राजा — ऐसा है हृदय के बहलाने का उपकरण। तो उसी का मार्ग बतला।

विदूषक — इधर से इधर से आप।

दोनों — (घूमते हैं।)

सानुमती — (पीछे पीछे चलती है।)

विदूषक — यह है मणि के शिलापट्ट से युक्त माधवी लतामण्डप। इस पर फूल बिखरे हुए हैं (उपहार)। अत: आपका स्वागत सा कर रहा है। तो इसी पर बैठें आप।

दोनों — (प्रवेश कर बैठ जाते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती लदासंसिदा पेक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदिं। तदो से भत्तुणो बहुमुहं अणुराअं णिवेदइस्सं। *तथा कृत्वा स्थिता* । लतासंश्रिता द्रक्ष्यामि तावत् सख्याः प्रतिकृतिम्। ततोऽस्या भर्तुर्बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि। ९.१०

राजा सखे! सर्वमिदानीं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम्। कथितवानस्मि भवते च। स भवान् प्रत्यादेशवेलायां मत्समीपगतो नासीत्। पूर्वमपि न त्वया कदाचित् संकीर्तितं तत्रभवत्या नाम। कच्चिदहमिव विस्मृतवानसि त्वम्? ९.११

विदूषकः ण विसुमरामि। किंतु सव्वं कहिअ अवसाणे उण तुए परिहासविअप्पओ एसो, ण भूदत्थो त्ति आचक्खिदं। मए वि मट्टिआपिंडबुद्धिणा तह एव्व गहीदं। अहवा भविदव्वदा क्खु बलवदी। न विस्मरामि। किंतु सर्वं कथयित्वा अवसाने पुनस्त्वया परिहासविजल्प एष, न भूतार्थ इत्याख्यातम्। मयापि मृत्पिण्डबुद्धिना तथैव गृहीतम्। अथवा भवितव्यता खलु बलवती। ९.१२

सानुमती एव्वं णेदं। एवं नन्वेतत्। ९.१३

राजा *ध्यात्वा* सखे! त्रायस्व माम्। ९.१४

विदूषकः भो! किं एदं? अणुववण्णं क्खु ईरिसं तुइ। कदा वि सत्पुरिसा सोअपत्तप्पाणो ण होंति। णं पवादे वि णिक्कंपा गिरीओ।

भोः! किमेतत्? अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि। कदापि सत्पुरुषाः शोकपात्रात्मानो न भवन्ति। ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः। ९.१५

राजा वयस्य! निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। सा हि— ९.१६

इतः प्रत्यादिष्टा स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे ।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्, तत् सविषमिव शल्यं दहति माम् ।। ९।।

सानुमती अम्महे, ईरिसी स्वकज्जपरदा। इमस्स संदावेण अहं रमामि।

अहो ईदृशी स्वकार्यपरता। अस्य संतापेनाहं रमे। १०.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती लता के पास खड़ी होकर देखूँ तो सखी की प्रतिकृति। तब मैं उसे उसके प्रिय का विस्तृत समाचार दूँगी। (वैसा ही करती है)।

राजा मित्र! इस समय सब कुछ स्मरण कर रहा हूँ। शकुन्तला का प्रथम वृत्तान्त। तुमसे कहा भी था। प्रत्यादेश के समय तुम मेरे पास थे नहीं। पहले भी कभी तुमने मेरे समक्ष नहीं लिया शकुन्तला का नाम। कदाचित् मेरे ही समान तुम भी भूल गए थे उसे।

विदूषक भूला नहीं हूँ। किन्तु सब कहकर अन्त में तुमने कह दिया था यह परिहासविजल्पित है, भूतार्थ (सत्य) नहीं। मैं ठहरा मृत्पिण्डबुद्धि। मैंने उसे वैसा ही मान लिया। अथवा भवितव्यता बलवती हुआ करती है।

सानुमती ऐसा ही है कथन।

राजा (ध्यान कर) सखे! बचा मुझे।

विदूषक भो! यह क्या? ऐसा तुम में ठीक नहीं। सत्पुरुषों के मन कभी भी शोकपात्र नहीं होते। आँधी में भी निष्कम्प ही रहते हैं पर्वत।

राजा मित्र! मेरे अस्वीकार कर देने पर विकल हुई प्रिया की अवस्था का स्मरण करता हूँ तो मेरा धैर्य छूट जाता है। वह बेचारी —

मेरी ओर से अस्वीकृत जब स्वजन के पीछे बढ़ी तो गुरुतुल्य पूज्य गुरु ने 'यहीं रुक' इस प्रकार रोका तो आँखों में आँसू की झड़ी लिए उसने मुझ क्रूर पर जो दृष्टि डाली वह सविष अस्त्र के समान जलाए डाल रही है मुझे ॥९॥

सानुमती देखो तो ऐसी भी स्वकार्यपरता कि इसके संताप में रम रही हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः भो! अत्थि मे तक्को– केण वि तत्तहोदी आआसचारिणा णीदे त्ति।

भोः अस्ति मे तर्कः – केनापि तत्रभवती आकाशचारिणा नीतेति। १०.२

राजा कः पतिदेवतामन्यः पराम्रष्टुमुत्सहेत? मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवानस्मि। तत्सहचारिणीभिः सखी ते हृतेति मे हृदयमाशङ्कते। १०.३

सानुमती संमोहो क्खु विम्हअणिज्जो ण पडिबोहो।

संमोहः खलु विस्मयनीयः, न प्रतिबोधः। १०.४

विदूषकः जह एवं ता समस्ससदु भवं। अस्थि क्खु समाअमो तत्तहोदीए।

यद्येवम्, तत् समाश्वसितु भवान्, अस्ति खलु समागमः तत्रभवत्या। १०.५

राजा कथमिव? १०.६

विदूषकः ण क्खु मादापिदरा भत्तुविओअदुक्खिअं दुहिदरं चिरं पेक्खिदुं पारेंति।

न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं चिरं प्रेक्षितुं पारयतः। १०.७

राजा वयस्य! १०.८

स्वप्नो नु, माया नु, मतिभ्रमो नु,
क्लृप्तं नु तावत् फलमेव पुण्यम् ।
असंनिवृत्त्यै तदतीतमेव
मनोरथा नाम तटप्रपाताः ॥१० ॥

विदूषकः मा एव्वं; णं अंगुलीअअं एव्व णिदंसणं, अवस्संभाविणो अचिंतणिज्जो समाअमो होदि त्ति। मैवम्; नन्वङ्गुलीयकमेव निदर्शनम्, अवश्यंभाविनः अचिन्तनीयः समागमो भवतीति। ११.१

राजा *अङ्गुलीयकं विलोक्य* अये! इदं तावदसुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम्। ११.२

तव सुचरितमङ्गुलीय! नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु॥ ११॥

सानुमती जइ अण्णहत्थगदं भवे सच्चं एव्व सोअणिज्जं भवे।

यदि अन्यहस्तगतं भवेत् सत्यमेव शोचनीयं भवेत्। १२.१

विदूषकः भो! इअं णाममुद्दा केण उग्घादेण तत्तहोदीए हत्थाब्भासं पाविदा?

भोः! इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्ताभ्याशं प्रपिता? १२.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक भो वयस्य! मेरा तर्क है 'कोई आकाशचारी तत्रभवती को उठा ले गया है।'

राजा पतिदेवता नारी को दूसरा कोई कैसे छू सकता है? मेनका जरूर है इसकी जन्मप्रतिष्ठा। ऐसा सुना है मैंने। लगता है उसकी सहचरियों ने तुम्हारी सखी को उठाया है।

सानुमती विस्मय का विषय तो संमोह है न कि प्रिया का प्रतिबोध।

विदूषक यदि ऐसा है तो आप निश्चिन्त रहिए, उनसे आपका होगा समागम कुछ ही समय में।

राजा कैसे?

विदूषक माता–पिता बहुत समय तक भर्तृवियोग से दुःखी देख पाते नहीं बेटी को।

राजा मित्र! (निराशा) **स्वप्न था यह जो बीत गया था, माया थी यह जो मिट गई या मतिभ्रम था यह जो हट गया, पुण्यफल था यह जो उतर गया** (जो भी था) **वह गुजर गया, न लौटने के लिए। अब जो ये मनोरथ हैं वे तो टूट कर गिरते तट हैं ॥१०॥**

विदूषक ऐसा नहीं। देखो, अँगूठी ही इसमें प्रमाण है। अवश्यंभावी समागम एकाएक होता है, अकल्पित ढंग से।

राजा (अँगूठी को देखकर) अये! यह भी अभागिन है जो असुलभ स्थान तक पहुँच करके भी गिर गई।

हे अँगूठी! तेरा पुण्य मेरे ही पुण्य सा बहुत क्षीण सा लग रहा है परिणाम से, जो तू अरुण नखों से मनोहर उसकी उँगलियों में स्थान पाकर भी गिर गया ॥११॥

सानुमती अवश्य ही शोचनीय होती अँगूठी यदि किसी अन्य के हाथ लग जाती।

विदूषक भो! यह नाममुद्रा किस प्रसंग से किसने तत्रभवती के हाथ तक पहुँचाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती मम विअ कोदूहलेण आलाविदो एसो। ममेव कौतूहलेनालापित एषः। १२.३

राजा श्रूयताम्; स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यतीति। १२.४

विदूषकः तदो तदो? ततस्ततः? १२.५

राजा पश्चादिमां मुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता— १२.६

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं
नामाक्षरं गणय यासि न यावदन्तम् ।
तावत् प्रिये! मदवरोधनिदेशवर्त्ती
नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति ।। १२।।

तच्च दारुणात्मना मया मोहान्नानुष्ठितम्। १३.१

सानुमती रमणिज्जो क्खु अवही विहिणा विसंवादिदो।

रमणीयः खल्ववधिः विधिना विसंवादितः। १३.२

विदूषकः कधं धीवलकप्पिअस्स लोहिदमच्छस्स उदलब्भंतले आसि?

कथं धीवरकल्पितस्य रोहितमत्स्यस्योदराभ्यन्तर आसीत्? १३.३

राजा शचीतीर्थं वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद् गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम्।१३.४

विदूषकः जुज्जई। युज्यते। १३.५

सानुमती अदो एव्व तवस्सिणीए सउंदलाए अधम्मभीरुणो इमस्स राएसिणो परिणए संदेहो आसि। *सविमर्शम्* अहवा, ईरिसो अणुराओ अहिण्णाणं अवेक्खदि। *सवितर्कम्* कहं विअ एदं?

अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणये संदेह आसीत्। (सविमर्शम्) अथवा ईदृशोऽनुरागः अभिज्ञानमपेक्षते। (सवितर्कं)कथमिवैतत्? १३.६

राजा उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुलीयकम्। १३.७

विदूषकः *आत्मगतम्* गहीदो णेण पंथा उम्मत्तआणं। *प्रकाशम् सस्मितम्* अहं पि एदं दंडकट्ठं उवालहिस्सं कधं उजुअस्स मे कुडिलं तुमं सि त्ति।

कथं गृहीतोऽनेन पन्था उन्मत्तानाम्। (प्रकाशं, सस्मितम्) अहमपि एतद् दण्डकाष्ठमुपालप्स्ये कथम् ऋजुकस्य मे कुटिलं त्वमसीति। १३.८

राजा *अनाकर्णितनाटितकेन अङ्गुलीयकं विलोक्य* मुद्रिके! १३.९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती — मेरे कुतूहल ने बुलवा दिया इससे।

राजा — सुना जाए। जब मैं अपने नगर के लिए चलने लगा तो मुझ से प्रिया ने आँखो में आँसू लेकर पूछा कितने दिन बिताकर आर्यपुत्र खबर भेजेंगें।

विदूषक — तब?

राजा — बाद में इस अँगूठी को उसकी उँगली में पँहनाते हुए मैंने कहा — **एक एक दिन में मेरे नाम का एक एक अक्षर गिनना, जब तक अन्त तक पहुँचोगी तब तक तुम्हारे पास तुम्हारा लिवौआ पहुँचा रहेगा ॥१२॥**

यह मुझ दारुण चित्तवाले ने किया नहीं।

सानुमती — रमणीय थी यह अवधि सो विधाता ने बिगाड़ दी।

विदूषक — कैसे धीवर के द्वारा काटे गए रोहित मत्स्य के पेट में पहुँची?

राजा — शचीतीर्थ को प्रणाम करते समय तुम्हारी सखी के हाथ से गिर पड़ी गङ्गाप्रवाह में।

विदूषक — लग तो रही है संगति।

सानुमती — इसीलिए तपस्विनी शकुन्तला के साथ हुए परिणय में इस राजर्षि को संशय था। (सोचकर), अथवा 'ऐसे अनुराग में अभिज्ञान कैसा? (वितर्क के साथ) यह हुआ कैसे?'

राजा — इस अँगूठी को ही उलाहना दूँगा।

विदूषक — (स्वगत) पकड़ा इसने अब उन्मत्तों का रास्ता। (प्रकाश मुसकुराकर) मैं भी इस दण्डकाष्ठ को उलाहना देता हूँ कि मैं सीधा साधा, तुम कुटिल क्यों हो?

राजा — (अनसुना करने का अभिनय कर अँगूठी को देख कर) अँगूठी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं
करं विहायासि निमग्नमम्भसि ?

अथवा– १३.१०

अचेतनं नाम गुणं न लक्षये–
न्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया ॥ १३ ॥[१]

सानुमती सअं ज्जेव्व पडिवण्णो जं म्हि वत्तुकामा।
स्वयमेव प्रतिपन्नो यदस्मि वक्तुकामा। १४.१

विदूषकः *आत्मगतम्* कधं बुभुक्खाए खादिदव्वो म्हि।
कथं बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि। १४.२

राजा प्रिये! अकारणपरित्यागानुशयदग्धहृदयस्तावदनुकम्प्यतामयं जनः पुनर्दर्शनेन। १४.३

॥ ४ ॥

प्रविश्यापटीक्षेपेण चित्रफलकहस्ता १४.४

चतुरिका इअं चित्तगदा भट्टिणी। *चित्रफलकं दर्शयति* । इयं चित्रगता भट्टिनी। १४.५

विदूषकः *निर्वर्ण्य* साहु वअस्स! महुरावट्ठाणदंसणिज्जो भावाणुप्पवेसो। स्खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु। साधु वयस्य! मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः। स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नोन्नतप्रदेशेषु। १४.६

सानुमती अंमो, एसा राएसिणो णिउणदा। जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति।
अहो, एषा राजर्षेर्निपुणता। जाने सखी अग्रतो मे वर्तत इति। १४.७

राजा वयस्य! १४.८

यद् यत् साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत् तदन्यथा ।
तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम् ॥ १४ ॥

सानुमती सरिसं एदं पच्छाद्दावगुरुणो सिणेहस्स अणवलेवस्स अ।
सदृशमेतत् पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्य अनवलेपस्य च। १५.१

विदूषकः भो! दाणिं तिण्हिओ तत्तहोदीओ दीसंति। सव्वाओ अ दंसणीआओ। कदमा एत्था तत्तहोदी सउंदला? भोः! इदानीं तिस्रस्तत्रभवत्यो दृश्यन्ते। सर्वाश्च दर्शनीयाः। कतमात्र तत्रभवती शकुन्तला? १५.२

---

१. दीर्घापाङ्गविसारिनेत्रयुगलं लीलाञ्चितभ्रूलतं दन्तान्तः परिकीर्णहासकिरणज्योत्स्नाभिषिक्ताधरम्।
कर्कन्धूद्युतिपाटलोष्ठरुचिरं तस्यास्तदेतन्मुखं चित्रेऽप्यालपतीव विभ्रमलसत्प्रोद्भिन्नकान्तिद्रवम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरे तू टेढ़ी और कोमल अँगुली के हाथ को छोड़ पानी में जा डूबी, क्यों?

अथवा—

यह अँगूठी तो जड़ है वह गुण को क्या समझे! खुद मैंने किस कारण ठुकराया प्रिया को? ॥१३॥

सानुमती — जो मैं बोलना चाहती थी वह इसको सूझ गया।

विदूषक — (स्वगत) क्या भूख मुझे खाने जा रही है?

राजा — प्रिये! अकारणपरित्यक्ते! पश्चात्ताप से हृदय मेरा तप्त है। प्रिये! इस पर दया करो पुनर्दर्शन देकर?

॥ ४ ॥

(अपटीक्षेप से चित्रफलक हाथ में लिए प्रवेश करती है)

चतुरिका — यह रही चित्रगत मालकिन? (चित्रफलक दिखलाती है)

विदूषक — (देखकर) साधु वयस्य! मधुर अवस्थान में दर्शनीय है भावानुप्रवेश। फिसलती सी है मेरी दृष्टि नीचे ऊँचे स्थानों में।

सानुमती — अहो, देखो तो इस राजर्षि की निपुणता। लग रहा है कि सखी मेरे सामने खड़ी है।

राजा — मित्र!

चित्र में जो जो ठीक न हो उसे बदल दिया जाता है, तथापि उसका लावण्य कुछ ही मात्रा में उभरा लग रहा है रेखा में ॥१४॥

सानुमती — यही होना चाहिए पश्चात्ताप से गुरु स्नेह और अनवलेप (नम्रता) की दशा में।

विदूषक — भो! इस चित्र में तो तीन अत्रभवती दिखाई दे रही हैं। सब की सब दर्शनीय हैं। तत्रभवती शकुन्तला कौन सी है इनमें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती अणभिण्णो खु ईरिसस्स रूवस्स मोहदिट्ठी अअं जणो।

अनभिज्ञः खलु ईदृशस्स रूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः। १५.३

राजा त्वं तावत् कतमां तर्कयसि? १५.४

विदूषकः तक्केमि जा एसा सिढिलकेसबंधणुव्वंतकुसुमेण केसंतेण उब्भिण्णस्सेदबिंदुणा वअणेण विसेसदो ओसरिआहिं बाहाहिं अवसेअसिणिद्धतरुणपल्लवस्स चूअपाअवस्स पासे ईसिपरिस्संता विअ आलिहिदा सा सउंदला। इदराओ सहीओ त्ति।

तर्कयामि यैषा शिथिलकेशबन्धनोद्वान्तकुसुमेन केशान्तेन, उद्भिन्नस्वेदबिन्दुना वदनेन, विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्याम्, अवसेकस्निग्धतरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्वे ईषत् परिश्रान्तेव आलिखिता सा शकुन्तला, इतरे सख्याविति। १५.५

राजा निपुणो भवान्! अस्त्यत्र मे भावचिह्नम्। १५.६

स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात् ॥ १५॥

चतुरिके! अर्धलिखितमेतद् विनोदस्थानम्।

गच्छ, वर्तिकां तावदानय। १६.१

चतुरिका अज्ज माढव्व! अवलंबसु चित्तफलअं, जाव आअच्छामि।

आर्य माधव्य! अवलम्बस्व चित्रफलकं, यावदागच्छामि। १६.२

राजा अहमेवैतदवलम्बे। *यथोक्तं करोति।* १६.३

निष्क्रान्ता चेटी १६.४

राजा *निःश्वस्य* अहं हि— १६.५

साक्षात् प्रियामुपगतामपहाया पूर्वं
चित्रार्पितां पुनरिमां बहु मन्यमानः।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे! प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम् ॥१६॥

विदूषकः *आत्मगतम्* एसो अत्तभवं णदिं अदिक्कमिअ मिअतिण्हिआं संकंतो। *प्रकाशम्* भो! अवरं किं एत्थ आलिहिदव्वं? एषोऽत्रभवान्नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्तः। (प्रकाशम्) भो! अपरं किमत्र आलेखितव्यम्। १७.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती — अनभिज्ञ है यह बेचारा ऐसे रूप का। इसकी दृष्टि पैनी नहीं है।

राजा — तुम किसे सोच रहे हो?

विदूषक — सोच रहा हूँ यह जो एक ऐसी है जिसका जूड़ा खुल चुका है और उससे पुष्प गिर चुके हैं, जिसके चेहरे पर पसीने की बूँदे झिलमिला रही हैं, जिसकी बाँहे ढीली पड़ी हैं, पानी देने से चिकने और तरुण पत्तों वाले आम के वृक्ष के पास कुछ थकी सी अलिखित है यह है शकुन्तला, अन्य दो हैं सखियाँ।

राजा — निपुण हो तुम। इसमें मेरा एक अपना भाव भी अंकित है। —

देखो उँगलियाँ जो बनी हैं उनमें पसीना दिखाई दे रहा है और रेखाएँ अन्त अन्त में मलिन हैं। इसी प्रकार कपोल पर पड़ी आँसू की बूँदें सुख से दृश्य हैं वर्त्तिका के कुछ अधिक उभार से ॥१५॥

चतुरिके! यह चित्र अर्धलिखित ही है, है तो यह भी मन बहलावे में समर्थ, तो जा और वर्त्तिका ले आ।

चतुरिका — आर्य माधव्य! इस चित्रफलक को पकड़ो जब तक मैं लौटती हूँ।

राजा — मैं स्वयं इसे सम्हालूँगा (यथोक्त करता है।)

(चेटी चली जाती है)

राजा — (लम्बी साँस लेकर) मैं जो हूँ सो—

साक्षात् उपस्थित प्रिया को तो बैठा छोड़ और अब गले से लगा रहा हूँ उसके चित्र को। जैसे कोई रास्ते में मिली जलपूर्ण नदी को तो जाए लाँघ, फिर मृगतृष्णा से करता फिरे पानी की याचना (प्रणय) ॥१६॥

विदूषक — (स्वगत) ये महाशय तो नदी छोड़कर मृगतृष्णा में जा पहुँचे, (प्रकट) भो! इसमें और क्या आलिखित करना है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती जो जो पदेशो सहीए मे अहिरूवो तं तं आलिहिदुकामो भवे।

यो यः प्रदेशः सख्या मे अभिरूपस्, तं तमालिखितुकामो भवेत्। १७.२

राजा श्रूयताम् — १७.३

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ।।१७।।

विदूषकः *आत्मगतम्* जह अहं पेक्खामि पूरिदव्वं णेण चित्तफलअं लंबकुच्चाणं तावसाणं कदंबेहिं। यथाहं पश्यामि पूरयितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बैः। १८.१

राजा वयस्य! अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमस्माभिः। १८.२

विदूषकः किं विअ। किमिव? १८.३

सानुमती वणवासस्स सोउमारस्स अ जं सरिसं भविस्सदि।

वनवासस्य सौकुमार्यस्य च यत् सदृशं भविष्यति। १८.४

राजा १८.५

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे!
शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम् ।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ।। १८।।

विदूषक भो! किं णु तत्तहोदी रत्तकुवलअपल्लवसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चइदचइदा विअ ठिआ। *सावधानं निरूप्य* आ, एसो दासीएपुत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्तहोदीए वअणं अहिलंघेदि महुअरो।

भोः! किं नु तत्रभवती रक्तकुवलयपल्लवशोभिना अग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकितेव स्थिता। (सावधानं निरूप्य) आः, एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरः तत्रभवत्या वदनमभिलङ्घति मधुकरः। १९.१

राजा ननु वार्यतामेष धृष्टः। १९.२

विदूषक भवं एव्व अविणीदाणं सासिदा इमस्स वारणे पहविस्सदि।

भवानेव अविनीतानां शासिता अस्य वारणे प्रभविष्यति। १९.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती — हो सकता है मेरी सखी का जो जो भाग सुन्दर है उसे लिखना चाहता हो?

राजा — सुना जाए।

इसमें बनानी है बहते प्रवाह से युक्त मालिनी और उसकी बालू में बैठी हंसों की जोड़ी, उसी के चारों ओर हिमगिरि की चोटियाँ बनानी हैं जिन पर हिरन बैठें हों, शाखाओं पर टँगे वल्कल वाले वृक्ष बनाना चाहता हूँ जिनके नीचे बनाना चाहूँगा कृष्णमृग के शृङ्ग की नोंक से अपने सुन्दर नेत्र खुजलाती मृगी ॥१७॥

विदूषक — (स्वगत) जैसा मैं सोचता था कि इसे इस चित्रफलक को पूरा करना है लम्बी दाढ़ी वाले तपस्वियों से।

राजा — वयस्य! इसमें जो प्रसाधन शकुन्तला का अपेक्षित था जिसे बनाना भुला गया था।

विदूषक — कौन कौन सा प्रसाधन?

सानुमती — वनवास, सौकुमार्य और विनय के अनुरूप जो हो।

राजा — **कान में लगा और कपोल तक लटका शिरीषपुष्प बनाना रह गया है, इसी प्रकार दोनों स्तनों के बीच शरद ऋतु के चन्द्रमा की किरणों सा सुकोमल मृणालसूत्र नहीं बनाया जा सका है ॥१८॥**

विदूषक — भो! ये महोदया क्यों खड़ी हैं चकित चकिता, लाल कुवलय के पल्लव सी सुन्दर हथेली से मुख ढँककर। (सावधानी से देखकर) आ यह दासी का पुत्र कुसुमरस—पाटच्चर (चुराने वाला) भौंरा अत्रभवती के मुख पर टूट रहा है।

राजा — तो इस धृष्ट को रोका जाए।

विदूषक — आप ही हैं अविनीत लोंगों को नियन्त्रित करने वाले। अत एव आप ही इसको रोक सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा युज्यते। अयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे! किमत्र परिपतनखेद–मनुभवसि? १९.४

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु त्वया विना पिबति।। १९।।

सानुमती अज्ज अभिजादं क्खु एसो वारिदो। अद्य अभिजातं खल्वेष वारितः।२०.१

विदूषकः पडिसिद्धवामा एसा जादी। प्रतिषिद्धवामैषा जातिः। २०.२

राजा एवं भोः, न मे शासने तिष्ठसि? श्रूयतां तर्हि सम्प्रति– २०.३

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं
पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु ।
बिम्बाधरं स्पृशसि चेद् भ्रमर! प्रियाया–
स्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम् ।। २०।।

विदूषकः एव्वं तिक्खणदंडस्स किं ण भाइस्सदि? *प्रहस्य आत्मगतम्* एसो दाव उम्मत्तो। अहं वि एदस्स संगेण ईरिसवअणो जेव्व संवुत्तो। *प्रकाशम्* भो! चित्तं क्खु एदं। एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति? (प्रहस्य आत्मगतम्) एष तावदुन्मत्तः। अहमप्येतस्य सङ्गेन ईदृशवचन एव संवृत्तः। (प्रकाशम्) भोः! चित्रं खल्वेतत्। २१.१

राजा कथं चित्रम्? २१.२

सानुमती अहं वि दाणिं अवगदत्था, किं उण जधाचिंदिदाणुभावी एसो।
अहमपीदानीमवगतार्था, किं पुनर्यथाचिन्तितानुभाव्येषः। २१.३

राजा वयस्य! किमिदमनुष्ठितं पौरोभाग्यम्? २१.४

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन ।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ।। २१।।

बाष्पं विहरति २२.१

सानुमती पुव्वावरविरोही अपुव्वो एसो विरहमग्गो।
पूर्वापरविरोधी अपूर्व एष विरहमार्गः। २२.२

राजा वयस्य! कथमेवमविश्रान्तं दुःखमनुभवामि? २२.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — ठीक है। अयि भो! कुसुमलता के प्रिय अतिथि, क्यों कष्ट कर रहे हो इस पर टूटने का?

यह पुष्प पर बैठी मधुकरी, तुम्हारे ऊपर अनुरक्त होने से प्यासी होने पर भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, तुम्हारे बिना मधु नहीं पी रही है ॥१९॥

सानुमती — आज रोका गया यह इतने आभिजात्य के साथ।

विदूषक — मना करने पर भी उल्टी चलती है यह जाति।

राजा — ऐसा है कि तू मेरा अनुशासन नहीं मान रहा है तो सुन तुझे मैं—

हे भ्रमर! नये बालतरु पल्लव से आकर्षक जिस अधर को मैंने रतोत्सवों में दया सहित पिया है, उस बिम्बाफल जैसे अधर को तू यदि डँसना चाहता है तो मैं तुझे कमल के उदर के बन्धन में डलवा दूँगा ॥२०॥

विदूषक — इतना तीक्ष्ण दण्ड, क्यों नहीं डरेगा? (हँसकर स्वगत) यह तो है उन्मत्त। मैं भी इसके संग ऐसा ही सा हो गया।

(प्रकट) अरे! यह चित्र है।

राजा — क्या कहा? यह चित्र है।

सानुमती — मैं भी अब समझ पाई कि यह चित्र है। इसकी तो बात ही क्या। जिसने इसका निर्माण किया और जैसा निर्माण किया, उसे अनुभव भी वैसा ही हो रहा है।

राजा — वयस्य! कैसा पौरोभाग्य[१] किया तुमने?

मैं तो तन्मय हृदय से साक्षात् दर्शन का सुख पा रहा था, याद दिलाकर तुमने फिर से चित्र क्यों बना दिया प्रिया का ॥२१॥

(आँसू बहाता है)

सानुमती — विरह का मार्ग अपूर्व है, पूर्वापर का विरोधी।

राजा — वयस्य! कैसे सहूँ यह लगातार हो रहा दुःख।

---

१. पौरोभाग्य = गुणों में दोष देखना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः ।
बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ।। २२।।

सानुमती सव्वहा पमज्जिदं तुए पच्चादेसदुक्खं सउंदलाए।
सर्वथा प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः। २३.१

प्रविश्य चतुरिका २३.२

चतुरिका जेदु भट्टा। वट्टिआकरंडअं गेण्हिअ इदोमुहं पत्थिद म्हि।
जयतु भर्ता। वर्तिकाकरण्डकं गृहीत्वा इतोमुखं प्रस्थितास्मि। २३.३

राजा किञ्च? २३.४

चतुरिका सो मे हत्थादो अंतरा तरलिआदुदीआए देवीए वसुमदीए अहं एव्व अज्जउत्तस्स उवणइस्सं त्ति सबलक्कारं गहीदो।
स मे हस्ताद् अन्तरा तरलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्या अहमेव आर्यपुत्रस्योपनेष्यामीति सबलात्कारं गृहीतः। २३.५

विदूषकः दिट्ठिआ तुमं मुक्का। दिष्ट्या त्वं मुक्ता। २३.६

चतुरिका जाव देवीए विडवलग्गं उत्तरीअं तरलिआ मोचेदि ताव मए णिव्वाहिदो अत्ता। यावद्देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा। २३.७

राजा वयस्य! उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु। २३.८

विदूषकः अत्ताणं त्ति भणाहि। *चित्रफलकमादायोत्थाय च* जइ भवं अंतउरवाउरादो मुंचीअदि तदो मं मेहप्पडिच्छंदे प्पासादे सद्दावेहि। *द्रुतपदं निष्क्रान्तः।*
आत्मानमिति भण। (चित्रफलकमादायोत्थाय च) यदि भवानन्तःपुरवागुरातो मोच्यते तदा मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापय। (द्रुतपदं निष्क्रान्तः) २३.९

सानुमती अण्णसंकंतहिअओ वि पढमसंभावणं अवेक्खदि असिढिलसोहद्दो दाणिं एसो। अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावनामपेक्षते अशिथिलसौहृद इदानीमेषः। २३.१०

प्रविश्य पत्रहस्ता प्रतिहारी २३.११

प्रतीहारी जेदु देवो। जयतु देवः। २३.१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजागर (नींद न आने) **से तो रुक गया उसका स्वप्न में समागम और बाष्प** (आँसू) **नहीं दे रहे हैं इसे चित्र में भी देखने ॥ २२॥**

सानुमती — सर्वथा तूने पोंछ दिया प्रत्यादेश का दुष्प्रचार।

(प्रविष्ट होकर चतुरिका)

चतुरिका — देव की जय हो, जय हो देव की! वर्त्तिका करण्डक को लेकर मैं इधर आ रही थी,

राजा — क्या हुआ?

चतुरिका — यह मेरे हाथ से बीच में तरलिका के साथ मिली देवी वसुमती ने छीन लिया और कहा मैं ही इसे आर्यपुत्र को उपहार के रूप में दूँगी।

विदूषक — भाग्य से छूट गई तू ।

चतुरिका — जब तक शाखा में उलझा देवी का उत्तरीय तरलिका छुड़ाती है तब तक मैंने अपना निर्वाह कर लिया।

राजा — वयस्य! देवी उपस्थित हो रही हैं और बहुमानगर्विता हैं, इस चित्र की रक्षा, तुम करो।

विदूषक — अपने आप की, ऐसा कहो। (चित्रफलक लेकर और खड़ा होकर) आप अन्तःपुर के जाल से मुक्ति पा लें तब मुझे मेघप्रतिच्छन्द (महल) से पुकार लेंगे। (तेज गति से निकल जाता है)

सानुमती — इसका हृदय इस समय अन्य में लगा हुआ है तब भी प्रथम आदर का ध्यान है इसे। इसका सौहार्द अभी भी अशिथिल ही है।

(प्रतीहारी हाथ में पत्र लिए प्रवेश करके)

प्रतीहारी — महाराज की जय हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा वेत्रवति! न खल्वन्तरे दृष्टा त्वया देवी? २३.१३

प्रतीहारी देव दिट्ठा। पत्तहत्थं मं पेक्खिअ उण पडिणिउत्ता।

देव दृष्टा, पत्रहस्तां मां प्रेक्ष्य पुनः प्रतिनिवृत्ता। २३.१४

राजा कार्यज्ञा कार्योपरोधं मे परिहरति। २३.१५

प्रतीहारी देव! अमच्चो विण्णवेदि– अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एकं एव्व पोरकज्जं अवेक्खिदं, तं देवो पत्तारूढं पच्चक्खीकरेदु त्ति।

देव! अमात्यो विज्ञापयति– 'अर्थजातस्य गणनाबहुलतया एकमेव पौरकार्यम–वेक्षितम्, तद् देवः पत्रारूढं प्रत्यक्षीकरोतु' – इति। २३.१६

राजा इतः पत्रं दर्शय। २३.१७

प्रतीहारी *उपनयति।* २३.१८

राजा *अनुवाच्य* कथम्? समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसने विपन्नः। अनपत्यश्च किल तपस्वी। 'राजगामी तस्यार्थसंचयः' इत्येतदमात्येन लिखितम्। *सविषादं* कष्टं खल्वनपत्यता। बहुधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात्। २३.१९

प्रतीहारी देव! दाणिं एव्व साकेदअस्स सेट्ठिणो दुहिआ णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदि। देव! इदानीमेव साकेतकस्य श्रेष्ठिनः दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते। २३.२०

राजा ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति। गच्छ एवममात्यं ब्रूहि। २३.२१

प्रतीहारी जं देवो आणवेदि। यद्देव आज्ञापयति। *प्रस्थिता* २३.२२

राजा एहि तावत्। २३.२३

प्रतीहारी इअंम्हि। इयमस्मि। २३.२४

राजा किमनेन संततिरस्ति नास्तीति। २३.२५

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ।। २३।।

प्रतीहारी एव्वं णाम घोसइदव्वं। *निष्क्रम्य, पुनः प्रविश्य* काले पवुट्ठं विअ अहिणंदिदं देवस्स सासणं महाजणेण। एवं नाम घोषयितव्यम्। (निष्क्रम्य, पुनः प्रविश्य) काले प्रवृष्टमिव अभिनन्दितं देवस्य शासनं महाजनेन। २४.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा — वेत्रवति! बीच में कहीं तुझे महारानी जी तो दिखाई नहीं दीं?

प्रतीहारी — देव! दिखाई दी, परन्तु पत्र के साथ मुझे देखकर लौट गईं।

राजा — उसे कार्य का ज्ञान है मेरे कार्य में बाधा न आए यह ध्यान रखती है वह।

प्रतीहारी — देव! अमात्य सूचित करते हैं कि आज वाद तो बहुत थे, किन्तु एक पौरकार्य पर विचार किया है। उसे पत्र में चढ़ा दिया है आप कृपया देख लें।

राजा — इधर दिखलाओ पत्र।

प्रतीहारी — (पत्र देती है।)

राजा — (पढ़ कर) अच्छा समुद्रव्यापारी सार्थवाह धनमित्र नौका दुर्घटना में नहीं रहा। बेचारा अनपत्य भी था। उसकी संचित पूजीं राजा के अधिकार में होगी ऐसा अमात्य ने लिखा है। अनपत्यता भारी कष्ट है। (लम्बी साँस लेकर) प्रचुर धन था उसके पास। अतः उसकी पत्नियाँ अनेक हो सकती हैं। देखा जाय यदि उसकी पत्नियों में कोई गर्भवती हो।

प्रतीहारी — देव! अभी अभी साकेत के सेठ की पुत्री का पुंसवन संस्कार हुआ है जो इसकी जाया है, ऐसा सुना है।

राजा — तब तो गर्भ होता है अधिकारी पिता की संपत्ति का। जा अमात्य से ऐसा कह दे।

प्रतीहारी — जो आज्ञा देव की। (जाने लगती है)

राजा — इधर आ।

प्रतीहारी — यह हूँ।

राजा — इससे क्या कि सन्तति है या नहीं।

प्रजाजन उनके जिस–जिस स्नेही बन्धु से वियुक्त हों उसके लिए वह दुष्यन्त है, अनुचित के बिना ऐसी घोषणा कर दी जाए ॥ २३॥

प्रतीहारी — यह है करने योग्य घोषणा। (निकलकर पुनः प्रवेश कर) देव सभी महाजनों ने समय से हुई वर्षा के समान देव के शासन का अभिनन्दन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य* एवं भोः, संततिच्छेदनिरवलम्बा मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ति। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रीरेवंवृत्ता। २४.२

प्रतीहारी पडिहदं अमंगलं। प्रतिहतममङ्गलम्। २४.३

राजा धिङ् माम् उपस्थितश्रेयोवमानिनम्। २४.४

सानुमती असंसअं सहिं एव्व हिअए करिअ णिंदिदो णेण अप्पा।

असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा। २४.५

राजा २४.६

संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा ।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा ।।२४।।

सानुमती अपरिच्छिण्णा दाणिं दे संददी भविस्सदि।

अपरिच्छिन्नेदानीं ते संततिर्भविष्यति। २५.१

चतुरिका *जनान्तिकम्* अए! इमिणा सत्थवाहवुत्तंतेण दुउणुव्वेओ भट्टा। णं अस्सासिदुं मेहप्पडिच्छंदादो अज्जं माढव्वं गेण्हिअ आअच्छ।

अयि! अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन द्विगुणोद्वेगो भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दाद् आर्यं माधव्यं गृहीत्वा आगच्छ। २५.२

प्रतीहारी सुट्ठु भणसि। सुष्ठु भणसि। *निष्क्रान्ता* २५.३

राजा अहो दुष्यन्तस्य संशयमारूढाः पिण्डभाजः। कुतः — २५.४

अस्मात् परं बत यथाश्रुति संभृतानि
को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति ।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं
धौताश्रुसेकमुदकं पितरः पिबन्ति ।। २५।।[१]

मोहमुपगतः २६.१

चतुरिका *ससंभ्रममवलोक्य* समस्ससदु भट्टा। समाश्वसितु भर्ता। २६.२

---

१. तस्याग्रभागाद् गृहनीलकण्ठैरनेकविश्रामविलङ्घ्यशृङ्गात् ।
सखा प्रकाशेतरमूर्तिना ते केनापि सत्त्वेन निगृह्य नीतः ।।
प्रागेव जरसा कम्पः स विशेषेण संप्रति ।
आविष्करोति सर्वाङ्गमश्वत्थमिव मारुतः ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (लम्बी साँस लेकर) भो! यह होता है अनपत्यों की निरवलम्बा संपत्ति का हाल। मूलपुरुष के न रहने पर वह दूसरे के पास चली जाती है। मैं भी सन्ततिरहित हूँ। मेरे भी न रहने पर पुरुवंश की श्री का हाल यहीं होने वाला है।

प्रतीहारी अमंगल नष्ट हो।

राजा धिक्कार है मुझे, उपस्थित श्रेय की अवमानना की मैंने।

सानुमती निश्चित ही सखी को ही मन में रखकर की है इसने अपनी निन्दा।

राजा **मैंने क्या किया, मैंने तो धर्मपत्नी जिसमें मैं अपना आरोपण** (गर्भ) **कर चुका था, उसे त्याग दिया, वह तो कुलप्रतिष्ठा थी, जैसे कोई उत्तम फल देने जा रही समय से बोई भूमि को त्याग दे ।। २४।।**

सानुमती तेरी सन्तति अपरिच्छिन्न होगी।

चतुरिका (जनान्तिक=अलग) इस सार्थवाह वृत्तान्त से तो स्वामी का उद्वेग दो गुना हो गया। इन्हें आश्वासन देने के लिए मेघच्छन्द से आर्य माधव्य को लेकर आ।

प्रतीहारी ठीक कह रही हो। (निकल गई)

राजा अहो दुःष्यन्त के पितर संशय पर आरूढ हैं। क्यों?

श्रुति के अनुसार मेरे बाद हमें कौन देगा पानी इस कुल में यह सोचकर पितर लोग अपने आँसुओं से दूषित जल, जो मैं देता हूँ, को पी रहे हैं, क्योंकि मैं प्रसूतिरहित हूँ ।। २५।।

(मूर्च्छित हो जाता है) (मोह = मूर्च्छा)।

चतुरिका (घबराहट के साथ देखकर) महाराज! आश्वस्त हों, आश्वस्त हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती हद्धी हद्धी। सदि खु दीवे ववधाणदोसेण एसो अंधआरदोसं अणुहोदि। अहं दाणिं एव्व णिव्वुदं करेमि। अहवा सुदं मए सउंदलं समस्ससअंतीए महेंदजणणीए मुहादो जण्णभाओस्सुआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्संति जइ अइरेण धम्मपदिणिं भट्टा अहिणंदिस्सदि त्ति। ता णणु जुत्तं कालं पडिपालेदुं। जाव इमिणा वुत्तंतेण पिअसहिं समस्सासेमि। *उद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता* हा धिक् हा धिक्! सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणैषः अन्धकारदोषमनुभवति। अहमिदानीमेनं निर्वृतं करोमि। अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखाद् यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथा अचिरेण धर्मपत्नीं भर्ता अभिनन्दिष्यतीति। तन्ननु युक्तं कालं प्रतिपालयितुम्। यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि। (उद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता) २६.३

नेपथ्ये २६.४

अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं। अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्। २६.५

राजा *प्रत्यागतचेतनः कर्णं दत्त्वा* अये, माधव्यस्येवार्तस्वरः। कः कोऽत्र भोः?२६.६

प्रविश्य २६.७

प्रतीहारी *ससंभ्रमम्* परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सं।

परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम्। २६.८

राजा केनात्तगन्धो माणवकः २६.९

प्रतीहारी अदिट्ठरूवेण केण वि सत्तेण अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छंदस्स प्पासादस्स अग्गभूमिं आरोविदो। अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः। २६.१०

राजा *उत्थाय* मा तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः? अथवा – २६.११

अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम् ।
प्रजासु कः केन पथा प्रयातीत्यशेषतः को नु विदाङ्करोतु ।। २६।।

नेपथ्ये २७.१

भो वअस्स! अविहा अविहा। भो वयस्य! अविहा अविहा। २७.२

राजा *गतिभेदेन परिक्रामन्* सखे! न भेतव्यं न भेतव्यम्। २७.३

नेपथ्ये २७.४

पुनस्तदेव पठित्वा कहं ण भाइस्सं? एस मं को वि पच्चवणदसिरोहरं यिच्छुं विअ तिण्णभंगं करेदि। कथं न भेष्यामि? एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरम् इक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति। २७.५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती हाय, हाय। दीप है परन्तु छिपा है, इस कारण यह अंधकार के दोष की कल्पना कर रहा है। चलूँ इसे अभी सान्त्वना दूँ। अथवा, महेन्द्र की माता जब शकुन्तला को सान्त्वना दे रही थीं तो मैंने सुना था यज्ञभागोत्सुक देवता लोग ही इसमें आगे आएँगे और चाहेंगे कि राजा शीघ्र ही धर्मपत्नी का अभिनन्दन करें। तो प्रतीक्षा में कुछ समय बिता लेना ही ठीक होगा। चलूँ इस वृत्तान्त से सखी को आश्वस्त करूँ। (उद्भ्रान्तक[1] मुद्रा से निकल जाती है)

(नेपथ्य में)

बुरा हुआ, बुरा हुआ।

राजा (होश में आकर और कान लगाकर) यह माधव्य जैसा आर्त्तस्वर है।

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी बचाएँ सरकार! प्राण संकट में पड़े वयस्य को।

राजा किसने सूँघ लिया माधव्य को?

प्रतीहारी किसी अदृष्ट सत्त्व ने। मेघप्रतिच्छन्द प्रासाद की ऊपरी मञ्जिल पर ले गया है वह आर्य को।

राजा (खड़ा होकर) आश्चर्य! मेरे घर के लोगों पर भी सत्त्व ऐसी चढ़ाई कर रहे हैं। अथवा –

रोज रोज होती खुद अपनी भी असावधानी से होने वाली गलतियाँ जानना संभव नहीं, तब अनेक प्रकार के प्रजावर्ग में कौन किस रास्ते चल रहा है यह पूरी तरह से कौन जाने ॥ २६॥

(नेपथ्य में)

भो वयस्य! मरा, मैं मरा।

राजा (गतिभेद से घूमता हुआ) सखे! डरो मत, डरो मत।

(नेपथ्य में)

(फिर उसी को बोलते हुए– भो वयस्य! मरा, मैं मरा।) क्यों नहीं डरूँगा। यह कोई मेरा गला मरोड़कर इक्षुदण्ड के समान तीन टुकड़े किए दे रहा है।

---

१. उद् = ऊर्ध्व, भ्रान्त उड़ना। उड़ने की मुद्रा = उद्भ्रान्तक। नाट्यशास्त्र में इस नाम की मुद्रा नहीं है, समानार्थक मुद्राएँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *सदृष्टिक्षेपम्* धनुस्तावत्। २७.६

प्रविश्य धनुर्हस्ता २७.७

यवनी भट्टा! एदं हत्थावावसहिदं सरासणं।

भर्तः एतद् हस्तावापसहितं शरासनम्। २७.८

राजा *सशरं धनुरादत्ते* २७.९

नेपथ्ये २७.१०

एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम् ।
आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम् ।।२७।।

राजा *सरोषम्* कथं मामेवोद्दिशति? तिष्ठ कुणपाशन! त्वमिदानीं न भवसि।

शार्ङ्गमारोप्य वेत्रवति! सोपानमार्गमादेशय। २८.१

प्रतीहारी इदो इदो देवो। इत इतो देवः। २८.२

सर्वे सत्वरमुपसर्पन्ति। २८.३

राजा *समन्ताद् विलोक्य* शून्यं खल्विदम्। २८.४

नेपथ्ये २८.५

अविहा अविहा। अहं अत्तभवंतं पेक्खामि। तुमं मं ण पेक्खसि? बिडालग्ग—हीदो मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो। अविहा अविहा। अहमत्रभवन्तं प्रेक्षे। त्वं मां न प्रेक्षसे? बिडालगृहीतो मूषक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः। २८.६

राजा भोस्तिरस्करिणीगर्वित! मदीयं शस्त्रं रक्षिष्यति। एष तमिषुं संदधे—२८.७

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम् ।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ।। २८।।

अस्त्रं संधत्ते २९.१

।।५।।

ततः प्रविशति विदूषकमुत्सृज्य मातलिः २९.२

मातलिः राजन्! २९.३

कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम् ।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः ।। २९।।

राजा *ससंभ्रममस्त्रमुपसंहरन्* अये, मातलिः? स्वागतं महेन्द्रसारथे! ३०.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (दृष्टि डालकर) धनुष लाया जाए।

(प्रवेश कर धनुष हाथ में लिए)

यवनी यह रहा हस्तावाप—सहित धनुष।

राजा (बाणसहित धनुष को लेता है।)

(नेपथ्य में)

यह मैं तुझे मारे डालता हूँ, तेंदुआ जैसे झटपटाते पशु को मार डालता है, आर्त्त लोगों की रक्षा के लिए धनुष लिए दुष्यन्त हो तेरा रक्षक ॥ २७॥

राजा (रोषसहित) अच्छा मेरा नाम भी ले रहा है। ठहर रे शवभोजी! तू ही अब बचने वाला नहीं है। (धनुष चढ़ाकर) वेत्रवति! सोपानमार्ग बतला।

प्रतीहारी इधर से महाराज इधर से।

(सभी जल्दी जल्दी चलते हैं)

राजा (सब ओर देख) यहाँ तो कहीं कोई नहीं है।

(नेपथ्य में)

मरा, मरा! मैं तुम्हें देख रहा हूँ और तुम मुझे नही देख रहे, बिडाल द्वारा पकड़े चूहे के समान प्राणों से निराश हो चुका हूँ मैं।

राजा भो तिरस्करिणी[१] से गर्वित! मेरा बाण तुझे देख लेगा। मैं वह बाण छोड़ रहा हूँ — **यह तुझ वध्य को मार देगा और रक्षणीय ब्राह्मण को बचा लेगा। हंस जो है सो दूध पी लेता है और उसमें मिला पानी छोड़ देता है॥ २८॥**

(बाण चढ़ाता है)

॥ ५॥

(प्रवेश करता है विदूषक को छोड़कर मातलि)

मातलि महाराज! **तुम्हारे शरों का लक्ष्य स्वयं इन्द्र ने असुरों को बना रखा है, धनुष उन पर, खींचा जाए। सुहृदों पर तो सत्पुरुषों के प्रसन्नतापूर्ण नेत्र चलते हैं दारुण शर नहीं ॥ २९॥**

राजा (अस्त्र को लौटाते हुए।) अये! ये तो मातलि हैं। हे महेन्द्रसारथि! आपका स्वागत।

---

१. तिरस्करिणी = ओझल बना देने वाली विद्या।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रविश्य ३०.२

विदूषकः अहं जेण इट्ठिपसुमारं मारिदो सो इमिणा साअदेण अहिणंदीअदि।

अहं येन इष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते। ३०.३

मातलिः *सस्मितम्* आयुष्मन्! श्रूयतां यदर्थमस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः। ३०.४

राजा अवहितोऽस्मि। ३०.५

मातलिः अस्ति। कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः। ३०.६

राजा अस्ति। श्रुतपूर्वं मया नारदात्। ३०.७

मातलिः ३०.८

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरवध्यः, तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता ।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिस् तन् नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः।।३०।।

स भवानात्तशस्त्र एव इदानीम्। तत् ऐन्द्ररथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम्।३१.१

राजा अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया। अथ माधव्यं प्रति भवता किमेवं प्रयुक्तम्? ३१.२

मातलिः तदपि कथ्यते। किञ्चिन्निमित्तादपि मनःसंतापाद् आयुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः पश्चात् कोपयितुमायुष्मन्तं तथा कृतवान्। कुतः — ३१.३

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर् विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ।। ३१ ।।

राजा *जनान्तिकम्* वयस्य! अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि — ३२.१

त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयतु प्रजाः ।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः ।। ३२ ।।

विदूषकः जं भवं आणवेदि। यद् भवानाज्ञापयति। *निष्क्रान्तः* ३३.१

मातलिः रथमारोहतु आयुष्मान्! ३३.२

राजा *रथाधिरोहणं नाटयति।* ३३.३

निष्क्रान्ताः सर्वे ३३.४

इति महाकविकालिदासकृतौ अभिज्ञानशाकुन्तले नाटके शकुन्तलाप्रत्यभिज्ञानो नाम षष्ठोऽङ्कः ।। ६ ।। ३३.५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रवेश कर)

विदूषक मुझे जिसने यज्ञपशु सा पीटा उसका यह स्वागत कर रहा है।

मातलि (स्मित के साथ) आयुष्मन्। सुना जाए, जिसके लिए महेन्द्र ने तुम्हारे पास भेजा है।

राजा सावधान हूँ।

मातलि एक दानवगण है कालनेमि से उत्पन्न, वह बड़ा दुर्जय है।

राजा हाँ, हमें भी सूचना मिली थी नारद जी से।

मातलि **वह तुम्हारे मित्र** (इन्द्र) **के लिए अजय्य है। उसको युद्ध में मारने वाले निश्चित हैं आप। ठीक ही है रात का जो अन्धकार सूर्य के लिए अनुच्छेद्य होता है उसे दूर करता है चन्द्र ही ॥ ३०॥**

सो आप शस्त्र उठाए हुए ही हैं। इन्द्र के रथ पर बैठकर विजय के लिए कीजिए प्रस्थान।

राजा अनुगृहीत हूँ महेन्द्र के इस आदर के लिए। अच्छा इस माधव्य के प्रति आपने ऐसा व्यवहार क्यों किया?

मातलि वह भी कहता हूँ। किसी कारण से हुए मानसिक संताप से घिरे दिखाई दिए आप मुझे। आपको कोप दिलाने के लिए वैसा करना आवश्यक समझा। क्योंकि – **ईंधन हिला देने से आग लौ पकड़ लेती है, ठुकरा देने से सर्प फनफना उठता है। प्राय: अपनी महिमा में आता है, प्रत्येक व्यक्ति, क्षोभ से ॥ ३१॥**

राजा (जनान्तिक = अलग) दिवस्पति की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए। तो वयस्य! इस बात की सूचना देकर अमात्य पिशुन को मेरे शब्दों में कह दिया जाए कि– **तब तक केवल तुम्हारी मति ही प्रजा की रक्षा करे। मेरा यह प्रत्यञ्चा चढ़ा धनुष तो अन्य कर्म में लगा है॥ ३२॥**

विदूषक जो आज्ञा आपकी। (निकल जाता है)

मातलि आयुष्मन्! रथ पर आरूढ हों।

राजा (रथारोहण का अभिनय करता है।)

(सभी निकल जाते हैं)

इस प्रकार महाकवि कालिदास की कृति अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटक में 'शाकुन्तलाप्रत्यभिज्ञान' नामक षष्ठ अंक पूर्ण हुआ॥ ६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ सप्तमोऽङ्कः।। १.१

।। १ ।।

[1]*ततः प्रविशत्याकाशयानेन रथाधिरूढो राजा मातलिश्च* १.२

राजा मातले! अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्त–मिवात्मानं समर्थये। १.३

मातलिः *सस्मितम्* आयुष्मन्! उभयत्राप्यपरितोषं समर्थये। १.४

प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्त्या लघु मन्यते भवान् ।
गणयत्यवदानविस्मितो भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान् ।। १।। [2]

राजा मातले! मा मैवम्; स खलु मनोरथानामप्यभूमिर्विसर्जनावसरसत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य– २.१

अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन ।
आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा ।। २।।

मातलिः किमिव नामायुष्मानमरेश्वरान्नार्हति? पश्य– ३.१

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिविदमुद्धृतदानवकण्टकम् ।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः ।। ३।।

राजा अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा। पश्य– ४.१

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ।। ४।।

मातलिः सदृशमेवैतत्। *स्तोकमन्तरमतीत्य* आयुष्मन्! इतः पश्य नाकपृष्ठ–प्रतिष्ठितस्य सौभाग्यमात्मयशसः। ५.१

---

१. अत्र सप्तामाङ्कात् पूर्वं प्रवेशकः कश्मीरवाचनामात्राश्रितः। काग्र.–२

२. रविसमअ–गमणं कंचण अण्णं अ सदाअमालि महुसमओ ।
अण्णं कुणइ विसण्णं पाडीइमाणि भूमीए ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ सप्तम अङ्क ॥

॥ १ ॥

(प्रवेश करते हैं आकाश मार्ग से रथ पर आरूढ राजा और मातलि)

राजा मातले! निदेश पूरा कर देने पर भी इन्द्र ने जो विशिष्ट सत्कार किया मैं उसके योग्य नहीं मानता स्वयं को।

मातलि (स्मितपूर्वक) आयुष्मन्! दोनों को ही परितुष्ट नहीं देखता। **आपने इन्द्र का सबसे बड़ा उपकार किया, किन्तु इन्द्र के सत्कार के सामने आप उसे लघु मान रहे हैं। उधर इन्द्र भी आपके पराक्रम से इतने तुष्ट हैं कि वे आपके सत्कार को बहुत छोटा समझते हैं ॥१॥**

राजा मातले! ऐसा नहीं, विदाई के समय का जो सत्कार था वह सोचा तक नहीं जा सकता। मुझे देवराज ने देवताओं के देखते–देखते बिठलाया अपने आधे सिंहासन पर और –

मुझे अपने गले की मन्दारमाला पहँना दी। माला जिसमें इन्द्र के वक्षस्थल का हरिचन्दन लगा था। उसे पास में ही बैठा पुत्र जयन्त मन ही मन चाहता था। उसकी ओर इन्द्र मुसकुराए और माला पहँनाई मुझे ॥ २॥

मातलि आयुष्मान् अमरेश से क्या नहीं पाने योग्य हैं। देखिए देखिए –

इन्द्र के द्युलोक का दानवकण्टकों से उद्धार दो ने ही किया, इस समय, या तो आपके झुके पर्व वाले बाणों ने या फिर नृसिंह भगवान् के वैसे ही नाखूनों ने ॥ ३॥

राजा इस में भी शतक्रतु इन्द्र की ही महिमा स्तुत्य है। देखें –

सेवक लोग बड़े बड़े कार्यों में भी जो सफलता पा लेते हैं वह ईश्वरों के संभावनागुण के कारण। क्या शक्ति थी अरुण की कि वह रात्रि के अन्धकार का भेदन कर देता यदि उसे सहस्रकिरण सूर्य ने आगे न किया होता ॥ ४॥

मातलि उचित हीं है यह। (थोड़े आगे चलकर) आयुष्मन्! इधर देखिए स्वर्ग में प्रतिष्ठित आपका यश कितनी सुन्दरता के साथ लिखा जा रहा है–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु ।
विचिन्त्य गीतक्षममर्थबन्धं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति ॥ ५॥[१]

राजा मातले! असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युर्दिवमधिरोहता न मया लक्षितः स्वर्गमार्गः। तत् कतरस्मिन् मरुतां पथि वर्तामहे? ६.१

मातलिः ६.२

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां
ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः ।
तस्य द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कं
वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम् ॥ ६॥

राजा मातले! अतः खलु सबाह्यकरणो ममान्तरात्मा प्रसीदति *रथाङ्गमवलोक्य* मेघपदवीमवतीर्णौ स्वः। ७.१

मातलिः आयुष्मन्! कथमवगम्यते? ७.२

राजा ७.३

अयमर–विवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भिर्
हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः ।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते सीकरक्लिन्ननेमिः ॥ ७ ॥

मातलिः क्षणादायुष्मान् स्वाधिकारभूमौ वर्तिष्यते। ८.१

राजा *अधोऽवलोक्य* वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः संलक्ष्यते मनुष्यलोकः। तथा हि,—८.२

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः ।
संधानं तनुभागनष्टसलिलव्यक्त्या व्रजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥ ८॥

---

१. अत्रानुभूयेत महाकवित्वं कालिदासस्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारा चरित लिखा जा रहा है (तुम जो मर्त्यलोक के हो), **लिख रहे हैं वे जो स्वर्ग के वासी हैं** (देवता)। **जो लिखा जा रहा है वह गीत में, वह सोच समझकर, जिस पर लिखा जा रहा है वे हैं सिल्क के कपड़े, वे भी ध्वजपट, वे भी कल्पलताओं पर लगे हुए। जिससे लिखा जा रहा है वह स्याही है अनेक रंगों की। वे रंग भी अप्सराओं के अलंकरण से बचे हुए हैं ॥५॥**

राजा — मातले! असुरों पर चढ़ाई करनी थी इसलिए उसकी उत्सुकता में गत दिन स्वर्ग आते समय मैंने ठीक से नहीं देखा मार्ग, तो बतलाएँ वायु के किस मार्ग में हम हैं।

मातलि — **आयुष्मन्! हमलोग उस 'परिवह' नामक वायु के मार्ग में हैं जो धारण करता है आकाशगङ्गा को आकाश में, नक्षत्रमण्डल की रश्मियों को अलग—अलग रखते हुए जो उसे सञ्चरण में लाता है, उस वायु का यह तमोरहित स्थान है जहाँ त्रिविक्रम हरि ने दूसरी डग रखी थी ॥ ६॥**

राजा — मातले! इसलिए मेरी अन्तरात्मा बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार के इन्द्रियगणों के साथ प्रसन्नता का अनुभव कर रही है। (चक्र को देखकर) हमलोग मेघमार्ग पर उतर आए हैं।

मातलि — आयुष्मन्! यह कैसे?

राजा — **यह सूचना तुम्हारा रथ ही दे रहा है। इसके अरों के बीच के विवरों से चातक निकल रहे हैं, घोड़े स्वयं हरे हैं, परन्तु बिजली की प्रभा से अनुलिप्त हैं, रथ चल रहा है पेट में पानी भरे मेघों पर, क्योंकि, इसकी नेमि** (पार) **सीकर से आर्द्र है॥ ७॥**

मातलि — क्षण भर में आयुष्मान् अपनी अधिकार भूमि (पृथ्वी) पर होंगे।

राजा — (नीचे देखकर) तेज गति से उतरने में मनुष्यलोक के दर्शन आश्चर्यजनक है। देखिए — **ऊपर निकलते आ रहे शैलशिखरों से भूमि उतरती सी दिखाई दे रही है, वृक्ष पत्तों में छिपे थे, वे मोटी शाखाएँ दिखने से छिपाव छोड़ रहे हैं। धारा पतली पड़कर दिख नहीं रही थी, पर अब सलिल दिखने लगा है, अतः नदियाँ, नदियाँ लगने लगी हैं। ऐसा लग रहा है कि भूलोक जो मेरे पास आता जा रहा है सो ऐसा लगता है कि** (गेंद के समान) **इसे कोई उछाल सा रहा है॥ ८॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातलिः साधु दृष्टम् *सबहुमानमवलोक्य* अहो! उदाररमणीया पृथिवी। ९.१

राजा मातले! कतमोऽयं[१] पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिष्यन्दः[२] सान्ध्य इव मेघपरिघः[३] सानुमानालोक्यते? ९.२

मातलिः आयुष्मन्! एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतः तपःसंसिद्धिक्षेत्रम्। पश्य– ९.३

स्वायंभुवान् मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः ।
सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति ॥ ९॥

राजा तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि। १०.१

मातलिः प्रथमः कल्पः। १०.२

नाट्येनावतीर्णौ १०.३

राजा *सविस्मयम्* १०:४

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः ।
अभूतलस्पर्शतया निरुद्धतिस् तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते ॥ १०॥

मातलिः एतावानेव शतक्रतोरायुष्मतश्च विशेषः। ११.१

राजा मातले! कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रमः। ११.२

मातलिः *हस्तेन दर्शयन्* ११.३

वल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिरुरसा संदष्टसर्पत्वचा
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेना–त्यर्थसंपीडितः ।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ॥ ११॥

राजा नमोऽस्मै कष्टतपसे। १२.१

मातलिः *संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा* महाराज! एतौ अदितिपरिवर्धितमन्दारवृक्षं प्रजापतेराश्रमं प्रविष्टौ स्वः। १२.२

---

१. कुमारसम्भव १.१।

२. कनकरसनिष्यन्दी।

३. मेघपरिघः सानुमानवलोक्यते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातलि ठीक देखा। (बड़े ही आदर के साथ देखकर) अहो! कितनी चौड़ी और कितनी रमणीय है पृथिवी।

राजा मातले! यह कौन सा पर्वत दिखाई देता है जिसका एक छोर पूर्व समुद्र में डूबा है और दूसरा छोर पश्चिम समुद्र में, इससे कनक जैसा रस झिर रहा है अतः सन्ध्याकालीन मेघ के ऊँचे प्राचीर सा लग रहा है यह।

मातलि आयुष्मन्! यह है हेमकूट नामक किंपुरुषपर्वत, इसमें तपस्याएँ सिद्धि पाती हैं। देखो – **स्वयम्भू** (ब्रह्मा) **के पुत्र मरीचि से उत्पन्न थे जो प्रजापति वे** (मारीच महर्षि) **यहाँ सपत्नीक तप कर रहे हैं।।९।।**

राजा तो श्रेय का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। इन महर्षि जी की प्रदक्षिणा करके आगे जाना चाहूँगा।

मातलि सर्वोत्तम कल्प।

(उतरने का अभिनय करते हैं)

राजा (विस्मयपूर्वक) **चक्र की पाँतों में घरघराहट नहीं हुई, धूल भी उठती नहीं दिखाई दी, भूमि का स्पर्श न होने से धक्का भी नहीं लगा। पता ही नहीं चला और तुम्हारा उतर भी गया रथ ।।१०।।**

मातलि इतना ही तो अन्तर है इन्द्र और आयुष्मान् के बीच।

राजा मातले! मारीचाश्रम किस क्षेत्र में है (इस हेमकूट के)।

मातलि (हाथ से दिखलाते हुए) – **जहाँ यह मुनि स्थाणु सा** (अचल) **होकर सूर्य बिम्ब की ओर मुख किए स्थित है। इसका शरीर ऊपर तक दीमकों की मिट्टी से ढँका हुआ है, वक्षःस्थल पर केंचुल चिपकी है, कण्ठ को पुरानी लताओं की लम्बी लम्बी टहनियों ने कस कर बाँध रखा है, जटामण्डल कन्धों तक छाया हुआ है जिसमें चिड़ियों ने घोंसले बना रखे हैं।।११।।**

राजा घोर तपस्वी को प्रणाम।

मातलि (रथ की डोरी खींचकर) महाराज! ये हम मारीच प्रजापति के आश्रम में आ पहुँचे। यहाँ मन्दार नामक (कल्प) वृक्षों को माता अदिति ने बड़ा किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम्। अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि। १२.३

मातलिः *रथं स्थापयित्वा* अवतरत्वायुष्मान्। १२.४

राजा *अवतीर्य* मातले! भवान् कथमिदानीम्? १२.५

मातलिः[1] संयन्त्रितो मया रथः वयमप्यवतरामः। *तथा कृत्वा*[2] इत आयुष्मान्! *परिक्रम्य* दृश्यन्तामत्रभवतामृषीणां तपोवनभूमयः। १२.६

राजा ननु विस्मयादवलोकयामि। १२.७

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्म्याऽभिषेकक्रिया।
ध्यानं रत्नशिलागृहेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत् काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ॥ १२॥

मातलिः उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना।[2] *परिक्रम्य आकाशे* अये वृद्धशाकल्य! किमनुतिष्ठति भगवान् मारीचः? *आकर्ण्य* किं ब्रवीषि? दाक्षायण्या पतिव्रताधर्ममधिकृत्य पृष्टस्तस्यै महर्षिपत्नीसहितायै कथयतीति। १३.१

राजा कर्णं दत्त्वा अये! प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः। १३.२

मातलिः *राजानमवलोक्य* अस्मिन्नशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्मान्, यावत् त्वामिन्द्रगुरवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि। १३.३

राजा यथा भवान् मन्यते। *स्थितः* १३.४

मातलिः आयुष्मन्! साधयाम्यहम्। *निष्क्रान्तः।* १३.५

राजा *निमित्तं सूचयित्वा* १३.६

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो! स्पन्दसे मुधा?।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ॥ १३॥

नेपथ्ये १४.१

मा खु चावलं करेहि। कधं गदो जेव अत्तणो पकिदिं?

मा खलु चापलं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्? १४.२

---

१. मातलिः— समययन्त्रित एवायमास्ते रथः। इतो दृश्यन्तां सिद्धमुनीनां तपो०।

२. प्रार्थना = इच्छा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा यहाँ तो स्वर्ग से अधिक हल्कापन प्रतीति में आ रहा है। लग रहा है अमृतकुण्ड में डूब गया हूँ।

मातलि (रथ खड़ाकर) आयुष्मान् उतरें।

राजा (उतरकर) मातले! आप क्या करेंगें?

मातलि मैंने रथ पकड़ रखा है। हम भी उतरेंगें। (वैसा ही करके) आयुष्मन्! इधर आवें। (घूमकर) देखी जाएँ इन परम पूज्य महर्षियों की तपोवन भूमियाँ।

राजा विस्मय से देख रहा हूँ –

वन उत्तम कल्पवृक्षों का, पर प्राणधारण का साधन वायु, जल कनककमल के पराग से सुरभित, पर इनमें धर्माभिषेकक्रिया, गृह रत्नशिलाओं के ऊपर उनमें ध्यान और सन्निधि में उपस्थित अप्सराएँ, पर जीवन संयम का। अरे ये तो वहाँ पहुँचकर तपोरत हैं जहाँ पहुँचने के लिए अन्य मुनि करते हैं तप ॥१२॥

मातलि बड़ों की चाह भी बहुत ऊँची होती है। (घूमकर आकाश में) अये वृद्ध शाकल्य! भगवान् मारीच क्या कर रहे हैं? (सुनकर) क्या कहा? दाक्षायणी ने पतिव्रता धर्म के विषय में प्रश्न किया तो महर्षि–पत्नियों के साथ उसे उसका उत्तर दे रहे हैं।

राजा (कान देकर) अये! इस कार्य के लिए अवसर की प्रतीक्षा करनी होगी।

मातलि (राजा को देखकर) इस अशोक वृक्ष की जड़ में बैठें आयुष्मान्, जब तक मैं इन्द्र के पिताजी से तुम्हारा निवेदन करने हेतु अवसर खोजता हूँ।

राजा जैसा उचित समझें आप। (रुक जाता है)

मातलि आयुष्मन्! जाता हूँ मैं (निकल जाता है)

राजा (शकुन की सूचना देकर)

मनोरथ की कोई आशा नहीं। हे बाहो! क्यों व्यर्थ फड़क रहे हो। जिस श्रेय की अवज्ञा कर दी जाती है वह बड़े दुःख से लौटता है ॥१३॥

(नेपथ्य में)

मत कर चापल। क्यों! अपने स्वभाव पर चला ही गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा *कर्णं दत्त्वा* अभूमिरियमविनयस्य। को नु खल्वेष निषिध्यते। *शब्दानुसारेणा–वलोक्य, सविस्मयम्* अये,! को नु खल्वयमनुबध्यमानस्तपस्विनीभ्याम–बालसत्त्वो बालः? १४.३

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।
प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति ॥१४॥

॥ २॥

ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तपस्विनीभ्यां सह बालः १५.१

बालः जिम्भसु ले शिंहशावका! जिंभ। दंताई दे गणइश्शं।
जृम्भस्व, रे सिंहशावक! जृम्भस्व, दन्तांस्ते गणयिष्ये। १५.२

प्रथमा अविणीद! किं णो अपच्चणिव्विसेसाणि सत्ताणि विप्पअरेसि? हंत[१], वड्ढइ दे संरंभो। ठाणे खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामहेओ सि।
अविनीत! किं नः अपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि? हन्त, वर्धते तव संरम्भः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि। १५.३

राजा किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे हृदयम्। नूनमनपत्यता मां वत्सलयति। १५.४

द्वितीया एसा खु केसरिणी तुमं लंघेदि जइ से पुत्तअं ण मुंचेसि।
एसा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयति यदि तस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि। १५.५

बालः *सस्मितम्* अम्मो बलिअं खु भीदे म्हि। *अधरं दर्शयति* अहो, बलीयः खलु भीतोऽस्मि। १५.६

राजा *सविस्मयम्* १५.७

महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे ।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः ॥ १५॥

प्रथमा वच्छ! एदं बालमिइंदअं मुंच। अवरं दे कीडणअं दाइस्सं।
वत्स! एनं बालमृगेन्द्रं मुञ्च। अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि। १६.१

बालः कहिं शे? देहि णं। *हस्तं प्रसारयति।* कुत्र तत्? देहि ननु। १६.२

राजा *बालस्य हस्तमवलोक्य* कथं चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते? तथा ह्यस्य १६.३

---

१. संपहरदि विअदे संरंभो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (कान देकर) यह स्थान तो अविनय की भूमि हो ही नहीं सकता। कौन है यह जिसे मना किया जा रहा है। (शब्द की दिशा में देखकर विस्मयपूर्वक) अये कौन है बालक जिसे दो तपस्विनी पकड़ रही हैं, जिसमें बल बालक से अधिक है? **देखो तो यह बालक सिंह के शिशु के बाल पकड़कर खींच रहा है जबरन उसके साथ खेलते हेतु। सिंह शिशु माता का स्तनपान आधा ही कर पाया है। खींचतान में उसके केश ऊबड़खाबड़ हो गए हैं ॥१४॥**

॥२॥

(प्रवेश करता है उपर्युक्त कर्म से युक्त बालक और दो तापसियाँ।)

बालक अरे सिंह मुँह बा, तेरे दाँत गिनूँगा।

प्रथम तापसी अविनीत क्यों सता रहा है तू हमारे बच्चों जैसे प्राणियों को? हन्त! इसका संरम्भ तो बढ़ ही रहा है। ठीक ही ऋषियों ने तेरा नाम सर्वदमन किया है।

राजा क्या कारण है कि इस बालक पर मेरे मन में वैसा स्नेह जाग रहा है जैसा औरस पुत्र पर जाग सकता है। निश्चित ही मुझे अनपत्यता वत्सल बना रही है।

द्वितीय तापसी यह केसरिणी तुझ पर झपट पड़ेगी यदि इस बच्चे को नहीं छोड़ेगा।

बालक (हँसकर) ओहो! बहुत अधिक डर गया मैं। (अधर दिखलाता है)

राजा (आश्चर्यपूर्वक) **यह बालक मुझे किसी महत् तेज का बीज लगता है चिनगारी की स्थिति में अग्नि सा, धधकने के लिए केवल ईंधन की अपेक्षा लिए ॥१५॥**

प्रथम तापसी वत्स! इस बालमृगेन्द्र को छोड़, तुझे दूसरा खिलौना दूँगी।

बालक कहाँ है, दे न? (हाथ फैलाता है)

राजा (बालक का हाथ देखकर) इसने तो चक्रवर्ती के भी लक्षण धारण किए हैं। क्योंकि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः ।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम् ॥१६॥

द्वितीया सुव्वदे! ण सक्को एसो वाआमेत्तेण विरमइदुं। गच्छ तुमं। मम केरए उडए मक्कंडेअस्स इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मित्तिआमोरओ चिट्ठदि। तं से उवहर। सुव्रते! न शक्य एष वाचामात्रेण विरमयितुम्। गच्छ त्वम्। मदीये उटजे मार्कण्डेयस्य ऋषिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति। तमस्योपहर। १७.१

प्रथमा तध। तथा। *निष्क्रान्ता* १७.२

बालः इमिणा येव याव कीडिश्शं। *तापसीं विलोक्य हसति।*
अनेनैव तावत् क्रीडिष्यामि। (तापसीं विलोक्य हसति।) १७.३

राजा स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै– १७.४

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै–
रव्यक्तवर्णरमणीयवचः – प्रवृत्तीन् ।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥१७॥

तापसी होदु; ण मं अअं गणेदि। *पार्श्वमवलोकयति* को एत्थ इसिकुमाराणं? *राजानमवलोक्य* भद्दमुह! एहि दाव। मोएहि[1] इमिणा दुम्मोअहत्थग्गहेण डिंभलीलाए बाहीअमाणं बालमिअंदअं। भवतु; न मामयं गणयति (पार्श्वमवलोकयति)। कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम्? (राजानमवलोक्य) भद्रमुख! एहि तावत्। मोचयानेन दुर्मोकहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्। १८.१

राजा *उपगम्य सस्मितम्* अयि भो महर्षिपुत्र! १८.२

एवमाश्रम–विरुद्ध–वृत्तिना संयमः किमिति जन्मतस्त्वया ।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः ॥१८॥

तापसी भद्दमुह! ण खु अअं इसिकुमारओ। भद्रमुख! न खल्वयं ऋषिकुमारः। १९.१

राजा आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात् तु वयमेवंतर्किणः। *यथाभ्यर्थितमनुतिष्ठन् बालस्पर्शमुपलभ्य, आत्मगतम्।* १९.२

---

१. मोआवेहि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसने प्रलोभ्य, वस्तु माँगते हुए जो हाथ फैलाया है उसमें उँगलियाँ जाल से ग्रथित हैं, वैसी ही जैसी लाल लाल नवीन उषा के द्वारा खिले कमल की पँखुड़ियाँ, जिनका अन्तर दिखाई न पड़ रहा हो ॥१६॥

द्वितीय तापसी सुव्रते! इसे केवल कहकर नहीं रोका जा सकता। जा तू मेरे उटज में मिट्टी का ऋषिकुमार मार्कण्डेय का रंगीन मोर रखा है वह इसे लेकर दे दे।

प्रथम तापसी ठीक (निकल जाती है)

बालक तब तक इसी से खेलूँगा। (तापसी को देखकर हँसता है)

राजा यह दुलारा बच्चा मुझे कितना प्यारा लग रहा है।

वे धन्य होते हैं जो गोद में लेने का हठ कर रहे बच्चों को गोद में लेते और उनके अंग की धूल से मलिन हो जाते हैं। बच्चे भी ऐसे, अकारण हँसी के समय जिनके मुँह में दन्त की कलिका कुछ कुछ दिखाई पड़ रही हो और जो तुतलाते शब्दों से मीठी वाणी बोल रहे हो ॥१७॥

तापसी यह मुझे कुछ नहीं गिनता (पास में देखकर) कौन है यहाँ ऋषि कुमारों में? (राजा को देखकर) भद्रमुख! थोड़ा छुड़ा दो कसके पकड़े इस बाल मृगेन्द्र को इसे यह बालक्रीड़ा में अत्यधिक पीड़ा पहुँचा रहा है।

राजा (पास जाकर स्मितपूर्वक) अयि भो महर्षिपुत्र!

अरे जन्म से ही तुम इस प्रकार आश्रम विरुद्ध कार्य कर संयम को क्यों दूषित कर रहे हो, जैसे प्राणियों को आश्रय का सुख देने वाले चन्दन तरु को कृष्णसर्प का बच्चा दूषित करता है ॥१८॥

तापसी भद्रमुख! यह ऋषि का बच्चा नहीं है।

राजा आकार जैसी इसकी जो चेष्टा है, वही यह बतला रही है। स्थान के आधार पर हमने ऐसा सोचा।

(जो अनुरोध किया था तदनुरूप छुड़ाते हुए बालक का स्पर्श होते ही आत्मगत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद् यस्यायमङ्कात् कृतिनः प्ररूढः ॥ १९॥

तापसी *उभौ निर्वर्ण्य* अच्छरिअं अच्छरिअं। आश्चर्यमाश्चर्यम्। २०.१

राजा आर्ये! किमिव? २०.२

तापसी इमस्स बालअस्स दे वि अ संवादिणी आकिदी त्ति विम्हाविदम्हि। अपरिइदस्स वि दे अप्पडिलोमो संवुत्तो त्ति अ। अस्य बालकस्य, तेऽपि च संवादिन्याकृतिरिति विस्मापितास्मि। अपरिचितस्यापि ते अप्रतिलोमः संवृत्त इति च। २०.३

राजा *बालकमुपलालयन्* न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः। २०.४

तापसी पुरुवंसो। पुरुवंशः। २०.५

राजा *आत्मगतम्* कथमेकान्वयो मम। अतः खलु मदनुकारिणमेनमत्रभवती मन्यते। अस्त्येतत् पौरवाणामन्त्यं कुलव्रतम्। २०.६

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम् ।
नियतैकपतिव्रतानि पश्चात् तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ॥ २०॥

प्रकाशम् न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेष विषयः। २१.१

तापसी जह भद्दमुहो भणादि। अच्छरासंबंधेण इमस्स जणणी एत्थ देवगुरुणो तवोवणे प्पसूदा। यथा भद्रमुखो भणति। अप्सरः–संबन्धेनास्य जननी अत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता। २१.२

राजा *अपवार्य* हन्त, द्वितीयमिदमाशाजननम्। *प्रकाशम्* अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी? २१.३

तापसी को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम संकीतिदुं चिंतिस्सदि?
कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति? २१.४

राजा *आत्मगतम्* कथम्, इयं खलु कथा मामेव लक्ष्यीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि। अथवा अनार्यः परदारपृच्छाव्यवहारः। २१.५

प्रविश्य मृन्मयूरहस्ता २१.६

तापसी सव्वदमण! सउंदलावण्णं पेक्ख। सर्वदमन! शकुन्तलावण्यं पश्य। २१.७

बालकः *सदृष्टिक्षेपम्* केहिं शा मे अय्युए? कुत्र सा मम माता? २१.८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी के इस कुलाङ्कुर का स्पर्श होने से मेरे शरीर को जब इतना अच्छा लग रहा है तो उस भाग्यवान् के चित्त में कितना आनन्द पैदा नहीं करेगा जिसके अङ्ग से यह पैदा हुआ है ॥१९॥

तापसी (दोनों को देखकर) आश्चर्य, आश्चर्य।

राजा आर्ये! कैसा?

तापसी इस बालक की और तुम्हारी आकृति मिलती जुलती हैं, यह देख हो रहा है मुझे विस्मय, इसलिए भी कि तुम अपरिचित से भी भागा नहीं यह।

राजा (बालक पर दुलार करते हुए) यदि यह मुनिकुमार नहीं है तो क्या है इसका खानदान?

तापसी पुरुवंश ।

राजा (स्वगत) अच्छा इसका और मेरा वंश भी एक की है। इसीलिए अत्रभवती इसे मेरे जैसा कह रही हैं। पौरवों का यह अन्तिम कुलव्रत है – **वे पहले तो रस से सरावोर भवनों में पृथ्वी की रक्षा के लिए चाहते हैं रहना** (उशन्ति), **बाद में एक नियत पतिव्रता के साथ जिनके घर बन जाते तरुमूल ॥२०॥**

(प्रकट) किन्तु मनुष्यों की तो यहाँ अपने आप पहुँच हो नहीं सकती।

तापसी जैसा भद्रमुख कह रहे हैं। अप्सरा के सम्बन्ध से इस बालक की माता को यहाँ देवगुरु के आश्रम में प्रसव हुआ।

राजा (अपवारण के साथ) हन्त, यह आशा का द्वितीय कारण सामने आया। (प्रकट) वह महोदया किस राजर्षि की धर्मपत्नी हैं?

तापसी कौन उस धर्मदारपरित्यागी का नाम लेना चाहेगा।

राजा (स्वगत) यह घटना तो मुझ को ही लक्ष्य करती है। यदि इस बाल की माता का नाम पूछूँ? अथवा परस्त्री का नाम लेना ठीक नहीं। (मिट्टी का मयूर हाथ में लिए प्रवेश कर)

तापसी सर्वदमन 'सउंदलावण्ण' (शकुन्तला–वर्ण) देख। देख कैसा अच्छा पक्षी है। इस शकुन्त का लावण्य देख। (श्लेष में 'शकुन्तला' की नाममुद्रा)

बालक (निगाह डालकर) कहाँ है मेरी अज्जू? (माता)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभे णामसारिस्सेण वंचिदो माउवच्छलो। नामसादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः।२१.९

द्वितीया वच्छ! इमस्स मित्तिआमोरअस्स रम्मत्तणं पेक्ख त्ति भणिदो सि।

वत्स! अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं प्रेक्षस्वेति भणितोऽसि। २१.१०

राजा *आत्मगतम्* किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि। अपि वा मृगतृष्णिकेव [१]नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पेत। २१.११

बालः अज्जुए! लोअदि मे एशे चडुलके मऊलके। *क्रीडनकमादत्ते।*

मातः! रोचते म एष चटुलो मयूरः। २१.१२

प्रथमा *विलोक्य सोद्वेगम्* अम्हहे, रक्खाकरंडअं से मणिबंधे ण दीसदि?

अहो रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते। २१.१३

राजा अलमलमावेगेन। नन्विदमस्य सिंहशावविमर्दात् परिभ्रष्टम्।*आदातुमिच्छति* २१.१४

उभे मा खु एदं अंवलंबिअ। *विलोक्य* कहं गहीदं णेण? *विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः।* मा खल्विदमवलम्ब्य। (विलोक्य) कथं गृहीतमनेन? २१.१५

राजा किमर्थं प्रतिषिद्धाः स्मः? २१.१६

प्रथमा सुणादु महाभाओ। एसा अवराजिदा णाम ओसही इमस्स जातकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा। एदं किल मादापिदरो, अप्पाणं च वज्जिअ अवरो भूमिपडिदं ण गेण्हदि। शृणोतु महाराजः। एषा अपराजिता नाम औषधिः अस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातापितरौ, आत्मानं च वर्जयित्वा अपरो भूमिपतितां न गृह्णाति। २१.१७

राजा अथ गृह्णाति? २१.१८

प्रथमा तदो तं सप्पो भविअ दंसइ। ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति। २१.१९

राजा भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया? २१.२०

उभे अणेअसो। अनेकशः। २१.२१

राजा *सहर्षम्, आत्मगतम्* कथमिव संपूर्णमपि मे मनोरथं नाभिनन्दामि? *बालं परिष्वजते* २१.२२

द्वितीया सुव्वदे! एहि, इमं वुत्तंतं णिअमव्वावुडाए सउंदलाए णिवेदेम्ह। *निष्क्रान्ते।*

सुव्रते! एहि, इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयावः। (निष्क्रान्ते) २१.२३

---

१. नामान्तरे प्रस्तावो विषादाय कल्पेत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों तापसियाँ नामसादृश्य से भ्रम में पड़ गया। यह माता को बहुत अधिक चाहता भी तो है।

दूसरी तापसी वत्स! इस मिट्टी के मोर की सुन्दरता देख, यह कहा गया है तुझसे।

राजा (स्वगत) क्या इसकी माता का नाम शकुन्तला है? परन्तु, हुआ करते हैं समान नाम। हो सकता है नामसादृश्य मृगतृष्णा ठहरे और अन्त में विषाद हाथ लगे।

बालक अज्जुए! मुझे यह अच्छा लग रहा है मिट्टी का मोर। (खिलौना ले लेता है।)

प्रथम तापसी (देखकर उद्वेग के साथ) अरे अरे! इसका रक्षाकरण्डक कलाई में नहीं दिखाई दे रहा।

राजा आविग्न न हों। यह रहा यह। सिंहशावक की छीना—झपटी में यह छिटक गया है। (उठाना चाहता है)

दोनों तापसियाँ मत उठाइए, मत उठाइए इसे। अरे! इन्होंने तो उठा ही लिया। (छाती पर हाथ रखकर एक दूसरी को आश्चर्य के साथ देखती हैं।)

राजा मना क्यों किया आप लोगों ने?

प्रथम तापसी सुनिए महाराज। यह अपराजिता नाम की एक औषधि है। इस बालक के जातकर्म के समय भगवान् मारीच ने दी थी। यह यदि भूमि पर गिर जाए तो इसे माता—पिता और स्वयं को छोड़कर और कोई नहीं छूता।

राजा यदि छूता है तो?

प्रथम तापसी तो साँप बन कर उसे डँस लेती है यह।

राजा आपने इसकी यह स्थिति कभी देखी?

दोनों तापसियाँ अनेक बार।

राजा (हर्ष के साथ स्वगत) मेरा मनोरथ सम्पूर्ण हुआ। अब क्यों न करूँ इसका अभिनन्दन। (बालक का आलिङ्गन करता है)

दूसरी तापसी सुव्रते! आ इस वृत्तान्त को नियम में लगी शकुन्तला को बतलाएँ। (दोनों निकल जाती हैं)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालः मुंच मं। जाव अय्युएशआशं गमिश्शं।

मुञ्च माम्। यावन्मातुः सकाशं गमिष्यामि। २१.२४

राजा पुत्रक! मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि। २१.२५

बालः ण क्खु तुमं, दुश्शन्ते मम तादे। न खलु त्वम्, दुष्यन्तो मम तातः। २१.२६

राजा *सस्मितम्* एष विवाद एव प्रत्याययति। २१.२७

॥ ३॥

ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला २१.२८

शकुन्तला विआरकाले वि पकिदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसा[1] अत्तणो भाअहेएसु। अहवा जइ साणुमदीए[2] आचक्खिदं तह संभावीअदि एदं। *परिक्रामति।* विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न मे आशा आत्मनो भागधेयेषु। अथवा यथा सानुमत्या आख्यातं तथा संभाव्यत एतत्। २१.२९

राजा *शकुन्तलां विलोक्य* अये! सहर्षखेदम् सेयम् अत्रभवती शकुन्तला, यैषा — २१.३०

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥ २१॥

शकुन्तला *पश्चात्तापविवर्णं राजानं दृष्ट्वा सवितर्कं* ण खु अज्जउत्तो विअ। तदो को एसो दाणिं किदरक्खामंगलं दारअं मे गत्तसंसग्गेण दूसेदि। न खल्वार्यपुत्र इव। ततः क एष इदानीं कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति? २२.१

बालः *मातरमुपेत्य* अय्युए! एश के वि पलकेलए मं पुत्तके त्ति आलिंगदि।

मातः! एष कोऽपि पुरुषो मां पुत्र इत्यालिङ्गति। २२.२

राजा प्रिये! क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तम्, अनुकूलपरिणामं संवृत्तम्। तदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातमात्मानम् इच्छामि। २२.३

शकुन्तला *आत्मगतम्* हिअअ! अस्सस। परिच्चत्तमच्छरेण अणुअप्पिअ म्हि देव्वेण। अज्जउत्तो क्खु एसो। हृदय! आश्वसिहि। परित्यक्तमत्सरेण अनुकम्पितास्मि दैवेन। आर्यपुत्रः खल्वेषः। २२.४

---

१. आसा आसौ — आशा आसीत् — मा.नि.सा.पि.खि.। २. मिस्सकेसीए मा.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक छोड़ मुझे, अज्जू (माता) के पास जाऊँगा।

राजा पुत्रक! मेरे साथ ही जाना माता को प्रणाम करने।

बालक मेरे पिता दुष्यन्त हैं, तुम नहीं।

राजा (स्मित के साथ) यह विवाद ही निर्णायक हो रहा है।

॥ ३ ॥

(प्रवेश करती है एकवेणीधरा शकुन्तला)

शकुन्तला विकार के समय पर भी सर्वदमन की औषधि को प्रकृतिस्थ ही सुनकर भी मुझे आशा नहीं है अपने भाग्य पर। अथवा जैसा सानुमती ने कहा था वहीं घटा है यह। (घूमती है)

राजा (शकुन्तला को देखकर) अये (हर्ष और विषाद के साथ) [१]यह है वह पूज्य शकुन्तला, जो यह –

मलिन वस्त्र पहँनी हुई है, नियम से चेहरा सूख गया है, वेणी केवल एक बनाए। मुझ निष्करुण की शुद्ध–शीला इतना (सुदीर्घ) **बड़ा विरहव्रत धारण की हुई॥ २१॥**

शकुन्तला (पश्चात्ताप से विवर्ण राजा को देखकर) ये तो आर्यपुत्र से नही हैं। तब कौन है ऐसा जो रक्षामंगल से युक्त मेरे बच्चे को अपने गात्रसंसर्ग से दूषित कर रहा है।

बालक (माता के पास पहुँच कर) अज्जुए! यह कोई आदमी मुझे पुत्र कहकर छाती से लगा रहा है।

राजा प्रिये! मैंने तो तेरे साथ बरता क्रौर्य, परन्तु उसका भी परिणाम अनुकूल ही हुआ। तो मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे पहँचान लो। (वैसे यह अवसर है कि मैनें जैसे तुम्हें छोड़ा था वैसे ही तुम मुझे 'मैं नही जानती कह छोड़ सकती हो, परन्तु तुम प्रतिशोधात्मक यह वज्र मुझ पर न छोड़ो।)

शकुन्तला (स्वगत) हृदय! आश्वस्त हो। विधाता ने मत्सर छोड़कर अनुग्रह कर दिया है। ये तो आर्यपुत्र ही हैं।

---

१. 'यह वही' – वही जो कण्व आश्रम में दिखी थी, यह यहाँ सुदीर्घ विरह के बाद दिखाई दी। कितने अर्पक है यहाँ सर्वनाम इनसे स्पष्ट है परिवर्त्तन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा प्रिये! २२.५

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि! ।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम् ।। २२।।

शकुन्तला जेदु अज्जउत्तो जे। *अर्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति।* जयतु आर्यपुत्रो जय २३.१

राजा सुन्दरि! २३.२

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया ।
यत् ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम् ।। २३।।

बालः अय्युए! के एशे? मातः! क एषः? २४.१

शकुन्तला वच्छ! दे भाअधेआइं पुच्छ। *रोदिति।* वत्स! ते भागधेयानि पृच्छ। (रोदिति)२४.२

राजा *शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य* २४.३

सुतनु! हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ।। २४।।

शकुन्तला उट्ठेदु अज्जउत्तो। णूणं मे [1]सुअरिअप्पडिबंधअं पुराकिदं तेसु दिअसेसु परिणाममुहं आसि, जेण साणुक्कोसो वि अज्जउत्तो मइ तधा संवुत्तो[2]। उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणाममुखमासीत्, येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि तथा संवृत्तः। २५.१

राजा *उत्तिष्ठति।* २५.२

शकुन्तला अध कधं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाई अअं जणो?
अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभागी अयं जनः? २५.३

राजा उद्धृतविषादशल्यः कथयिष्यामि। २५.४

मोहान्मया सुतनु! पूर्वमुपेक्षितस्ते
यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः ।
तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य
कान्ते प्रमृज्य विगतानुशयो भवेयम् ।। २५।।

यथोक्तमनुतिष्ठति। २६.१

---

१. सुहप्पडिबंधअं।

२. विरसो संवुत्तो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा प्रिये!

स्मृति आई, मोह का अन्धकार हटा और बड़े भाग्य कि आज तुम मेरे सामने, हे सुमुखि! उपस्थित हो। ग्रहण के बाद राहुयुक्त चन्द्रमा से जैसे रोहिणी आ मिली हो ॥ २२॥

शकुन्तला जय हो, जय हो! आर्यपुत्र की। (ऐसा कहकर आँसू लिए आधे में ही रुक जाती है।)

राजा सुन्दरि!

आँसुओं ने जय शब्द को रोक दिया तब भी मैं जीत गया ही जो आज तेरा बिना संस्कार के पाटल ओंठ का मुख देखने को मिल गया है॥ २३॥

बालक अज्जुए! कौन है यह?

शकुन्तला वत्स! तेरे भाग्य से पूछ। (रोती है।)

राजा (शकुन्तला के पैरों पर गिरकर)

हे सुतनु! हृदय से प्रत्यादेश का शंकु हटा दो, उस समय मन में कोई मोह सवार था मेरे। तम प्रबल होने पर शुभ कार्यों में भी ऐसी उल्टी प्रवृत्ति देखने में आती है। अन्धा व्यक्ति सिर पर गिरी माला को भी फेंक देता है साँप समझ कर ॥ २४॥

शकुन्तला उठिए आर्यपुत्र! निश्चित ही मेरा कोई पूर्वकृत सुचरितविरोधी अदृष्ट उन दिनों परिपाक की ओर चल रहा था, जिससे दयालु आर्यपुत्र को मुझ पर वैसा बना दिया था।

राजा (उठता है।)

शकुन्तला अच्छा तो यह अभागिन आपको याद कैसे आई?

राजा विषाद का काँटा निकालकर बतलाऊँगा।

सुतनु! मोह के कारण मैंने अधर को पीड़ा पहुँचा रहे बाष्प (अश्रु) **बिन्दु की उपेक्षा की थी, किञ्चित् कुटिल बरौनियों में उलझे उसी** (अश्रुबिन्दु) **को पोंछकर होऊँगा मैं पश्चात्ताप से मुक्त ॥ २५॥**

(आँसू पोंछता है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला *नाममुद्रां दृष्ट्वा* अज्जउत्त! एदं तं अंगुलीअअं।

आर्यपुत्र! इदं तत् अङ्गुलीयकम्। २६.२

राजा अस्मादङ्गुलीयकात् खलु स्मृतिरुपलब्धा। २६.३

शकुन्तला विसमं किदं णेण जं तदा अज्जउत्तस्स पच्चअकाले दुल्लहं आसि।

विषमं कृतमनेन यत् तदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत्। २६.४

राजा तेन हि ऋतुसमवायचिह्नं प्रतिपद्यतां लता कुसुमम्। २६.५

शकुन्तला ण से विस्ससामि। अज्जउत्तो एव्व णं धारेदु।

नास्य विश्वसिमि। आर्यपुत्र एवैतद् धारयतु। २६.६

ततः प्रविशति मातलिः २६.७

मातलिः दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते। २६.८

राजा सुहृत्संपादित इति स्वादुतरफलो मे मनोरथः[1]। मातले! न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन[2] वृत्तान्तः? २६.९

मातलिः *सस्मितम्* किमीश्वराणां परोक्षम्। एत्वायुष्मान्; भगवान् मारीचस्ते दर्शनं वितरति। २६.१०

राजा अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि। २६.११

शकुन्तला हिरिआमि अज्जउत्तेण सह गुरुसमीवं गंतुं।

जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपे गन्तुम्। २६.१२

राजा अयि, आचरितव्यमेतदभ्युदयकालेषु। एहि एहि। २६.१३

सर्वे परिक्रामन्ति २६.१४

॥ ४ ॥

ततः प्रविशत्यदित्या सार्धमासनस्थो मारीचः २६.१५

मारीचः *राजानमवलोक्य* दाक्षायणि! २६.१६

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी
दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं
तत् कोटिमत् कुलिशमाभरणं मघोनः ॥ २६ ॥

---

१. अभूत् संपादितस्वादुफलो मे मनोरथः नि.खि.च.मा.सा. सुहृत्संपादितात् साधुतरफलो०।

२. माखण्डलस्यार्थः स्यात् नि.खि.च.मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला (नाममुद्रा को देखकर) आर्यपुत्र! यह है तुम्हारी अँगूठी।

राजा इसी अँगूठी से आई मुझे स्मृति।

शकुन्तला बड़ा बुरा किया इसने जो उस समय जब आर्यपुत्र को विश्वास दिलाना था, यह दुर्लभ थी।

राजा तो ऋतु आने का चिह्न कुसम लता धारण करे।

शकुन्तला इसका विश्वास नहीं करती मैं। इसे आर्यपुत्र ही धारण करें।

(मतलि प्रवेश करता है।)

मातलि संयोग से धर्मपत्नी से हुए समागम और पुत्रमुखदर्शन के लिए आपको बधाई।

राजा सुहृत् ने संपादित किया है इसीलिए यह मनोरथ और मीठा है। मातले! क्या इन्द्र को यह वृत्तान्त, ऐसा तो नहीं, कि विदित रहा हो?

मातलि (स्मित के साथ) ईश्वरों के लिए कुछ भी परोक्ष नहीं। आएँ आयुष्मान्, भगवान् मारीच तुम्हें दर्शन दे रहे हैं।

राजा (शकुन्तला के प्रति) पुत्र को पकड़ो। तुम्हें सामने करके चाहता हूँ भगवान् मारीच के दर्शन करना।

शकुन्तला लाज आ रही है आर्यपुत्र के साथ गुरुजन के पास जाने में।

राजा अयि! अभ्युदय की घड़ी में यह करना आवश्यक है। आओ आओ।

(सभी घूमते हैं)

॥ ४ ॥

(अदिति के साथ आसन पर बैठे मारीच का प्रवेश)

मारीच (राजा को देखकर) दाक्षायणि!

तेरे पुत्र (इन्द्र) **के युद्ध में आगे चलने वाले ये हैं पृथ्वीलोक के पालक** (राजा)। **दुष्यन्त इनका नाम है। इन्द्र का नुकीला वज्र, इनके चाप से बेकाम होकर केवल आभरण बनकर रह गया है ॥ २६॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदितिः संभावणीआणुभावा से आकिदी। संभावनीयानुभावा अस्याकृतिः। २७.१

मातलिः आयुष्मन्! एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितरावायुष्मन्तम–वलोकयतः। तदुपसर्प। २७.२

राजा मातले! एतौ – २७.३

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत् तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद् यज्ञभागेश्वरम् ।
यस्मिन्नात्मभवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम् ।। २७।।

मातलिः अथ किम्? २८.१

राजा *उपगम्य* उभाभ्यामपि वासवनियोज्यो दुष्यन्तः प्रणमति। २८.२

मारीचः वत्स! चिरं जीव; पृथिवीं पालय। २८.३

अदितिः वच्छ! अप्पडिरधो होहि। वत्स! अप्रतिरथो भव। २८.४

शकुन्तला दारअसहिदा वो पादवंदणं करेमि। *पुत्रसहिता प्रणिपतति ।*
दारकसहिता वां पादवन्दनं करोमि। २८.५

मारीचः वत्से! २८.६

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः ।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव ।। २८।।

अदितिः जादे! भत्तुणो[1] अभिमदा होहि। [2]अवस्सं दीहाऊ वच्छओ उहअकुलणंदणो होदु। उवविसह। जाते! भर्तुरभिमता भव। अवश्यं दीर्घायुर्वत्सकः उभयकुलनन्दनो भवतु। उपविशत। २९.१

सर्वे प्रजापतिमभित उपविशन्ति २९.२

मारीचः एकैकं निर्दिशन्– २९.३

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदं, भवान् ।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम् ।। २९।।

राजा भगवन्! प्रागभिप्रेतसिद्धिः, पश्चाद्दर्शनम्। अपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। ३०.१

---

१. बहुमदा होहि।

२. अअं च दीहाऊ उहअपक्खं अलंकरेदु ता एध उवविसध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदिति अच्छी तो है इसकी आकृति।

मातलि आयुष्मन्! देवताओं के माता–पिता ये दोनों आपको पुत्र प्रीति प्रकट कर रहे नेत्रों से देख रहे हैं। पहुँचे इनके समीप।

राजा मातले! ये दोनों –

ये ही हैं बारह भागों में विभक्त तेज = सूर्य के जनक, ये ही हैं तीनों भुवनों के भर्त्ता और यज्ञभागेश्वर इन्द्र के माता–पिता, इन्हीं में स्वयम्भू परपुरुष (विष्णु) **ने जन्म के लिए आश्रय लिया था। दक्ष और मरीचि से उत्पन्न** (दाक्षायणि दक्षपुत्र, मारीच मरीचिपुत्र) **जोड़ी में उनके पिता से केवल एक पीढ़ी का अन्तर है ।। २७।।**

मातलि और क्या?

राजा (पास जाकर) आप दोनों को इन्द्र का आज्ञाकारी दुष्यन्त प्रणाम करता हैं।

मारीच वत्स! चिरकाल तक जीवित रहो और पृथिवी का पालन करो।

अदिति वत्स! अप्रतिरथ होओ।

शकुन्तला दारकसहिता आप दोनों के चरणों में प्रणाम करती हूँ। (पुत्रसहित प्रणाम करती है।)

मारीच वत्से!

तेरा पति तो इन्द्र जैसा है ही, पुत्र भी जयन्त जैसा है। अब अन्य कोई आशीष तेरे अनुरूप नहीं होगी– तुम भी पौलोमी जैसी बनो ।। २८।।

अदिति जाते! भर्त्ता को बहुमत होओ। अवश्य ही यह दीर्घायु वत्स उभयकुलनन्दन हो। बैठ जाओ।

सभी प्रजापति के आस–पास बैठ जाते हैं।

मारीच एक एक को दिखला दिखलाकर –

संयोग से शकुन्तला भी है यहाँ, यह सत् पुत्र भी है और आप भी। यह तो तीनों का मिलन होगा १. श्रद्धा, २. वित्त और ३ विधि ।। २९।।

राजा भगवन्! अभिमतसिद्धि पहले, दर्शन बाद में। अपूर्व है आपका अनुग्रह। क्योंकि –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं
घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः ।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्
तव प्रसादस्य पुरस्तु सिद्धयः ॥ ३० ॥

मातलिः एवं विधातारः प्रसीदन्ति। ३१.१

राजा भगवन् इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिना उपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात् प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य। पश्चादङ्गुलीयकदर्शनादूढपूर्वामिमां तद्दुहितरमवगतोऽहम्। तत्, चित्रमिव मे प्रतिभाति। ३१.२

यथा गजे नेति समक्षरूपे,
तस्मिन्नपक्रामति संशयः स्यात् ।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत् प्रतीतिस्
तथाविधो मे मनसो विकारः ॥ ३१ ॥

मारीचः वत्स! अलमात्मापराधशङ्कया। संमोहोऽपि त्वय्यनुपपन्नः। श्रूयताम्। ३२.१

राजा अवहितोऽस्मि। ३२.२

मारीचः यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात् प्रत्याख्यानवैक्लव्यां शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानादवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा, नान्यथेति। स चायमङ्गुलीयकदर्शनावसानः। ३२.३

राजा *सोच्छ्वासम्* एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि। ३२.४

शकुन्तला *आत्मगतम्* दिट्ठिआ अकारणपच्चादेसी ण अज्जउत्तो। ण हु सत्तं अत्ताणं सुमरेमि। अहवा पत्तो मए स हि सावो विरहसुण्णहिअआए ण विदिदो। अदो सहीहिं संदिट्ठम्हि भत्तुणो अंगुलीअअं दंसइदव्वं त्ति। दिष्ट्या अकारणप्रत्यादेशी नार्यपुत्रः । न खलु शप्तमात्मानं स्मरामि। अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरहशून्यहृदयया न विदितः। अतः सखीभ्यां संदिष्टास्मि भर्तुः अङ्गुलीयकं दर्शयितव्यमिति। ३२.५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्प पहले आता है तब फल, घनागम पहले होता है उसके अनन्तर मिलता है पानी। निमित्त और फल का यही क्रम है, परन्तु आपका प्रसाद अब मिल रहा है, सिद्धि पहले ही हो चुकी।। ३०।।

मातलि — विधाता लोग ऐसे ही प्रसन्न होते हैं।

राजा — भगवन्! आपकी इस आज्ञाकारिणी के साथ गान्धर्व विवाह विधि से मैंने विवाह किया । कुछ समय के बाद बन्धुजन इसे मेरे पास लाए, किन्तु मैं स्मृति की शिथिलता के कारण अपना नहीं सका। वह हुआ मुझसे अपराध आपके सगोत्र भगवान् कण्व के प्रति। बाद में अँगूठी देखते ही मुझे याद आ गया कि मैंने अत्रभवती के साथ विवाह किया था। यह सब मुझे अद्भुत सा लग रहा है।

जैसे सशरीर सामने आए हाथी को हाथी न माना जाए जब वह चलने लगे तो हो संशय। पश्चात् पदचिह्न देखकर यह तय किया जाए कि यह गज ही था, वैसा ही है मेरे मन का विकार ।। ३१।।

मारीच — वत्स! अपराध तुमसे हुआ है यह मत सोचो। संमोह भी तुममें संभव नहीं। सुनो,

राजा — सावधान हूँ।

मारीच — अप्सरस्तीर्थावतार से व्याकुल शकुन्तला को लेकर मेनका दाक्षायणी के पास आई तभी ध्यान से जान लिया था मैंने कि दुर्वासा के शाप से तुमने इस तपस्विनी को छोड़ा, अन्य किसी कारण से नहीं। वह शाप था अङ्गुलीयक के दर्शन तक ही। उसी के साथ वह समाप्त हो गया।

राजा — (उच्छ्वास लेकर) यह छूटा मैं अपयश से।

शकुन्तला — (स्वगत) बड़े भाग कि आर्यपुत्र, अकारण प्रत्यादेश करने वाले नहीं हैं। परन्तु मुझे याद नहीं कि शाप मिला था। अथवा मुझे वह शाप उस समय प्राप्त हुआ जब मेरा हृदय विरह से शून्य था और इसी कारण, मुझे वह सुनाई नहीं दिया। इसीलिए सखियों ने कहा था, भर्त्ता को अँगूठी दिखलानी पड़ सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारीचः वत्से! विदितार्थासि। तदिदानीं सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कार्यः। पश्य — ३२.६

शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव ।
छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ।। ३२।।

शकुन्तला जहा अण्णावेन्ति तातपादाओ। ३३.१

मारीचः वत्स! कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मादिक्रियः पुत्र एष शाकुन्तलेयः। ३३.२

राजा भगवन्! अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा। ३३.३

मारीचः तथा भाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान्। पश्य — ३३.४

रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपामवति वसुधामप्रतिरथः ।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात् ।। ३३।।[१]

राजा भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन्नाशास्महे। ३४.१

अदितिः भअवं! इमाए दुहिदुमणोरधसंपत्तीए कण्णो वि दाव सुदवित्थरो करीअदु। दुहिदुवच्छला मेणआ इह एव्व उपचरंती चिट्ठदि।

भगवान्! अन्या दुहितृमनोरथसंपत्त्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तरः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनका इहैवोपचरन्ती तिष्ठति। ३४.२

शकुन्तला आत्मगतम् मणोरधो क्खु मे भणिदो भअवदीए।

मनोरथः खलु मे भणितो भगवत्या। ३४.३

मारीच तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः। ३४.४

राजा अतः खलु मम नातिक्रुद्धो मुनिः। ३४.५

मारीचः तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः? ३४.६

प्रविश्य ३४.७

---

१. अतः परं पद्यान्तरं—

क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान् भावयालं सुरपतिरपि वृष्टीस्त्वत्प्रजायै विधत्ताम् ।
इति सममुपकारव्यञ्जितश्रीमहिम्नोर्व्रजतु बहुतिथो वां सौहृदेनैव कालः ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारीच वत्से! सभी तथ्य तेरे सामने हैं। तुझे अब अपने सहधर्मचारी के प्रति क्षोभ नहीं करना चाहिए। देखो –

शाप था स्मृति में रुकावट डालने वाला। अब उससे वह दोष हट गया तो उस पर तेरी ही प्रभुता है। दर्पणतल में प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता जब तक वह मलिन रहता है। शुद्ध होते ही प्रतिबिम्ब को प्रतिफलित होने में कोई कठिनाई ही नहीं ॥ ३२॥

शकुन्तला जैसा तातपाद का आदेश।

मारीच वत्स! किया अभिनन्दन तुमने, ऐसे शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न इस पुत्र का, हमारे द्वारा जिसके जातकर्मादि सभी संस्कार विधिवत् कर दिए गए हैं ।

राजा भगवन्! इसी में है मेरे वंश की प्रतिष्ठा।

मारीच और आप इसे भावी चक्रवर्त्ती जानो। देखो –

यह समतल भूमि पर अकम्पित गति से दौड़ते रथ से समुद्र पार करेगा और सप्तद्वीपा वसुमती का पालक बनेगा। यहाँ तो यह प्राणियों को बलात् दबाता रहता था इसलिए कहलाता था सर्वदमन, आगे सभी लोकों का भरण करने से विख्यात होगा, 'भरत' इस नाम से ॥ ३३॥

राजा जिसके संस्कार आपने किए हैं उस इससे हम सभी आशाएँ रखते हैं।

अदिति भगवान्! आप पुत्री के मनोरथ की पूर्त्ति का शुभ संदेश कण्व को भी भेज दें जिसे वे विस्तारपूर्वक सुन सकें। पुत्री पर वत्सला मेनका तो यहीं सेवा में उपस्थित हैं।

शकुन्तला (स्वगत) भगवती ने मेरा मनोरथ ही बोल दिया।

मारीच तप के प्रभाव से उन्हें यह सब प्रत्यक्ष हो चुका है।

राजा इसीलिए मेरे प्रति मुनि अधिक क्रुद्ध नहीं हुए।

मारीच तथापि उन्हें यह प्रिय समाचार अवश्य ही भेजा जाना चाहिए। कौन कौन है जी यहाँ?

(प्रवेश कर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्यः भगवन्! अयमस्मि। ३४.८

मारीचः गालव! इदानीमेव विहायसा गत्वा मम वचनात् तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय यथा– 'पुत्रवती शकुन्तला दुर्वाससः शापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीता' इति। ३४.९

शिष्यः यदाज्ञापयति भगवान्। *निष्क्रान्तः* ३४.१०

मारीचः वत्स! त्वमपि स्वापत्यदारसहितः सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य ते राजधानीं प्रतिष्ठस्व। ३४.११

राजा यदाज्ञापयति भगवान्।[१] ३४.१२

मारीचः वत्स! किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि? ३४.१३

राजा अतः परमपि प्रियमस्ति। यदि ह भगवान् प्रियं कर्तुमिच्छति तर्हि इदमस्तु– ३४.१४

भरतवाक्यम् ३४.१५

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ।। ३४।।

निष्क्रान्ताः सर्वे ३५.१

इति महाकविकालिदासकृतौ अभिज्ञानशाकुन्तले नाटके शाकुन्तलाभिज्ञानो नाम सप्तमोऽङ्कः ।। ३५.२

।। संपूर्णमिदमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकम्।।

।। संपूर्णा चेयं सनातनकवि–श्रीरेवाप्रासादद्विवेदिना भूयः संपादिता कालिदासग्रन्थावली।।

।। श्रीः।।

---

१. अत्र अतिरिक्तं पद्यम् –

मारीचः – सम्प्रति हि – ३४.१३

भवतु तव बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु त्वमपि विततयज्ञो वज्रिणं प्रीणयालम् ।
युगशतपरिवर्त्तनिवमन्योन्यकृत्यैर् नयतमुभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः।। ३४।।

राजा– भगवन्! यथाशक्ति श्रेयसि यतिष्ये। ३५.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य भगवन्! यह हूँ।

मारीच गालव! इसी समय आकाशमार्ग से जाकर मेरे शब्दों में पूज्य कण्व को यह प्रिय समाचार दो कि 'पुत्रवती शकुन्तला को शाप हट जाने पर याद आते ही पूज्य दुष्यन्त ने स्वीकार कर ली।'

शिष्य जैसी आज्ञा भगवान् की। (निकल जाता है)।

मारीच वत्स! तुम भी पुत्रवती पत्नी के साथ मित्र महेन्द्र के रथ पर बैठकर तुम्हारी राजधानी के लिए प्रस्थान करो।

राजा जैसी आज्ञा भगवान् की।

मारीच और क्या करूँ तुम्हारा प्रिय?

राजा इससे भी बड़ा कोई प्रिय हो सकता है क्या? परन्तु यदि भगवान् प्रिय करना चाहते हैं तो यह हो।

(भरत वाक्य)

पार्थिव प्रकृतिहित के लिए सचेष्ट रहें श्रुतिमहती सरस्वती की प्रतिष्ठा हो, शक्तियों से परिगत नीललोहित आत्मभू भगवान् कृपालु रहें और मेरा भी पुनर्भव समाप्त करें ॥३४॥

(सभी निकल जाते हैं)

इस प्रकार महाकविकालिदास की कृति अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटक में 'शाकुन्तलाभिज्ञान' नामक सप्तम अङ्क पूर्ण हुआ ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्टम् — १

उद्गाराः

सर्वज्ञस्य सुतस्य वेश्मनि वसन् रेवाप्रसादः सुखं
यच्छाकुन्तलपाण्डुलेखमलिखं ग्रामेऽत्र वा एक्टने ।
तस्मिन्नद्य चतुर्थमङ्कमनिशं नैरन्तरीमाश्रितः
साम्बश्रीयुतविश्वनाथकृपया प्रापूरयं सौख्यतः ॥१॥

अस्मिन् या खलु कालिदासहृदयस्वच्छात्मसंवि—
त्समुद्भूता भावमयी विचित्रहरिणी संदृश्यते काचन ।
तस्यां प्रीतिमयी लतातरु—पिकैणाद्यैस्तपस्विव्रजैः
प्राप्तं स्थानमहो कवित्वकलना श्रीकालिदासस्य नः ॥ २॥

एवंविधा नहि भविष्यति कापि कन्या
नैवंविधश्च सुभगः खलु पोष एव ।
नैवंविधा च भविताऽभिनयानुरूपा
काचित् कवित्वकलनैव विधातृसृष्टौ ॥ ३॥

अङ्केऽस्मिन् कालिदासो हि कण्वभावेन राजते ।
कण्वस्य ये समुद्गाराः कवित्वेन हि ते प्लुताः ॥ ४ ॥

दीर्घापाङ्गमृगोऽत्र कण्वदुहितुः सोदर्यमूर्त्या स्थितो
मात्रा यः खलु जातमात्र उपदीचक्रे वियोगानले ।
याथार्थ्यं बत यस्य नाम्नि सुदृढं जागर्त्ति जानाति यः
स्वस्रा भर्तृगृहे तु या खलु दशा सह्येति दिव्येक्षणः ॥ ५॥

ये सख्यौ प्रियतामुवोढ तु तयोरेकाऽपराऽसूयया
हीना केवलमस्ति नास्ति च ययोश्चित्तेऽग्निरीर्ष्यामयः ।
जानीतः स्मरविक्रियामपि परं निर्विक्रिये ये सखीं
कर्त्तव्यैकपरायणे प्रभवतः संरक्षितुं वैशसात् ॥ ६॥

कण्वस्याश्रम एष नास्ति जडतास्पृष्टोऽस्त्यसौ चेतन—
स्तिर्यग्भावमुपास्य यः खलु नृणामासीद् रतो निर्मितौ ।
प्रीतिस्तस्य गुणः प्रियो नृपधनुष्टङ्कारधिक्कारणा—
ऽध्युष्टः कश्चन सोमतीर्थति स हि न्यक्कृत्य दुर्दैवतम् ॥ ७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वामित्रकृतं तपस्तपसि या लीना स्वयं रक्षति
श्रीमत्काश्यपकण्वचीर्णमपि या तीव्रं तपः सा सुता ।
मेनायाः दुहितैव सुन्दरतया निष्ठागुणेनाद्भुते—
नाश्चर्यैकनिकेतनेन तपसा चाप्यन्तरिक्षे स्थिता ॥८॥
यं प्रासोष्ट शकुन्तलेयमभविष्यत् किं सुतोऽप्येषको
बाल्यादेव नितान्तमेव दमनः सर्वस्य सत्त्वाधिकः ।
एतत् कस्य फलं विदन्तु सुधियस्तस्या लताया न वै
या जानाति पराजयं भवति या स्पृष्टा परेणोरगः ॥९॥
अङ्केऽस्मिन् निभृतस्थितेरपि मुनेः कण्वस्य साक्षात्क्रिया
वाङ्मूर्त्तेरपि लोकवेदकलनायुग्माञ्चिताया दृशिः ।
कारुण्यस्य चिति स्थितस्य रसिकानां पुष्टिमुच्चैस्तरां
शृङ्गारेण कृतां प्रकाममधुरेणाऽप्यत्र वीक्षामहे ॥१०॥
कन्याऽप्यत्र नितान्तमेव करुणापात्रं प्रसूतैव या
पित्राऽत्याजि तृणं नु निष्ठुरहृदा मात्रापि तादृक्षया ।
भ्राता यत्र बभूव नाश्रममृते कश्चित् परो न स्वसा
त्यक्त्वैकां नवमल्लिकां कुसुमितां यद्वाऽपि मौलिश्रियम् ॥११॥

मौलिश्रीर्वकुलः मोलसिरीति भाषायां प्रसिद्धा।

सैषा काऽप्यतिखर्वमूर्त्तिरभवत् सैषा शकुन्ती लचा
युक्ता सैव शकुन्तलेत्यभिहिता वात्सल्यभाग्भिः समैः ।
लान्त्येतामुपलालयन्ति च हृदा सर्व्वे शकुन्ताः समं
काश्यप्यां जनिमाप्नुवद्भिरखिलैः कण्वर्षिभिः काश्यपैः ॥१२॥

शकुन्तशब्दाद् वैदिको ह्रस्वार्थको लच्।

यस्यां वाचि कथामिमामभिनये साधीयसि प्रोक्तवान्
वाग्मी कश्चन कालिदाससुकविस्ताञ्चापि सप्राकृताम् ।
पश्यामो नितरां हि संस्कृतिमयीं श्लिष्टां च शिष्टां च तैर्
हीनाधिक्यविवर्जितैश्च सुगुणैर्युक्तां च साहित्यगैः ॥१३॥
नात्राऽऽडम्बरमस्ति गीतिभरितं नाप्यस्ति वाद्यादिभि—
श्चित्रत्वं च गतः प्रयोगविधिरप्यन्योऽपि चाहार्यगः ।
वैचित्रीमसृणः प्रकार इह यः स्वाभाविकोऽकृत्रिमः
काकूक्त्याऽपरुषश्च तस्य हि शुभः प्राकाम्ययोगोऽस्तिमान् ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्टम्—२

पाठभेदाः

मालविकाग्निमित्रम्

सन्दर्भः	एतत्संस्करणपाठाः	संस्करणान्तरपाठाः
१.१	एकैश्वर्यस्थि०	एकैश्वर्ये स्थि०
	प्रणतबहुफलो	प्रणतबहुफले
	पुरस्ताद्	परस्ताद्

विक्रमोर्वशीयम्

सन्दर्भः	एतत्संस्करणपाठाः	संस्करणान्तरपाठाः
१.१	यथार्थाक्षरः	यथार्थान्वयः
४.	सर्वा अपभ्रंशगाथाः प्रक्षिप्ता।	सर्वा अपभ्रंशगाथा मूलम्।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

सन्दर्भः	एतत्संस्करणपाठाः	संस्करणान्तरपाठाः
१.१	प्रपन्नाँस्तनु	प्रपन्नस्तनु
४.४.४	णं प्पभाता रअणी। ता लहु संहि पडिबोहेमि। अधवा पडिबुद्धावि सा किं करिस्सदि। ण से.....।	णं पभादा रअणी। लहु पडिबुद्धम्मि। अधवा पडिबुद्धा वि किं करिस्सां न मे.....।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्टम् – ३

कालिदाससाहित्ये छन्दोवृत्तानि

सकेता: – र. = रघुवंशम्; कु.=कुमारसंभव १–८); शा. = शाकुन्तलम्; वि. = विक्रमोर्वशीयम्; मा. = मालविकाग्निमित्रम्; मे. = मेघदूतम्; ऋतुसंहारं तु न गणितम्।

छन्दांस्येव वृत्तपदवाच्यानि जायन्ते गणयोजनया। एवं छन्दस्त्वव्याप्यं वृत्तत्वम्। कालिदाससाहित्ये पुनर्निम्नलिखितानि वृत्तानि लभ्यन्ते–

१. अनुष्टुप् र. १.१–९४,४.१–८६,१०.१–८५,१२.१–१०१,१५.१–१०२, १७.१–८०

कु. २.१–६३,६.१–९४

शा. १.५,६,११,१२,२३; २.८,१४,१७,१८; ३.१,१९; ४.४,१४,२४,२६,२९; ६.२२,२३,२८,३२, ७.९,१३,१४, १५,२८,२९

वि. १.१४–१६; २.४,५,१४,१६,१८; ३.९,११,१८,२०; ४.३०, ३८,३९,४१,५२,५८; ५.१,३,१२,१४,२०,२३–२५

मा. १.१०,१४,१६; २.९; ४.४,६,१२,१४; ५.९,११,१२,१३, १५,१६, १८

प्रस्तार: पथ्यावृत्तभेदे दृश्य: म स म त र

ऽऽऽ ।।ऽ ऽऽऽ ऽऽ। ऽ।ऽ

२. आर्या शा.१.२–४,१३,१५,१७,१९,२२,२६,३१; २.१,९; ३.२,४–६, ११,१४; ४.७,२१;५.११,१२; ६.१४,१५,१९, २१,३१; ७.२२

वि.१.२,७,८,१२; २.३,८,२०; ३.४,५,८,१४,१६,१७; ४.५, ८,४७, ५७,५९,६२,६६,७१–७३; ५.४,५,८,१०,११,१३

मा. १.३,५,६–८,१३,१८,२०,२२; २.१,२,१०,११,१३,१४; ३.७–९, १३,१६,१८,१९,२२,२३; ४.२,३,५,७,१७; ५.४,५,६,१९ मात्रावृत्तम्।

---

१. इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रोपजातयो भूयोविषया मिश्रिताश्चेति, स्वयमन्वेष्या:।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. इन्द्रवज्रा र.२.५,७,२६,४६,५०,७०; ५.५,१३,२२,३५,३८,४०,६० आदि[१]
कु. १.५,१५; ४.२२; ५.४ आदि।
प्रस्तारः त त ज गु गु
ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

४. उपजातिः र. ३.१–४ आदि
कु. १.१–४ आदि
शा. २.७; ५.२५; ६.१०; ७.१९,३१
प्रस्तारः ज त ज गु त त ज गु गु
।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

५. उपेन्द्रवज्रा र. ५.८४ आदि
कु. १.१० आदि
शा. १.१७, ७.१६, ३० आदि
वि. ३.१२,१३ आदि
प्रस्तारः ज त ज गु गु
।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

६. ऋक् शा. ४.८

७. औपच्छन्दसिकम् र. ९.६६; मा. ३.३

८. गाहा शा. २.१५; ४.१२,१६; ५.१,१६; ६.१
वि. भूयस्यः विशेषेण चतुर्थेऽङ्के
मा. २.४ प्रभृतयः

९. तोटकम् र. ८.९ (?)
शा. ५.३० (?)

१०. द्रुतविलम्बितम् र. ९.१ –५४
शा. २.१२; ३.१८; ६.८
वि. २.९; ३.६; ४.५६
मा. ३.६; ४.१३; ५.७
भरते 'हरिणप्लुता' (नाशा. १५.५५)
प्रस्तारः न भ भ र
।।। ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११. नाराचम् र. १२.१०४

प्रस्तारः न न र र र र

||| ||| ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ

१२. पुष्पिताग्रा र. ५.७६, ६.८६; ९.७०,७१

कु. ४.४६; ६.९५

शा. १.२९; २.३; ६.११

वि. २.२१; ३.३,२२

मा. १.११

प्रस्तारः न न र य न ज ज र गु

||| ||| ऽ।ऽ ।ऽऽ ||| ।ऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ

१३. पृथ्वी वि. २.११

मा. ३.१७

प्रस्तारः— ज स ज स य ल गु

।ऽ। ।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।ऽऽ । ऽ

१४. प्रहर्षिणी र. १.९५; ४.८७,८८; ८.९२; ९.६५; १६.७९

शा. ६.२७,

वि. १.३

मा. १.२१

प्रस्तारः म न ज र गु

ऽऽऽ ||| ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ

१५. मञ्जुभाषिणी र. ९.६९ *प्रस्तारः* स ज स ज गु

।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ऽ।ऽ ऽ

१६. मत्तमयूरम् र. ९.७५ *प्रस्तारः* म त य स गु

ऽऽऽ ऽऽ। ।ऽऽ ।।ऽ ऽ

१७. मन्दाक्रान्ता र. ८.९५; १४.८७; १५.१०३; १६.८७,८८; १७.८१; १९.५७

मे. १—११

शा. २.१५; ३.२५

वि. १.९,३२; ४.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा. २.६,८; ३.४; ४.१

प्रस्तारः म भ न त त गु गु

ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽ ऽ

१८. मालिनी र. २.७५; ५.७४,७५; ६.८५; ७.७०,७१; ९.६७; १०.८६; ११.९३; १२.१०३

कु. १.६०; २.६४; ३.७६; ७.९५; ८.९१

शा. १.१८; २.४

वि. २.६; ४.१०,२२,२७,४३; ५.१७,२१,२३

मा. २.५; ३.१२

प्रस्तारः न न म य य

।।। ।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ

१९. रथोद्धता र. ९.६८; ११.१–९१; १९.१–५५

कु. ८.१–९०

शा. ७.१८

प्रस्तारः र न र ल गु

ऽ।ऽ ।।। ऽ।ऽ । ऽ

२०. रुचिरा मा. ४.१६

प्रस्तारः ज भ स ज गु

।ऽ। ऽ।। ।।ऽ ।ऽ। ऽ

२१. वंशस्थम् र. ३.१–१९

कु. ५.१–८४

शा. १.२०; ५.१२; ७.१०

वि. १.६; ४.७

मा. ३.१५

प्रस्तारः ज त ज र

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ

२२. वसन्ततिलका र. ५.६३–७३; ८.९२; ९.५५–६३; ७६–८२; ११.१०३; १३.६८–७८; १६.८१; १९.५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कु. ३.७५; ४.४५; ५.८५,८६

शा.१.८,२४,२८; २.१०,१३; ३.२६; ४.१,२,४,११, १३–१५,२०; ५.२,३,५,६,१५,२२,२३; ६.१२,१३,१६, १८,२०,२४–२६,२९; ७.४,६,१७,२५,२६, ३२

वि.१.४,११; २.१३,१५; ३.१९,२०; ४.६,११,३१,७०; ५.९,१५,१६,१९

मा. १.१२; ४.९; ५.३,१०,२०

प्रस्तार: त भ ज ज ग

ऽऽ। ऽ।। ।ऽऽ ।ऽ। ऽ

२३. वैतालीय/वियोगिनी सुन्दरी (वृ.र.) र. ८.१–९०; ९.७४

कु. ४.१–४४

शा. २.१९; ३.२३; २४; ५.२७; ६.७; ७.१,१२,२०,२१

वि. १.१,५,१०,१८; २.१७

मा. १.४; २.३; ३.२,५,११; ४.१५

प्रस्तार: स स ज गु स भ ज ल गु

।ऽ ।ऽ ।ऽ। ऽ ।ऽ ऽ।। ।ऽ। । ऽ

२४. शार्दूलविक्रीडितम् शा. १.१४,२७; २.५,६; ३.९; ४.५,६,९,१७,१८; ५.९; ६.४–६७,११,१२,२७,२८

वि.१.१,५,१०,१८; २.७,१९,२२; ३.२,७,१५; ४.९,२६,४५, ५०,५३,६१,६३, ६८,७४

मा. १.४; २.३; ३.२,५,११; ४.१५

प्रस्तार: म स ज स त त गु

ऽऽऽ ।ऽ ।ऽ। ।ऽ ऽऽ। ऽऽ। ऽ

२५. शालिनी र. ९.६४

मा. ३.१४, २१; ५.८

प्रस्तार: म त त गु गु

ऽऽऽ ऽऽ। ऽऽ। ऽ ऽ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६. शिखरिणी शा. १.९,२१; २.११; ३.३,५,७,८,१०; ६.९; ७.३३

मा. ३.१

प्रस्तारः य म न स भ गु

ISS SSI III IIS SII S

२७. स्रग्धरा शा. १.१,७,३०; २.१६

वि. २.१

मा. १.१, २.१२

प्रस्तारः म र न न त गु

SSS SIS III III SSI S

२८. स्वागता र. ९.७३

शा. ७.१८

प्रस्तारः र न भ गु गु

SIS III SII S S

२९. हरिणी र. ३.७०

शा. ३.१२; ४.१९; ७.२४

वि. २.१०; ३.१०; ४.७,४०

मा. ४.११; ५.१,२

प्रस्तारः न स म र स ल गु

III IIS SSS SIS IIS I S

0000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्टम् – ४

कालिदासनाटकश्लोकानुक्रमः

संकेताः– पा.=पाठान्तरम्, प्र.=प्रक्षेपः, मा.=मालविकाग्निमित्रम्, रू.=रूपान्तर, वि.=विक्रमोर्वशीयम्, शा.=शाकुन्तलम्

अक्लिष्टबा	शा. ६.२०	अनुकारि	शा. २.१७	अमी वेदिं	शा. ४.८
अग्रे यान्ति	वि. १.५	अनुचित	मा. ४.३	अयं स ग	वि. १.१५
अग्रे स्त्रीन	वि. २.७	अनुपर	वि. ३.२२	अयं स ते	शा. ३.१३
अग्रे विकी	मा. ५.४	अनुमत	शा. ४.१०	अयं तस्या	वि. ३.११
अङ्गमन	वि. ३.१६	अनुयास्यन्	शा. १.२६	अयमचि	वि. ४.४४
अङ्गैरन्त	मा. २.८ पा.	अनेन कल्या	वि. ३.१३	अयमर	शा. ७.७
अचिरप्र	वि. ४.७४	अनेन कस्या	शा. ७.१९	अयमेक	वि. ४.१०
अचिराधि	मा. १.८	अनेन त	मा. ३.१७	अय्याकर	मा. ५.१८पा.
अतः परी	शा. ५.२४	अनेन नि	वि. ५.६	अर्थं सप्र	मा. १.९
अतिमात्र	मा. १.१३	अन्तर्गत	शा. ७.२	अर्थो हि क	शा. ४.२२
अदः सुरे	वि. १.१९	अन्तर्हिते	शा. ४.३	अर्धपीत	शा. ७.१४
अद्यापि नू	शा. ३.२ पा.	अपराधि	मा. ३.२२	अलमन्य	मा. १.२०
अद्याहं पु	वि. ५.१४	अपराधी	वि. २.२०	अवधूत	वि. ३.५
अधरः कि	शा. १.१९	अपरिक्ष	शा. ३.२३	अव्याजसु	मा. २.१३
अध्याक्रान्ता	शा. २.१५	अपि दृष्ट	वि. ४.६०	असंशयं	शा. १.२०
अनतिल	मा. ५.७	अपि वना	वि. ४.४९	असौ मुखा	वि. ५.२
अनवर	शा. २.४	अप्याकर	मा. ५.१८	अस्मात् परं	शा. ६.२५
अनाघ्रातं	शा. २.११	अभिजन	शा. ४.१९	अस्मान् साधु	शा. ४.१७
अनातुरो	मा. ३.१५	अभिनव	वि. ४.५६	अस्याः सर्ग	वि. १.१०
अनिशम	शा.३.४	अभिमुखे	शा. २.१२	अस्यान्तिक	वि. ४.५८,
अनिमित्त	मा. १.१८	अभ्यक्तमि	शा. ५.११		टि. ४.५८
अनिर्देश्य	वि. ३.१८	अभ्युन्नता	शा. ३.७	अहं रथा	मा. ५.९
अनीशया	वि. २.१८	अमरमु	वि. ५.२१	अहन्यह	शा. ६.२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिणव	शा. ५.१	इमां परी	मा. ५.११	औत्सुक्यमा	शा .५.६
आखण्डल	शा. ७.२८	इयं ते ज	वि. ५.१२	औत्सुक्यहे	मा. ३.१०
आचार इ	शा. ५.३	इष्टाधिग	मा. ४.५	कः पौरवे	शा. १.२२
आजन्मनः	शा. ५.२५	ईसीसिचु	शा. १.४	कथं नु तं	शा. ६.१३
आतम्मह	शा. ६.२	उग्गलिअ	शा. ४.१२	कदा मुखं	मा. ४.१६
आत्मनो व	वि. ५.१	उचितः प्र	मा. ३.३	करिणिवि	वि. ४.४३
आ दर्शनात्	वि. २.२	उत्कीर्णा इ	वि. ३.२	कर्कन्धूना	शा. ४.३पा.
आदायकर्ण	मा. ३.१६	उत्तरेण	मा. ४.१२	का कथा बा	शा. ३.१
आपरितो	शा. १.२	उत्पक्ष्मणो	शा. ४.१५	कान्तां विचि	मा. ५.३
आभरण	वि. २.३	उत्सृज्य कु	शा. ३.२१	कामं प्रत्या	शा. ५.३१
आभाति म	वि. ५.४	उदयगू	वि. ३.६	कामं प्रिया	शा. २.१
आमत्तानां	मा. ३.४	उदेति पू	शा. ७.३०	कार्त्स्न्येन नि	मा. ४.८
आयुषो यौ	वि. ५.२३	उन्नमितै	शा. ३.१४	कार्यान्तरि	वि. ३.४
आरक्तरा	वि. ४.१५	उपदेशं	मा. २.९	कार्या सैक	शा. ६.१७
आर्द्रालक्त	मा. ३.१३	उपोढश	शा. ७.१०	का स्विदव	शा. ५.१३
आलक्ष्यद	शा. ७.१७	उभावभि	मा. १.१०	किं शितलैः/सीकरैः	शा.३.२०
आलोकय	वि. ४.१८	उर्वशीसं	वि ५.७	किं सुन्दरि	वि. ५.१५
आ लोकान्ता	वि. २.१	उष्णालुः शि	वि. २.२२	किं कृतका	शा. ५.१८
आविर्भूते	वि. १.९	ऊरूद्भवा	वि. १.४	किन्तावद् व्र	शा. ५.९
आविलप	वि. ५.८	एकैकम	शा. ६.१२	किसलय	मा. ३.१८
आश्वासित	वि. ५.१६	एकैश्वर्य	मा. १.१	कुतो धर्म	शा. ५.१४
इतः प्रत्या	शा. ६.९	एक्कक्कम	वि. ४.४१	कुपिता न	वि. ४.२६
इदं रुण	वि. ४.४०	एताः सुत	वि. १.१२	कुप्यसि कु	मा. ४.१०
इदं किला	शा. १.१७	एवमाश्रम	शा. ७.१८	कुल्याम्भोभिः	शा. १.१३टि.
इदमन	शा. ३.१८	एष त्वाम	शा. ६.२७	कुसुमश	वि. ३.१०
इदमशि	शा.३.१२	एषा कुसु	शा. ६.१९	कुमुदान्ये	शा. ५.२८
इदमसु	वि. २.६	एषा मनो	वि. १.२०	कृतं न क	शा. ६.१८
इदमुप	शा. १.१८पा, ५.१९	एसा वि पिए	शा. ४.१६	कृताः शर	शा. ६.२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृताभिम	शा. ५.२०	जलहर	वि. ४.११	त्रिस्रोतसं	शा. ७.६
कृत्ययोर्भि	शा. २.१८	जाने तप	शा. ३.२	त्वत्कार्यं वा	वि. ५.२०
कृष्णशार	वि. ४.५७	जीमूतस्त	मा. १.२१	त्वदुपल	मा. ३.६
कृष्णशारे	शा. १.६	ज्वलिति च	शा. ६.३१	त्वद्वियोगो	वि. ४.७०
क्रतुभिरु	शा. ७.३३टि.	णावेक्खिदो	शा. ५.१६	त्वन्मतिः के	शा. ६.३२
क्व रुजा ह	मा. ३.२	ततः परान्	मा. ५.१५	त्वमर्हतां	शा. ५.१५
क्व वयं क्व	शा. २.१९	तत् साधु कृ	शा. १.११	त्वं मे प्रसा	मा. ५.२०
क्षामक्षाम	शा. ३.९	तदेषा भ	शा. ५.२६	त्वयि निब	वि. ४.५५
क्षौमं केन	शा. ४.५	तन्वी मेघ	वि. ४.६७	त्वां कामिनो	वि. ४.२५
गच्छति पु	शा. १.३१	तपति त	शा. ३.१६	दइआर	वि. ४.१४
गतं भयं	वि. १.६	तया वियु	वि. ४.६६	दर्भाङ्कुरे	शा. २.१३
गंधुम्माइ	वि. ४.१२	तरङ्गभ्रू	वि. ४.५२	दर्शनसु	शा. ६.२१
गहणं गइं	वि. ४.५	तव कार्यं	वि. ५.२०टि.	दाक्षिण्यं ना	मा. ४.१४
गान्धर्वेण	शा. ३.२२	तव कुसु	शा. ३.३	दातुमस	वि. ३.१४टि.
गाहन्तां म	शा. २.६	तव पित	वि. ५.२२	दातुं वा प्र	वि. ३.१४
गूढा नूपु	वि. ३.१५	तव सुच	शा. ६.११	दिष्ट्या शकु	शा. ७.२९
गोरोअणा	वि. ४.३६	तवास्मि गी	शा. १.५	दीर्घाक्षं श	मा. २.३
गोरोचना	वि. ५.१९	तस्याः पुष्प	शा. ३.२५	दीर्घापाङ्ग	शा. ६.१३टि.
ग्रीवाभङ्गा	शा. १.७	तस्याग्रभा	शा. ६.२५टि.	दुल्लहो पि	मा. २.४
चरणान्त	मा. ३.११	तामाश्रित्य	मा. ४.१	दुष्यन्तेना	शा. ४.४
चलापाङ्गां	शा. १.२१	तिष्ठेत् कोप	वि. ४.९	देवानामि	मा. १.४
चित्रगता	मा. २.२	तीव्राघात	शा. १.३०	देव्या दत्त	वि. ३.१७
चित्रेनिवे	शा. २.१०	तुं सि मए	शा. ६.३	द्वारे नियु	मा. १.१२
चिन्तादुम्मि	वि. ४.४	तुज्झ ण जा	शा. ३.१५	द्विधा विभ	मा. ५.१४
चूतानां चि	शा. ६.४	तुरगखु	शा. १.२९	धृतिपुष्प	मा. ३.१९
छेदो दंश	मा. ४.४	तुल्यानुरा	वि. २.१३	धैर्यावल	मा. १.२२
जनमिम	मा. २.५	तूणीरप	मा. ५.१०	न खलु न	शा. १.१०
जन्म यस्य	शा. १.१२	तौ पृथग् व	मा. ५.१३	न च न प	मा. १.११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न तथा न	वि. २.१४	परिग्रह	शा. ३.१९	प्रभापल्ल	वि. ५.३
न तिर्यग	शा.५.२२पा.	परिजन	वि. ३.३	प्रभालेपी	वि. ४.६२
नद्या इव	वि. ३.८	पर्युत्सुकां	वि. २.१५	प्रलोभ्यव	शा. ७.१६
न नमयि	शा. २.३	पश्चात् सरः	वि. ४.३१	प्रवर्त्ततां	शा. ७.३४
ननु वज्रि	वि. १.१७	पसरिअ	वि. ४.४८	प्रागेव	शा. ६.२५टि.
नवकिस	मा. ३.१२	पसीअ पि	वि. ४.५३	प्राणानाम	शा. ७.१२
नवजल	वि. ४.७	पातुं न प्र	शा. ४.९	प्राहुद्वदि	शा. ७.२७
न सुलभा	वि. २.९	पात्रविशे	मा. १.६	प्रियमाच	वि. १.८
न हि बुद्धि	मा. ४.६	पादन्यासं	शा. ४.३ टि.	प्रियवच	वि. २.२१
न हि सुल	वि. ५.१७	पादास्त ए	वि. ३.२०	प्रेष्यभावे	मा. ५.१२
नायं देव्या	मा. ५.८	पाविअ स	वि. ४.७६	फलिहसि	वि. ४.५०
नार्हति कृ	मा. ४.१७	पिअअम	वि. ४.२८	बहुकुसु	वि. २.८
नितान्तक	वि. २.११	पिअकरि	वि. ४.२९	बाष्पायंते	वि. ५.९
नियमय	शा. ५.८	पिअसहि	वि. ४.१	बाष्पसारा	मा. ३.२१
निराकृत	शा. २.८	पुडइणि	शा. ४.१५टि.	बाष्पेण प्र	शा. ७.२३
निषिञ्चन् मा	वि. २.४	पुत्रस्य ते	शा. ७.२६	भर्त्राऽसि वी	मा. ५.१६
नीलकण्ठ	वि. ४.२१	पुनः प्रत्या	शा. ३.२५टि.	भवतु त	शा. ७.३४
नीवाराः शु	शा. १.१४.	पुराणमित्येव	मा. १.२	भवनेषु	शा. ७.२०
नेपथ्यगृ	मा. २.१	पुरा नारा	वि. १.१६	भवन्ति न	शा. ५.१२
नैतच्चित्रं	शा. २.१६	पुत्वदिसा	वि. ४.५४	भव हृद	शा. १.२५
नैतावता	मा. ५.१७	पृष्टा जने	शा. ३.१०	भाग्यास्तम	मा. २.११
पत्रच्छाया	मा. २.१२	प्रजाः प्रजाः	शा. ५.५	भानुः सकृ	शा. ५.४
पणइणिब	वि. ४.६३	प्रजागरात्	शा. ६.२२	भावज्ञाना	मा. ३.१४
पथिनय	मा. ४.११	प्रणयिषु	वि. १.२	भूत्वा चिरा	शा. ४.२०
पद्भ्यां स्पृशे	वि. ४.१६	प्रतिपक्षे	मा. ५.१९	भ्रूभङ्गभि	मा. ४.९
परभृत	मा. ५.१	प्रत्यादिष्ट	शा. ६.६	मइँ जाणि	वि. ४.८
परस्पर	वि. ५.२४	प्रथमं सा	शा. ६.७	मङ्गलाल	मा. १.१४
परहुअ	वि. ४.२४	प्रथमोप	शा. ७.१	मत्तानां कु	वि. १.३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदकल	वि. ४.४६	मोरा पर	वि. ४.७१	रथाङ्गनामन्	वि. ४.३७
मधुकर	वि. ४.४२	मोहान्मया	शा. ७.२५	रथेनानु	शा. ७.३३
मधुरर	मा. ४.२	मौर्यसचि	मा. १.७	रम्यं द्वेष्टि	शा. ६.५
मनोरथा	शा. ७.१३	यः सुप्तवान्	वि. ५.१३	रम्याणि वी	शा. ५.२
मन्दारकु	वि. १.७	यथा गजे	शा. ७.३१	रम्यान्तरः	शा. ४.११
मन्दारपु	वि. ४.६४	यदालोके	शा. १.९	रम्यास्तपो	शा. १.१३
मन्दोऽप्यम	मा. २.७	यदिदं र	वि. १.१३	रविमाव	वि. ३.७
मन्ये प्रिया	मा. ३.२३	यदि यथा	शा. ५.२७	रविसम	शा. ७.१ टि.
मम कुसु	वि. २.८ पा.	यदि हंस	वि. ४.३३	रुचिमाव	वि. ३.७ पा.
मम्मर र	वि. ४.३५	यदि हार्द	वि. ५.१०	रे रे हंसा	वि. ४.३२
मया नाम	वि. २.१६	यदुत्तिष्ठ	शा. २.१४	लए पेक्ख	वि. ४.६८
मय्येव वि	शा. ५.२३	यदृच्छया	वि. १.११	लब्धास्पदो	मा. १.१७
महतस्ते	शा. ७.१५	यदेवोप	वि. ३.२१	वचोभिरा	वि. ३.९
महदपि	वि. ४.२७	यद् यत्	शा.६.१४,	वरहिण	वि. ४.२०
महाभागः	शा. ५.१०		मा. १.५	वल्मीकाग्र	शा. ७.११
महासार	मा. १.१५	ययातेरि	शा. ४.७	वसने प	शा. ७.२१
मानुषीषु	शा. १.२३	यस्य त्वया	शा. ४.१४	वाचं न मि	शा. १.२८
मामाहुः पृ	वि. ४.४७	यात्येकतो	शा. ४.२	वामं सन्धि	मा. २.६
मामियम	मा. ५.६	यावत्त्पुन	वि. १.१४	वासार्थं ह	वि. २.१९
मुक्तेषु र	शा. १.८	या सृष्टिः स्र	शा. १.१	विचिन्तय	शा. ४.१
मुञ्चति न	वि. १.८	यास्यत्यद्य	शा. ४.६	विच्छित्तिशे	शा. ७.५
मुनिना भ.	वि. २.१७	येन येन	शा. ६.२३	विज्जज्झर	वि. ४.२३
मुनिसुता	शा. ६.८	यो हनिष्य	शा. ६.२८	विद्युल्लेखा	वि. ४.१३
मुहुरङ्गु	शा. ३.२४	रक्तकद	वि. ४.६१	विपुलं नि	मा. ३.७
मूढः स्याम	शा. ५.२९	रक्ताशोक	मा.३.५,	विरचित	मा. ५.२
मृदुपव	वि. ४.२२		वि.४.६१ टि.	विवादे द	मा. १.१९
मेघश्यामा	वि. ४.३०	रतिखेद	वि. ४.७२	विविक्षुर्य	वि. २.५
मेदश्छेद	शा. २.५	रत्नमिति	वि. ५.५	विसृज सु	मा. ४.१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृथैव सं	शा. ३.४ पा.	समर्थये	वि. ४.६९	स्फुरता वि	वि. ४.७३
वेदान्तेषु	वि. १.१	सम्मीलन्ति	शा. ३.५	स्मयमान	मा. २.१०
वैखानसं	शा. १.२४	सरसि ज	शा. १.१८	स्मर एव	शा. ३.११
वोढा कुर	मा. ३.९	सरसि न	वि. ४.३९	स्मृतिभिन्न	शा. ७.२२
व्यपदेश	शा. ५.२१	सर्वः कल्पे/लो	वि. ३.१	स्रस्तांसाव	शा. १.२७
शक्यमर	शा. ३.६	सर्वक्षिति	वि. ४.५१	स्वप्नो नु मा	शा. ६.१०
शठ इति	मा. ३.२०	सर्वस्तर	वि. ५.२५	स्वसुखनि	शा. ५.७
शमप्रधा	शा. २.७	सर्वाङ्गीणः	वि. ५.११	स्वायम्भुवा	शा. ७.९
शममेष्य	शा. ४.२१	सर्वान्तःपु	मा. २.१४	स्विन्नाङ्गुलि	शा. ६.१५
शमयति	वि. ५.१८	सर्वाशोक	मा. ५.५	हंस प्रय	वि. ४.३४
शरकाण्ड	मा. ३.८	सहचरिदुः	वि. ४.२,३	हउ पइ	वि. ४.४५
शरीरं क्षा	मा. ३.१	साक्षात् प्रिया	शा. ६.१६	हस्तं कम्प	मा. ४.१५
शशिकर	शा. ३.८ पा.	सा निन्दन्ती	शा. ५.३०	हस्तैरन्त	मा. २.८
शहए कि	शा. ६.१	सामन्तमौ	वि. ३.१९	हिअआहि	वि. ४.६
शान्तमिद	शा. १.१५	सामिअ सं	वि. २.१२	हृतोष्ठरा	वि. ४.१७
शापादसि	शा. ७.३२	सायन्तने	शा. ३.२६	हृदयमिषु	वि. २.१०
शिरसा प्र	मा. १.३	सितांशुका	वि. ३.१२		
शुद्धान्तदु	शा. १.१६	सिध्यन्ति क	शा. ७.४		
शुश्रूषस्व	शा. ४.१८	सुखपर	शा. ७.३		
शैलानाम	शा. ७.८	सुतनु ह	शा. ७.२४		
शिलष्टा क्रिया	मा. १.१६	सुभगस	शा. १.३		
संरोपिते	शा. ६.२४	सुरयुर्वा	शा. २.९		
सख्युस्ते	शा. ६.३०	सुरसुन्द	वि. ४.५९		
सङ्कल्पितं	शा. ४.१३	सूर्याचन्द्र	वि. ४.३८		
सङ्गमनी	वि. ४.६५	सूर्योदये	मा. ४.७		
सतीमपि	शा. ५.१७	स्तनयस्तो	शा. ३.८		
सन्दष्टकु	शा. ३.१७	स्त्रीणामशि	शा. ५.२२		
सं पत्तवि	वि. ४.१९	स्निग्धं वीक्षि	शा. २.२		

०००

127151

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

Date

Acc. V. Kumar 23/10/09

Cl. 6/11/09

Bill

Any other

Checked

DONATION

22/10/09

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधानसंपादक **डॉ. मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी** उज्जयिनी की कालिदाससंस्कृतअकादमी के सक्षम निदेशक हैं। वे संस्कृत के महाकवि और परम्परागत अनुशासन के विज्ञ विद्वान् हैं। सम्पादकद्वय में महामहोपाध्याय **प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी** सम्प्रति काशीहिन्दूविश्वविद्यालय में संस्कृत के सम्मानित आचार्य (Professor Emeritus) हैं। काव्यशास्त्र और कालिदास साहित्य आप के मुख्य विषय हैं। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आपने ही **नाट्यशास्त्र** (काव्यलक्षणखण्ड) वर्ष २००५ में तथा पहली बार भोजराज का **शृङ्गारप्रकाश** वर्ष२००७ में व्यवस्थित रूप में सम्पादित कर प्रकाशित कराया है। इस शास्त्र पर आपके मौलिक ग्रन्थ **काव्यालङ्कारकारिका** तथा **अलं ब्रह्म** इस शताब्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण मौलिक कृतियाँ हैं। कालिदाससाहित्य का संशोधित मूलपाठ आपकी महत्वपूर्ण देन है जो **कालिदासग्रन्थावली** के रूप में पहले १९७६ में और पुन: १९८६ में प्रकाशित हो चुकी है। आप ही ने हेमाद्रिकृत **रघुवंशदर्पण** पहली बार सम्पादित कर १९७३ में प्रकाशित कराया। सम्पूर्ण कालिदास साहित्य के इस संस्करण का हिन्दी अनुवाद भी आपने किया है। आप संस्कृत के सर्वोच्च 'राष्ट्रपति पुरस्कार', 'श्रीवाणी अलंकरण', 'विश्वभारती' 'वाचस्पति' तथा 'साहित्यअकादमी' पुरस्कारों से पुरस्कृत हैं हीं, कालिदास संस्कृत अकादमी ने वर्ष २००७ में आपको **रत्नसदस्य** घोषित किया है। **डॉ. सदाशिवकुमार द्विवेदी** संस्कृतविभाग, कलासंकाय, काशीहिन्दूविश्वविद्यालय में रीडर पद पर कार्यरत हैं। आपको ही श्रेय है इस संस्करण को कम्प्यूटर में सुरक्षित करने का। इसके अतिरिक्त इन्हीं ने किया है प्रस्तुत संस्करण की प्रत्येक पंक्ति का परीक्षण। आपका संस्कृत,हिन्दी और अंग्रेजी पर समान अधिकार है। आपने कुमारसंभव के पाण्डुग्रन्थों पर रचित ग्रन्थ पर पीएच्.डी. उपाधि वर्ष १९९२ में काशीहिन्दूविश्वविद्यालय से प्राप्त की जो संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से वर्ष२००७ में प्रकाशित भी है। **शृङ्गारप्रकाश** में आप सहायक सम्पादक हैं। आप २००७ में उज्जयिनी के विक्रम विश्वविद्यालय के **विक्रम कालिदास पुरस्कार** से पुरस्कृत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar